प्रसाद-साहित्य-कोश

लेखक

डॉ० हरदेव बाहरी

ग्रन्थ-संख्या २१५

प्रकाशक और विक्रेता

भारती-भण्डार

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण

सं० २०१४ वि० १९५७ ई

मूल्य १)

मुद्रक

वि० प्र० ठाकुर

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्राक्कथन

उद्देश्य

यह शब्द-कोश नहीं है, ज्ञान-कोश है। इसमें हिन्दी और हिन्द के प्रसिद्ध साहित्यकार स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद' की (व्रजभाषा और खड़ी बोली की) कविताओं, कथाओं, कहानियों, उपन्यासों, नाटकों, निबन्धो, भूमिकाओं आदि[1] — सभी कृतियों का परिचय दिया गया है और उनकी विषयवस्तु के संक्षेप और समीक्षा के अलावा प्रसाद-साहित्य मे आये संदर्भो का उल्लेख और विवेचन किया गया है। चरित्र-चित्रण, देशकाल, भाषा, शैली आदि सभी आलोच्य विषयों पर संकेन्द्रित प्रकाश डाला गया है और चेष्टा की गई है कि प्रसाद ने जो कुछ लिखा है और प्रसाद पर जो कुछ लिखा गया है, उस सारे साहित्य-सागर को इस कोश-गागर में भर लिया जाय। इसके साथ ही बहुत-सी सामग्री ऐसी भी दी गई है, जो आज तक प्रसाद अथवा किसी भी भारतीय साहित्यकार की कृतियों से संकलित नही हुई, जैसे कि सूक्तियाँ और सैद्धान्तिक कथन[2]; भाव-विचार-कोष[3], स्थानो के संदर्भ-सहित वर्णन और भौगोलिक परिचय[4], पेड़-पौधे, ऋतुएँ, जातियाँ[5] आदि।

यह संदर्भ-ग्रन्थ प्रसाद-साहित्य के प्रेमियो, विद्यार्थियों, अध्यापको और अन्वेषकों, सब के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। हिन्दी साहित्य इतना विस्तृत है और इस संघर्षमय, रोटी-कपडे की चिन्ता के युग मे व्यक्तिगत व्यस्तताएँ इतनी अधिक है कि विरले ही अध्येता पूरे प्रसाद-साहित्य से परिचित होने का दावा कर सकते है। हर कोई सब कुछ नहीं पढ सकता, या पढ करके गहरी आलोचनात्मक दृष्टि से अपने पढ़े का ठीक-ठीक मूल्याकन नही कर सकता। विश्वविद्यालयों में प्रसाद का अध्ययन विशिष्ट विषय के रूप मे कराया तो जा रहा है, किन्तु प्राय: प्रसाद के कवि का अथवा (बहुत कम) नाटककार का ही अध्ययन होता है।

---

१. विवरण दे० कोश मे 'प्रसाद' शब्द के अन्तर्गत विविध साहित्य।

२. दे० अनुक्रमणिका।

३. दे० नियति, प्रकृति, रूपवर्णन आदि शब्द।

४. दे० अनुक्रमणिका मे प्रत्येक कृति के अन्तर्गत स्थान।

५. दे० परिशिष्ट।

इस कोश का लेखन-सम्पादन प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य का ज्ञान कराने के लिए किया गया है। पुस्तकाकार साहित्य के अलावा इन्दु, जागरण, हंस[1], नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि से प्रसाद की रचनाओं की खोज करके बहुत-सी सामग्री संकलित की गई है।

प्रसाद ने अपनी अल्प आयु में जो साहित्य लिखा, वह बहुत भारी तो नहीं है, विस्तृत और गम्भीर अवश्य है। उन्होने ६९ कहानियाँ (पृष्ठसंख्या लगभग ८००), तीन उपन्यास (पृष्ठसंख्या लगभग ११५०), व्रजभाषा के मुक्तक (पृष्ठसंख्या १५०), खड़ी बोली के मुक्तक (पृष्ठसंख्या ३००), २७ चतुर्दशपदियाँ (पृष्ठसंख्या २०), एक दर्जन से अधिक आख्यानात्मक कविताएँ (पृष्ठसंख्या लगभग १००), दो चम्पू (पृष्ठसंख्या ४८), एक महाकाव्य (पृष्ठसंख्या २९४), १० ग्रंथों की छोटी-बड़ी भूमिकाएँ (पृष्ठसंख्या लगभग १५०), प्रायः दो दर्जन निबन्ध (पृष्ठसंख्या २००) लिखे हैं।

इन चार हजार से कुछ कम पृष्ठों को बार-बार, बार-बार पढ़कर क्रमशः एक-एक विषय की सूचियाँ और संदर्भ-पंक्तियाँ सम्पादित करनी पड़ी है। प्रसाद की प्रत्येक उक्ति अथवा पंक्ति को सही-सही संदर्भित करने का प्रयत्न किया गया है, ताकि पाठकगण यदि उसका अपने पूरे परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करना चाहें अथवा उनका अन्य रूप में प्रयोग करना चाहें, तो कर सकें।

पद्धति

प्रसाद की समस्त कृतियों और उनमें आये हुए व्यक्तियों और स्थानों के नामों को और सूक्तियों, मन्तव्यों तथा साहित्य-विषयों को शीर्षकों के अन्तर्गत कोश में अकारादि क्रम से रखा गया है। पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, ऋतुओं और जातियों के नाम भी क्रमशः परिशिष्ट में संदर्भित किये गये हैं। इनका अपना महत्त्व तो है ही, प्रकृति-चित्रण के साथ भी कुछ संदर्भों को लिया जा सकता है और प्रसाद की प्रकृति को समझा जा सकता है। कार्य करने वालों के लिए पर्याप्त सामग्री जुटा दी गई है। प्रसाद की अनेक कृतियों में भारतीय इतिहास[2] की झाँकियाँ है। जहाँ पर उनमें वर्णित ऐतिहासिक पुरुषों और स्थानों का महत्त्व है, वहाँ जातियों के उल्लेख का भी है। इसीलिए अनेक जातियों को संदर्भित करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ। परिशिष्ट में इनकी सूची भी दी गई है। प्रसाद की इतिहास-प्रियता को इनके बिना ठीक-ठीक आँकने में कठिनाई होगी। इस समस्त सामग्री से भाषा और साहित्य दोनों शास्त्रों के विद्यार्थी लाभ उठा

---

१. दे० अनुक्रमणिका के अन्त में।

२. दे० कोश में 'इतिहास'।

सकते हैं। भाषाशास्त्रियों और कलाप्रेमियों के लिए कुछ और सूचियाँ भी संगृहीत करने का विचार था ; जैसे—प्रसाद-साहित्य में वाद्ययन्त्र—करताल, झाँझ, मजीरा, मृदंग, सितार, सितारी, वीणा, दुंदुभी, तूर्य, वेणु, वंशी, खंजड़ी, पटह, वायोलिन, बीन, सारंगी आदि ; संगीत-सम्बन्धी चौताल, रामकलेवा, सोहर, कजली, ठुमरी, बिहाग, आसावरी, भैरवी आदि ; अथवा रत्नों के नाम, जैसे—वैदूर्य, नीलम, मौक्तिक, मोती, मरकत, कौस्तुभ, जवाहिर, माणिक, हीरा, विद्रुम, स्वर्ण, रजत, नीलमणि, चन्द्रकान्त, सूर्यमणि, हीरक, वज्र, शीतलमणि, इन्द्रनील, रुक्ममणि, पुखराज, गजमुक्ता, कोहनूर आदि। लेकिन यह मानकर कि इनका लाभ सामान्य पाठक को न हो सकेगा, इन नामों को नहीं दिया गया है।

प्रसाद की किसी एक कृति का सांगोपांग अध्ययन जो लोग करना चाहें, वे 'अनुक्रमणिका' को विशेषत उपयोगी पायेंगे। वैसे भी अनुक्रमणिका की सहायता से कोश का अधिक-से-अधिक लाभ उठाया जा सकता है। कोश की यही कुंजी है। उससे गुणज्ञ महानुभाव यह भी जान जायेंगे कि हमने किसी ज्ञातव्य बात को छोड़ा नहीं है, भले ही उस बात को विस्तार और व्याख्यान के साथ न कहा हो।

कोश-कला का प्रमुख सिद्धान्त है कि थोड़े में बहुत कुछ कहा जाय और सही-सही अर्थगर्भित शब्दों में कहा जाय। प्रसाद की प्रत्येक कृति का संक्षेप करते समय यथासंभव लेखक के शब्द-संगठन और उनकी शैली को सुरक्षित रखा गया है। संक्षेप प्राय उन्हीं के शब्दों में (उसी वर्त्तनी, उसी व्याकरणगत प्रयोग और वाक्य-योजना के साथ) देने का प्रयत्न किया गया है। निबन्धों, कहानियों और उपन्यासों में इस पद्धति का ठीक-ठीक निर्वाह हो सका है। कविताओं को गद्यमय किया गया है, पर कवि की वाणी की आत्मा को ठेस नहीं पहुँचने दी[1], और सारगर्भित पंक्तियों को यथास्थान उद्धृत भी कर दिया गया है।[2] नाटकों में नाटककार ओझल रहता है, पात्र बोलते हैं ; इसलिए हमें शैली बदल देने की गुंजाइश हो गई है। नाटकों का संक्षेप करने में कई शैलियों का प्रयोग किया गया है। अनेक कृतियों की भाषा और शैली के नमूने भी उद्धृत कर दिये गये हैं।

कहानियों, उपन्यासों, नाटकों और आख्यानक कविताओं के छोटे-बड़े सभी पात्रों को लेकर उनका चरित्र-चित्रण किया गया है। प्रसाद के जिन पात्रों के चरित्र की कोई विशेषता है ही नहीं, अथवा वर्ण्य वस्तु कथा के प्रसंग में कह

---

१. उदाहरण स्वरूप दे० 'आँसू'। २. दे० 'प्रेम-पथिक'।

दी गई है उनका हमने उल्लेख मात्र कर दिया है। वैसे भी, पात्रों से सम्बन्धित घटना अथवा गुणदोष का वह अंश प्रायः नहीं दोहराया गया, जो कथा में वर्णित किया जा चुका है। पुनरावृत्ति से बचने के लिए यह आवश्यक था। अतः पात्रों को समझने के लिए बिना तत्सम्बन्धी कथांश को पढ़े पूरी जानकारी प्राप्त न होगी। पात्र ही नहीं, देवी-देवताओं, आचार्यों, लेखकों आदि के जितने नाम प्रसाद-साहित्य में आये है, उन सब को हमने प्रसंग-सहित संदर्भित करने का यत्न किया है। इनका क्या लाभ है? एक दृष्टात दे देने की इच्छा है। देखिए 'शिव' और तुलना कीजिए कि प्रसाद की कृतियो में 'विष्णु' नाम ही नही आया, यद्यपि 'कृष्ण' अथवा 'हरि' नाम आता है और कृष्ण पर तो प्रसाद ने कविता भी लिखी है—प्रसाद कट्टर शिव-भक्त थे। कुल मिलाकर व्यक्तियों के नामो की संख्या ८५५ के लगभग है।

स्थानों के लगभग २५० नाम कोश मे संगृहीत है। इनमे देशों, प्रदेशों, नगरों, गाँवों, नदी-नालों आदि के नाम सम्मिलित है। प्रसाद के समय मे इन स्थानों की क्या अवस्था थी (दे० कलकत्ता), अथवा इतिहास के युग-युग मे किसी स्थान विशेष का क्या महत्त्व रहा है (दे० 'काशी' अथवा 'मगध'), इन पक्षों पर इस संकलन मे बहुत अच्छा प्रकाश पड़ेगा। यह विषय अध्ययन-क्षेत्र मे बिल्कुल नया है। यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि ऐतिहासिक कृतियों के अलावा काल्पनिक कहानियों और उपन्यासों तक में (दो चार नामों को छोड़कर) प्रसाद ने सर्वत्र वास्तविक नामो का प्रयोग किया है। प्रसाद बचपन मे ही काशी से कही बाहर गये थे, लेकिन उन्होंने विभिन्न स्थानो की स्थिति, उनके भौगोलिक अथवा सांस्कृतिक महत्त्व तथा उनकी तत्कालीन दशा का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह यथार्थ है। पहले इस ओर ध्यान नही गया था और कीटागिरि, बटेसर, अछनेरा, पेशोला, चंदा नदी, खारी नदी-जैसे नाम पढ़कर इन्हें काल्पनिक समझा जाता था, लेकिन जब उत्तरप्रदेश (प्रसाद के समय के संयुक्त प्रान्त) और भारत के भूगोल के पन्ने उलट कर देखे, तो प्रसाद की यथार्थप्रियता और जानकारी पर बलिहारी होना पड़ा। ग्रामगीत कहानी के कमलापुर, शरणागत के चन्दनपुर, रूप की छाया के रामगाँव और तितली उपन्यास के धामपुर, शेरकोट और सिहपुर को अभी तक मै नही जान पाया, पर मेरा विश्वास है कि ये स्थान बनारस जनपद में अवश्य है। इस जनपद के गाँवों की सूचियाँ मुझे उपलब्ध नही हो सकी। कल्पित पात्रों के विषय मे भी इस प्रकार का अध्ययन करने की आवश्यकता है। ऐसे अनेक पात्रों में प्रसाद के सचमुच के सम्बन्धी, मित्र, अड़ोसी-पड़ोसी, जाने-पहचाने व्यक्ति मिलेंगे। उदाहरणतः दो-तीन पात्रों

में मुझे राय कृष्णदास और विनोदशंकर व्यास की परछाईं दिखाई देती है। यह कोश ऐसे अनेक नये-नये विषयों के अध्ययन की ओर संकेत करता है।

कई स्थलों पर, विशेषतया व्यक्तियों और स्थानों के संदर्भों के उपरान्त बड़े कोष्ठक [ ] के अन्तर्गत अतिरिक्त जानकारी जुटा दी गई है। इससे इनके परिज्ञान में वृद्धि होगी और संदर्भित स्थलों का पूरा परिवेश समझने में सुविधा होगी। जिनकी जानकारी अथवा जितनी जानकारी साहित्यकार ने स्वयं दे दी है, अथवा जो नितान्त कल्पित नाम है, उनके सम्बन्ध में ऐसी कोष्ठ-गत टिप्पणी नही दी गई है।

अन्तर्संदर्भ इस कोश के महत्त्वपूर्ण अंग है। कही तो पुनरावृत्ति से बचने के लिए और कही तद्विषय-सम्बन्धी अतिरिक्त ज्ञान के लिए अन्तर्संदर्भ दिये गये है।

'दे०' का अर्थ यही है कि 'इसी कोश मे यथाक्रम देखिए।' 'पढ़िए' शब्द का अर्थ यह है कि 'मूल कृति मे पढ़ लीजिए।'

प्रत्येक संदर्भ के अन्त मे पुस्तक का नाम दिया गया है, साथ में उपन्यास के खंड और अध्याय तथा नाटक के अंक और दृश्य की संख्या, एवं कहानी, कविता या निबन्ध का शीर्षक भी दिया गया है। जहाँ पुस्तक का हवाला नहीं दिया गया, वहाँ कहानी, कविता अथवा निबन्ध को छोटे कोष्ठक ( ) में दिखाया गया है। उस कृति को इसी कोश मे देखा भी जा सकता है। कभी-कभी पुस्तक के पृष्ठ का हवाला भी देना पड़ा है। अतः आगे एक सूची प्रसाद की पुस्तकों के उन संस्करणों की दे दी गई है, जिनका उपयोग इस पुस्तक की तैयारी में किया गया है। साथ ही उन पुस्तकों की सूची भी दी जा रही है जिनको मैंने प्रसाद को समझने के लिए देखा है। उनका मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। अस्तु, कहना यह है कि प्रसाद-रचित ४००० पृष्ठों और आलोचकों-विचारकों द्वारा लिखित लगभग ८००० पृष्ठों की सामग्री को प्रस्तुत कोश के ५०० पृष्ठों मे संचित कर दिया गया है।

प्रसाद की जन्म-कुंडली उनके परम मित्र और हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्य-कार राय कृष्णदासजी से प्राप्त हुई है और संभवतः पहली बार प्रकाशित हो रही है। इसके लिए उन्हे धन्यवाद देना आवश्यक है। प्रूफ पढ़ने में मेरे ज्येष्ठ पुत्र देवेन्द्र बाहरी ने मेरी बड़ी सहायता की है। उसे क्या धन्यवाद दूँ! किसी भी कोश में टाइपों की दिक्कत प्रेस के लिए सिरदर्दी का कारण होती है। यह इसी से जाना जा सकता है कि प्रस्तुत कोश को छपने-छपने लगभग १० महीने लग गये है। लीडर प्रेस के कर्मचारी साधुवाद के पात्र है!

प्रसाद का सारा साहित्य 'भारती-भंडार' द्वारा प्रकाशित है। श्री वाचस्पति पाठक ने इस कोश का प्रकाशन भी 'भारती-भंडार' द्वारा कराके बड़ी सूझ का परिचय दिया है। उनके प्रोत्साहन के लिए मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

१०, दरभंगा कैसिल,
इलाहाबाद,
दीपावली, सं० २०१४

—हरदेव बाहरी

प्रसाद-साहित्य

[जिन संस्करणो का उपयोग इस कोश में किया गया]

नाटक

अजातशत्रु, १५वाँ, इलाहाबाद
एक घूंट, २रा, प्रयाग
करुणालय, २रा, बनारस
कामना, प्रथम, लहेरिया सराय
चंद्रगुप्त, प्रथम, काशी
जनमेजय का नाग-यज्ञ, षष्ठ, इलाहाबाद
ध्रुवस्वामिनी, तृतीय, इलाहाबाद
राज्यश्री, छठा, इलाहाबाद
विशाख, पंचम, प्रयाग
स्कंदगुप्त विक्रमादित्य, २रा, बनारस

काव्य

आँसू, सप्तम, इलाहाबाद
कानन-कुसुम, पंचम, प्रयाग
कामायनी, २००३ वि०, प्रयाग
झरना, छठा, प्रयाग
प्रेम-पथिक, द्वितीय, प्रयाग
महाराणा का महत्त्व, ३रा, प्रयाग
लहर, तृतीय, इलाहाबाद

कहानी-संग्रह

आकाशदीप, चतुर्थ, इलाहाबाद
आँधी, चतुर्थ, इलाहाबाद
इन्द्रजाल, तृतीय, इलाहाबाद
छाया, तृतीय, लहेरियासराय
प्रतिध्वनि, चतुर्थ, प्रयाग

उपन्यास

इरावती, प्रथम, प्रयाग
कंकाल, षष्ठ, प्रयाग
तितली, छठा, प्रयाग

निबन्ध

काव्य और कला तथा अन्य निबंध, द्वितीय, इलाहाबाद

विविध

चित्राधार, २रा, बनारस

आलोचना-साहित्य

[इस सूची मे सब तरह की पुस्तके है, जो प्रसाद-साहित्य पर लिखी गई है—उच्च कोटि की भी और निम्न कोटि की भी । इन में कोई-न-कोई काम की बात मुझे अवश्य मिल जाती रही है । इनके लेखकों के प्रति आभार प्रगट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ ।]

इन्द्रनाथ मदान जयशंकर प्रसाद चिन्तन व कला
स० टी० नरसिंहाचारी : कामायनी दिग्दर्शन
स० टी० नरसिंहाचारी : कंकाल—एक अध्ययन
: लहर—एक अध्ययन
कन्हैयालाल सहल तथा विजयेन्द्र स्नातक (सं०) : कामायनी दर्शन
कमल साहित्यालंकार : कामायनी दर्शन
किशोरीलाल गुप्त : प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन

कृष्णकुमारसिंह : प्रसाद का चंद्रगुप्त
: प्रसाद का अजातशत्रु
कृष्णानन्द गुप्त : प्रसाद के दो नाटक
केदारनाथ शुक्ल : प्रसाद की कहानियाँ
: प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी
केसरीकुमार : प्रसाद और उनके नाटक
गंगाप्रसाद पाण्डेय : कामायनी—एक परिचय
गुलाबराय : प्रसाद की कला
जगदीशनारायण : प्रसाद के नाटकीय पात्र
जगन्नाथप्रसाद मिश्र : चंद्रगुप्त समीक्षा
: स्कन्दगुप्त समीक्षा
जगन्नाथप्रसाद शर्मा : प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन
तरुणेन्दुशेखर शुक्ल . कामायनी दिग्दर्शन
नन्ददुलारे वाजपेयी : जयशंकरप्रसाद
प्रेमनारायण टंडन . प्रसाद के तीन नाटक
प्रेमशंकर : प्रसाद का काव्य
फतहसिंह : कामायनी सौन्दर्य
बैजनाथ : नाटककार प्रसाद और चन्द्रगुप्त
महावीर अधिकारी : प्रसाद का जीवन, कला और कृतित्व
राजेश्वरप्रसाद अर्गल : प्रसाद के तीन ऐतिहासिक नाटक

रामनाथ सुमन : कवि प्रसाद की काव्य साध
रामरतन भटनागर : कवि प्रस
: कामायनी—एक अध्य
: प्रसाद—एक अध्य
: प्रसाद का कथा-साहित्य
: प्रसाद के नाटक
रामलालसिंह : कामायनी अनुशीलन
विनयमोहन शर्मा . आँसू और अन्य कवित
विनोदशंकर व्यास : प्रसाद और उन साहित्य
विश्वम्भर मानव : कामायनी की टीका
व्रजभूषण शर्मा : कामायनी का विवेचन
व्रजलाल वर्मा . कामायनी समालोचना
शम्भूनाथ पाण्डेय : कवि प्रसा
: गद्यकार प्रसा
शिखरचंद जैन : प्रसाद का नाट्य चिन्त
शिलीमुख : प्रसाद की नाट्य क
शिवकुमार मिश्र : कामायनी अ
प्रसाद की कविता-ग
सत्यपाल विद्यालंकार . कामायनी सरल अध्य
सुशीला देवी—विमला देवी : प्रसाद उपन्यास और कहानि

प्रसाद-साहित्य-कोश

अ

अकबर[1]—हुमायू का बेटा। मुगल सम्राट्। —(**ममता**)

अकबर[2]—मुगल सम्राट्
—**महाराणा का महत्त्व**

[अकबर द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण, १५६७ ई०; प्रताप के साथ रहीम की भेंट १५७२ ई०।]

अकबर[3]—मुगल सम्राट्। फतहपुर सीकरी में यौवनकाल बिताया। कश्मीर जीता। उसके दरबार की विलासिता का वर्णन कहानी में है। कहानी में अकबर का चरित्र उज्ज्वल नहीं है।—(**नूरी**)

[राज्यकाल १५५६-१६०५ ई०। हज़रत सलीम चिश्ती के पास अकबर सीकरी में आते थे। धीरे-धीरे वहां राज-भवन बनने लगे और नाम फतहपुर रखा गया। (१५६९ ई०) यहीं अकबर के दीन-ए-इलाही की सभाएँ होती थी।]

अकेली छोड़ कर जाने न दूँगी—गीत। तुम मेरे हृदय हो, अब इस शरीर से नही जा सकते ; इस प्रणय को अब निभाना होगा। (**चन्द्रलेखा विशाख से**) —**विशाख २-४**

अकेले—सब अकेले ही तो संसार-पथ में निकलते हैं ; किसी का मिल जाना, यह तो भाग्य की बात है। (**देवगुप्त**) —**राज्यश्री, १-१**

अगर धूम की श्याम लहरियाँ उलझी हों इन अलकों में—गीत। अपने को स्कन्द को अर्पित करती हुई विजया कहती है कि 'मेरी अलकों में श्यामलता, मेरी पलकों में मादकता, मेरे हृदय में बिजली, मेरी बरुनी में आँसू, अधर में प्रेम-प्याला, जीवन में व्याकुलता, मेरे जीवन-तम में तुम्हारी छवि का प्रकाश, साँसों में धड़कन, मेरे अनुनय में दीनता हो। फिर चाहे ठुकराओ, चाहे प्यार करो।' यौवन में मादक सुख का कितना सजीव चित्रण है। —**स्कन्दगुप्त, ५**

अग्निमित्र—मगध के दण्डनायक पुष्य-मित्र का पुत्र, सच्चा प्रेमी, वीर, साहसी युवक। प्राणसार शरीर, कलापूर्ण सुन्दर दुर्बल मुख, लम्बा कद। विदिशा का कुलपुत्र। अग्निमित्र मातृ-विहीन युवक है। उसका पिता सैनिक, राज-अनुग्रह का अभिलाषी है। इरावती के प्रेम में पिता से वियुक्त हो जाता है और सम्राट् का कोपभाजन बनता है। बन्दी होकर भी वह बृहस्पतिमित्र के सम्मुख निर्भीक बना रहता है। उसका प्रेम अटल है। कालिन्दी का आकर्षण और मोह उसे विचलित नहीं कर सका। वह अपने पिता की भांति कूटनीतिज्ञ और गंभीर

तो नहीं ; परन्तु उसकी वीरता मे कोई सन्देह नही । उपन्यास के अन्त मे वह खारवेल और धनदत्त की रक्षा मे कटिबद्ध दिखाई देता है ।

वह कुछ मनस्वी तो अवश्य है ; परन्तु मालव-सेना का प्रतिनिधि वीर है । उसकी मनस्विता ने उसे राजभृत्य बनने से वंचित कर दिया । पिता का विरोध, कालिन्दी का उद्दीप्त सौन्दर्य कोई भी उसे इरावती से विमुख नही कर सका । —**इरावती**

[पुष्यमित्र ने अन्तिम मौर्य्य राजा को मार कर शुग-वंश की स्थापना की । उसका राज्यकाल १८८-१४९ ई० पू० था, इसके बाद अग्निमित्र ने १५ वर्ष तक राज्य किया ।]

अग्निसेन—गुल्मपति जान पड़ता है । सेनापति ने इसे १०० सैनिक जुटाकर दुर्ग के दक्षिणी द्वार पर चलने को कहा (जहां अरुण दुर्ग मे घुसने की तैयारी कर रहा था); और स्वयं मधूलिका को लेकर राजा के पास आया ।

—(**पुरस्कार**)

अघोरी—दे० ललित ।

अघोरी का मोह—परिस्थितियों की विडम्बना पर आश्रित एक छोटी कहानी । ललित और किशोर दो मित्र थे । एक दिन ललित ने आतिथ्य मे किशोर को गंगा की सैर कराई और बहुत बर्फी खिलाई । वह कहता था कि पचा न पाऊँगा, लेकिन ललित कहता रहा कि सुधाबिन्दु की एक बूंद में १७ बर्फी पचाने की ताकत है । जबरदस्ती उसके मुह में दो बरफी ठूस ही दीं । इस विनोद के बाद ललित के मुख पर अवसाद के चिह्न प्रकट हुए । न जाने क्यों । २५ वर्ष बाद ललित अघोरी बन गया । किशोर गृहस्थ रहा । एक दिन वह अपनी पत्नी कमला और बच्चों को लेकर जल-विहार के लिए निकला । किनारे अघोरी की पञ्चवटी थी । किशोर का पुत्र नवल उधर आकृष्ट हुआ । नौका रुकी और वे सब उतर गए । एक रुक्ष-केश, कौपीनधारी साधु उनके सामने आ खड़ा हुआ । किशोर ने उसे खाने को परावठे देने चाहे ; पर उसने कहा कि हमको और कुछ न चाहिए । एक बच्चे को उठाकर चूमने लगा । किशोर ने मना कर दिया, तो वह चला गया । किशोर को कुतूहल हुआ । कोई भूली हुई बात याद आना चाहती थी , पर स्पष्ट नही थी । कमला ने सोचा कि हमारे बच्चों को देखकर अघोरी को मोह हो गया है ।

कहानी मे भावातिरेक है, प्रभाव कुछ भी नही । दार्शनिक विचार-धारा के दर्शन प्रसाद के कहानी-साहित्य मे पहली बार इसमे होते है ।

—(**प्रतिध्वनि**)

अछनेरा—फतहपुर सीकरी से अछनेरा जानेवाली सड़क के सूने अञ्चल मे एक छोटा-सा पहाड़ी जंगल है, जहा गूजरों की बस्ती मे गाला और बदन रहते थे । —**कंकाल, ३-५**

[आगरा से १७ मील भरतपुर जाने वाली सड़कपर रेलवे स्टेशन, कस्बा ; दिल्ली के राजा अनंगपाल के पुत्र अचल ने बसाया था। चैत में मेला लगता है ।]

अज—' रघुवंश ' में वर्णित।
दे० कालिदास ।

[रघुपुत्र अज दशरथ के पिता थे । ' रघुवंश ' में इन्दुमती के स्वयवर, अज से इन्दुमती के विवाह, इन्दुमती की मृत्यु और अज के विलाप का वर्णन है ।]

अजमेर—अकबर का मेवाड में स्थित मुगल-सेना के लिए आदेश—

' भेजो आज्ञा-पत्र शीघ्र उस सैन्य को ,
सब जल्दी ही चलें आएं अजमेर में । '

—**महाराणा का महत्त्व**

[दिल्ली और अहमदाबाद के बीच में मुसलमानो का सास्कृतिक केन्द्र । अकबर ने यहा एक ममजिद बनवाई थी । दिल्ली से २२५ मील, मारवाड से ११० मील ।]

अजातशत्रु[१]—तीन अकों का ऐतिहासिक नाटक । नाटक के प्रारम्भ में राय कृष्ण-दास द्वारा दिया गया प्राक्कथन है । इसमें कृष्णदासजी ने सक्षिप्त प्रशंसा के रूप में कुछ शब्द लिखे है । इसके बाद लेखक की लगभग तेरह पृष्ठों की भूमिका है, जिसमें उन्होंने नाटक के विषय में ऐतिहासिक तथ्य क्या है—इस पर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है । प्रथम अंक में नौ दृश्य हैं । मगध का युवराज अजातशत्रु शिकारी लुब्धक पर बिगड़ रहा है ; क्योंकि वह उसके चित्रक के लिए मृगशावक नही लाया । अजात-शत्रु की सौतेली बहन पद्मावती (जो कौशाम्बी के राजा उदयन की मँझली रानी है) उसमे हस्तक्षेप करती है और अजातशत्रु को स्नेह से समझाती है और मगध के भावी शासक को अहिंसा और करुणा की शिक्षा देती है। किन्तु अजात-शत्रु की मां, छलना, आ जाती है ; वह पद्मावती का अपमान करती है और साथ-ही-साथ वासवी (पद्मावती की माता) का भी तिरस्कार करती है। सम्राट् बिम्बसार और वासवी गौतम बुद्ध से प्रभावित हैं ; इसलिए छलना दोनों का अनादर करती है । वह बुद्ध को ' भिखमंगा ', ' कपटी ', ' ढोंगी ', मुनि समझती है । छलना बिम्बसार से अजात-शत्रु के अभिषेक की माग करती है । भगवान् तथागत के उपदेश और वासवी की इच्छा से वे तैयार हो जाते हैं। गौतम का प्रतिद्वन्द्वी देवदत्त इस सफ-लता से बहुत प्रसन्न होता है और वासवी तथा बिम्बसार के नियंत्रण का उपाय सोचने लगता है । उन्हे तपोवन में रखा जाता है । वासवी बिम्बसार को बत-लाती है कि वानप्रस्थ आश्रम में भी उन्हें स्वतंत्र नही छोड़ा गया है । वह यह भी प्रस्ताव करती है कि पिता से आंचल में मिले हुए काशी के राज्य की आय महाराज के हाथ में ही आएगी । अजात का उस पर कोई अधिकार नही है । कौशाम्बी-नरेश उदयन की छोटी रानी

मागंधी है। मागंधी दरिद्र, पर रूपवती कन्या थी, जो गौतम से विवाह करना चाहती थी, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया था। प्रतिशोध लेने के इरादे से उसने उदयन की रानी बनना स्वीकार किया। वह गौतम से जलती है। पद्मावती और उदयन गौतम के भक्त हैं। उनमें वह भेद डालना चाहती है। उदयन को मागंधी अपने प्रणय-जाल मे बांधती है। उदयन मस्त हो जाता है। पूर्व-योजना के अनुसार मागंधी उदयन के लिए पद्मावती के कक्ष से वीणा मँगवाती है। उस वीणा में सर्प का बच्चा लिपटा हुआ पाया जाता है। चालाक मागंधी सारा दोष पद्मावती के सिर मढ़ देती है। इस प्रकार मागंधी, पद्मावती के आचरण को पाखण्डपूर्ण सिद्ध कर देती है। उदयन बौखला उठता है। प्रसेनजित को जब अजातशत्रु के अभिषेक की सूचना मिलती है, तब वह उसकी भर्त्सना करता है। उसका बेटा, राजकुमार विरुद्धक, बीच में बोल पड़ता है। प्रसेनजित आवेश मे आकर विरुद्धक को पदच्युत कर देता है और आज्ञा देता है कि विरुद्धक की माता शक्तिमती (महामाया) का सम्मान राजमहिषी की तरह न होगा। सेनापति विरुद्धक विजयी से लौटता है। लोग उसकी जय मनाते हैं। राजा चौंक उठता है। प्रसेनजित काशी के बारे में अपनी बहिन वासवी के प्रस्ताव का स्वागत करता है। उदयन पद्मावती का वध करने उसके महल में जाता है। वह तलवार खींचता है; पर उसका हाथ तना ही रह जाता है, तभी महादेवी वासवदत्ता आ जाती है। सती का तेज देखकर उदयन पद्मावती से क्षमा-याचना करता है। उसी समय एक दासी आकर भाग भेद बतलाती है और कहती है कि मागंधी महल में आग लगाकर जल मरी। इस प्रकार प्रथम अंक समाप्त हो जाता है।

द्वितीयांक में दस दृश्य हैं। अजातशत्रु को काशी की प्रजा का विरोध सुन पड़ता है, तो वह तिलमिला उठता है। वासवी का इसमें हाथ माना जाता है; इसलिए वासवी और सम्राट् बिम्बसार पर अधिक नियंत्रण रखा जाता है। कोशल-नरेश प्रसेनजित की आज्ञा से सेनापति बन्धुल काशी का सामन्त नियुक्त होता है। राजकुमार विरुद्धक उससे मिलने जाता है और बंधुल को बतलाता है कि प्रसेनजित उससे डाह रखता है; इसलिए वह उसका साथ दे। स्वामिभक्त बंधुल विरुद्धक (डाकू शैलेन्द्र) की नहीं सुनता, वह उसे बन्दी बनाना चाहता है, किन्तु वह निकल जाता है। शैलेन्द्र के पास प्रसेनजित पत्र भेजता है कि यदि वह बंधुल का वध कर देगा, तो उसके अपराध क्षमा कर दिए जाएँगे और बन्धुल के स्थान पर उसे सेनापति बनाया जायगा। यह बात शैलेन्द्र की मां शक्तिमती बन्धुल की पत्नी मल्लिका

से कहती है। इतना जानकर भी मल्लिका वीर-वधू होने के कारण बन्धुल को नहीं रोकती। मागंधी अब काशी की प्रतिष्ठित वार-विलासिनी श्यामा बन गई है। विरुद्धक से उसकी भेंट होती है और वह उससे प्यार करने लगती है। शैलेन्द्र बन्धुल की हत्या कर देता है और पकड़ा जाता है। श्यामा छल से शैलेन्द्र को छुड़ा लेती है। वह समुद्रदत्त नामक मगध के भेदिए को शैलेन्द्र के स्थान पर सूली चढ़वा देती है। यह सब श्यामा काशी के दण्ड-नायक से मिल कर रातों-रात करवा लेती है। मल्लिका को जब अपने पति के वध की सूचना मिलती है, तब वह देवी की भाँति धैर्य्य धारण करती है। वह सारिपुत्र मौद्गलायन का आतिथ्य करती है। इसके उपरान्त प्रसेनजित मल्लिका के पास क्षमा माँगने आता है, क्योंकि बन्धुल का वध उसी ने ईर्ष्यावश करवाया था। मल्लिका प्रसेनजित को क्षमा कर देती है। मल्लिका युद्ध में आहत प्रसेनजित की सेवा-शुश्रूषा करती है। प्रसेनजित पश्चात्ताप में मरा जा रहा है। बन्धुल का भाञ्जा दीर्घकारायण बदला लेना चाहता है; लेकिन मल्लिका की शान्त वाग्धारा उसकी अग्नि को भी शीतल करती है। प्रसेनजित दीर्घकारायण को अपना सेनापति बना लेता है और अच्छा होकर उसके साथ कोशल चला जाता है। तब परास्त प्रसेनजित का पीछा करता हुआ अजातशत्रु वहाँ आ जाता है। उसे भी मल्लिका के समक्ष झुकना पड़ता है। विश्वासघाती शैलेन्द्र बीहड़ वन में श्यामा का गला घोंट देता है और उसके आभूषण उतारकर चला जाता है। भगवान् बुद्ध उसे उठवा लाते हैं और उसकी सेवा-शुश्रूषा करके उसे प्राणदान देते हैं। अजातशत्रु कोशल पर आक्रमण करने के बाद मल्लिका के प्रभाव से सुधर जाता है। वह युद्ध की भयानकता से घबड़ा गया है, किन्तु छलना उसे उकसाती है। उसी समय देवदत्त और विरुद्धक आकर अजातशत्रु से मिलते है और वह फिर युद्ध के लिए तैयार हो जाता है। सूचना मिलती है कि काशी के दूसरे युद्ध में कौशाम्बी और कोशल की सम्मिलित सेना अजात और विरुद्धक (शैलेन्द्र) की सेनाओं से लड़ेगी।

तीसरे अंक में अजातशत्रु बन्दी बनाया जाता है। छलना का पाषाण हृदय दहल जाता है। वह देवदत्त पर उसकी धूर्तता के लिए बिगड़ती है और उसे बन्दी बनाती है। उसी समय छलना में भी परिवर्तन होता है। वह वासवी से क्षमा माँगती है। कोशल की राजकुमारी बाजिरा बन्दी अजातशत्रु से प्रेम करने लगती है। वासवी प्रसेनजित के साथ आती है और अजातशत्रु को कारावास से छुड़वाती है। अजात आकर उसकी गोद से चिपट जाता है। यहीं उसे माता के प्रेम की शीतल छाया

मिलती है। मल्लिका के आश्रम में आकर विरुद्धक क्षमा-याचना करता है। श्यामा भी वहाँ आ जाती है। विरुद्धक उससे भी क्षमा माँगता है, लेकिन श्यामा में विरक्ति-भावना आ चुकी है। विरुद्धक को लेकर मल्लिका शक्तिमती के पास जाती है। शक्तिमती भी अपनी भूल स्वीकार करती है और पुरुष से होड करने की मनोवृत्ति का त्याग करती है। अजात तथा वाजिरा का विवाह हो जाता है। उसी समय मल्लिका विरुद्धक को प्रसेनजित से क्षमा दिलवाती है। गौतम की प्रेरणा से विरुद्धक को युवराजपद पुनः मिलता है। इस प्रकार कोशल के पारिवारिक कलह का अन्त होता है। मागंधी गौतम की शरण में चली जाती है और अपना आम्र-कानन तक संघ को समर्पित कर देती है। अन्त में मगध में पारिवारिक शान्ति की स्थापना होती है। छलना वासवी और पद्मावती से क्षमा माँगती है। अजात और छलना बिम्बसार से क्षमा माँगने चले जाते हैं। वासवी सूचना देती है कि महाराज का पौत्र (अजात का पुत्र) उत्पन्न हुआ है। पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू, पौत्र, छलना सबको सहसा पाकर बिम्बसार इतना प्रसन्न होता है कि वह लड़खड़ा कर गिर पड़ता है। यहीं पटाक्षेप होता है।

शैली का नमूना—

समुद्रदत्त—अहा ! श्यामा का-सा कंठ भी है। सुन्दरी, तुम्हारी जैसी प्रशंसा सुनी थी, वैसी ही तुम हो ! एक बार इस तीव्र मादक को और पिला दो। पागल हो जाने के लिए इन्द्रियाँ प्रस्तुत हैं।

(श्यामा इंगित करती है, सब जाते हैं)

श्यामा—क्षमा कीजिए, मैं इस समय बड़ी चिन्तित हूँ, इस कारण आपको प्रसन्न न कर सकी। अभी दासी ने आकर एक बात ऐसी कही है कि मेरा चित्त चञ्चल हो उठा। केवल शिष्टाचारवश इस समय मैंने आपको गाना सुनाया . . .

समुद्रदत्त—वह कैसी बात है, क्या मैं भी सुन सकता हूँ ?

श्यामा—(संकोच से) आप अभी तो विदेश से आ रहे हैं, मुझसे कोई घनिष्ठता भी नहीं, तब कैसे हाल कहूँ !

समुद्रदत्त—सुन्दरी ! यह तुम्हारा संकोच व्यर्थ है।

श्यामा—मेरा एक सम्बन्धी किसी अपराध में बन्दी हुआ है। दण्डनायक ने कहा है कि यदि रात-भर में मेरे पास हजार मोहरें पहुँच जायँ, तो मैं इसे छोड़ दूंगा, नहीं तो नहीं।

(रोती है)

समुद्रदत्त—तो इसमें कौन-सी चिन्ता की बात है ! मैं देता हूँ; इन्हें भेज दो। —(स्वगत)—मैं भी तो षड्यन्त्र करने आया हूँ—इसी तरह दो-चार अन्तरंग मित्र बना लूंगा, जिसमें समय पर काम आवें। दंडनायक से भी समझ लूंगा—कोई चिन्ता नहीं।

श्यामा—(मोहरों की थैली लेकर)—तो दासी पर दया करके इसे दे आइए, क्योंकि मैं किस पर विश्वास करके इतना धन भेज दू । और यदि आपको पहचाने जाने की शंका हो, तो मै आपका अभी वेश बदल दे सकती हूँ ।

समुद्रदत्त—अजी, मोहरें तो मेरे पास है, इनकी क्या आवश्यकता है ?

श्यामा—आपकी कृपा हैं । वह भी मेरी ही है, किन्तु इन्हे ही ले जाइए, नही तो आप इसे भी वारवनिताओं की एक चाल समझिएगा ।

समुद्रदत्त—भला यह कैसी बात ! सुन्दरी श्यामा, तुम मेरी हंसी उडाती हो? तुम्हारे लिए यह प्राण प्रस्तुत है । बात इतनी ही है कि वह मुझे पहचानता है ।

श्यामा—नही, यह तो मेरी पहली बात आपको माननी ही होगी । इतना बोझ मुझ पर न दीजिए कि मैत्री मे चतुरता की गन्ध आने लगे और हम लोगो को एक दूसरे पर शंका करने का अवकाश मिले । मै आपका वेश बदल देती हूँ ।

(श्यामा वेश बदलती है और समुद्रदत्त मोहरों की थैली लेकर अकड़ता हुआ जाता है)

श्यामा—जाओ बलि के बकरे, जाओ ! फिर न आना। मेरा शैलेन्द्र, मेरा प्यारा शैलेन्द्र !—

तुम्हारी मोहनी छबि पर
निछावर प्राण है मेरे।
अखिल भूलोक बलिहारी
मधुर मृदु हास पर तेरे ।।

(**पट-परिवर्तन**)

समीक्षा—

नाटक के प्रथम संस्करण और बाद के संस्करणों मे भाषा, कथोपकथन और पद्यपाठ का भेद है । प्रथम संस्करण के बहुत-से पद्यांश बाद मे हटा दिये गये और गद्यांश बढा दिये गये है । नाटक का आधार 'हरितमात', 'बद्धकी सूकर', 'तच्छ-सूकर', जातक कथाएँ, बुद्धघोष, पुराण और इतिहास है । दे० कथाप्रसग । निम्नलिखित तथ्यों मे अन्तर कर दिया गया है— १. इतिहास मे यह निश्चित नही है कि अजातशत्रु की माता कौन थी । २. इतिहासकारों ने लिखा है कि अजातशत्रु ने अपने पिता की हत्या करने की चेष्टा की । ३ वासवी नाम इतिहास में नही आता, कोशलकुमारी नाम आता है । ४. 'भद्दसाल जातक' में लिखा है कि शाक्यदेश (जहाँ की शक्तिमती थी) प्रसेनजित के अधीन था । ५. इतिहास मे दीर्घकारायण को बंधुल का भतीजा बताया गया है । ६. बंधुल का लडका भी था—दोनों को राजाज्ञा से सीमाप्रात का विप्लव दबाने के लिए भेजा गया और मार्ग पर मार डाला गया । ७. दीर्घकारायण ने विड्डड्भ (विरुद्धक) को अपनी चातुरी और शक्ति से सिंहासन पर बैठाया । पीछे इसी दुःख से

प्रसेनजित मरा भी। प्रसादजी ने इस घटना के नाटकीय महत्त्व को नहीं देखा। ८. उदयन की तीसरी रानी ब्राह्मण-कन्या मागंधी बताई गई है। ९. इतिहास में आम्रपाली, मागंधी और काशी की 'सामा' तीन भिन्न स्त्रियां हैं। १०. इतिहास से सिद्ध है कि अजातशत्रु के सिंहासनारूढ होने के समय बुद्ध ७७-७२ वर्ष के थे। प्रसादजी ने उन्हें अपेक्षाकृत तरुण रूप मे दिखाया है।

घटनाओं का अन्तर्गुम्फन और क्रम प्रसादजी की अपनी प्रतिभा का फल है; परन्तु 'अजातशत्रु' की अपेक्षा 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कन्दगुप्त' मे कल्पना का योग अधिक है। नाटक न सुखात है, न दुःखान्त; प्रसादान्त है। घटना और चरित्रांकन की एक-सी प्रधानता है। कार्य की अवस्थाएँ पाश्चात्य नाट्य-शैली के अनुसार है। स्त्री-पात्र अधिक सबल और प्रभावशाली है। वीर-रस की प्रधानता है। इसके बाद शान्त-रस और फिर शृंगार-रस का स्थान है। हास्य-रस पहले अंक के छठे, दूसरे के नौवे और तीसरे के छठे दृश्य मे है; पर वह अस्फुट अवस्था ही में रह गया है। दार्शनिक दृष्टि से नाटक में 'करुणा-वाद' की व्याख्या की गई है। करुणा शब्द का व्यापक अर्थ लिया गया है—अहिंसा, क्षमा, सत्कर्म, कर्त्तव्यपालन, धैर्य और प्रेम इसके अन्तर्गत हैं। प्रेम के वासनामय और सात्त्विक दोनों रूप दिखाये गये हैं। भाषा और शैली सुन्दर है।

नाटक का सब से बड़ा दोष यह है कि १. इसमें प्रसाद ने सारी ज्ञात ऐतिहासिक सामग्री को ठूसने की चेष्टा की है, जिससे कथावस्तु जटिल और बोझिल हो गई है। इतिहास प्रधान हो गया है, साहित्य गौण। २. कथानक उलझा हुआ है। कई कथाएँ समानान्तर चलती है और इन में बड़ा हल्का-सा सम्बन्ध-सूत्र है। पद्मावती और उदयन की कथा नाटक से हटा दी जाती, तो भी कोई अन्तर न पड़ता। ३. मगध की कथा मुख्य होनी चाहिए थी; पर २९ दृश्यों में से केवल आठ मगध से सम्बद्ध है। ४. अजात में नायकत्व आ नही पाया। ५. पतित पात्रों का हृदय-परिवर्तन यांत्रिक और अस्वाभाविक ढंग से हुआ है। इस से नाटकीयता शिथिल रह गई है और तीसरा अंक विगठित हो गया है। ६. पात्रो की सख्या अधिक होने से अनेक चरित्रो को पूरा स्थान नहीं मिल सका। ७. प्रायः पात्र स्थिर है, गतिशील नही। ८. चरित्रो का विकास बाह्य द्वंद्व से होता है, अन्तर्द्वंद्व को लगभग भुला दिया गया है। ९. प्रेम का रूप आकर्षक तो है, उच्च नहीं। १०. तीसरा अंक भावुकतापूर्ण है।

दे० 'प्रसाद के नाटक' भी।

अजातशत्रु[२]—बिम्बसार का पुत्र, मगध का युवराज। आरम्भ में क्रूर,

पदाभिमानी, उच्छृङ्खल, अविनीत और अशिष्ट युवक के रूप में चित्रित हुआ है। निरीह मृगशावकों की हिंसा को विनोद मानता है। सम्राट् हो जाने पर यह क्रूरता उद्दण्ड रूप से बढ़ने लगती है। अपने अधिकार में किसी को अड़ते देख वह क्षुब्ध हो उठता है। अपनी माता छलना और गुरु-घंटाल देवदत्त के इशारे पर चलता है। इसका अपना कोई व्यक्तित्व नही है। वह परमुखापेक्षी है; पर वह साहसी, पराक्रमी योद्धा है। उसमें दुर्गुण कुशिक्षा के कारण हैं। कुछ ऐसे है, जो उसमें नाटक के उत्तरार्ध मे प्रस्फुटित होते है। मल्लिका देवी के प्रभाव मे उसकी सात्त्विक वृत्तियाँ जागती है; पर वह फिर चाटुकारों की बातों मे फिसल पड़ता है और अनमना हो युद्ध करने के लिए विवश-सा हो जाता है। प्रेम की पावन वेदी पर वह समस्त अहंभाव त्याग देता है। उसका प्रेम पवित्र है। वासवी का प्रेम पाकर वह परिषद के साथ बात करने में व्यवहार-कुशलता का परिचय देता है।
—अजातशत्रु

इतिहास-काल का प्रथम सम्राट्—राज्याभिषेक बुद्ध के निर्वाण से ८-९ वर्ष पूर्व। उसकी माता के नाम के विषय में बड़ा मत-भेद है। कहा गया है कि वह कोशल-कुमारी का पुत्र था। पर अधिकांश इतिहासकार उसे वैशाली की राजकुमारी (वैदेही) छलना का ही पुत्र मानते हैं। पिता के जीवन-काल में ही वह चम्पा (भागलपुर) का शासक था। वह बड़ा विजयी राजा था। उसने अंग, वैशाली, तिरहुत, मल्ल देश पर विजय पाई थी और मथुरा तक राज्य बढ़ाया। 'स्वप्नवासवदत्ता' और पुराणो में इसका एक नाम दर्शक भी मिलता है। **—अजातशत्रु, कथाप्रसंग**

अजित केश-कम्बली—दे० मस्करी गोशाल।

अजीगर्त—नीच ऋषि; अपने पुत्रों को बचाने के लिए कपट-चातुरी से काम लिया। **—करुणालय**

[भृगुकुलोत्पन्न; इसके शुनःपुच्छ, शुनःशेप, शुनोलांगूल तीन पुत्र थे। दे० शुनःशेप]

अज्ञान और असत्य—अज्ञान प्रायः प्रबल हो जाता है और असत्य अधिक आकर्षक हो जाता है। (धर्मसिद्धि)
—राज्यश्री, ४-१

अतिथि—लघु कविता। 'हृदय-गुम्फा थी शून्य, रहा घर सूना। अतिथि आ गया एक, न मैंने जाना। मन को मिला विनोद, यही था 'प्रेम', तभी पहचाना। लेकिन 'लगा खेलने खेल, वह निकला नाहर।' अतिथि प्रेम का प्रतीक है।
—झरना

अतीत—(व्यक्तिगत)

वह यौवन, वह अतीत
वरुणालय चित्त शान्त था,
अरुणा थी पहली नई उषा;
तरुणाब्ज अतीत था खिला,
करुणा की मकरन्द-वृष्टि थी।

...वही बीत गया अतीत था,
तम संध्या उसको छिपा गई।
(विशाख) —विशाख, १-१

प्रसादजी ने अपने अतीत का अनेक कविताओं (प्रमुखत: आँसू) में उल्लेख किया है।

दे० 'प्रसाद का साहित्य।'

दे० 'प्रसाद का आत्मजीवन' भी।

अतीत-स्मृति—दे० न छेड़ना उस अतीत-स्मृति से।

—स्कंदगुप्त, पृष्ठ १५

अतीत के वे सुन्दरतम क्षण।

—स्कन्दगुप्त, पृ० १८-१९

अन्तरिक्ष में अभी सो रही—गीत। उषा अभी सो रही थी, प्राची की मधुशाला खुली नहीं थी, तारे पुलकित थे, विहग अपने-अपने नीडों में अँगड़ाई ले रहे थे, उस समय एक भिखारी, अपना टूटा प्याला लिए दान के लिए पुकार रहा है। रात-दिन सुख-दुःख के दोनों डग भरता चलता है।

तू बढ़ जाता अरे अकिंचन,
छोड़ करुण स्वर अपना।
सोने वाले जग कर देखें
अपने सुख का सपना।

—लहर

अन्तर्द्वन्द्व—पवित्र हृदय-मन्दिर में दो-कटु और मधुर भावों का द्वन्द्व चला करता है, और उन्हीं में से एक दूसरे पर आतंक जमा लेता है। (आनन्द)

—एक घूंट, पृ० १४

अन्तर्वेद—शर्वनाग को यहाँ का विषय-पति बनाया गया। इसे उसने हूणों से बचा लिया। बाद में फिर हूणों ने इसे पादाक्रान्त किया। —स्कन्दगुप्त,

[गंगा और जमुना के बीच का प्रदेश—दो-आब—ब्रह्मावर्त।]

अन्तेवासी—कुलपुत्र। नाम नहीं बताया। "मैं तीर्थंकर नाथपुत्र का अन्तेवासी हूँ। मैं कहता हूँ कि वस्तु है भी, नहीं भी है। दोनों हो सकती है।"

—(सालवती)

अदृश्य-लिपि—मनुष्य की अदृश्य-लिपि वैसी ही है, जैसी अग्निरेखाओं से कृष्ण मेघ में बिजली की वर्णमाला—एक क्षण में प्रज्वलित, दूसरे क्षण में विलीन होने वाली। (चक्रपालित)

—स्कन्दगुप्त, ४-६

दे० 'नियतिवाद' भी।

अदृष्ट—सब के ऊपर एक अटल अदृष्ट का नियामक सर्वशक्तिमान् है। (रामा)

—स्कन्दगुप्त, २-४

दे० 'नियतिवाद' भी।

अद्वैत—सत्ता कभी लुप्त भले ही हो जाए, किन्तु उसका नाश नहीं होता। गृह का रूप न रहेगा, तो ईंटे रहेंगी, जिनके मिलने पर गृह बने थे। वह रूप परिवर्तित हुआ, तो मिट्टी बनी, राख हुई, परमाणु हुए। उस चेतन के अस्तित्व की सत्ता कहीं नहीं जाती, और न उसका चेतनमय स्वभाव उससे भिन्न होता है। वही एक "अद्वैत" है। (श्रीकृष्ण)

—जनमेजय का नागयज्ञ, ११

अद्वैतवाद—

सब की सेवा न पराई
वह अपनी सुख संसृति है ;
अपना ही अणु-अणु कण-कण
द्वयता ही तो विस्मृति है ।

—कामायनी, आनन्द, पृ० २-९

अधिकार—अधिकार-सुख बड़ा मादक और सारहीन है । अपने को नियामक और कर्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है ।

—शक्तिकेन्द्र यदि अधिकारों के संचय का सदुपयोग करता रहे, तो नियन्त्रण भली भाँति चल सकता है, नहीं तो अव्यवस्था उत्पन्न होगी ।

—तितली, ३-७

—क्या रोने से, भीख माँगने से कुछ अधिकार मिलता है ? जिसके हाथों में बल नहीं, उसका अधिकार ही कैसा ? और यदि माँगकर मिल भी जाय, तो शान्ति की रक्षा कौन करेगा ? (भट्टार्क)

—स्कन्दगुप्त, १-२

अधीर न हो चित्त विश्व-मोह-जाल में—विधवा मल्लिका देवी की प्रार्थना। । हे प्रभो ! इस संसार के मोह-जाल में मेरा मन व्याकुल न हो। यह संसार दुःखमय है ; परन्तु दुःख भी क्षणिक है, वे सदा नहीं रहते।

—अजातशत्रु, २-७

अनन्तदेवी—बूढ़े कुमारगुप्त की छोटी रानी, पुरगुप्त की माता, कार्यकुशल, साहसी। "आह, कितनी साहसशीला स्त्री है।... परंतु इसकी आंखों में काम-पिपासा के संकेत अभी उबल रहे हैं।" (भट्टार्क) । षड्यंत्रों द्वारा अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की तृप्ति चाहती है। वह बड़ी चालाक है और अपनी चालाकी से ही विषम स्थितियों में भी अपनी रक्षा कर लेती है, दूसरों को प्रभावित कर लेती है। "दुर्भेद्य नारी-हृदय में विश्व-प्रहेलिका का रहस्य-बीज है।" (भट्टार्क)। वह पथभ्रष्ट और आदर्शहीन नारी है जो स्वार्थान्धता से पति की हत्या, सपत्नी के वध की चेष्टा, शत्रुओं की सहायता करने के लिए भी तैयार हो जाती है। अन्त में असफल होकर क्षमा-याचना करती है। **—स्कन्दगुप्त**

"तुम जिस प्रलोभन से इस दुष्कर्म में प्रवृत्त हुई हो, वही तो कैकेयी ने किया था।... कुमारगुप्त के इस अग्नितेज को तुमने अपने कर्मों की राख से ढँक लिया"। (स्कन्द) **—स्कन्दगुप्त, ५**

अनन्त विश्राम—जीवन की सारी क्रियाओं का अन्त केवल अनन्त विश्राम में है। (वासवी) **—अजातशत्रु, १-४**

अनबोला—करुण लघु-कथा। कामैया का पिता रामैया धनी धीवर था। जगैया की माँ उसके यहाँ नौकर थी। जगैया ने कामैया के जाल से सीपियाँ नहीं सुलझाई, इसलिए वह रुष्ट हो गई। कई दिन वह जगैया से नहीं बोली। एक दिन रामैया के जाल में भीषण समुद्री बाघ आ गया। उस बाघ ने जगैया की माँ की बाँह चबा ली और

वह मर गई। कामैया रोती रही, बोली नहीं। जगैया को धीवर ने घर से निकाल दिया। कामैया फूट-फूटकर रो रही थी और जगैया स्तब्ध खड़ा था। दोनो मे अनबोला था।

कहानी निम्नकोटि की है।

—इन्द्रजाल

अनवरी—चंचल, चालाक, दुश्चरित्र, निर्लज्ज नारी; भीतर से गहरे मनोयोग-पूर्वक प्रयत्न करनेवाली चतुर स्त्री है। माधुरी की अन्तरंग बनी, उससे विश्वास-घात किया। वह दुर्व्यसनी श्यामलाल के साथ कलकत्ते भाग जाती है। कलकत्ते में उसका एक दवाखाना है।

—तितली

अनिच्छा—मनुष्य प्रायः अनिच्छा-वश बहुत-से काम करने के लिए बाध्य होता है। (श्रीनाथ) —आंधी

अनिहलवाड़ा—अनिहलवाड़ा में अनल-चक्र घूमा फिर। —(प्रलय की छाया)
[गुजरात का नगर; पहले इसे कुतुबुद्दीन ऐबक ने जीता था, बाद में अलाउद्दीन खिलजी ने लूटा।]

अनुनय—८ पंक्तियों की लघु कविता। यही अभिलाषा है कि मन तुम्हारी याद मे मस्त रहे और हृदय आँसुओं से शीतल होता रहे। अहो प्राणप्यारे, क्रोध से, विषाद से, दया या पूर्व प्रीति ही से, किसी भी बहाने से, तो याद किया कीजिए।
'इन्दु', कला ८, किरण १ (पौष १९८३) —झरना

अनुसूया— —(वन-मिलन)
[अत्रि ऋषि की पत्नी, दक्षकन्या; जब राम वनवास में अत्रि-आश्रम में आए, तब अनुसूया ने सीता को उपदेश दिया—वा० रा०, अयोध्याकाण्ड।]

अन्दल—दक्षिण भारत की देवदासी, जिसे प्रसाद कृष्ण-प्रेम के सगीत की आविष्कर्त्री मानते हैं।

—(रहस्यवाद, पृ० २१)

अन्धेर—मचा है जगभर में अन्धेर। (महापिंगल) —विशाख, १-२
दे० निराशावाद, दुःखवाद भी।

अपराध—संसार में अपराध करके प्रायः मनुष्य अपराधों को छिपाने की चेष्टा नित्य करते हैं। जब अपराध नही छिपते, तब उन्हे ही छिपना पड़ता है। और अपराधी संसार उनकी इसी दशा से सन्तुष्ट होकर अपने नियमों की कड़ाई की प्रशंसा करता है। वह बहुत दिनों से सचेष्ट है कि ससार से अपराध उन्मूलित हो जायँ, किन्तु अपनी चेष्टाओं मे वह नए-नए अपराधों की सृष्टि करता जा रहा है। —तितली, ४-१

अपराध और दण्ड—अपराध करने और दण्ड देने में मनुष्य एक दूसरे का सहायक होता है। हम आज जो किसी को हानि पहुँचाते है, या कष्ट देते है, वह इतने ही के लिए नही कि उसने मेरी कोई बुराई की हो। हो सकता है कि मैं उसके किसी अपराध का यह दण्ड समाज-व्यवस्था के किसी मौलिक नियम के अनुसार दे रहा हूँ। फिर चाहे मेरा

यह दण्ड देना भी अपराध बन जाए और उसका फल भी मुझे भोगना पड़े। (श्रीनाथ) —(आंधी)

अपराधी—लोक-कथा की शैली की एक कारुणिक कहानी। शिकार खेलते-खेलते वन में राजकुमार की भेंट कामिनी मालिन से हो गई। कामिनी ने उसे कामिनी के फूलों की माला पहनाई। राजकुमार ने मालिन को अपना कौशेय ओढ़ा दिया और कहा — "आज से तुम इस कुसुम-कानन की वनपालिका हो।" एक दिन राजकुमार ने वनपालिका की पर्णकुटी में अपने को 'अपराधी' कहकर शरण चाही। कामिनी ने अपना सब कुछ उसे अर्पित कर दिया। फिर बहुत दिन बीत गए। राजकुमार राजा बन गया, उसके एक राजपुत्र भी हुआ। उसीका एक पुत्र वनपालिका से भी उत्पन्न हुआ; पर राजा वनपालिका को भूल गया। एक दिन राजपुत्र वन में मृगया की शिक्षा प्राप्त करने आगया। कामिनी का पुत्र भी धनुष लिए एक ओर खड़ा था। इसने जो बाण छोड़ा, वह कुरंग के कण्ठ को वेधता हुआ राजपुत्र की छाती में घुस गया और वह वही धराशायी हो गया। हत्यारे को राजा ने मरवा डाला। उसी समय कामिनी पहुँची। राजा ने पहचाना, और पूछा —"यह कौन था?" वनपालिका बोली — "अपराधी।"

कहानी प्रभावपूर्ण और मार्मिक है। किशोर की कथा गौण रूप से अलग भी पढ़ी जा सकती है। वन्यजीवन का चित्रण सुंदर ढंग से किया गया है। कामिनी का चरित्र बहुत ही स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण है। कहानी का विकास सुरुचिपूर्ण है।

— आकाशदीप

अपलक जगती हो एक रात—गीति। कवि चाहता है कि सब सोए हों— पवन, सुमन, नक्षत्र, पथ; सर्वत्र नीरव प्रशान्ति छाई हो। और साथ ही

वक्षस्थल में जो छिपे हुए
सोते हों हृदय अभाव लिए
उनके सपनो का हो न प्रात।

—लहर

अफगानिस्तान—यहाँ के लोग भारतीय मुसलमान से हज़ार दर्जे अच्छा अफगान हिन्दू को समझते आ रहे हैं।

—(सलीम)

[अफगानिस्तान में अब भी कई हज़ार हिन्दू रहते है।]

अफलातून—प्लेटो। केवल सन्दर्भ।

—एक घूंट

अब जागो जीवन के प्रभात—गीति। अरुणगात ऊषा ने क्षोभ के आँसू बटोर लिए। उसकी किरणों में अन्धकार जा रहा है। सुखद मलयानिल चल रहा है। उठो और कलरव से भेंट करो।

—लहर

अब भी चेत ले तू नीच—दिवाकर-मित्र का चार पंक्तियों का नेपथ्यगीत। दुःखी धरा को शीतल कर, तृष्णा से

दूर हो, करुणासरोवर में स्नान करके अपना कीच धो ले।

—राज्यश्री, ३-२

अभयकुमार—वैशाली का उपराजा। नगर के उत्सव का प्रबन्ध उसी के हाथ में था। जब सालवती सुन्दरतम स्त्री युवती घोषित हुई, तब इसने अपने गले में मुक्ताहार निकालकर उसे अर्पित किया; पर मानिनी ने स्वीकार नहीं किया। अंत में दोनों का पाणिग्रहण हुआ।

—(सालवती)

अभागा—अभागों को सुख भी दुःख देता है। (शैलनाथ)

—(रूप की छाया)

अभिज्ञान शाकुन्तल—विरह मिलन का द्वार है, प्रत्यभिज्ञान का साधन है, शैवागमों के अनुयायी नाटकों में 'शाकुन्तल' सब से बड़ा उदाहरण है। —(रस, पृ० ४७)

—प्रस्तावना में प्रगट होता है कि यह खेलने के लिए बना था।

—(रंगमंच, पृ० ६५)

[कालिदास का सबसे प्रसिद्ध नाटक जिसमें राजा दुष्यन्त और शकुन्तला के मिलन, विरह, तिरस्कार और पहचान के बाद पुनर्मिलन की कथा ७ अंकों में वर्णित है।]

अभिनन्द—वैशाली के कुलपुत्र, अभय के साथी। "मैं तीर्थङ्कर पूरण काश्यप के सिद्धान्त अक्रियवाद को मानता हूँ। यज्ञादि कर्मों में न पुण्य है न पाप। मनुष्य को इन पचड़ों में नहीं पड़ना चाहिए।"

—(सालवती)

अभिनवगुप्त—दे० कला। 'अभिनव-भारती', 'लोचन'-टीका के लेखक। इनके गुरु उत्पल थे।

—(रहस्यवाद, पृ० २८)

दशरूपात्मक नाटक काव्य है।

—(रस, पृ० ४०)

आत्मा की अनुभूति रस है।

—(वही)

रस क्या है। —(वही, पृ० ४३)

काव्य की आत्मा रस ही है (ध्वन्यालोक की टीका, लोचन, में)

—(वही, पृ० ४४)

इन्होंने शैवाद्वैतवाद के अनुसार रस की व्याख्या की।

—(वही पृ० ४५)

इन्होंने आनन्द सिद्धान्त की अभिनेय काव्य वाली परम्परा का पूर्ण उपयोग किया। —(रस, पृ० ४५)

इन्होंने साधारणीकरण की पुष्टि की और कहा कि रति और वासना-वृत्तियाँ साधारण कारण के द्वारा भेद-विगलित होकर आनन्द स्वरूप हो जाती है। उनका आस्वाद ब्रह्मानन्द के तुल्य हो जाता है। —(रस, पृ० ४६)

कवि में साधारण भूत चैतन्य ही काव्य पुरस्सर होकर नाट्य-व्यापार है, वही संवित परमार्थ में रस है।

—(नाटकों में रस का प्रयोग, पृ० ५२)

गद्य-पद्य मिश्रित नाटकों के अतिरिक्त राग-काव्य का उल्लेख किया है (अभिनव भारती, ४)

—(नाटकों का आरम्भ, पृ० ६१)

मत्तवारणी का स्थान क्या है ? (देव-मंदिर की प्रदक्षिणा की तरह रंगशाला के दोनों ओर बनाई जाती थी)

—(रंगमंच, पृ० ६२)

रंगपीठ और रंगशीर्ष के बीच म यवनिका होती थी।

—(रंगमंच, पृ० ६२)

शब्दार्थ की छाया अभिव्यक्ति के अनेक साधन उत्पन्न करती है। (लोचन)

—(यथार्थवाद और छायावाद, पृ० ९१)

[आनन्दवर्धन के टीकाकार — वे भी काश्मीर के थे । समय १० वी शती उत्तरार्ध । रस विषयक उनकी समीक्षा वैज्ञानिक है ।]

अभिनव भारती—नाट्य-शास्त्र का प्रयोजन नटराज शंकर के जगन्नाटक का अनुकरण है। दे० अभिनवगुप्त।

—(रस, पृ० ४१)

[भरत के नाट्य शास्त्र का एकमात्र भाष्य ।]

अभिमन्यु—हरिद्वार में मंगल के आर्य-समाजी मित्र। गौण पात्र ।

—कंकाल, खंड १

अभिलाषा—विजयों की सीमा है, परन्तु अभिलाषाओं की नहीं। (चन्द्रगुप्त)

—चन्द्रगुप्त, ४-४

दे० महत्त्वाकाक्षा भी।

अभिसार—वर्तमान हजारा, जिला पेशावर से संलग्न।—**(स्वर्ग के खंडहर में)**

अमरकोष—'जवनिका' शब्द आता है, 'यवनिका' नही।

—(रंगमंच, पृ० ६५)

[अमरसिंह कोषकार ५ वीं शती में हुए है। कोष का वास्तविक नाम है 'नामलिङ्गानुशासन।']

अमरनाथ—पत्रकार। सार्वजनिक जीवन का ढोंग रचने मे वह पूरा खिलाड़ी था।

—(नीरा)

अमरनाथ बैनर्जी—सभ्य बंगाली महाशय, बहुत उदार। उसका स्वभाव ही ऐसा सरल था कि सभी सहवासी उससे प्रसन्न रहते थे, वह भी उनसे खूब हिल-मिल कर रहता था। मोतियों का व्यापारी, जिसकी बम्बई और कलकत्ता मे दुकानें थी। सीलोन मे कार्य्यालय था। धन नष्ट हो गया, तो चिन्ताकुल हो गया और मदिरा पीने लगा।

—(मदन मृणालिनी)

अमरावती—दे० साची **—आंधी**

[अमरावती, मध्य प्रदेश मे।]

अमरसिंह

—महाराणा का महत्त्व

[महाराणा प्रताप का पुत्र जो बाद मे मेवाड़ की गद्दी पर बैठा।]

अमरीका—बाथम के कला-सम्बन्धी वस्तुओ के व्यवसाय की अमरीका में बड़ी प्रख्याति थी। **—कंकाल, २-३**

अमला—राज्यश्री की एक सखी।

—राज्यश्री

अमिट स्मृति—काशी के जीवन से सम्बद्ध एक करुण कथा। यह उन दिनों की बात है, जब रेलगाड़ी नहीं थी। मनोहरदास और गिरधरदास का साझे में जवाहिरात का व्यवसाय चलता था। प्रयाग

से किसी व्यापारी का पत्र आने पर वे लोग होलिकादाह का उत्सव देखकर रघुनाथ लठैत को संग ले इक्के से चल पड़े। मार्ग में एक कुएं पर बूटी छनी। वहां दूकान रखने वाले बनिए की युवती कन्या से उनका साक्षात्कार हुआ। दूसरे दिन वापसी पर पता लगा कि डाके में दुकान लुट गई और लड़की का कुछ पता नहीं। दूसरे वर्ष इन्हे फिर उसी प्रकार प्रयाग जाना पड़ा। होली बीत चुकी थी। वापसी पर देखा कि एक विकलांग दरिद्र युवती उसी दालान में पड़ी है। सालभर की घटना सामने आई और मनोहरदास पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि अब पचास वर्ष मे उन्होंने होलिकोत्सव नही मनाया। कहानी साधारण है। कथावस्तु शून्यप्राय है।

—आंधी

[यह कुआं जंगीगंज बाजार के पश्चिम में "गैडामल का इनारा" कहलाता है।]

अमीनाबाद पार्क—लखनऊ में।

—कंकाल, खण्ड १

[नगर का प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र]

अमीरखाँ—पठान कबीले के सरदार का लड़का। ऊधमी, शरीर। वज़ीरियों से लड़ा। अपनी मुह-बोली बहिन प्रेमा की रक्षा में सलीम का हाथ तोड़ दिया।

—(सलीम)

अमृतमन्थन—दे० भरत८।

अमृतसर—श्रीचन्द और किशोरी अमृतसर के रहनेवाले हैं। वहाँ से माघ मेले पर गंगा-स्नान करने आए हैं। श्रीचन्द अमृतसर में व्यापार करता है। चंदा भी यहीं की रहनेवाली है। इस नगर से उपन्यास की किसी घटना का सम्बन्ध नही है।

—कंकाल

[पंजाब में लाहौर से ३५ मील पूर्व मे व्यापार-केन्द्र। सिक्खों का तीर्थस्थान। तीसरे सिक्ख गुरु ने यहाँ सरोवर बनवाया था, जिससे इसका नाम अमृतसर पड़ा।]

अमृत हो जायगा विष भी पिला दो हाथ से अपने—चार पंक्तियों का थियेटरिकल पद्य। श्यामा शैलेन्द्र के हाथ के दिए विष को भी अमृत मानती है, सारे विश्व के प्रति बेसुध होकर भी वह उसके मधुर रूप के सपने देखती है। "जगत् विस्मृत हृदय पुलकित लगा वह नाम है जपने।"

—अजातशत्रु, २-८

अम्बालिका—हरद्वार की आर्यसमाजी महिला।

—कंकाल, खंड १

अम्बिका—वैदिक देवी जिसके अनुकरण में अनात्मवादी बौद्धों ने शक्तियों की सृष्टि की और रहस्यपूर्ण साधना प्रचलित की।

—(रहस्यवाद, पृ० ३२)

[शतपथ ब्राह्मण मे इसे रुद्र-पत्नी कहा गया है।]

अम्बिकादत्त—"गद्यकाव्य-मीमांसा" के रचयिता।

—उर्वशी, भूमिका

अयोध्या१—अयोध्या के प्रभाव का ह्रास होने पर बौद्ध धर्म के प्रभाव से

पाटलिपुत्र बहुत दिनों तक भारत की राजधानी बना रहा।

—अजातशत्रु, कथा-प्रसंग

अयोध्या[२]—दे० अवधराज।

अयोध्या[३] —कंकाल, खंड ४

अयोध्या[४]—राजा हरिश्चन्द्र की राजधानी। इस गीति-नाट्य की भूमि।

—करुणालय

अयोध्या[५]—अयोध्या इस काल में गुप्त-साम्राज्य में। "अयोध्या में नित नए परिवर्तन" होते हैं (पर्णदत्त)।

—स्कंदगुप्त, अंक १

[सरयू नदी पर स्थित सूर्यवंशी (इक्ष्वाकु) राजाओं की राजधानी रही। कहते हैं तब यह नगरी ४२ मील लम्बी और १२ मील चौड़ी थी। इसका नाम साकेत था। पृथु, त्रिशंकु, हरिश्चन्द्र, दिलीप, रघु, दशरथ, राम आदि प्रसिद्ध राजा हुए हैं। कुश ने इसका पुनरुद्धार किया था। बुद्ध के समय में भी कोशल की इस राजधानी का महत्त्व था। तब कोशल के दो भाग थे। उत्तर कोशल की राजधानी श्रावस्ती थी। प्रसेनजित की मृत्यु पर अजात ने इसे मगध में मिला लिया।]

अयोध्या का उद्धार—'चित्राधार' में संकलित प्रबन्धकाव्य। 'इन्दु' वैशाख सं० '६७ में प्रकाशित ; 'अयोध्योद्धार' नाम से। इसका आधार-सूत्र 'रघुवंश' सर्ग १६ है। विविध छन्दों में १० पृष्ठों की साधारण रचना। महाराज रामचन्द्र के पश्चात् कुश को कुशावती और लव को श्रावस्ती के प्रदेश मिले और अयोध्या उजड़ गई। एक दिन जब 'कुश राजकुमार नीद में सुख सोए शुचि सेज पै तहां' उन्हें ऐसा लगा कि कोई कलकंठी गाती हुई वीणा बजा रही है। उस रमणी ने रघुवंश की अनेक प्रशस्तियाँ गाने के पश्चात् कहा—"उठो जागो, सुप्रभात हो, प्रजा सुखनिद्रा ले।" कुश ने पूछा—"कहो तुम कौन हो? और तुम्हे क्या दुःख है?" सुन्दरी ने उत्तर दिया—"हरिश्चन्द्र, इक्ष्वाकु और राम की विमल कीर्ति जहाँ प्रकाशित है, मैं उस अयोध्या की राज्यश्री हूँ। अयोध्या को शासनहीन पाकर नागवंशीय कुमुद ने हस्तगत कर लिया है। तात! तुम उसका उद्धार करो।" रघु, दिलीप, अज आदि नृप,

दशरथ राम उदार।
पाल्यो जाको सदय ह्वै,
तासु करो उद्धार॥

स्वर्णविहान होते ही कुश ने अयोध्या का उद्धार किया।

अवध नगर सुख-साज
महा सुखमा सो छायो।

नागराज ने अपनी पुत्री का विवाह कुश से कर दिया।

कुश-कुमुद्वती को परिणय
सबको मन भायो।

इस कविता में कवि की कल्पना और प्रबन्ध-योजना की नवीन दिशा दिखाई देती है। इसमें अनेक छंदों का प्रयोग

हुआ है, जिनमे मालिनी आदि संस्कृत के भी छन्द है।

अयोध्योद्धार—दे० अयोध्या का उद्धार।

अरस्तू[1]—पाश्चात्य साहित्य मे अरस्तू से लेकर वर्तमान काल तक सौन्दर्यानुभूति सम्बन्धिनी विचार-धारा का एक क्रमिक इतिहास है।

—काव्य और कला, पृ० ५

प्लेटो का शिष्य जो कला को अनुकरण मानता है।

—काव्य और कला, पृ० ७

अरस्तू[2]—भारत और यूनान की लडाई केवल अस्त्रो की लडाई नही। "इसमे दो बुद्धियाँ लड़ रही है। यह अरस्तू और चाणक्य की चोट है।" (कार्नेलिया) दे० प्लेटो भी।

—चन्द्रगुप्त, ३-२

[समय ४थी शती ई० पू०—ग्रीस के प्रसिद्ध कवि, आलोचक, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ। सिकन्दर के गुरु।]

अरावली—अरावली-शृंग-सा समुन्नत सिर किसका ?

—(पेशोला की प्रतिध्वनि)

[राजस्थान का पहाड जिस पर अर्बुद (आबू) शिखर है।]

अरी वरुणा की शान्त कछार—सर्व प्रथम 'जागरण' अक १, ११ फरवरी, १९३२ मे प्रकाशित। मूलगन्ध कुटी (विहार) के उपलक्ष्य में लिखी गई दो पृष्ठो की कविता। वरुणा की शान्त कछार में कभी ऋषियों के कानन-कुञ्ज थे, जहां दर्शन-परिषदों में मस्तिष्क और हृदय-सम्बन्धी समस्याओ पर विचार होता था—व्याकुलता को विश्राम मिलता था। यही 'छोडकर पार्थिव भोग-विभूति,' 'प्राणियों का करने उद्धार' भगवान् बुद्ध पधारे थे। 'तोड सकते हो तुम भव-बन्ध ! तुम्हे है यह पूरा अधिकार' कह कर उसने विक्षुब्ध प्राणियों को सान्त्वना प्रदान की थी।

'विश्वमानवता का जय घोष
यही पर हुआ जलद-स्वर-मन्द्र।
मिला था वह पावन आदेश,
आज भी साक्षी है रवि चन्द्र।'

आज शताब्दियों बाद फिर उसी भूमि के ध्वसो मे झकार हुई है।

—लहर

अरुण—साहसी राजकुमार, सच्चा प्रेमी।

—(पुरस्कार)

अरुण यह मधुमय देश हमारा—गीत। ग्रीस कुमारी कार्नेलिया को भारतीय सस्कृति ने आकृष्ट किया। यहा का विस्तीर्ण भूखण्ड, यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य, इस देश का सुखमय जीवन कितना आकर्षक है। यहाँ के खग, मृग, घन, वन, पर्वत, उषा, सन्ध्या सब मनोहर है। **—चन्द्रगुप्त, २-१**

अरुणाचल आश्रम—अरुणाचल पहाडी के समीप एक हरे-भरे प्राकृतिक वन मे कुछ लोगो ने मिलकर एक स्वास्थ्य-निवास बनाया। कई परिवारो ने उसमे छोटे-छोटे स्वच्छ घर बना लिए। उनका आदर्श है सरलता, स्वास्थ्य और सौन्दर्य। इसके नियमों मे प्रेम का, उच्छृंखल प्रेम

को बाँधने का चौथा नियम बाद में जोड़ा गया। —एक घूंट

अरुन्धती—वशिष्ठ की पत्नी। वशिष्ठ से वार्तालाप कर रही थी—

अरुन्धती—भगवन् ! आज कैसी स्वच्छ राका है !

वशिष्ठ—जैसा तुम्हारा चरित्र।

अरु०—चन्द्रोदय कैसा उज्ज्वल है !

व०—जैसे विश्वामित्र का तप-पुंज।

अरु०—भगवन् ! उसने तो आप के पुत्रों को मार डाला था।

व०—चन्द्र क्या निष्कलंक है ?

यह सुनकर विश्वामित्र को आत्मग्लानि हुई और उसने आकर क्षमा-याचना की। —(ब्रह्मर्षि)

अरे आ गई है भूली-सी—गीत। वसन्त-ऋतु आई, इससे नई व्यथा जगी। अब पतझड़ के सूखे तिनके भागेंगे, आशा के अङ्कुर फूटेंगे,

जवा-कुसुम सी उषा खिलेगी,
मेरी लघु प्राची में।
. . . अंधकार का जलधि लाँघ कर
आवेंगी शशि किरनें॥

ऐसा एकान्त स्वप्न-लोक बनने दो। कवि का भी अपना एक व्यक्तित्व है; उसकी सत्ता अलग बनी रहनी चाहिए। —लहर

अरे कहीं देखा है तुमने—रहस्यवादी गीत। कहीं देखा है ? मुझे प्यार करने-वाले को, सूने हृदय को गला कर मेरी रिक्तता को भर देने वाले को, उसे जो कण-कण में छिपा है, उसे जो निष्ठुर रहा और आज मौन मरनेवाले को देखकर कांपने लगा है। मेरा प्रेमी वह है जो रजनी के अंधकार में, उष्ण और शीत में, दुःख और सुख में व्यक्त होता है। —लहर

अर्चना—सर्वप्रथम इन्दु, कला ६, खण्ड १, किरण २, फरवरी १९१५ में प्रकाशित कविता। वीणे ! ऐसा मधुर स्वर छेड़ो कि 'लौट चला आवे प्रियतम इस भवन में।' अब लज्जा छोड़ दूंगी, तेरे कारण 'रुष्ट हो गए प्रियतम और चले गए।' हृदय में बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ थीं, पर संकोचवश वे दबी पड़ी रह गईं। स्निग्ध कामना पूरी नहीं हुई। मन-मन्दिर में वह 'अर्चना' अब भी सङ्कुचित है जिसे तुमने उपेक्षित किया। प्रिय, मेरे अश्रु भी तुम्हें द्रवित न कर सके। इतने निर्दय न बनो। प्रसन्न हो। —झरना

अर्जुन[१]—कृष्णशरण ने विजय और घंटी के विवाह की अनुमति देते हुए दृष्टान्त दिया कि यादवों के विरुद्ध रहते भी सुभद्रा और अर्जुन के परिणय को कृष्ण ने अनुमोदित किया। —कंकाल, २-८

अर्जुन[२]—प्रभास क्षेत्र में अर्जुन के साथ सरमा आदि यादवियां जा रही थीं। जब नागों ने आभीरों के साथ मिलकर यादवियों का हरण किया था, तब धनञ्जय की वीरता भी विचलित हो गई थी। परन्तु यादविया स्वयं अपने चरित्र-पतन को पराकाष्ठा दिखलाकर

आक्रमणकारियों पर मुग्ध होकर उनके संग जा रही थी, तो अर्जुन की वीरता क्या करती। अर्जुन ने नागों को कुरुक्षेत्र और खाण्डव वन में नष्ट किया और कृष्ण की प्रेरणा से खाण्डव-दाह किया।

—जनमेजय का नागयज्ञ, १-१

अर्जुन[३]—श्रीकृष्ण ने अर्जुन को, क्लीव किस लिए कहा था ? (पुरोहित)

—ध्रुवस्वामिनी, ३

अर्जुन[४]—भ्रान्त पथिक के रूप में मणिपुर में पुत्र से युद्ध। अर्जुन मूर्च्छित होकर गिर पड़े। **—(बभ्रुवाहन)**

अर्जुन[५]— **—(सज्जन)**

[पाण्डु और कुन्ती के पुत्र, पाण्डवों में मझले। महाभारत के प्रसिद्ध योद्धा। जिनका रथ श्रीकृष्ण चलाते थे।]

अर्थ—जीवन के समस्त प्रश्नों के मूल में अर्थ का प्राधान्य है। (करुणा)

—कामना, २-७

दे० धन, स्वर्ण भी।

अर्थशास्त्र—कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी आता है कि (अपने पिता के वध के) कोप के कारण जनमेजय ने अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों को नहीं आने दिया।

—(प्राक्कथन[१]**)**

'चन्द्रगुप्त' नाटक की कथा का एक आधार।

अलका—तक्षशिला की राजकुमारी, गान्धार-नरेश की पुत्री और युवराज आम्भीक की बहन। भाई ने यवन-उत्कोच ग्रहण करके जो राष्ट्र-घातक नीति ग्रहण की, अलका ने उसका घोर विरोध किया। आम्भीक और यवन सैनिक सर्वदा अलका के ऊपर सन्देह करते रहे और उसे बन्दी बनाने का निश्चय किया गया, अन्यथा वह पूर्ण गान्धार में विद्रोह फैला देगी। देश का उसे बड़ा गर्व था। देश-प्रेम के मारे नटी भी बनी थी। बन्दी होकर भी वह निर्भीक रही। उसे डर था तो 'भारत-दुर्दशा एवं कलंक' का। वह बड़ी व्यवहार-कुशल और चतुर थी। सिल्यूकस को धोखा देकर भाग गई, पर्वतेश्वर से अपने प्रिय सिंहरण को भी छुड़ा लिया और पर्वतेश्वर की 'रानी' भी न बनाई जा सकी। पर्वतेश्वर को चकमा अवश्य देती रही। सिंहरण की उसने अनेक बार सहायता की। यवनों से मालवदुर्ग की रक्षा की। देशभक्ति, स्वाभिमान, वीरता, प्रेम और सतीत्व उसके चरित्र के विशेष गुण हैं। सिकन्दर पर आक्रमण करके और जनता में उत्साह भर के उसने इसका प्रमाण दिया। चाणक्य के शब्दों में "मेरी लक्ष्मी अलका ने आर्य्य-जाति के गौरव के लिए क्या-क्या कष्ट नहीं उठाए।" अन्त में चाणक्य ही समारोह-पूर्वक अलका और सिंहरण को वैवाहिक बन्धन में बांध कर उनके प्रेम की सार्थकता सिद्ध करता है। **—चन्द्रगुप्त**

अलका की किस विकल विरहिणी की पलकों का ले अवलम्ब—छायावादी कविता। विरुद्धक का आध्यान्तरिक गीत, जिसमें वह बादल के प्रतीक से मल्लिका

के प्रति पुनः उमड़ते हुए अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करना है। एक बादल इन्द्रपुरी की किसी वियोगिनी की पलकों का आश्रय लिए पड़ा था। आज अचानक बरस पड़ा। अभी तक वह किसी के कठोर हृत्तल में जमा बैठा था। आज किसी की गर्मी पाकर पिघल रहा है। बिजली, चातक और तारागण को सुखी करके भी वह चिन्तित है, दुःखी है ; क्यों ? जुगनू उसका पथ आलोकित कर रहे है। ये बादल आज बनजारों के समान प्रवास से लौटे हैं। **—अजातशत्रु, ३-३**

[अलका = कैलास में कुबेर का वास-स्थान = स्वर्ग।]

अलख अरूप—सुरमा अवधूती बन जाती है और भगवान् की शाश्वतता और संसार की क्षणभंगुरता का यह गीत गाती है। **—राज्यश्री ४-१**

अलङ्करण—रोग-जर्जर शरीर पर अलंकारों की सजावट, मलिनता और कलुष के ढेर पर बाहरी कुंकुम-केसर का लेप गौरव नहीं बढ़ाते। (चन्द्रगुप्त)

—ध्रुवस्वामिनी, पृ० ७५

अलाउद्दीन[१]—दे० पद्मिनी।

—कंकाल

अलाउद्दीन[२]—दृप्त तुरुष्कपति।

—(प्रलय की छाया)

[अलाउद्दीन खिलजी — राज्यकाल १२९६–१३१६ ई०।]

अलाउद्दीन[३]—देवपाल ने उससे प्रतिशोध लेने के लिए उसकी हत्या की।

—(स्वर्ग के खँडहर में)

अलाउद्दीन कुबरा—काशी में रेजिडेण्ट के एजेण्ट, सन् १७८१ ई०। हाथ में हरौती की पतली-सी छड़ी, आंखों में सुरमा, मुंह में पान, मेंहदी लगी हुई लाल दाढ़ी, जिसकी सफेद जड़ दिखलाई पड़ रही थी, कुव्वेदार टोपी; छकलिया अंगरखा और साथ में लैसदार परतले वाले दो सिपाही। कट्टर मुसलमान था। **—(गुण्डा)**

अली ने क्यों भला अवहेला की—लघु-गीत। जब भँवरे ने उषा में खिली, सौरभ-युक्त कली का तिरस्कार किया तो वह मन बहलाने के लिए मलयज पवन से खेलने लगी। इसमे यह संकेत है कि बुद्ध ने मागधी के रूप-यौवन की अवहेला की तो उसने उदयन को अपनाया।

—अजातशत्रु, १-५

अवध—अवध के नवाब का विलास का प्रायश्चित्त-भवन मटियाबुर्ज रहा, जो कलकत्ते के पास है। **—(नीरा)**

[अवध के नवाब अत्यन्त विलासी थे। अन्तिम नवाब वाजिदअली शाह भोग-विलास में डूबा रहता था और गवैयों, नर्तकों, हिजड़ों के साथ समय नष्ट करता था। १८५६ में उसे कलकत्ता में कैद में डाल दिया गया और अवध को अँगरेजी राज्य में मिला दिया गया।]

अवधराज—

अवधराज नगरी सुसोहती
लखत जाहि अलकाहु मोहती॥
इक्ष्वाकु आदिक की विमल
कीरति दिगन्त प्रकासिता

मां भई नगरी नागकुल
अधीन और विलासिता ॥
रघु दिलीप, अज आदि नृप
दशरथ राम उदार।
पाल्यो जाकों सदय ह्वै
नाम करहु उद्धार ॥

—अयोध्या का उद्धार

अवन्ती[1]—वासवदत्ता यहां की राजकुमारी थी।

[राजधानी उज्जैन। चण्डमहासेन उपनाम प्रद्योत यहां के राजा थे, जिनकी कन्या वासवदत्ता कौशाम्बी-नरेश उदयन की बड़ी रानी थीं।]

—अजातशत्रु, कथा-प्रसंग

अवन्ती[2]—प्रदेश का नाम, उज्जयिनी जिसकी राजधानी थी। —इरावती, १

अवन्ती[3]— —स्कन्दगुप्त

[बुद्ध के समय से गुप्तकाल—स्कन्दगुप्त तक इस प्रदेश का इतिहास उज्ज्वल रहा है।—मालव]

अव्यवस्थित—प्रसाद की प्रथम हृदयवादी कविता—१९ पंक्तियां। 'विश्व के नीरव निर्जन में', 'चमत्कृत होता हूं मन में', 'विश्वपति तेरे आंगन में।' जब कभी कवि अपने चंचल अव्यवस्थित मानस को कुछ शान्त करता है, तभी कुछ ऐसी हलचल होती है कि वह भ्रान्त हो जाता है एवं विश्व के कुसुमित कानन में भटकने लगता है। जब कभी वह वल्लरियों से फूलों का दान लेता है, तभी उन फूलों की एक माला बन जाती है, जो उसके गले में पड़ जाती है और अलियों का गान होने लगता है। जब कभी वह विचारों को संकलित कर प्रार्थना करने बैठता है, तभी 'कामना के नूपुर की सुरीली झनकार' होती है। विश्व इतना सुन्दर है कि वह कवि को ईश्वर की ओर जाने नहीं देता। —झरना

अशोक[1]—भारत-सम्राट्। मनुष्य के कल्याण के लिए बड़ा उद्योग किया। "बौद्ध धर्म को हमने क्यों प्रधानता दी ? इसीलिए कि शान्ति फैलेगी, देश में द्वेष का नाम भी न रहेगा और उसी शान्ति की छाया में समाज अपने वाणिज्य, शिल्प और विद्या की उन्नति करेगा। इनकी राज्यसीमा दक्षिण में केरल और मलयगिरि, उत्तर में सिन्धुकोश पर्वत तथा पूर्व और पश्चिम में किरात-देश और पटल थी। इनकी मैत्री के लिए यवन-नृपति उद्योग करते रहते थे। जैनियों के व्यवहार के कारण वे विद्वेषपूर्ण और कठोर हो गए। [इतिहास से सिद्ध है कि अशोक सभी धर्मों के प्रति उदार थे।] भाई की मृत्यु का समाचार सुनकर कठोरता छोड़ दी। उसी दिन से जीवहत्या की आज्ञा बन्द कर दी।—(अशोक[1])

अशोक[2]—जीवन की क्षणभंगुरता और दुःखमय संसार पर अशोक के वैराग्यपूर्ण विचार। —दे० अशोक की चिन्ता

अशोक[3]—देवप्रिय सम्राट् अशोक का धर्मानुशासन था। स्वर्ण की जिनमूर्ति, जो कलिंग की पूज्य प्रतिमा है, सम्राट् अशोक ले आए थे।

—इरावती, पृ० १३, १६

अशोक[४]—अशोक का स्तम्भ कैसे खण्ड-खण्ड होकर गिरा।
—(**चक्रवर्ती का स्तम्भ**)

अशोक[५]—किवदन्ती और इतिहास के आधार पर लिखी गई सास्कृतिक कहानी है। तिष्यरक्षिता और कुणाल की कहानी बहुत प्रसिद्ध है, इसके साथ अशोक के भाई वीताशोक की कहानी भी जोड दी गई है। राजकुमार कुणाल अपनी विमाता तिष्यरक्षिता के घृणित प्रेम-प्रस्ताव से दुखी होकर राजधानी से दूर कश्मीर के समीप, एक कानन मे कुटी बनाकर सपत्नीक रहने लगा। अशोक ने क्रुद्ध होकर जैनियों की हत्या की आज्ञा दी थी, किन्तु दयालु कुणाल ने कुछ जैनियो को शरण दी। उसी समय कश्मीर के शासक ने राजकुमार को वह राजपत्र दिखाया, जिसमे कुमार की आँखे निकाल लेने की आज्ञा थी। वह पत्र तिष्यरक्षिता ने प्रतिशोध लेने के लिए राजमुद्रा अकित करके भेजा था। कश्मीर के शासक ने इस आज्ञा का पालन नही किया, तब राजकुमार कुणाल को अशोक के सम्मुख राजसभा मे उपस्थित किया गया। वहा सारा रहस्य खुल गया और रानी को प्राणदण्ड दिया गया। उसी समय सूचना मिली कि महाराज के भाई वीताशोक को, जिनका कुछ पता नहीं लग रहा था, जैनियों को शरण देने के अपराध में मार डाला गया। महाराज को बडा दुःख हुआ और तभी से जीवहिसा बन्द कर दी गई।

कहानी मे नाटकीयता तो है, पर प्रभाव कुछ नही। घटनाओं का बाहुल्य, वातावरण की अनेकरूपता, कथानक की शिथिलता आदि दोष स्पष्ट हैं। कही-कही निबन्ध-सी लगती है। यह कहानी नारी मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण है। —**छाया**

अशोक[६]—'विशाख' नाटक की भूमिका मे इनके राज्यकाल का विवेचन 'राजतरंगिणी' की दृष्टि से किया गया है, जो सन् २६७ ई० पूर्व से २०६ ई० पू० बनता है। —**विशाख**

अशोक[७]—अशोक ने अभिसार-प्रदेश मे सुदान की तपोभूमि मे एक विहार बनवाया था। —(**स्वर्ग के खॅडहर में**)

[राज्यकाल २७३–२३६ ई० पू०, ११वे वर्ष कलिग-युद्ध हुआ। इसके उपरान्त अशोक ने बौद्धधर्म ग्रहण किया। अपने नए मत का सर्वसाधारण मे प्रचार करने के लिए उसने अनेक कार्य किए।]

अशोक[८]—नवयुवक, जिसने पद्मा से प्रेम करने के कारण रामस्वामी का इतना अहित कर डाला। —(**देवदासी**)

अशोक की चिन्ता—कलिग-विजय में भीषण नर-संहार देखकर सम्राट् अशोक की मन:स्थिति का सुन्दर कवित्वपूर्ण चित्रण। यह जीवन-पतग जलता जा रहा है, जीवन क्षणिक है, तो फिर तृष्णा और पिपासा के लिए इतना रक्तपात क्यों? शत्रु के विजित होने से मगध का सिर ऊँचा हुआ, किन्तु दूर से आती

हुई क्रन्दन-ध्वनि विजयी का अभिमान भंग कर रही है। यह वास्तविक विजय नहीं है। शासन तो मानव के मन पर होना चाहिए। विजय और पराजय पाखण्ड है। मानव को सुख देना ही अभीष्ट होना चाहिए। वैभव मतवाला कर देता है। इसका राग-रंग क्षणिक होता है। यह सौन्दर्य, यह ऐश्वर्य, यह सुख क्षण-भंगुर तरंग-सा है। यह उत्सवशाला निर्जन हो जायगी। 'इस नील विषाद गगन में, सुख चपला-सा दुःख घन में।' दुःख चिरंतन है। सृष्टि के कण-कण में उदासी छाई है। वायु के स्वरों में करुण गाथा है। उषा उदास आती है, पीला मुख लेकर चली जाती है।—

भुनती वसुधा, तपते नग
दुखिया है सारा अग-जग
कंटक मिलते हैं प्रति पग
जलती सिकता का यह मग
वह जा बन करुणा की तरग
जलता है यह जीवन-पतग।

कविता में चित्त की अन्तर्वृत्तियों का सफल प्रकाशन हुआ है। बौद्ध-दर्शन का यत्र-तत्र उल्लेख है। —लहर

अश्वघोष—दे० कालिदास।

[बुद्धचरित, सौन्दरानन्द, शारिपुत्र-प्रकरण आदि ग्रन्थों के रचयिता। प्रथम शती ईस्वी में कनिष्क इन्हें मगध से पुरुषपुर (पेशावर) ले गया और अपना राजकवि बनाया।]

अश्वजित—दे० विनयपिटक।

अश्वसेन—तक्षक का पुत्र; महर्षि च्यवन के गुरुकुल में पढ़ता है। उच्छृंखल युवक और मद्यविलासी।

—**जनमेजय का नागयज्ञ**

अष्टमूर्ति—इन्दु, कला २, किरण ३, आश्विन '६७, लघुकविता। धरा, की लाल, वैश्वानर, आकाश, समीर, दिनेश, चन्द्र और सज्जन परमात्मा के आठ रूप हैं। उनकी माया सर्वत्र व्याप्त है।

—(**पराग**)

असंतोष—लघु कविता। 'प्रकृति है सुन्दर परम उदार', 'नर-हृदय, परिमित, पूरित-स्वार्थ', क्योंकि प्रणय-निराशा में उसे प्रकृति में फैली हुई विश्व-गरिमा लघिमा लगने लगी। 'तुम्हारा मुक्तामय उपहार, हो रहा अश्रुकणों का हार।' 'न हो जब मुझको ही सन्तोष, तुम्हारा इसमें क्या है दोष?' —**झरना**

असीरिया—दे० वरुण

[पश्चिम एशिया में प्राचीन संस्कृति का केन्द्र।]

अस्ताचल पर युवती संध्या की खुली अलक घुँघराली है—शकराज के दुर्ग में नर्तकियां नाचती हुई गाती हैं। सन्ध्या आ गई, मानिक मदिरा बहने लगी। पहाड़ियों ने झीलों की प्यालियां भर लीं। तरु वल्लरियों को चूमने के लिए झुक पड़े। मानिनियों का रुष्ट हृदय पिघलने लगा। कुंजों से प्रेमियों के जोड़े निकले। वसुधा मदमाती हुई।

'सब श्रम रहे अपने सुख में,
तूने क्यों बाधा डाली है?'

—**ध्रुवस्वामिनी, २**

अहमद = अहमद निआल्तगीन।

अहमद निआल्तगीन—अभिमानी और महत्त्वाकांक्षी सैनिक, पथभ्रष्ट युवक; अपनी प्रेमिका फीरोजा की मन्त्रणा न मानने पर मृत्यु को प्राप्त होना है। फीरोजा उसकी समाधि की आजीवन दासी बनी रही। —(**दासी**)

[ऐतिहासिक पात्र। महमूद का सेना-पति जिसने बनारस तक लूट मार करने के बाद विद्रोह कर दिया। जाटों के हाथों मारा गया।]

अहल्या—'राम एक तापस-तिय तारी' की व्याख्या करते हुए अयोध्या में वैरागी ने अहल्या की कथा सुनाई। वह यौवन के प्रमाद में, इन्द्र के दुराचार से छली गई। उसने पति से, इस लोक के देवता से छल किया। 'वानभक्षा निराहार तप्यन्ती भस्मशायिनी'। पतित-पावन राम ने उसे शाप-विमुक्त किया। **—कंकाल, ४-१**

किसी को अहल्या के समान पापिनी मत कहो।—निरंजन का भारत संघ में उपदेश। **—कंकाल, ४-८**

[ब्रह्मा की मानस पुत्री, गौतम-पत्नी, पति के शाप से शिला हो गई। राम के चरण-स्पर्श से उसका उद्धार हुआ।]

आ

आओ हिए में अहो प्राण प्यारे—गीत। मागंधी उदयन को रिझाने के लिए गाती है—प्रियतम मेरे मन-मन्दिर में बस जाओ, "सब को छोड़ तुम्हें पाया है, देखूँ कि तुम होते हो हमारे।" तुम मुझसे अलग न होवो ताकि 'तपन बुझे तन की औ' मन की।" **—अजातशत्रु, १-५**

आकाश-दीप[१]—प्रसाद का तीसरा कहानी संग्रह : प्रथम संस्करण, सन् १९-२९, भारती-भंडार, इलाहाबाद। इसमें १९ कहानियां है—आकाश-दीप, ममता, स्वर्ग के खण्डहर में, सुनहला साँप, हिमालय का पथिक, भिखारिन, प्रति-ध्वनि, कला, देवदासी, समुद्र-संतरण, वैरागी, बनजारा, चूडीवाली, अपराधी, प्रणय-चिह्न, रूप की छाया, ज्योतिष्मती, रमला और बिसाती। ये सब कहानिया १९२६ और १९२९ के बीच की है। चूडीवाली और बिसाती सुन्दर कहानियां है। ऐसे ही स्वर्ग के खण्डहर और आकाश-दीप भी। संग्रह की सर्वो-त्कृष्ट कहानी 'आकाश-दीप' है। 'देव-दासी' प्रसाद की एक ही कहानी है जो पत्रशैली में है। कला, ज्योतिष्मती और रमला इन तीन रहस्यात्मक कहानियों को छोड़कर अधिकांश कहानियां भावा-त्मक है। प्रायः कहानियों में प्रसाद की कला अपने प्रौढ रूप में है। कुछ कहानिया अपरिपक्व भी है, जैसे—वैरागी, बनजारा, प्रणय-चिह्न आदि। संग्रह की भाषा काव्यात्मक है और कहीं-कहीं दुरूह भी हो गई है।

शैली के नमूने—

"बन्दी !"

"क्या है ? सोने दो।"

"मुक्त होना चाहते हो ?"

"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"फिर अवसर न मिलेगा।"

"बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल डाल कर कोई शीत से मुक्त करता।"

"आँधी की सम्भावना है। यही अवसर है। आज मेरे बंधन शिथिल हैं।"

"तो क्या तुम भी बन्दी हो ?"

—(**आकाश-दीप**)

(रमला, प्रणय-चिह्न, रूप की छाया, हिमालय का पथिक आदि में ऐसी ही सभाषण-शैली है।)

वन्य कुसुमों की झालरें सुखशीतल वायु से विकम्पित होकर चारों ओर झूल रही थीं। छोटे-छोटे झरनों की कुल्याएँ कतराती हुई बह रही थीं। लता-वितानों से ढकी हुई प्राकृतिक गुफाएँ शिल्प रचनापूर्ण सुन्दर प्रकोष्ठ बनातीं, जिसमें पागल कर देने वाली सुगन्धि की लहरें नृत्य करती थीं। स्थान-स्थान पर कुञ्जों और पुष्प शय्याओं का समारोह, छोटे-छोटे विश्राम-गृह, पान-पात्रों में सुगन्धित मदिरा, भाँति-भाँति के सुस्वादु फल-फूल वाले वृक्षों के झुरमुट, दूध और मधु की नहरों के किनारे गुलाबी बादलों का क्षणिक विश्राम। चाँदनी का निभृत रंगमंच, पुलकित वृक्ष-फूलों पर मधु-मक्खियों की भन्नाहट, रह-रहकर पक्षियों के हृदय में चुभने वाली तान, मणिदीपों पर लटकती हुई मुकुलित मालाएँ। —(**स्वर्ग के खण्डहर में**)

उद्यान की शैलमाला के नीचे एक हरा-भरा छोटा-सा गाँव है। वसन्त का सुन्दर समीर उसे आलिंगन करके फूलों के सौरभ से उसके झोंपड़ों को भर देता है। तलहटी के हिमशीतल झरने उसको अपने बाहुपाश में जकड़े हुए हैं। उस रमणीय प्रदेश में एक स्निग्ध संगीत निरन्तर चला करता है, जिसके भीतर बुलबुलों का कलनाद, कम्प और लहर उत्पन्न करता है। —(**बिसाती**)

शैलमाला की गोद में वह समुद्र का शिशु कल्लोल करता, उस पर से अरुण की किरणें नाचती हुई अपने को शीतल करती चली जातीं। मध्याह्न में विषम ठहर जाता—उसकी लघु वीचियों का क्रन्दन देखने के लिए। सन्ध्या होते उसके चारों ओर के वृक्ष अपनी छाया के अंचल में छिपा लेना चाहते, परन्तु उसका हृदय उदार था, मुक्त था, विराट् था। चाँदनी उसमें अपना मुँह देखने लगती और हँस पड़ती। —(**रमला**)

आकाश-दीप[२]—इस भावपूर्ण कहानी का वातावरण मौर्यकालीन इतिहास का है। कथानक काल्पनिक है। पोताध्यक्ष वणिक् मणिभद्र की नौका में दो कैदी थे—चम्पा और बुद्धगुप्त। चम्पा जाह्नवी तट की चंपा-नगरी की एक क्षत्रिय बालिका थी। उसका पिता मणिभद्र का प्रहरी था। दस्युओं के आक्रमण में वह मारा गया। मणिभद्र ने चम्पा से

घृणित प्रस्ताव किया। चम्पा ने विरोध किया, तो उसे बन्दी बना दिया गया। बुद्धगुप्त दस्युदल का सरदार था। दोनों ने एक दूसरे की सहायता से अपने को मुक्त किया। नायक ने बुद्धगुप्त को फिर बन्दी बनाना चाहा, परन्तु वह पराहत हुआ। पोत पर बुद्धगुप्त का अधिकार हो गया। उस वीर पुरुष ने कई द्वीपों को वश में कर लिया। एक द्वीप का नाम चम्पा रखा गया। चम्पा अब एक तरह से महारानी थी। दोनों में प्रेम बढ़ता गया। चम्पा के मन में शान्ति न थी। वह सोचती थी उसके पिता का हत्यारा यही बुद्धगुप्त है। जब चम्पा ने अपनी माता की स्मृति में आकाश-दीप जलाया और बताया कि उसकी माँ भागीरथी के तट पर ऐसे ही दीप जलाती हुई प्रार्थना करती थी कि भगवान् मेरे पति की संकटों में रक्षा करें, तो बुद्धगुप्त ने उसके भगवान् की हँसी उड़ाई और आकाश-दीप पर व्यंग्य किया। चम्पा ने उसे कह दिया कि मैं तुम से घृणा करती हूँ, तुम पर विश्वास नहीं करती, तुम्हे प्यार अवश्य करती हूँ। निराश बुद्धगुप्त भारत लौट गया। मर्मव्यथा की तीव्र ज्वाला में जलती चम्पा उस द्वीप में आकाश-दीप जलाती रही। एक दिन न चम्पा रही न दीप-स्तम्भ। कहानी की विशेषताएँ हैं काव्यमय कल्पना, अन्तर्द्वन्द्व, समुद्री-जीवन का वातावरण। चम्पा के हृदय का अत्यन्त सजीव और मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। प्रतिहिंसा, प्रेम और त्याग की यह कहानी मर्म और रोचक है। कथानक का विकास सुन्दर, चरित्र-चित्रण मार्मिक और भाषा सरल है। विनोदशंकर व्यास के अनुसार यह प्रसादजी की सर्वश्रेष्ठ कहानी है।

—आकाश-दीप

आकुलि—आकुलि और किरात दो असुर पुरोहित थे। श्रद्धा के पाले हुए पशुओं को देखकर उनकी जीभ में पानी भर आया। उन्होंने मनु के यज्ञ में पुरोहित बनकर पशु-बलि कराई और आत्म-तृप्ति की। धीरे-धीरे उनका प्रभाव मनु पर बढ़ चला। हिंसा-सुख का चसका लग गया। मनु भी उनके साथ आखेट में रत रहने लगा। यही लोग सारस्वत प्रदेश में मनु के विरुद्ध विद्रोह का नेतृत्व कर रहे थे। मनु ने वहीं उन्हें शरशायी कर दिया।

—कामायनी, कर्म और ईर्ष्या सर्ग

आँखों से अलख जगाने को—गीत। सचेत करने को आज यह भैरवी आई है। आँखों में ऊषा-सी मादकता छाई हुई है। मलय-पवन सूचना देता है कि रात अँगड़ाई ले रही है। सागर उद्वेलित होकर छलछला रहा है।

—लहर

आगरा[1]—आगरा और मथुरा के बीच में जमाल मिरज़ा की जागीर के गांव थे। **—कंकाल, ३-५, ६**

आगरा[2]—आगरा में रहने के लिए शाह-जादा सलीम को जगह न थी। उसने

दुःखी होकर अपनी जन्मभूमि (फतहपुर सीकरी) में रहने की आज्ञा मांगी।
—(नूरी)

आगरा[१]—अकबर ने रहीमखां खानखाना से पूछा—कहिए, यहां आगरे की जलवायु से स्वास्थ्य हुआ अब ठीक आप का या नहीं ?

—**महाराणा का महत्त्व**

[यमुना के किनारे बसा नगर, अकबर और शाहजहां की राजधानी रहा ।]

आज इस यौवन के माधवी कुञ्ज में कोकिल बोल रहा—गीत। सुवासिनी अपने मादक यौवन और आन्तरिक कोलाहल की अभिव्यञ्जना करती हुई कहती है कि यौवन में कामनाएँ खिल रही हैं । हृदय अब लाज की सीमा में न रह सकेगा । रात छवि से मतवाली हो रही है, चांदनी बिछली पड़ती है और 'कहती कम्पित अधर से बहकाने की बात ।' वासना का बांध टूट रहा है । —**चन्द्रगुप्त, ३-५**

आज मधु पी ले, यौवन-वसन्त खिला—नरदेव के दरबार मे नर्तकी का दूसरा गीत। जिस प्रकार वसन्त में कोकिल आनन्द-विभोर हो कलरव करता है, रसाल मञ्जरित होकर खिल उठता है, सुरभित समीर चलता है तो प्रेमियों को अधीर कर देता है, मधुप मुकुल से मिलता है, इसी प्रकार, हे प्रेमी, तू भी यौवन-वसन्त का आनन्द ले ले ।

—**विशाख, १-३**

आत्मकथा—हंस, जनवरी-फरवरी '३२ के आत्मकथांक में प्रकाशित ।

दे० मधुप गुनगुना कर (लहर) ।

प्रसादजी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व इस कविता में छिपा है। इसमें उनके सारल्य, विषाद और जीवन-प्रेम का परिचय मिलता है।

छोटे से जीवन की कैसे
बडी कथाएँ आज कहूँ ?
...मेरी भोली कथा ।
अभी समय भी नहीं—
थकी सोई है मेरी मौन व्यथा ।
मिला कहाँ वह सुख जिसका
मैं स्वप्न देख कर जाग गया ।
आलिंगन में आते-आते
मुसक्या कर जो भाग गया ॥

उनकी स्मृति इस पथिक का पाथेय है । 'मेरी कथा की सीवन को उधेड़ कर भला क्या करोगे ? मेरा तो स्वभाव ही है कि औरों की सुनता हूँ, अपनी क्या कहूँ ? '

आत्मबल—आत्मबल या प्रतिभा किसी की प्रशंसा के बल से विश्व में नहीं खड़ी होती, अपना अवलंब वह स्वयं है । (बिम्बसार) —**अजातशत्रु, १-४**

—मनुष्य अपनी दुर्बलता से भलीभांति परिचित रहता है : परन्तु उसे अपने बल से भी अवगत होना चाहिए—असंभव कह कर भी किसी काम को करने से पहले कर्मक्षेत्र में लड़खड़ाओ मत ! तुम क्या हो—विचार कर देखो ! (चाणक्य)—**चन्द्रगुप्त, ३-२**

आत्मवाद—वह है आत्मा की अग्नि जिसमें अन्धकार ईंधन बन कर जलता है। उस तेज में सब विशुद्ध, दिव्य और ग्राह्य हो जाते हैं। आनन्द की यही योजना अपनी विचार-पद्धति में ले आने की आवश्यकता है। भय से फैले हुए विवेक ने हमारी स्वाभाविकता का दमन कर लिया है। ऐसा मालूम होता है कि हम लोग प्रतिपद सशंक, भयभीत निष्ठुरता से शासित प्राणी हैं। हम आत्मवान् हैं, हमारा भविष्य आशामय है। (ब्रह्मचारी)

—**इरावती, पृ० २२**

—प्रकृति में विषमता तो स्पष्ट है। नियंत्रण के द्वारा उसमें व्यावहारिक समता का विकास न होगा। भारतीय आत्मवाद की मानसिक समता ही उसे स्थायी बना सकेगी। यांत्रिक सभ्यता पुरानी होते ही ढीली होकर बेकार हो जायगी। उसमें प्राण बनाए रखने के लिए व्यावहारिक समता के ढांचे या शरीर में, भारतीय आत्मिक साम्य की आवश्यकता कब मानव-समाज समझ लेगा, यही विचारने की बात है।...पश्चिम एक शरीर तैयार कर रहा है, किन्तु उसमें प्राण देना पूर्व के अध्यात्मवादियों का काम है। यहीं पूर्व और पश्चिम का वास्तविक संगम होगा, जिससे मानवता का स्रोत प्रसन्न धारा में बहा करेगा। (रामनाथ)

—**तितली, २-१०**

—इतिहास में वैदिक इन्द्र से लेकर कबीर के समय तक की यज्ञ-पद्धति इसी में सम्मिलित थी। इसी ने देवदासी-प्रथा को जन्म दिया। इसी ने सहजयानियों में विकृत रूप भी ग्रहण किया। वैष्णव उपासना और प्रेम-भक्ति में भी वही परम्परा है। रहस्य सम्प्रदायों से इसका सम्बन्ध है।

—(**रहस्यवाद**)

—इन्द्र के आत्मवाद की प्रेरणा ने आर्य्यों में आनन्द की विचारधारा उत्पन्न की। इन्द्र देवराज-पद पर प्रतिष्ठित हुए। वैदिक साहित्य में आत्मवाद के प्रचारक इन्द्र की जैसी चर्चा है, उर्वशी आदि अप्सराओं का जो प्रसंग है, वह उनके आनन्द के अनुकूल ही है। सप्तसिन्धु के प्रबुद्ध तरुण आर्यों ने इस आनन्दवादी धारा का अधिक स्वागत किया, क्योंकि वे स्वत्व के उपासक थे। आर्य्यों ने कर्मकाण्ड और बड़े-बड़े यज्ञों में उल्लासपूर्ण आनन्द का दृश्य देखा और बड़े-बड़े यज्ञों की कल्पना की।

—(**रहस्यवाद, पृ० २२-२३**)

दे० आनन्दवाद, इन्द्र भी।

आत्मविश्वास—सर्वसाधारण आर्य्यों में अहिंसा, अनात्म और अनित्यता के नाम पर जो कायरता, विश्वास का अभाव और निराशा का प्रचार हो रहा है, उसके स्थान पर उत्साह, साहस और आत्मविश्वास की प्रतिष्ठा करनी होगी। (ब्रह्मचारी)

—**इरावती, पृ० २१**

—आत्मविश्वास ही तो जीवन है।
—(परिवर्तन)

आत्मसम्मान—आत्मसम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है। (चन्द्रगुप्त) —चन्द्रगुप्त, १-१

दे० प्रतिष्ठा भी।

—मनुष्य दूसरों की दृष्टि में कभी पूर्ण नहीं हो सकता। पर उसे अपनी आंखों से तो नहीं गिरना चाहिए। (इरावती) —(दासी)

आत्महत्या—आत्महत्या या स्वेच्छा से मरने के लिए प्रस्तुत होना भगवान् की अवज्ञा है। जिस प्रकार सुख-दुःख उसके दान हैं—उन्हें मनुष्य झेलता है, उसी प्रकार प्राण भी उसी की धरोहर है। (दिवाकर) —राज्यश्री, ३-२

आदर्श—उपासना के लिए एकान्त निश्चिन्त अवस्था और स्वाध्याय के लिए चुने हुए श्रुतियों के सार भाग का संग्रह, गुण-कर्म्मों की विशेषता और पूर्ण आत्मनिष्ठा, सब की साधारण समता—इतना ही तो चाहिए। (कृष्णशरण)
—कंकाल, पृ० १७०

—मनुष्य को जानबूझ कर उपद्रव मोल न लेना चाहिए। विनय और कष्ट सहन करने का अभ्यास रखते हुए भी अपने को किसी से छोटा न समझना चाहिए, और बड़ा बनने का घमण्ड भी अच्छा नहीं होता। (मधुबन)
—तितली, ३-१

आदर्श परिवार—अजातशत्रु, पृ० २६

आदेश—कविता। तेरे शुद्ध मानस पर पावन अक्षरों में आत्मा का यह आदेश लिखा है 'छोड़ ममता पढ़ ले इसको'।

तोड़ कर बाधा बन्धन भेद,
भूल जा अहमिति का यह स्वार्थ।

द्वन्द्व छोड़। प्रार्थना और भक्ति के प्रहर दुःखियों पर दया करने में लगा दे।

ऐसी कविताओं में रवीन्द्र की 'गीताञ्जलि' का प्रभाव स्पष्ट है।
—झरना

आन्तरिक गुण—पाषाण के भीतर भी कितने मधुर-स्रोत बहते रहते हैं। उनमें मदिरा नहीं, शीतल जल की धारा बहती है। (कोमा)
—ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४५

आँधी[१]—प्रसाद की उतरकालीन प्रौढ़ रचना। इस संग्रह मे तीन प्रकार की कहानियां है। — (१) प्रेम मूलक (प्रायः दुःखान्त), (२) ऐतिहासिक, (३) यथार्थोन्मुख। प्रथम संस्करण, १९३३, भारती-भण्डार, इलाहाबाद। 'आंधी' इस संग्रह की प्रथम कहानी का भी शीर्षक है। शेष १० कहानियां है—मधुवा, दासी, घीसू, बेड़ी, व्रतभंग, ग्रामगीत, विजया, अमिट स्मृति, नीरा, पुरस्कार। प्रेम-कथाएँ अधिक है, और प्रायः सब दुःखान्त है। कहानी-कला और विशेषतया चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह संग्रह अत्यन्त सुन्दर और महत्त्वपूर्ण है। "आकाश-दीप" की कहानियों की-सी काव्यात्मक उलझन इस संग्रह की कहानियों में नहीं है। 'पुरस्कार' इस

संग्रह की अन्तिम और उत्कृष्ट कहानी है।

आँधी[१]—इसी नाम के संग्रह की प्रतिनिधि, श्रेष्ठ और सबसे लम्बी कहानी। 'आंधी' नारी के प्रेम, आत्मत्याग और बलिदान की दु:खान्त कथा है। कहानी उत्तम पुरुष में है, सुनाने वाले का नाम है श्रीनाथ। लैला एक जिप्सी लड़की थी, जो मेरे मित्र रामेश्वर से प्रेम करने लगी; पर रामेश्वर विवाहित गृहस्थ था, बाल-बच्चेदार, वह किसी से प्रेम क्यों करता, विशेष करके जब कि उसका पारिवारिक जीवन अत्यन्त सुखमय था—मालती नाम की पत्नी, छः बरस का मिन्ना, चार का रञ्जन, और दो साल की कमलो। रामेश्वर ने लैला को एक पत्र लिखा कि मुझ से प्रेम करने की भूल तुम मत करो। लैला ने वह पत्र मुझ से पढ़वाना चाहा; लेकिन, बाद में न जाने क्यों, मैंने झूठ-मूठ पढ़कर सुनाया कि रामेश्वर तुम्हें प्यार करता है। लैला की आंखों में स्वर्ग हँसने लगा और फुरती से चली गई। चन्दा के दक्षिणी तट पर ठीक मेरे बँगले के सामने पाठशाला थी जिसका संचालन प्रज्ञासारथि नाम के एक सिंहाली बौद्ध करते थे। वे वापस सिंहल जाना चाहते थे। उनके आग्रह से मैंने उनकी पाठशाला की अध्यक्षता स्वीकार की। संयोगवश मेरे मित्र रामेश्वर सपरिवार मेरे पास जलवायु-परिवर्तन के लिए आ गए। हम सब प्रज्ञासारथि की पाठशाला में ठहरे। एक दिन साहस करके मैंने लैला को सच-सच बता दिया कि रामेश्वर तुमसे प्रेम नहीं करता। इस सूचना से तो वह विकल हो उठी। उसके हृदय में आंधी उठ खड़ी हुई—हां, वही तेज हवा जिसमें बिजली चमकती है, बरफ गिरती है, जो बड़े-बड़े पेड़ों को तोड़ डालती है—..हम लोगों के घरों को उड़ा ले जाती है...! प्रकृतिस्थ होकर उसने रामेश्वर से मिलने की इच्छा प्रकट की। कोई अनिष्ट न करने का वचन लेकर उसे रामेश्वर के पास पहुँचा दिया गया। रामेश्वर से उसने पत्र पढ़वाया और उसके मुख से प्रेम की अस्वीकृति सुनकर पत्र फाड़ डाला। एक सुन्दर चारयारी (इसके प्रभाव से सोना-चांदी की कमी न होगी... इससे चोरी का माल बहुत जल्द पकड़ा जाता है) रामेश्वर को और एक मूंगे की माला कमलो को पहना कर रामेश्वर की पत्नी मालती को घूरती हुई चली गई। लैला आन्तरिक वेदना के आधिक्य से विक्षिप्त हो गई। एक दिन आंधी से पीपल की बड़ी सी डाल फटी और लैला उसके नीचे दबी हुई अपनी भावनाओं की सीमा पार कर गई। आज भी मेरे हृदय में आंधी चला करती है और उसमें लैला का मुख बिजली की तरह कौंधा करता है।

कहानी में श्रीनाथ के असमञ्जस की स्थितियों एवं उसकी और लैला की भावनाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है। रामेश्वर और मालती के हृदय का

संघर्ष प्रगट नहीं किया गया । कहानी का अन्तिम अंश बहुत प्रभावपूर्ण है । कहानी का वह अंश, जिसमें प्रज्ञासारथि और श्रीनाथ के बीच पाठशाला की बात चलती है, आवश्यकता से अधिक लम्बा है । आरम्भ में कल्लू की कहानी भी बहुत कुछ असंगत है । लैला के उज्ज्वल प्रेम का चित्रण संवेदना-पूर्ण ढग मे किया गया है । लम्बी होने पर भी कहानी आकर्षक और रसमय है ।

—आंधी

आन्ध्र[1]—आन्ध्र पहले मगध साम्राज्य के अधीन था । सम्राट् वृहस्पतिमित्र के राज्यकाल में उसने भी सिर उठाया । धनदत्त व्यापार करने वहां गया था ।

—इरावती

आन्ध्र[2]—आंध्र के आचार्य्यों ने धार्मिक संस्कृति के साथ संस्कृत-साहित्य का भी पुनरुत्थान किया ।

—रंगमंच, पृ० ७२

[गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच का प्रदेश । वल्लभाचार्य आन्ध्र देश के थे ।]

आनन्द[1]—प्रसाद ने आनन्द को शिव माना है । आनन्द ही शिव की अभिव्यक्ति है । दे० कामायनी ।

आनन्द जीवन का लक्ष्य है, सर्वोच्च प्राप्य है । संसार का समस्त ज्ञान, समस्त कर्म आनन्द के लिए ही प्रयत्नशील है । आनन्द की सृष्टि भेद-भाव के विस्मरण, सेवा, त्याग आदि से सम्भव है ।

आनन्द[2]—गौतम बुद्ध का शिष्य । नाटक में केवल दो दृश्यों में आता है । एक बार मल्लिका के यहां सारिपुत्र के साथ भोजन करते ; जिसे मल्लिका का धैर्य्य देखकर लगा कि केवल काषाय धारण कर लेने ही मे धर्म पर एकाधिकार नहीं हो जाता—यह तो चित्त-शुद्धि से मिलता है । दूसरी बार गौतम के साथ बेसुध श्यामा को संघाराम मे उठवा लाता है ।

—अजातशत्रु, २-५, ८

[दे० डिक्शनरी ऑव् पालि प्रापर-नेम्स । आनन्द बुद्ध का चचेरा भाई था और उसी दिन पैदा हुआ था, जिस दिन बुद्ध । वह बुद्ध का भाष्यकार, प्रचारक और प्रिय शिष्य था ।]

आनन्द[3]—अन्तर्निहित आनन्द की अग्नि प्रज्वलित करो । सब मलिन कर्म उसमें भस्म हो जायँगे ! उस आनन्द के समीप पाप आने से डरेगा । (ब्रह्मचारी)

—इरावती, पृ० ५९

—बौद्धिक दम्भ के अवसाद को आर्य जाति से हटाने के लिए आनन्द की प्रतिष्ठा करनी होगी । (ब्रह्मचारी)

—इरावती, पृ० २२

—आनन्द की सीमा में......प्रसन्नता प्रत्येक अवस्था में रहने वाले प्राणियों के विरुद्ध न होगी । चारों ओर उजला-उजला प्रकाश जैसा, जिसमें त्याग और ग्रहण अपनी स्वतंत्र सत्ता अलग बनाकर लड़ते नहीं । (ब्रह्मचारी)

—इरावती, पृ० १०४

दे० आनन्दवाद भी ।

आनन्द[१]—स्वतंत्र प्रेम का एक आनन्द-वादी, प्रचारक, घुमक्कड़ और सुन्दर युवक। कई दिनों से आश्रम का अतिथि होकर मुकुल के यहां ठहरा। वह मानता है कि "किसी एक के प्रेम में बँध कर रहने से स्वास्थ्य, सौन्दर्य और सारल्य सब नष्ट हो जाते हैं। नियमबद्ध प्रेम-व्यापार या विवाह का बड़ा ही स्वार्थ-पूर्ण विकृत रूप होता है। जीवन का लक्ष्य भ्रष्ट हो जाता है। संसार दुःख-मय नहीं है। दुःख की भावनाएँ हृदय को कायर बनाती हैं। दुःखवाद का उद्देश्य है डर उत्पन्न करना, विभी-षिका फैलाना। दुःख को दूर करने के लिए प्रेम अमूल्य चिन्तामणि है।" परन्तु उसका आदर्शवाद खोखला है। वह वनलता से प्रेम चाहता है, सब से एक-एक घूंट पीना चाहता है। अन्त में प्रेमलता के प्रेमपाश में स्वयं बँध जाता है। —**एक घूंट**

आनन्द[२]—वैशाली के कुलपुत्र। "तीर्थ-कर मस्करी गोशाल के नियतिवाद में मेरा पूर्ण विश्वास है। मनुष्य में कर्म करने की स्वतंत्रता नहीं। उसके लिए जो कुछ होना है, वह होकर ही रहेगा। वह अपनी ही गति से गन्तव्य स्थान तक पहुँच जायगा।" —(**सालवती**)

आनन्द भिक्षु—आनन्दवाद का प्रतीक है। उसके पीछे शैव-दर्शन है।

—**इरावती**

आनन्दवर्धन—कश्मीर के अलंकार-सरणि व्यवस्थापक जिन्होंने ध्वनि की व्याख्या इस तरह से की कि ध्वनि के भीतर ही रस और अलंकार दोनों आगए। काव्य की आत्मा ध्वनि है। उन्होंने रस से ध्वनि को प्रधान माना। उन्होंने श्रव्य काव्यों में भी रसों का उपयोग माना, महा-भारत को शान्तरस-प्रधान और रामा-यण को करुणरस का प्रबन्ध कहा।

—(**रस, पृ० ४४-५५**)

मुक्तकों में रस की निष्पत्ति कठिन है।

छाया (शब्द और अर्थ की वक्रता) कवि की वाणी में युवती के लज्जा-भूषण की तरह होती है।

—(**यथार्थवाद और छायावाद, पृ० ९१**)

छाया की स्निग्धता से अलंकार भी सुन्दर होते हैं। —(**वही, पृ० ९२**)

[वे काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा (८५५-८८३ ई०) के सभा-पण्डित थे। उनके 'काव्यालोक' और 'ध्वन्या-लोक' का अलंकार-शास्त्र में वही स्थान है, जो वेदान्तसूत्रों का वेदान्त में।]

आनन्दवाद—'कामायनी' का साध्य विषय आनन्दवाद है। शिव आनन्द-स्वरूप हैं। इसका रहस्य इच्छा, क्रिया और ज्ञान के समन्वय में है। आनन्द की प्राप्ति श्रद्धारहित बुद्धि द्वारा नहीं हो सकती। सात्त्विक श्रद्धा ही से प्रेम और विश्वास की उत्पत्ति होती है, इनसे समरसता की और समरसता से आनन्द की। दे० समरसता भी।

—आनन्द के उल्लास की मात्रा ही जीवन है। —**इरावती, पृ० ५८**

जीवन-उदधि हिलोरें लेता,
उठतीं लहरें लोल।
....भूल अरे अपने को, मत रह
जकड़ा, बन्धन खोल ॥
—एक घूंट, पृ० १-२

जैसे उजली धूप सबको हँसाती हुई आलोक फैला देती है, जैसे उल्लास की मुक्त प्रेरणा फूलों की पंखड़ियों को गद्‌गद् कर देती है, जैसे सुरभि का शीतल झोंका सबका आलिंगन करने के लिए विह्वल रहता है, वैसे ही जीवन की निरन्तर परिस्थिति होनी चाहिए। (आनन्द) **—एक घूंट, पृ० १२-१३**

आनन्द का अन्तरंग सरलता और बहिरंग सौन्दर्य है, इसी में वह स्वस्थ रहता है। (आनन्द)
—एक घूंट, पृ० १५

मैं उन दार्शनिकों से मतभेद रखता हूँ, जो यह कहते हैं कि संसार दुःखमय है और दुःख के नाश का उपाय सोचना ही पुरुषार्थ है।
—एक घूंट, पृ० १७

दे० 'जीवन का लक्ष्य' भी।

अहा, कितना सुन्दर जीवन हो, यदि मनुष्य को इस बात का विश्वास हो जाय कि मानव-जीवन की मूल सत्ता में आनन्द है। (प्रेमलता)
—एक घूंट, पृ० १७

विश्व की कामना का मूल रहस्य 'आनन्द' ही है। (आनन्द)
—एक घूंट, पृ० १७

एक दूसरे के दुःख से दुःखी होना मूर्खता है। इस से प्रसन्नता की हत्या होती है। **—एक घूंट, पृ० १७**

जीवन-वन में उजियाली है, इत्यादि गीत। **—एक घूंट, पृ० २०-२१**

दुःखवाद हृदय को कायर बनाता है। **—एक घूंट, पृ० २५**

दुःखवाद का पचड़ा सब धर्मों ने, दार्शनिकों ने गाया है; उसका रहस्य क्या है? डर उत्पन्न करना! विभीषिका फैलाना। (आनन्द)
—एक घूंट, पृ० ३१-३२

—मौज-बहार की एक घड़ी एक लम्बे दुःखपूर्ण जीवन से अच्छी है। उसकी खुमारी में रूखे दिन काट लिए जा सकते हैं। (शराबी)
—(मधुआ)

—दे० आत्मवाद, आनन्द और इन्द्र भी।

आमुख—'कामायनी' की भूमिका (पृष्ठ-संख्या ६) जिसमें ऋग्वेद, शतपथ-ब्राह्मण, भागवत और छान्दोग्य उपनिषद् के उन स्थलों को उद्धृत किया गया है जहां से मनु, श्रद्धा और इड़ा के चरित्र-सम्बन्धी सूत्र और जलप्लावन के बाद नव-निर्माण की कथा लेकर 'कामायनी' की सृष्टि हुई है। प्रसाद जी का कहना है कि मनु ऐतिहासिक पुरुष है; लेकिन हम निरुक्त से अर्थ ग्रहण करने के आदी हैं, इसलिए मनु को मन और मनन से सम्बद्ध करके उसके दोनों पक्ष—हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा

से लगा लेते हैं और रूपक का ग्रहण करते हैं।

आम्भीक—तक्षशिला का राजकुमार। अविवेकी, स्वार्थी और दम्भी, उद्धत, लोलुप और पतित। यवनों का उत्कोच ग्रहण करके वह पर्वतेश्वर का विरोध करता है और सिकन्दर की सहायता करता है। वह चाणक्य, सिंहरण और चन्द्रगुप्त को कुचक्रों का मूल मानता है। अपनी बहन अलका के बन्दी बनाए जाने पर एक शब्द भी नहीं बोलता। बाद में चाणक्य के संसर्ग में आकर उसकी सद्वृत्तियाँ जागृत होती हैं। वह पश्चात्ताप करता है और देशभक्त बन जाता है। अन्त में वह यवनों की पराधीनता से पीड़ित होता है। अलका और सिंहरण को गांधार का शासन सौंप कर समरभूमि में सिल्यूकस के साथ युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त कर वह अपना कलंक धो डालता है।—**चन्द्रगुप्त**

आम्रपाली—बौद्ध साहित्य में वर्णित एक स्त्री जो पतिता और वेश्या होने पर भी गौतम के द्वारा अन्तिम काल में पवित्र की गई। श्यामा काशी की कोई वेश्या थी। मागन्धी को बौद्ध-साहित्य में ब्राह्मण-कन्या बताया गया है, जिसको उसके पिता गौतम से ब्याहना चाहते थे; पर गौतम ने उसका तिरस्कार कर दिया था। प्रसाद ने बड़े कलात्मक ढंग से इन तीन स्त्रियों—आम्रपाली, श्यामा और मागन्धी को 'अजातशत्रु' नाटक में एक कर दिया है। रूपगर्विता आम्रपाली से बुद्ध ने विवाह करना अस्वीकार कर दिया, तो वह प्रतिशोध लेने के लिए कौशाम्बी के राजा उदयन की रानी मागंधी बनी। यहां पद्मावती से ईर्ष्या हुई। उसने गौतमबुद्ध और पद्मावती से बदला लेने के लिए षड्यंत्र रचा; पर असफल हुई। वह भाग गई और काशी में श्यामा नाम से वेश्या बन गई। भोग-विलास उसके जीवन का लक्ष्य बन गया। यहां उस ने शैलेन्द्र डाकू (कोशलकुमार विरुद्धक) से प्रणय-भिक्षा मांगी। शैलेन्द्र को बचाने के लिए समुद्रदत्त को फांसी दिलवा दी। अतृप्त वासना, कूट बुद्धि, वाक्चातुरी और कार्यकुशलता उसके प्रत्येक कार्य में सहायक रही। "मैं दिखा दूंगी कि स्त्रियां क्या कर सकती हैं?" जब शैलेन्द्र ने उसको मार डालने का असफल प्रयत्न किया, तब वह सचेत हुई। मल्लिका की शक्तिदायिनी छाया के प्रभाव से वह निर्मल हुई और पुनः आम्रपाली बनकर बुद्ध की शरण में गई। सर्वस्व त्याग कर भिक्षुणी बन गई और उसमें पुनीत सात्त्विकता का उदय हुआ।

[वि० दे० डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स, कणवेर जातक तथा थेरिगाथा। वैशाली के राजकुमार, अनेक सामन्त, बिम्बसार तक इसके प्रेमियों में उल्लिखित होते हैं। वैशाली के निकट कोटिग्राम में इसकी भेंट बुद्ध से हुई। भोजन करा के विदाई में इसने बुद्ध को अम्ब-

पालि-वन समर्पित कर दिया और स्वयं अर्हत पद प्राप्त किया ।]

—अजातशत्रु

आरम्भिक पाठ्य काव्य—साधारण निबंध। नाट्य से अतिरिक्त जो काव्य है, उसे रीति-ग्रन्थों में श्रव्य कहते हैं। वर्णनात्मक होने के कारण वे काव्य, जो अभिनय के योग्य नहीं, पाठ्य ही हैं। इनमें बाह्य वर्णन की मुख्यता होती है। वर्णन दो तरह के प्रचलित हैं—काल्पनिक अर्थात् आदर्शवादी, एवं वस्तुस्थित अर्थात् यथार्थवादी । रामायण और महाभारत, पुराण आदि सब में वर्णनों की चर्चा है, नाटकों का-सा साधारणीकरण नहीं हैं । कालिदास, अश्वघोष, भवभूति, भारवि आदि के काव्य-काल में महाकाव्यों में भी महायुद्धों का वर्णन संकलित हैं । हिन्दी में रासो, आल्हा आदि महाभारत की परम्परा में यथार्थवादी हैं। महाकवि तुलसीदास का काव्य आदर्शवादी है। कृष्ण-साहित्य में आत्मवाद तो है; पर बुद्धिवाद का इतना रंग चढ़ाया गया है कि आत्मवाद सब गौण हो गया है । अवध वाली धारा में मिथ्या आदर्शवाद और व्रज की धारा में मिथ्या रहस्यवाद आ गया है। हिन्दी के इस सारे पाठ्यकाव्य में अव्यवस्था है । इसमें रसात्मकता नहीं, रसाभास है । इसमें न तो पौराणिक काल की महत्ता है और न है काव्य-काल का सौन्दर्य ।

—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध

आर्थिक स्वतन्त्रता—समाज का संगठन ही ऐसा है कि प्रत्येक प्राणी को धन की आवश्यकता है । इधर स्त्री को स्वावलम्ब से जब पुरुष लोग हटाकर, उनके भाव और अभाव का दायित्व अपने हाथ में ले लेते है, तब धन को छोड़कर दूसरा उनका क्या सहारा है । (शैला)

—तितली, ३-७

—आर्थिक पराधीनता ही संसार में दुःख का कारण है । (बूढ़ा)

—(सालवती)

आर्य मञ्जुश्रीमूलकल्प—बौद्ध शून्यवाद से घबरा कर अनेक प्रकार की मंत्र-साधनाओं मे लग गए ।

—(रहस्यवाद, पृ० ३३)

आर्यमित्र—सघमित्र का पुत्र जो केवल सुजाता के लिए भिक्षु बना । सुजाता से इतना प्रेम है कि उस "भैरवी" को भी वह स्वीकार करने के लिए तैयार है ।

—(देवरथ)

आर्यावर्त—आर्यावर्त पर विपत्ति की प्रलय-मेघमाला घिर रही है । ...इसका कल्याण स्कन्दगुप्त द्वारा ही संभव है । (बन्धुवर्मा) —स्कन्दगुप्त, २

दे० भारत ।

आलमगीर —(शिल्पसौन्दर्य)

[आलमगीर द्वितीय, मुगल सम्राट्, समय १७५४–५९ ई० ।]

आल्हा—दे० रासो।

आवश्यकता—आवश्यकता ही संसार के व्यवहारों की दलाल है। (विजया)

—स्कन्दगुप्त, ५-१

आवाहन—दे० वसन्त-विनोद।

आशा—दे० कामायनी[1] (कथा)।

आशा मानव मन की विधायक वृत्ति है। इससे आस्था का उदय होता है, सृजन को गति मिलती है, जीवन के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है।

'यह कितनी स्पृहणीय बन गई
मधुर जागरण-सी छविमान।'

—कामायनी, आशा, पृ० २७

आशा-निराशा—दे० आशालता।

—झरना

—आशा तरुवर दूर दिखाई देता था—जिसकी छाया
देती थी सन्तोष हृदय को
उस मरुभूमि-निराशा में।

—प्रेमपथिक, पृ० १५

आशालता—छः छः पंक्तियों के ५ पद। तुम्हारी करुणा से मुझ दीन की स्नेह-लता बढ़ चली। नित्य मैंने उसे सींचा। अंकुर भी निकले। मधुपों को बुलवाया कि प्राण निछावर करते; पर एक दिन तुम्हारी करुणा ऊब गई। इस आशालता को 'सीचकर क्या फल पाया', फल की तो बात ही क्या 'फूल' भी हाथ न आया। **—झरना**

आशावाद—जीवन-वन मे उजियाली है, इत्यादि। **—एक घूंट**

—अत्याचार के श्मशान में ही मंगल का, शिव का, सत्य सुन्दर संगीत का समारम्भ होता है। (जयमाला)

—स्कन्दगुप्त, १-७

आशा विकल हुई है मेरी—गीत। सुरमा प्रेम की तृप्ति के लिए अधीर हो रही है।

'ध्वनि सुन न पड़ी नवघन की रे।'
'सिसक रही घायल दुःखियारी।'
'प्यास बुझी न कभी मन की रे।'

इसमें उसने अपने बीते निराशामय जीवन का चित्र देवगुप्त के सामने रखा है। **—राज्यश्री, १-३**

आसफुद्दौला—शराबी ने ठाकुर साहब को गड़रिये वाली कहानी सुनाई थी जिसमें आसफुद्दौला ने उसकी लड़की का आंचल भुने हुए भुट्टे के दानों के बदले मोतियों से भर दिया था। —(**मधुआ**)

[लखनऊ का नवाब, समय १८वीं शती का अंतिम चरण।]

आँसू[1]—यह प्रसादजी की अत्यंत प्रौढ़ कृति है; बड़ा सुन्दर विरह-काव्य है। आंसू, प्रथम संस्करण (चिरगांव, झांसी, १९२५) में २५२ पंक्तियां थी, अब उसमें ३८० पंक्तियां है। प्रथम संस्करण में केवल व्यक्तिगत वेदना थी, द्वितीय संस्करण के उपसंहार में यह वेदना जगत् की मंगल-कामना में परिणत हो गई। विप्रलम्भ श्रृंगार का यह स्मृति-काव्य अथवा उपालंभ-काव्य है। विषय वही है—प्रेम, सौन्दर्य, मिलन-वियोग, प्रकृति-सुषमा, दार्शनिक चिन्तन; पर 'आंसू' की विशेषता है उसकी शैली।

हृदय में करुण-रागिनी बज रही है। परन्तु कभी-कभी पिछले सुख के दिनों की मधुर-स्मृति आ जाती है। इस बीते हुए सुख के लिए क्रन्दन व्यर्थ है। यह

आकाश-गंगा मेरे दुःख की तरह असीम है। यह उषा मेरे दुःख में रोती है और संध्या मेरे स्वर्ण-मुखों पर ढकती आती है निराशा की अलकें। हृदय में आग जलती है। आंसू इसे और उत्तेजित कर देते हैं। बेकार सांसों का बोझ ढो रहा हूँ। सुख-स्मृतियां इतनी अधिक हैं, जितने आकाश के तारे। चातक और श्यामा की करुण पुकार में मेरे दुःख का अंशमात्र ही प्रकाशित हुआ है। वे जो सुख में विभोर हैं, भला मेरी दुःख-गाथा सुनेंगे ? हमारी संध्या धुंधली बनी रहती है। इस आंधी, बिजली और घन-गर्जना में मेरी सोई हुई व्यथा जाग उठती है। उनकी स्मृति कितनी मादक, कितनी मोहमयी थी। क्षण-भर मन अवश्य बहल जाता था ; परन्तु हृदय फिर सूना हो जाता है। मेरा हृदय नवनीत था, जो अब जल गया। किंजल्क बिखर गया, पराग सूख गया। उनकी कृपा की हिलोर क्षण-भर मुझे छूकर कहां चली गई। मैं तो उस शिरीष कुसुम-सा हो गया, जो वसन्त-रजनी के पिछले पहर में खिले और प्रभात होते ही धूल में मिल जाए। एक समय था, जब असीम आकाश में इन्द्रधनुष की लहरें थीं---तारे हँसते थे। अब है नीचे धरती, जो दुःख का भार ढोती है और रो-रोकर करुणा के समुद्र को भरती है। अब प्रभात में उषा की लाली प्रिय के मिलन का संदेश नहीं लाती, लाती है पीलापन (वेदना)। शून्य दृष्टि से ताकता रहता हूँ तुम्हारा पथ रात-भर। प्रातः होते सो जाता हूँ थका हुआ। तब जब हम मिले थे, यह संभाव्य वियोग की बात क्या हम जानते थे ? तब तुम शशिमुख को घूंघट में छिपाए मेरे हृदय में सहसा आए थे। अब तुम्हारी वह मूर्ति अभिलाषा बन गई है। सौन्दर्य की अपार राशि थीं तुम। तुम्हारी रूप-माधुरी. . . वह छलना थी। मैं सच समझ रहा था। कैसे थे वे दिन मिलन के ! हमारा तुम्हारा मिलन, जैसे चन्द्रमा और समुद्र का हो। कहां आकाश-चारी किरणें, कहां पृथ्वी पर समुद्र ; परन्तु किरणें ऊपर से आ लहरों के गले लग जाती हैं। अब यह समुद्र फेनिल है, आग उगल रहा है। कौन-सा बाडव इसके तल में जल रहा है ? अरे नहीं, समुद्र तो सूख गया। मेरे मन की नौका सूखी सिकता में पड़ी रह गई। मेरे नाविक ! तुम्हारी मुख-छवि का आकर्षण उस तट की ओर खींच लेगा। तुम जैसे मेरे हृदय के चन्द्रमा हो। तुम्हारी शीतल किरणें-भर पाता हूँ ; परन्तु अंगारे चुगता हूँ चकोर की तरह। देखी यह सौन्दर्य-प्रेम की माया। अनन्त आकाश के समान मेरे हृदय में चंचल बिजली की तरह आकर अब चले गए। रह गई इन्द्रधनुष की झांई भर। तुम्हारे रहते मैं मृत्यु को भी सुख मान लेता। तुम्हारे रहते मृत्यु नहीं आई, इसका दुःख है। तुम्हारी अलकों के सौन्दर्य में मेरा जीवन फँस गया। जब मैं बेसुध, असतर्क, अपलक था, तब तुमने मेरी

जीवन-मदिरा पी ली और खाली पात्र को लुढ़का दिया। मत समझो कि कलियों के जीवन की सार्थकता यही है कि जब मकरन्द से भर जायें, तो बेमन कोई तोड़ ले। तुमने मुझे धूल में बिखेर दिया। अब क्या लौटा जा सकता है उस पार? लौटने का सहारा भी अब कहां? लौटने के पथ में चरण-चिह्न भी तो नहीं रहे। सब विस्मृत हो गया। जीवन का सुख नष्ट हो गया। अब विश्राम कहीं नहीं। है तो केवल अच्छ्वास और आंसू। अब विश्राम है रो-रोकर सो जाने में। यही मानव-जीवन है। यहां तो विरह-मिलन का परिणय चलता है। सुख-दुःख दोनों हैं। समय आयगा, जब दुःख का अन्त होगा। विस्मृति पर कल्याण की वर्षा होगी, जीवन में शान्ति आ जायगी।

विशेषताएँ—

(१) प्रसाद की वेदना का विशद और निश्छल वर्णन।

(२) आंसू का आलम्बन लौकिक भी हो सकता है, अलौकिक भी। इसमें मानवीय रूपों का वर्णन भी है और आध्यात्मिक संकेत भी।

(३) विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता। संयोग-सुख तो स्मृति-मात्र रह गया है।

(४) गीतिकाव्य।

(५) इसमें व्यक्तिगत वेदना ही नहीं, युग-युग की वेदना अंकित है।

(६) प्रसाद का अतीत-प्रेम।

(७) नियतिवाद।

(८) अंग्रेजी, बंगला और उर्दू का प्रभाव।

(९) दुःखवाद।

'आनन्द छन्द'—इसमें २८ मात्राएँ हैं और १४-१४ पर विराम है।

—नमूने के गीत दे० अनुक्रमणिका से।

आँसू[२]

करुणा बन दुखिया वसुधा पर
शीतलता फैलाता बह जा।

—ध्रुवस्वामिनी, १

दे० मकरन्दविन्दु।

आस्तिकता—सुख और सम्पत्ति में क्या ईश्वर का विश्वास अधिक होने लगता है? क्या मनुष्य ईश्वर को पहचान लेता है? उसकी व्यापक सत्ता को मलिन वेश में देखकर दुरदुराता नहीं, ठुकराता नहीं! (देवनिवास) —(**नीरा**)

—वर्तमान जनता में ईश्वर के प्रति अविश्वास का भाव बढ़ता जा रहा है, और इसीलिए वह दुःखी है।—(**नीरा**)

आस्तीक—मनसा और जरत्कारु का पुत्र, मणिमाला की बुआ का लड़का। शान्त, स्निग्ध, विवेकपूर्ण, दार्शनिक, शीलवान। नागों की हिंसक वृत्ति रोकने के कारण माता उसे त्याज्य पुत्र मानकर छोड़ देती है। शीलवश अपनी माता की आज्ञा न मानने का अपराध अपने सिर लिए रहता है। वह नागों और आर्यों के बीच संधि कराने का भरसक प्रयत्न करता है। जनमेजय उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हो प्रतिहिंसा से विरत होता है। उसके उद्योग से नागयज्ञ समाप्त होता है। "धन्य है क्षमाशील ब्रह्मवीर्य! ऋषिकुमार!" (बादरायण)। वह

कर्मवीर है। उसका आत्मविश्वास सत्कर्म के कारण दृढ़ है।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ

आह रे वह अधीर यौवन—गीत। वह मत्त आवेग, वह उभार, वह भावनाओं की निस्सीमता, वह बुद्धि-चापल्य, वह प्रेम और स्वातंत्र्य का विलास और मधुर जीवन का वह विकास! यह वह अभिलाषा भरा यौवन है जिसमें अतीत, वर्तमान और भविष्य सब सुन्दर दिखाई देता है। यौवन में पहले वासना होती है—चुम्बन, दर्शन और आलिंगन की वेदना रहती है। जब वासना हट जाती है, तब सच्चे प्रेम का विकास होता है और एक नए जीवन का अनुभव होता है।

—लहर

आह, वेदना मिली विदाई!—देवसेना का अन्तिम गीत। मैंने भ्रमवश प्रेम लुटाया, मेरी यात्रा नीरवता में चलती रही। 'श्रमित स्वप्न की मधुमाया में' किसी ने 'यह विहाग की तान सुनाई।' मेरी आशा ने सकल कमाई खो दी है। मैंने बेकार ही प्रलय से होड़ लगाई। आज जीवन के भावी सुख, आशा और आकांक्षा —सब से विदा लेती हूँ। (देवसेना)।

निराशा-जनित जीवन की करुण यात्रा का यह मार्मिक वर्णन है।

—स्कन्दगुप्त, ५

इ

इक्ष्वाकु—

भारतभूमि धन्य तुम, अनुपम खान।
भए जहां, बहु रतन, अतुल महान॥
भए नृपति जहं इक्ष्वाकु बलवान।
जहां प्रियव्रत जन में, विदित जहान॥
भए नृपति-सिरमौर जहा दुश्यन्त।
जन्म लियो जहं भरत, सुकीर्ति अनंत॥
जम्बुद्वीपहि बांट्यो, करि नवखंड।
निज नाम ते बसायो भारतखण्ड॥
जिनके प्रत्यञ्चा की सुनि झनकार।
अरिशिर मुकुटमणिन की, सहै न भार॥
भए भीष्म रण-भीष्म, हरण अरिदर्प।
जामदग्नि ते रच्यो, समर करि दर्प॥

—प्रेमराज्य

[वैवस्वत मनु का पुत्र इक्ष्वाकु सूर्य्यवंश का पहला राजा था।]

इङ्गलैंड—इंगलैण्ड में ही शैला ने इन्द्रदेव से अच्छी हिन्दी सीख ली थी।

—तितली, १-२

इन्द्रदेव ने मां को शैला का परिचय देते हुए कहा कि इंगलैण्ड मे यह मेरा सब प्रबन्ध करती थी। —तितली, १-५

नील का काम बन्द हो गया, तो जैक और जेन इंगलैण्ड चले गए।

—तितली, १-७

इड़ा—इड़ा सारस्वत प्रदेश की रानी है। जिसका झुकाव भौतिकवाद की ओर है। जगत् की अपूर्णता पर उसे क्षोभ है, और जगत्स्रष्टा के प्रति सन्देह और उपेक्षा। उसका विश्वास प्रत्यक्ष में है —बुद्धि और विज्ञान में। वह बुद्धिवाद की प्रतीक है। इस रूप में, उसमें चञ्चल-

ता और संघर्ष है। रानी के रूप में वह प्रजा के साथ है। नीति, कर्त्तव्यपरायणता, व्यवस्था-शक्ति आदि गुणों का समावेश उसके चरित्र में दिखाया गया है। नारी के रूप में वह मनु से प्रेम करती है, पर मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहती। वह सहनशील है और मनु के अपराधों को क्षमा कर देती है। उसे ग्लानि भी होती है। मनुज कुमार को पाकर वह संतुलित जीवन प्राप्त करती है और अन्त में धर्म का आश्रय लेकर आनन्दधाम में पहुंच जाती है।

देऽ ऋग्वेद। —**कामायनी**

इतिहास—प्रागैतिहासिक — चित्रमंदिर
—कामायनी

वैदिक-काल—करुणालय

रामायण-महाभारत (पौराणिक) काल—
—सज्जन (नाटक)
—जनमेजय का नाग-यज्ञ
—ब्रह्मर्षि (कथा)
—पंचायत (कथा)
—चित्रकूट (कविता)
—श्रीकृष्ण-जयंती (कविता)
—कुरुक्षेत्र (कविता)

बौद्धकाल —पुरस्कार
—सालवती
—व्रतभंग
—अजातशत्रु

मौर्य्य-काल —सिकंदर की शपथ
—अशोक
—खण्डहर की लिपि
—चक्रवर्ती का स्तंभ
—आकाशदीप
—कल्याणी-परिणय (नाटक)
—चन्द्रगुप्त मौर्य्य (नाटक)
—अशोक की चिंता (कविता)

मौर्य्यों के बाद—इरावती (उपन्यास)
—विशाख

गुप्त-काल —स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य (नाटक)
—ध्रुवस्वामिनी (नाटक)

वर्धन-काल —राज्यश्री

राजपूत-काल—चित्तौड़-उद्धार
—स्वर्ग के खंडहर में
—दासी
—देवरथ
—प्रायश्चित (नाटक)
—पेशोला की प्रतिध्वनि (कविता)
—प्रलय की छाया (कविता)

मुगल-काल —तानसेन
—गुलाम
—जहांनारा
—ममता
—नूरी
—महाराणा का महत्त्व

अंग्रेजी-काल—शरणागत
—गुंडा
—विराम-चिह्न
—तितली (उपन्यास)
—राजराजेश्वर (कविता)
—शोकोच्छ्वास (कविता)
—शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण (कविता)

इन्दु—'इंदु' एक मासिक पत्रिका के रूप में प्रसादजी की प्रेरणा से उन्हीं के भांजे बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त द्वारा श्रावण सुदी २, संवत् १९६६ में प्रकाशित हुई थी। प्रकाशन-तिथि 'इन्दु' नाम के अनुकूल चुनी गई थी। पत्रिका के निम्न-लिखित अंक प्रकाशित हुए—

श्रावण '६६ से आषाढ़ '६७ तक १२ अंक (कला १, किरण १-१२)

श्रावण '६७ से माघ '६७ तक ७ अंक (कला २, किरण १–७)

फाल्गुन '६७ से ज्येष्ठ '६८ तक का संयुक्तांक (कला २, किरण ८–११)

आषाढ़ '६८ का एक अंक (कला २, किरण १२)

श्रावण-भाद्रपद '६८, बंद रही

आश्विन, कार्तिक '६८ के दो अंक (कला ३, किरण १–२)

फरवरी '१२ से नवम्बर '१२ तक १० अंक (कला ३, किरण ३–१२)

जनवरी '१३ से अगस्त '१५ तक ३२ अंक (कला ४,५,६)

एक वर्ष बन्द।

सितम्बर '१६ का एक अंक (कला ६, किरण ३)

अक्टूबर-नवम्बर '१६ का संयुक्तांक (कला ६, किरण ४–५)

दिसम्बर '१६ से दिसम्बर '१७ तक अप्राप्त

जनवरी '१८ से दिसम्बर '२६ तक बंद

जनवरी '२७ से मई '२७ के ५ अंक (कला ८, किरण १–५)

'इन्दु' प्रसाद-साहित्य के अध्ययन का एक आवश्यक अंग है, क्योंकि प्रसाद की सभी प्रारम्भिक रचनाएं—काव्य, निबन्ध, कहानी, चम्पू, लघु-नाटक, नाट्यगीत आदि—'इंदु' में प्रकाशित हुई हैं।

ऐसी रचनाओं के संदर्भ में प्रस्तुत कोश में 'इन्दु' का संकेत कर दिया गया है। दे० अनुक्रमणिका।

इन्दो—असन्तुष्ट, कर्कश और संशयशील पत्नी। —(**भीख में**)

इन्द्र[१] —**उर्वशी चम्पू**

इन्द्र[२]—रोहि० की उक्ति

अरे! कौन! यह? छाया-सी है इंद्र की कायरता का अंग, प्रतिमा पुरुषार्थ की।

—**करुणालय**

इन्द्र[३]—सारस्वत प्रदेश में इन्द्र ने वृत्र का वध किया था। उसकी विजय-कथा की स्मृति से मनु को दुःख हुआ, क्योंकि आज वह सूना-सूना था।

—**कामायनी, इड़ा पृ० १६०**

इन्द्र[४]— —**बभ्रुवाहन**

इन्द्र[५]—इन्द्र ने त्रिशंकु को स्वर्ग में नहीं आने दिया। बाद में वे विश्वामित्र पर प्रसन्न हुए। —**ब्रह्मर्षि**

इन्द्र[६]—वैदिक-काल में आत्मवाद के प्रतिनिधि। —(**रहस्यवाद, पृ० २२**)

जैसे वैदिक-काल के इन्द्र ने वरुण को हटाकर अपनी सत्ता स्थापित की, इसी तरह इन्द्र का प्रत्याख्यान करके कृष्ण की प्रतिष्ठा हुई।

—(**रहस्यवाद, पृ० २२**)

दे० ऋग्वेद भी।

इन्द्र[७]——सोमरसिक आत्मवादी इन्द्र के सोमयाग में छोटे-से अभिनय का उल्लेख है। —(**नाटकों का आरंभ, पृ० ५७**)

अभिनय के अन्त में आनन्द और उल्लास के प्रतीक इन्द्र का आवाहन किया जाता है। —(**वही, पृ० ५८**)

इन्द्र[८]——इन्द्र की पूजा बंद करके इन्द्र के आत्म-वाद को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न श्रीकृष्ण ने किया।

दे० परिशिष्ट भी।

—(**आरंभिक पाठ्यकाव्य, पृ० ८२**)

[इन्द्र को देवराज, सुरपति, पुरन्दर, सुरेन्द्र, वज्री, वृत्रहा, पर्वतारि आदि कहा गया है। ऋग्वेद का कम-से-कम चतुर्थांश इन्द्र की स्तुति से भरा है। ये आकाश, पृथ्वी, जल, पर्वत सबों के शासक हैं। जहां बहुत आनन्द विलास हो, स्वर्ग का-सा दृश्य हो, ऐसी सभा को इन्द्रसभा, इन्द्र का अखाड़ा कहते हैं। इन्द्रसभा की अप्सराएं पौराणिक साहित्य में नृत्य और गान तथा रूप-सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध हैं।]

इन्द्रजाल[१]—प्रसाद का पांचवां और अन्तिम कहानी-संग्रह ; प्रथम संस्करण १९३६, भारती-भण्डार, इलाहाबाद। इसमें १४ कहानियां हैं, जिनमें प्रथम कहानी का शीर्षक भी 'इन्द्रजाल' है। शेष १३ कहानियां हैं—सलीम, छोटा जादूगर, नूरी, परिवर्तन, सन्देह, भीख में, चित्रवाले पत्थर, चित्रमंदिर, गुण्डा, देवरथ, अनबोला, विराम-चिह्न तथा सालवती। सर्वोत्कृष्ट कहानी 'गुंडा' है। दीन-दुःखी जीवन का उसमें मार्मिक चित्रण हुआ है। 'इन्द्रजाल', 'चित्रवाले पत्थर' और 'सन्देह' प्रेम-कहानियां हैं। 'चित्रमंदिर' प्रागैतिहासिक है। 'सालवती' और 'देवरथ' में बौद्धधर्म के पतन का दृश्य है। 'सलीम' में हिंदू-मुसलिम ऐक्य की झांकी है। कहानी-संग्रहों में सबसे कम सैद्धांतिक उक्तियां 'इन्द्रजाल' में हैं। वर्णन और घटना-संगठन, कथोपकथन सुन्दर है।

इन्द्रजाल[२]——रसात्मक रोचक प्रेमकथा। मैकू कंजड़ों के दल का सरदार था। उसके दल में एक युवती (बेला) और उसका प्रेमी (गोली) भी रहते थे। भूरे गोली का प्रतिद्वन्द्वी था। मैकू सरदार ने बेला को भूरे से ब्याह करने की आज्ञा दी, परन्तु जब गांव के ठाकुर के मन की कुछ थाह मैकू को मिली, तो उसने बेला को एक हजार रुपए लेकर ठाकुर को दे दिया। कई साल बाद एक नट ठाकुर के यहां आया। इन्द्रजाल करते-करते वह ठाकुर की आंखों में धूल झोंककर बेला को भवन से बाहर निकाल लाया और चलता बना। यह गोली ही तो था।

कहानी में जिप्सी-जीवन का सुन्दर वर्णन है। बेला का रेखा-चित्र बहुत सफलता-पूर्वक अंकित किया गया है। कथावस्तु आकर्षक, विकास स्वाभाविक, चरित्र-चित्रण अन्तर्द्वंद्वनिपूर्ण, और कथोपकथन सुन्दर है। **—इन्द्रजाल**

इन्द्रदेव—धामपुर के युवक जमींदार। विलायत से बैरिस्टर होकर देश लौटे ; पर

साथ में एक दरिद्र मेम (शैला) को भी ले आए। घर में विरोध हुआ। वे समाज-सुधार की सोचते थे, पारिवारिक जीवन की जटिलता में उलझकर रह गए। सुधार के स्वप्न देखते थे, घर के व्यथा-जनक वातावरण में पड़कर कुण्ठित और बेबस हो गए एवं उनमें दार्शनिक उदासीनता आ गई। —तितली

इन्द्र-धनुष—कविता। पहले इन्द्र-धनुष के सप्तवर्णों का चित्र है। इन्द्रधनुष क्या है—

पावस घनहिं विदारन हेतु
लियो जिहि दिनकर।
पश्चिम दिशि को गए
गगन में धनुष राखि कर ॥

किधौं सघन घन को कमान है ; संभवत: सूर्य के सात घोड़ों की वल्गा है अथवा मेघवाहन का धनुष। —(पराग)

इन्द्रप्रस्थ[१]—इन्द्रप्रस्थ के ह्रास के बाद बहुत दिनों तक कोई सम्राट् नहीं हुआ। उसके अनेक राष्ट्र हो गए। बौद्ध ग्रन्थो में १६ राष्ट्रो का उल्लेख है।

—अजातशत्रु, कथा-प्रसंग

इन्द्रप्रस्थ[२]—कृष्णशरण की कथा मे प्रसंग—पराभूत होकर कौरवो ने पाण्डवों को इन्द्रप्रस्थ दिया। —कंकाल, २-७

इन्द्रप्रस्थ[३]—जनमेजय की राजधानी।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ

[इतिहास में महाभारत-काल में ही इस नगर का महत्त्व रहा। दिल्ली के पास इसके खण्डहर मिलते है।

प्राचीन दिल्ली, जहां आजकल फीरोज-शाह कोटला है। कहते है लाल किला युद्धिष्ठिर का बनाया दुर्ग है, जिसे मुगलों ने फिर से बनवाया था।]

इन्द्रसभा—पारसी शेक्सपीरियन स्टेज का अनुकरण करते थे। इन्द्रसभा, चित्रा-बकावली, चन्द्रावली और हरिश्चन्द्र आदि अभिनय होते थे। —(रंगमंच, पृ० ७१)

इब्न अरबी—१२वीं शती के सूफी दार्शनिक, जिन्होंने काम को प्रमुख देवता कहा है—ईश्वर की अभिव्यक्ति का सब से बड़ा व्यापक रूप।

—(रहस्यवाद, पृ० २०)

इब्सन—नाटकीय यथार्थवाद का प्रभाव इन से। —(रंगमंच, पृ० ७२)

[नार्वेजियन नाटककार, जिन्हें नाटक-साहित्य में युगप्रवर्तक माना जाता है। इब्सन ने प्राचीन ऐतिहासिक कथाओं के स्थान पर वर्तमान जीवन के यथार्थ को, नित्यप्रति की समस्याओं को, उनके यथातथ्य रूप मे चित्रित किया। इस प्रकार इब्सन ने नाट्यविधान (रंगमंच, अभिनय आदि) विषय तथा आदर्श में स्वाभाविकता ला दी। भारत के प्राय: सभी नाटककारो ने इनके प्रभाव को ग्रहण किया।]

इरा = इरावती

इरावती[१]—'सालवती' कहानी की सामग्री का औपन्यासिक उपयोग। प्रसाद 'अग्निमित्र' नाम से एक नाटक लिख रहे थे। उसी की जगह यह उपन्यास लिखा गया है। प्रसादजी की अंतिम और अधूरी रचना—कुल १०८ पृष्ठ—अंतिम वाक्य भी अपूर्ण है। इसमें बौद्धों के

ह्रासोन्मुख चित्र और बौद्ध-ब्राह्मण-संघर्ष का यथातथ्य वर्णन है। बौद्धों के क्षणिकवाद और अनात्मवाद के घातक परिणाम को वे देख रहे थे। 'इरावती' की कथा का आधार ऐतिहासिक है। प्रायः सब पात्र, सब मुख्य घटनाएँ इतिहास-सिद्ध हैं।

उस दिन उज्जयिनी के महाकाल के मन्दिर में समारोह था। महाकाल का प्रदोष-पूजन भारत-विख्यात था। इस अवसर पर देवदासी इरावती का भावाभिनय और नृत्य हो रहा था। अपनी गठरी लेकर आया हुआ पथिक अग्निमित्र, मगध के महादंडनायक पुष्य-मित्र का पुत्र, मुग्ध होकर इरावती को देख रहा था। सहसा कुमारादित्य वृह-स्पति मित्र ने आज्ञा दी कि देवमंदिर के नाम पर विलासिता का प्रचार बंद करो। बौद्ध शासन की नीति के अनुसार इरावती को भिक्षुणी संघ-विहार में भेज दिया गया। मन्दिर का पुजारी क्रोध से तलमला रहा था। उसी समय वृहस्पतिमित्र को समाचार मिला कि सम्राट् शतधनुष का निधन हो गया है। उपासकों ने कहा—यह महाकाल का कोप है, नृत्य बन्द करने का फल है। वृहस्पति कुसुमपुर चला गया। एक दिन इरा रात्रि के तृतीय पहर में शिप्रा नदी के तट पर जा रही थी, देखा कि नाव खेता हुआ अग्निमित्र चला आ रहा है। इरा ने कहा—मैं तुम्हारे साथ चलना चाहती हूँ, ठहरो नाव रोको। तत्काल वृहस्पतिमित्र के भेजे हुए कुसुम-पुर के सैनिकों ने आ घेरा। उनसे बचने के लिए इरावती नदी में कूद पड़ी। अग्नि-मित्र ने उसे बचा लिया ; पर दोनों को बन्दी होकर कुसुमपुर जाना पड़ा। उन दिनों मगध पर युद्ध के बादल मंडरा रहे थे। इधर कलिंग के सम्राट् खारवेल की शक्ति बढ़ रही थी। उधर गांधार से यवनों के आक्रमण की आशंका थी। पुष्यमित्र की युक्ति से अग्निमित्र मुक्त होकर सेना का महानायक नियुक्त हुआ। इधर कालिन्दी के परिचय ने अग्निमित्र को नई उलझनों में डाल दिया। कालिंदी के रहते गंगाधर (शिव) मंदिर के पुजारी ने मृत्युशय्या पर अग्नि-मित्र को ताम्रपत्र द्वारा राजा नन्द की निधि की कुंजी दी। कालिन्दी नंदवंश की कन्या थी। शतधन्वा ने उसे पकड़ मंग-वाया था ; पर उसी दिन वह मर गया। उसे मौर्य्यों से घृणा थी। मौर्य्यों का नाश करने के लिए उसने एक गुप्त संस्था, स्वस्तिक दल, का संगठन किया। इस षड्यंत्र में उसे एक साहसी सहयोगी की आवश्यकता थी। उसने एक दिन अग्नि-मित्र के सम्मुख अपना प्रस्ताव रख दिया। पर, अग्निमित्र के हृदय में इरावती बसी थी। इरावती को कुक्कुटाराम के भिक्षुणी-विहार में भेज दिया गया था। बौद्धों के पाखण्डमय जीवन से विरक्त हो वह विहार से निकल पड़ी। कालिन्दी ने उसे अपने साथ रख लिया। उधर इरावती को खोजते हुए कुछ सैनिक मंदिर में आ घुसे। अग्निमित्र उनसे लड़ने लगा, लेकिन

इरावती ने रक्तपात रोक दिया। सैनिक उसे पकड़कर ले गए। वह सम्राट् की रंगशाला में पहुँचाई गई। एक दिन सम्राट् ने उससे प्रणय-याचना की; वह उसका आलिंगन करना चाहता था कि ठीक उसी समय कालिन्दी पहुँच गई और उसे बचा लाई। कामुक सम्राट कालिन्दी के उद्दीप्त सौन्दर्य के वशीभूत हो गया। कालिन्दी ने भी प्रेमनाट्य किया और मूर्ख सम्राट् उस अभिनय को वास्तविकता मान बैठा। उन दिनो मगध की दशा बिगड़ रही थी। विरोधी राज्यों के दूत चोरी-छिपे घूमते-फिरते थे। धनदत्त जवाहिरात का व्यापारी था, उसकी पत्नी मणिमाला कहीं भाग गई थी। वह बाद में आगई, लेकिन धनदत्त को उसके चरित्र पर सन्देह बना रहा। इरावती और कालिन्दी धनदत्त से कुछ रत्न और मुक्ता खरीदने आई। वहीं छद्म वेश में कलिंग-कुमार खारवेल भी जिनमूर्ति के लिए आभूषण खरीदने आ गया। धनदत्त ने इन सब को भोजन के लिए निमंत्रित किया। अग्निमित्र भी सेठ के निमंत्रण पर पहुँच गया। इरावती का नृत्य हुआ। कलिंगराज उसे अपनी एकावली देना चाहता था, लेकिन कालिंदी ने निषेध किया। अग्निमित्र ने खारवेल को सहायता देने का आश्वासन दिया। तभी स्वस्तिक दल के सैनिकों ने धनदत्त के घर को घेर लिया, और... .. (उपन्यास अधूरा रह गया)।

यह जिज्ञासा बनी रह जाती है कि मगध पर आई हुई विपत्ति की परिणति कहां हुई। लगता है कि उपन्यासकार मगध का पतन दिखाते, क्योंकि बृहस्पतिमित्र का चरित्र इसी दिशा में संकेत करता है। यह भी अनुमान किया गया है कि कालिन्दी और खारवेल के मिल जाने की सम्भावना है। अग्निमित्र अवश्य इरा को प्राप्त कर लेता। धनदत्त की कथा का तो अभी प्रारम्भ ही हुआ था।

उपन्यास में मौर्य्य-काल की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण है। मौर्य्य-साम्राज्य बाहरी आक्रमणों और भीतरी षड्यंत्रों से दुर्बल होकर पतनोन्मुख हो रहा था। पूर्व से कलिंग-नरेश खारवेल, पश्चिम से यवन, दक्षिण से आन्ध्र बढ़ते चले आ रहे थे। आन्तरिक विद्रोह प्रबल था। बौद्ध राजा (बृहस्पतिमित्र) भीरु और विलासी था।

किसी चरित्र का व्यक्तित्व पूर्ण रूप से निखरकर नहीं आ पाया है। सब स्त्री-चरित्र काल्पनिक हैं। ऐतिहासिक पात्रों की अपेक्षा इरावती, कालिंदी, मणिमाला आदि काल्पनिक पात्रों के चरित्र अच्छे बन पड़े हैं। नायिका का चरित्र-विकास समुचित नहीं है। उपन्यास का सन्देश है—नारी का अपमान धर्म, संस्कृति, मानवता के विनाश का कारण होता है। उद्देश्य आर्य-दर्शन की श्रेष्ठता सिद्ध करना जान पड़ता है। 'इरावती' में घटनाओं की विचित्रता, और नाटकीय रसमयता है। ऐतिहासिक वातावरण की

सृष्टि में यह कृति अत्यन्त सफल है। स्थानों और व्यक्तियों के नाम, धार्मिक और सांस्कृतिक शब्दावली तत्कालीन भारत को सामने लाने में सहायक हुई है। शैली के नमूने—

शारदीय पूर्णिमा थी। शिप्रा में छोटी-छोटी लहरें उठकर चांदनी की झालर बना रही थीं। नागरिकों की छोटी-छोटी नावें जल-विहार के लिए स्वच्छन्द घूम रही थी। उधर विहार के उपोसथागार में भिक्षु-संघ एकत्र था और उसी से सटे हुए चंक्रम पर भिक्षुणिया भी अपने विहार से आकर एकत्र हो रही थी। उपोसथागार में भिक्षु-संघ प्रवारणा कर रहा था। और बाहर चंक्रम पर भिक्षुणियों का छोटा-सा समूह प्रवारणा के लिए अपनी ओर से प्रतिनिधि भेजने का चुनाव कर रहा था। उत्पला भिक्षुणी चुनी गई। उसकी श्रामणेरी नीला बारह बरस की एक निराश्रया बालिका थी। नीला चंक्रम के एक कोने पर खड़ी पूर्ण चन्द्रोदय देख रही थी। उसने सहसा घूम कर कहा—

"भगिनी इरा! कैसी सुन्दर रात है!"

"मत कहो ऐसी बात श्रामणेरी नीला! यह भावना सुख में मन को फँसाने वाली है।"—पास ही बैठी हुई एक भिक्षुणी ने कहा। इरा ने जैसे अब सुना। कुछ प्रत्याख्यान करने की इच्छा से उसने पूछा—"क्या कहा?"

"रात्रि का सौन्दर्य काम-भोग के लिए मन को उत्तेजित कर सकता है भगिनी! उसका वर्णन वर्जित है।"—भिक्षुणी ने कहा।

"वाह! यह कौमुदी-महोत्सव! और इसकी प्रशंसा भी न की जाय! यह रात तो नाचने की है भगिनी! तुम लोग अपने दोषों की ही गिनती कर रही हो। नहीं! मैं निर्दोष! इसी चांदनी की तरह शुभ्र अपने जीवन की वन्दना करती हूँ। मैं उसकी अभ्यर्थना में नाचूंगी।"—इरा का कलापूर्ण हृदय उल्लसित हो रहा था। उसने नीली संघाटी का छोर फैलाया।

—इरावती, पृ० १६-१७

बाहरी ऊँचे स्तम्भों के सहारे भीषण भाले लिए हुए प्रहरी मूर्ति-से खड़े थे। सीढ़ियों पर धनुर्धरों की पंक्ति, फिर नीचे विशाल प्रांगण में अश्वारोहियों के कई झुंड थे, जिनके खुले हुए खड्ग से प्रभात के आलोक में तीव्र प्रभा झलक रही थी। आज साम्राज्य-परिषद् का विशेष आयोजन था। मण्डप के भीतरी स्तम्भों से टिके हुए प्रतिहार स्वर्ण-दण्ड लिए खड़े थे। धनुर्धरों की पंक्ति में से खुली हुई राह से साम्राज्य के कुमारामात्य, बलाधिकृत, दण्डनायक, व्यावहारिक, सेना के महानायक लोग धीरे-धीरे सीढ़ी से चढ़कर मण्डप-गर्भ में रक्खे हुए मंचों पर बैठ रहे थे। सबके मुख पर आतंक और व्याकुलता थी। स्वर्ण-जटित द्वार के समीप

साम्राज्य का ऊँचा सिंहासन अभी खाली था। —इरावती, पृ० २४

इरावती[२]—महाकाल मंदिर की देवदासी। सम्राट् वृहस्पतिमित्र की कुदृष्टि का शिकार। पहले बौद्ध-संघ में भेजी जाती है, बाद में महाराज की रंगशाला में बन्दी होती है। वृहस्पतिमित्र उस पर बलात्कार करना चाहता था; किन्तु कालिन्दी के आगमन से उसकी रक्षा हुई। अग्निमित्र से उसे प्रेम है।—

"मैं जीवन-रागिनी में वर्जित स्वर हूँ।"

इरावती में प्रणय-भावना की अधिकता है। —इरावती

इरावती[३]—राजा तिलक की बहन, बलराज की प्रेमिका, जो काशी के धनदत्त की क्रीत दासी हुई। म्लेच्छों ने उसे मुलतान की लूट में पकड़ लिया। कन्नौज के चतुष्पथ पर वह बिकी ५०० दिरम पर। सैकड़ों यातनाएँ झेली, पर दृढ़ता से विचलित नहीं हुई। —(दासी)

इरावती[४]—चन्द्रलेखा की बहन जो चन्द्रलेखा के सुख में सुखी और उसके दुःख में दुःखी होती है। —विशाख

इला—सन्तान की कामना से मनु ने वशिष्ठ की आज्ञानुसार यज्ञ किया। प्रथमतः कन्या हुई, जिसका इला नाम पड़ा। मनु की प्रार्थना पर वशिष्ठ ने शंकर की तपस्या की और इला को सुद्युम्न (लड़की के लड़का) हो जाने का वरदान दिया। सुद्युम्न मृगया खेलते-खेलते गन्धमादन की तराई में जा निकला जो कि भगवान् शंकर और जगज्जननी पार्वती की विहार-भूमि थी। शापवश सुद्युम्न पुनः इला हो गया। भगवान् बुद्ध उस पर मुग्ध हो गए और उनके वीर्य से पुरुरवा उत्पन्न हुए। इला ने त्रिवेणी पर वास किया। उसी के नाम से इलावास (अपभ्रष्ट रूप इलाहाबाद) है। —उर्वशी-चम्पू, कथामुख

इलावास—दे० इला। —उर्वशी चम्पू, कथामुख

इस्टाकर—(लेफ्टिनेंट) राजा चेतसिंह को पहरे में रखने वाला अंग्रेज अफसर। राजा चेतसिंह को पकड़कर कलकत्ते भेजने और उनके आदमियों पर गोली चलाने आया था, नन्हकू के हाथों मारा गया। —(गुण्डा)

ई

ईर्ष्या—दे० कामायनी। ईर्ष्या अभाव और हीनता के कारण होती है, और इसका परिणाम है अनुदारता, असहिष्णुता, दुःख।

ईश—(विश्वव्यापी)—तुम! —झरना

दे० ईश्वर।

ईशप्राप्ति—वैभव की जितनी कड़ियां टूटती है, उतना ही मनुष्य बन्धनों से छूटता है और तुम्हारी (ईश्वर की) ओर अग्रसर होता है। (स्कन्दगुप्त) —स्कन्दगुप्त, ४-७

ईशस्तुति—कानन-कुसुम में 'प्रभो!'
" " " 'वन्दना'
" " " 'नमस्कार'
ईश-प्रतिमा (मूर्तिपूजा) " 'मन्दिर'
ईश-विनय कानन-कुसुम में
'करुण-क्रन्दन'
" " " 'विनय'
" " " 'याचना'
दे० पतित पावन।
ईश-स्तुति कानन कुसुम में
'मकरंद-विन्दु'
ईश-विनय " " "
ईश-स्तुति राज्यश्री, पृ० ६३
" (वैराग्य) " पृ० ६८
विनय मकरन्द विन्दु, चित्राधार पृ० १७८
दीनबन्धु " " " पृ० १७९
विनय " " " पृ० १८२
पतित-पावन " " " पृ० १८५
तेरी शरण " " " पृ० १८५
सर्वव्यापी " " " पृ० १८६
सगुण " " " पृ० १८६
हमारी गुहार " " " पृ० १८७
ईश-प्रेम " " " पृ० १८८
रे मन! " " " पृ० १८९
हे प्रियतम " " " पृ० १९०

याद रहे कि प्रसाद पूरे आस्तिक और कट्टर ईश-भक्त थे।

ईश्वर—ईश्वर है, और वह सब के कर्म देखता है। अच्छे कार्यों का पारितोषिक और अपराधों का दण्ड देता है। वह न्याय करता है; अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा। (विलास) **—कामना, १-५**

—नरक के असंख्य दुर्दान्त प्रेत और क्रूर पिशाचों का त्रास और उनकी ज्वाला दयामय की कृपादृष्टि के एक विन्दु से शान्त होती है। (देवकी)

—स्कन्दगुप्त, २-४

—सोने का खिलौना तो उचक्के भी छीनते हैं, पर चीथड़ों पर भगवान् ही दया करते हैं। **—(गूदड़ साईं)**

ईश्वर-भक्ति **चित्राधार, पृ० १२६**
ईश-महिमा—विनय, पराग, चित्राधार
पृ० १५३
उपालम्भ—मकरन्द विन्दु, वही पृ० १७८
दे० शिव
दे० ईश-स्तुति

ईसा[१]—बाथम के पास ईसा और मरियम के चित्र हैं। पादरी जान ईसा की शिक्षा का मथुरा में प्रचार करते हैं।

—कंकाल, खण्ड २

पगली (तारा) मोहन में ईसा की सरलता की पूजा करती थी।

—कंकाल, ४-१

ईसा[२]—ईसा के जीवन में और उनकी मृत्यु में भारतीय संदेश की क्षीण प्रतिध्वनि है। **—तितली, २-६**

[ईसा का जन्म यहूदियों में हुआ, नए सिद्धान्तों का प्रचार करने के कारण यहूदियों ने उन्हें सूली पर चढ़ा दिया। मूलतः वे एशिया के थे, चाहे ईसाई धर्म का सब से अधिक प्रचार यूरोप में है।]

ईस्टर—दे० बाल।

उ

उग्रसेन—पाण्डवकुल के महावीर; जनमेजय के मेधाश्व के रक्षक।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-२

[जनमेजय के छोटे भाई]

उज्जैन[1]—दे० अवन्ती. उज्जयिनी।

—अजातशत्रु

उज्जैन[2]—दे० नर्मदा। **—तितली १-७**

उज्जयिनी[1]—महाकाल का गोपुर यहां था। उपन्यास की प्रारम्भिक घटनाएँ इसी स्थल की हैं। **—इरावती, १**

उज्जयिनी[2]—दे० काव्यमीमांसा।

उज्जयिनी[3]—अवन्ती (मालवा) की राजधानी, जहां के राजा बन्धुवर्मा की सहायता के लिए स्कंद गए थे।

—स्कन्दगुप्त, १

[महाभारत काल मे बराबर इस नगरी का महत्त्व रहा है। शिव के महाकाल मन्दिर का उल्लेख 'मेघदूत' में भी मिलता है।]

उज्ज्वलनीलमणि—इसमें विरहोन्मुख भक्ति और शृंगार-रस (मधुर) को महत्त्व दिया गया है। **—(रस, पृ० ४७)**

परकीया-प्रेम ही शृंगार का उत्कर्ष है। **—(रस, पृ० ४८)**

रस की व्याख्या प्रेममूलक रहस्य के रूप में हुई और यह रहस्य गोप्य भी माना गया। (टीका में)

—(रस, पृ० ४८-४९)

[रूपगोस्वामीकृत रसग्रन्थ]

उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर—गीत। आनन्दमय अन्तर्जगत् का किनारा दुःखमय बाह्य जगत् है। मानस में सुखमय लघु-लघु लोल लहर आती तो है, परन्तु इसमे सिकता की रेखाएँ और उभर आती है। दुःख तीव्र रूप में लगता है। इसलिए कवि लहर से कहता है—

तुम तो सिकता में भी अपनी तरल सिहर भर देती हो, फिर, मेरे इस सूखे तट को क्यों न छू दो, जीवन के इस सूनेपन को क्यों न भर दो। **—लहर**

उठती है लहर हरी-हरी—मुक्तवा नाग गाता हुआ आता है। जीवन-नदी में लहरें उठ रही है, पतवार पुरानी है, पवन जोर का है, काली रात है, सब सुनसान है, और बेडा नदी के बीच मे पडा है। ऐसे में भी कहीं से आशा की झलक दिखाई देती है।

—विशाख, १-१

उत्तङ्क—वेद का शिष्य, चरित्रवान्, संयमी, गुरुभक्त, विनम्र, दृढप्रतिज्ञ, साधु और कर्तव्यशील ब्रह्मचारी। "तुम्हारे शील ने विद्या को और भी अलंकृत कर दिया है" (वेद)। गुरुपत्नी के लिए कुण्डल लाने मे उसने निर्भीकता और व्यावहारिकता का परिचय दिया। नागयज्ञ के विधान में वह कठोरता से लगा रहता है, क्योंकि वह समझता है कि नागों के दमन मे ही समाज का मंगल सम्भव है। वह तक्षक के सामने निर्भीक ब्रह्मचारी की भांति ललकारता है और उसकी छुरी से नहीं डरता। जब दामिनी

उसे समझाती है कि नागयज्ञ शाश्वत मानवता की दृष्टि से श्लाघ्य नहीं है, तो वह उस क्रूर हिंसापूर्ण कार्य से विरत हो जाता है। राजा और रानी को निरन्तर उत्साहित करता रहता है।

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ**

[महाभारत में इस मनोनिग्रही ब्रह्मचारी की अनेक कथाएँ है।]

उत्तर—दे० विनोद-बिन्दु।

उत्तराधिकार—(कोई भी) बोझ, जहां तक शीघ्र हो, यदि एक अधिकारी व्यक्ति को सौंप दिया जाय, तो मानव को प्रसन्न ही होना चाहिए। (गौतम)

—**अजातशत्रु, १-२**

उत्पल—माहेश्वराचार्य अभिनवगुप्त के गुरु—'भक्तिलक्ष्मी समृद्धानां किमन्य-दुपयाचितम्।' —(**रहस्यवाद, पृ० २८**)

—चेतना जब आत्मा में विश्रांति पा जाय, तभी रसानुभूति होती है।

—(**रस, पृ० ४६**)

[ज्योतिषाचार्य, समय १० वीं शती पूर्वार्ध]

उत्पला—प्रवारणा के लिए प्रतिनिधि रूप मे चुनी गई भिक्षुणी।

—**इरावती, पृ० १७**

उतारोगे अब कब भू-भार—मातृगुप्त और मुद्गल का गान। संसार दुःख का पारावार है, प्रलय मची है। मानवता में राक्षसत्व भर गया है। हे भगवन्! क्या यह हा-हाकार तुम्हारे कानों तक नही पहुँचता। कब अवतार लोगे?

—**स्कन्दगुप्त, १**

उदयन—कौशाम्बी का राजा, मगध-सम्राट् का जामाता। 'कथासरित्सागर' में वत्सराज उदयन की विस्तृत कथा मिलती है। संस्कृत के 'स्वप्नवासवदत्ता', 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' और 'रत्नावली' नाटकों में इसका वर्णन है। 'अजातशत्रु' की भूमिका में प्रसाद ने इसका परिचय विस्तार से ४½ पृष्ठों में दिया है। अजातशत्रु नाटक में दो दृश्यों में इसे लाया गया है (१-५ तथा १-९)। एक में वह संगीत-प्रेमी, कामी, रसिक और विवेक-शून्य मद्यप के रूप में दिखाया गया है जब कि मागन्वी के षड्यंत्र का पुरजा बन कर वह पद्मावती के तथा-कथित पाखण्डपूर्ण आचरण का प्रतिशोध लेने को तैयार हो जाता है। दूसरे में वह पद्मावती को मारने के लिए तलवार उठाता है; पर हाथ उठा ही रह जाता है। वासवदत्ता कहती है कि "यह सती का तेज है,...हृदयहीन मद्यप का प्रलाप नहीं।" वह घुटने टेक कर पद्मावती से क्षमा मांगता है।

—**अजातशत्रु**

—'कथासरित्सागर' के अतिरिक्त अनेक संस्कृत नाटकों—स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, रत्नावली आदि में वर्णित वत्सराज। इसने वैवाहिक नीति के बल से मगध, अवंती तथा अंग राज्यों से सम्बन्ध स्थापित किया था। हर्षचरित, मेघदूत, बौद्ध-साहित्य में भी इसका उल्लेख है। इसके जीवन-काल में बुद्ध कौशाम्बी में पधारे थे और

घोषिताराम में ठहरे थे। बौद्धों के यहां इसके पिता का नाम 'परंतप' मिलता है। 'कथासरित्सागर' में इसके जन्म की रोचक कथा वर्णित है। वररुचि ने इसे अर्जुन की मानवी पीढ़ी में शतानीक का पुत्र माना है; पर यह सिद्ध नहीं होता। **—अजातशत्रु, कथाप्रसंग**

उदासीनता—दूसरों की ओर से उदासीन हो जाना ही शत्रुता की पराकाष्ठा है। (गौतम) **—अजातशत्रु, २-९**

—जिस दुःख से मनुष्य छाती फाड़कर चिल्लाने लगता हो, सिर पीटने लगता हो, वैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मैं केवल सिर नीचा कर चुप रहना अच्छा समझता हूं। क्या ही अच्छा होता कि जिस सुख में आनन्दातिरेक से मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, उसे भी मुस्कुरा कर टाल दिया करूँ। (राजा तिलक)—**(दासी)**

उदितराज—हर्ष के अधीन पंचनद के राजा जो प्रयाग में हर्ष के दानोत्सव मे सम्मिलित थे।

—ध्रुवस्वामिनी पृ० ६८,७५

उद्बोधन—दे० हिमाद्रि तुंग शृंग से।

—मन जागो जागो, मोह निशा छोड़ के, मन जागो जागो! इत्यादि (प्रमदा)

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-२

क्या सुना नहीं कुछ, अभी पड़े सोते हो।
क्यों स्वतंत्रता की लज्जा खोते हो॥
(मनसा आदि)

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-२

कौन कहता है तुम अकेले हो? समग्र संसार तुम्हारे साथ है। स्वानुभूति को जागृत करो। यदि भविष्यत् से डरते हो कि तुम्हारा पतन समीप ही है, तो तुम उस अनिवार्य स्रोत से लड़ जाओ। तुम्हारे प्रचंड और विश्वासपूर्ण पदाघात से विन्ध्य के समान कोई शैल उठ खड़ा होगा, जो उस विघ्न-स्रोत को लौटा देगा। (कमला)

—स्कन्दगुप्त, ४-७

दे० राष्ट्रीयता भी।

उद्भट—दे० भामह।

[वामन के प्रतिस्पर्द्धी, अलंकार-सम्प्रदाय के उन्नायक। इनकी कीर्ति 'काव्यालंकार-सार-संग्रह' पर अवलंबित है। समय ८ वीं शती का अन्त।]

उद्भाण्ड—सिन्धु नदी के किनारे स्थान, जहां से सिकन्दर की सेनाएं सेतु बना कर नदी पार हुईं। ग्रीक शिविर।

—चन्द्रगुप्त

उद्यान[१]—बुद्ध के समय में यह अप्रधान राष्ट्र था। दे० राष्ट्र।

—अजातशत्रु, कथाप्रसंग

उद्यान[२]—शीरीं और बिसाती की जीवन-कथा का पृष्ठ-स्थल। हरा-भरा पहाड़ी प्रदेश, जहा हिमशीतल झरने हैं, जहां एक स्निग्ध संगीत निरन्तर चला करता है; जिसके भीतर बुलबुलों का कलनाद, कम्प और लहर उत्पन्न करता है; जहां दाड़िम और गुलाब के बाग लगे हैं। **—(बिसाती)**

उद्यान[३]—भारतीय प्रदेश जो मुसलमानों के भयानक आतंक से कांप रहा था।

यहीं के मंगली दुर्ग में देवपाल अपने दिन काट रहा था।

—(स्वर्ग के खण्डहर में)

[पेशावर से उत्तर में स्वात नदी के आस-पास हिन्दूकुश का दक्षिणी प्रदेश।]

उद्यान-लता—ब्रजभाषा की कविता। सुमनों से लदी, नवीन हरी पत्तियों से भरी, तुम कौन हो जो तरु को भेंट रही हो ? पुष्प-दृग में मकरन्द-अश्रु भरकर तुम चुपचाप क्या देख रही हो ? जिस तरु को भुज-पेंच में लिए हो, वह तो बड़ा नीरस है।

तरु पाइ समीपहि सुपागति हो।
तेहि के गर धाइ सुलागति हो॥

—(पराग)

उन्नति—उन्नति का द्वन्द्व पतन है। (श्रीनाथ) —(आंधी)

—साधारण मन की स्थिति को छोड़ कर जब मनुष्य कुछ दूसरी बात सोचने का प्रयास करता है, तब क्या वह उड़ने का प्रयास नहीं ? हम लोग कहने के लिए द्विपद है; किन्तु देखिये तो जीवन में हम लोग कितनी बार उचकते है; उड़ान भरते है। कहीं तो उन्नति की चेष्टा, जीवन के लिए संग्राम और भी क्या-क्या नाम से प्रशंसित नहीं होती ? तो मैं भी इसकी निन्दा नहीं करता; उठने की चेष्टा करनी चाहिए; किन्तु— (प्रज्ञासारथि) —(आंधी)

—उन्नति के शिखर पर नाक के सीधे चढ़ने में बड़ी कठिनता है। (गान्धार नरेश) —चन्द्रगुप्त, १-८

उपमन्यु—महर्षि उपमन्यु की उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर, परमेश्वर ने स्वयं पूछा—'बोलो जो चाहते हो।' उपमन्यु ने कहा—'तेरी दृढ़भक्ति।'—(भक्ति)

[वशिष्ठ-कुलोत्पन्न, सूक्त-द्रष्टा, तपस्वी; लिंगपुराण तथा शिवपुराण में इसे शिवभक्त कहा गया है।]

उपासना—उपासना बाह्य आवरण है उस विचार-निष्ठा का, जिसमें हमें विश्वास है। (ब्रह्मचारी)

—इरावती, पृ० २२

उपेक्षा करना—कविता। "किसी पर मरना, यही तो दुःख है।" "उपेक्षा करना, चपल यह चाल तुम्हारी।" दीप पर मरने वाले पतंग की जो दशा है, वही है दशा हमारी। न हो वह दशा तुम्हारी। मैं जलन सह लूंगा, तुम मत मिलो। तुम रहो शीतल, हमें जलने दो और तुम तमाशा देखो। —झरना

उमड़ कर चली भिगोने आज तुम्हारा निश्चल अंचल-छोर—विजया अपने प्रिय की याद में गाती है। नयन-जल-धारा तुम्हारे अंचल को भिगोना चाहती है। आखों की लालिमा तुम्हारे हृदय के अन्तरतम में जाना चाहती है।

—स्कन्दगुप्त, ३

उमा—महाकाल के मन्दिर में पुजारिन। उमा तपस्वी हर के समीप पुष्प-पात्र लेकर जाती है तो उमा के अंग-अंग में श्री, यौवन और कमनीयता तरंग-सी उठने लगती है। —इरावती, १

उर्वशी[1]—इन्द्रसभा की एक अप्सरा।

अमल-चन्द्रमुख-चारु,
नैन खँज-गंजन कुटिल।
रस सिंगार को सारु,
सोई 'उरवशी' उर बसी।।
—(उर्वशी चम्पू)

उर्वशी[२]—मेरे श्वसुर और आर्यपुत्र दोनों ही उर्वशी और रम्भा के अभिसार से अभी नहीं आए। (हिजड़ा)
—ध्रुवस्वामिनी, १

उर्वशी-चम्पू—इस नाम से दो चम्पू लिखे। प्रथम ४३ पृष्ठ की गद्यपद्यमय कथा जिसे प्रसादजी ने सं० १९६३ वि० में लिखा और १९०९ ई० मे इसका संशोधित रूप स्वयं प्रकाशित किया। भूमिका में चम्पू पर निबंध है। कथा-मुख को छोड़कर इसमें ५ परिच्छेद हैं। भूमिका में बताया गया है कि कथा के किसी-किसी अंश की छाया महा-कवि कालिदास से ली गई है। दूसरी रचना १९१८ ई० मे प्रकाशित हुई, इसके २० पृष्ठ हैं। यह चित्राधार, प्रथम संस्करण, में उपलब्ध है।

चन्द्रवंश के प्रथम राजा पुरुरवा हुए। एक दिवस मृगेन्द्र को मृगया खेलने की इच्छा हुई। एक वृहत्स्वर्णनिर्मित, किंकिणीजालमालित, केतुपताकाविभूषित, पार्श्वरक्षक पृष्ठरक्षक-परिरक्षित रथ पर प्रजारञ्जन प्रियदर्शन पुरुरवा आसीन हुए और अपनी राजधानी प्रतिष्ठानपुर से चलकर गन्धमादन की अधित्यका में जा पहुँचे। वहां उन्हें ज्ञात हुआ कि अकस्मात् केशी नामक दैत्य उन सब की प्रिया सखी उर्वशी को उठा कर अभी-अभी ईशान दिशा की ओर ले भागा है। पुरुरवा तत्काल असि को कोश-विहीन करते हुए रथ से अवतरण करके उस दुष्ट दैत्य की ओर धावित हुए और भीषण राक्षस को धराशायी कर दिया। उर्वशी अपने उद्धारक पर मुग्ध हो गई और स्मित कटाक्ष करती हुई युवक नरनाथ के समीप रथ में स्थित हुई। नन्दन-कानन में दोनों विहार करने लगे। दूसरे दिन देवराज इन्द्र की आज्ञा पाकर पुरुरवा प्रतिष्ठानपुर लौटने के लिए तैयार हुए, तो दोनों प्रेमियो को भावी विरह अभी से सताने लगा। उर्वशी को उसकी सखी कमला ने बताया कि सुरेन्द्र ने आज तुमको नृत्य के लिए शीघ्र आवाहन किया है, आज इस राजर्षि की विदाई है, उसी के उप-लक्ष्य में आज राग-रंग होगा। धवला ज्योत्सना सुप्रतिष्ठित प्रतिष्ठानपुर के श्वेत पाषाण-विनिर्मित सुविशाल राज-प्रासाद पर निज अधिकार कर चुकी है, मणिखचित सिंहासन पर अमूल्य मणि-माणिक्य-जटित मुकुट धारण किए बड़ी उदास मुद्रा में पुरुरवा आसीन है। अकस्मात् चन्द्रमा नीचे खिसकता हुआ दिखाई पड़ा और चन्द्रांश एक असा-मान्य सुन्दरी के रूप मे परिवर्तित हो गया। महाराज मूच्छित हो गए। संज्ञा आई तो देखा कि यह सुन्दरी तो उर्वशी है और साथ में सखी कमला। सखी ने पुरुरवा को बताया—"आपके चले

आने के पश्चात् सुरेन्द्र की सभा में 'लक्ष्मी परिणय' एक नूतन अभिनय हुआ था, जिसमें आपकी उर्वशी को लक्ष्मी का अभिनय करना पड़ा; परन्तु इसकी प्रेम-सूत्र में बँधी हुई रसना ने 'पुरुषोत्तम' के स्थान में 'पुरुरवा' शब्द का प्रयोग किया। पुरुहूत (इन्द्र) को इसका कारण ज्ञात हुआ, तो उसने इसे कहा कि तुम मृत्युलोक में जाकर उस राजर्षि को प्रसन्न करो। पुरुरवा बड़े प्रसन्न हुए।"

बीती निशा दुःख की, सुख सूर
उदै भयो चारु मिले पुनि दोऊ।

गन्धमादनगिरि की एक रमणीक उपत्यका में उर्वशी और पुरुरवा वन-विहार कर रहे थे। अकस्मात् उर्वशी निज उरोज-सरोज पर सरोज-सम्पुट के आघात से चौंक उठी। पुरुरवा ने देखा तो सामने कुछ दूर पर एक युवा। पुरुरवा क्रोध से उन्मत्त हो गए। दोनों में विषम युद्ध छिड़ गया। अचानक तूर्यनाद के साथ वह युवा सुरेन्द्र के रूप में परिवर्तित हो गया और बोला—"मित्र, यह तुम्हारी परीक्षा थी।" उसी समय देखा तो न उर्वशी थी न इन्द्र। प्रिय-विरह में दग्ध नरनाथ 'हा प्रिये! हा उर्वशी—उर्वशी!' चिल्लाते-चिल्लाते मूर्च्छित हो गए। जब तन्द्रा टूटी, तो समीप ही में एक नीलवसना सुन्दरी! उसने इन्द्र का एक पत्र दिया, जिसमें लिखा था कि आपको हम संगम-मणि भेज रहे हैं। उर्वशी पार्श्ववर्त्ती कुमार-वन में भगवान् क्रौञ्च-दारण के शाप से लता रूप में परिवर्तित हो गई है, अतएव इस मणि के प्रताप से, स्पर्शमात्र से ही, वह पुनः उर्वशी हो जायगी। नरनाथ खोज में निकले। अचानक वकुला-लिंगित लता मणि स्पर्श से उर्वशी रूप में परिवर्तित हो गई। दोनों प्रतिष्ठान-पुर आए। राज्य में आनन्दोत्सव था। अचानक एक दासी ने राजा को आकर बताया कि वह मणि खो गई है। सभा में व्यग्रता छा गई। तत्क्षण अनुसन्धान आरम्भ हुआ। महाराज उदास हर्म्य की छत पर चढ़ गए। देखा कि वहां एक गृद्ध नाराच-विद्ध मृतक पड़ा है और उसके चञ्चु में वह मणि दबी हुई है। एक दास ने उस गृद्ध का बाण निकाला, तो उसमें एक पत्र था। इससे सूचित हुआ कि वह बाण महाराज के एक बालक का है। उसी समय तपोवन से बालक आ गया। महाराज हर्षित हुए; पर उर्वशी अश्रु-धारा बहाने लगी। तत्काल सुरेन्द्र विमान द्वारा अवतारण करते हुए दृष्टि-गोचर हुए।

सुत को सुचि सुखचन्द
जौ लौं नहिं देखिहिं नृपति
तौलौं तहँ निर्द्वन्द्व बसहु
प्रेम परिपूर ह्वै॥

देवांगना तथा मानवी में अन्तर है। कौशल से प्रसव छिपाया गया था। वन्दीगण के आशीर्वाद से चम्पू की समाप्ति हुई।

'उर्वशी' में सब मिलाकर ७८ छंद हैं, जिनमें ३८ 'प्रेमपथिक' के बरवै हैं।

सवैय्या, कवित्त, दोहा, सोरठा, छप्पय, रोला, भुजंग-प्रयात आदि अनेक छंदों का व्यवहार हुआ है। इन छंदों की भाषा व्रज है, जो बहुत सुगठित नहीं है। गद्य की भाषा कृत्रिम खड़ी बोली हिन्दी है; जीवन-दर्शन यत्र-तत्र मिलता है।

उषा—दे० उषा सुनहले तीर बरसाती।

—कामायनी, आशा, पृ० २३

दे० ऊषा भी।

[ऋग्वेद के प्रायः २० मंत्रों में द्यौ की कन्या उषा का वर्णन है।]

उस दिन जब जीवन के पथ में—इस गीत में सुनहले अतीत की, आनन्द-नगर की झांकी है। उस दिन जब जीवन के पथ में मेरा अकिंचन चैतन्य टूटा-फूटा पात्र लेकर उस आनन्द-नगर (मानस) में पहुँचा, तब अनुभव हुआ कि सम्पूर्ण संसार मधुमय है। मेरा पात्र छोटा और टूटा हुआ था, इसलिए मधुवन का वह रस समाता ही न था। **—लहर**

उस पार का योगी—एक छोटी-सी काव्यात्मक दुःखान्त प्रेम-कथा। अपनी शैशव-सहचरी नलिनी से वियुक्त हो नन्दलाल अपने गांव की नदी के कि[नारे] सितारी लेकर अपना मन बहल[ाया] करता था। उसे ऐसा लगता कि [उस] पार बैठा कोई लटधारी उसकी रागि[नी] मे आनन्द-विभोर हुआ करता है। [एक] रात चांदनी निखरी थी। नन्दलाल [ने] प्रणय-संगीत छेड दिया। सहसा सुनाई पड़ा कि नदी में डूबता हुआ [कोई] व्यक्ति उसे सहायता के लिए पुकार [रहा] है। नन्दलाल जल में कूद पड़ा। उ[सके] बाहु-पाश मे एक सुकुमार शरीर [आ] गया। वह नलिनी ही थी; किन्तु वे द[ोनों] बहुत दूर बह गए, बहुत दूर...। मित[...] मूर्च्छना में पड़ी रह गई। प्रकृति में च[...] किरण और लहरी मे प्रेम और [...] का विवेचन होना रहा।

कहानी का विषय अस्पष्ट [...] रहस्यात्मक है। कहानी में चरित्र-चि[त्रण] का अभाव है। कथोपकथन भी न[हीं] है। कथानक अति सूक्ष्म है।

—प्रतिध्[वनि]

ऊ

ऊँच-नीच का भेद—तभी तो उत्क्रान्ति होती है। उस समय केन्द्रीभूत विभूतियां, मानव-स्वार्थ के बंधनों को तोड़ कर समस्त भूत-हित के लिए बिखरना चाहती हैं। वह समदर्शी भगवान् की क्रीड़ा है।...... वर्णभेद सामाजिक जीवन का क्रियात्मक विभाग है। यह जनता के कल्याण के लिए बना, परन्तु द्वेष की सृष्टि में, दम्भ का मिथ्या गर्व उ[त्पन्न] करने में, अधिक सहायक हुआ

(विस्तार के लिए पढ़िये निरंजन व्याख्यान।)

—कंकाल, पृ० २९७-३

ऊषा—दे० चित्रकूट, ३;

दे० उषा भी।

दे० एकान्त वन, एकान्त में।

नलिनी देखें मलिना
वर्षागम से पहले देखें जलद-आवाह्न
सरोज (से शिक्षा) देखें सरोज
शारदीय उषा, देखें खंजन
हिम गिरि का शृंग, देखें भग्न
देखें कानन कुसुम में 'महाक्रीड़ा'
देखें कोकिल
देखें गंगासागर
देखें ग्रीष्म का मध्याह्न
देखें दलित कुमुदिनी
देखें नव वसन्त, निशीथ-नदी
देखें प्रकृति, प्रकृति-चित्रण
देखें रजनीगंधा।
देखें परिशिष्ट भी

ऋ

ऋग्वेद[1]—वाणी चार प्रकार की है (वेद)। —**काव्य और कला, पृ० १३**

ऋग्वेद[2]—श्रद्धा और मनु का नाम ऋषियों में मिलता है। इड़ा का उल्लेख कई जगह मिलता है। वह प्रजापति मनु की पथ-प्रदर्शिका है। इड़ा को धी, बुद्धि का साधन करने वाली, मनुष्य को चेतना प्रदान करने वाली कहा है। —**कामायनी, आमुख**

ऋग्वेद[3]—प्राचीनतम संचित साहित्य ऋग्वेद छन्दात्मक है। —**(नाटकों का आरम्भ, पृ० ५६)**

ऋग्वेद[4]—इन्द्र की आत्मस्तुति (१०।४८।११९) अहंभावना तथा अद्वैतभावना से प्रेरित है (वेद)। —**(रहस्यवाद, पृ० ३४)**

ऋग्वेद के काम की उपासना आगमों में कामेश्वर के रूप में चली। —**(वही, पृ० ३७)**

वेद में काम अथवा प्रेम का प्रभाव माना गया है। —**(रहस्यवाद, पृ० २०)**

[संसार के लिखित उपलब्ध साहित्य में ऋग्वेद सबसे प्राचीन पुस्तक है। सूक्त-संख्या १०२८, मंत्र-संख्या १०५८०; वेद का सब से बड़ा देवता अग्नि है, उसके बाद इन्द्र और फिर वरुण का स्थान है।]

ए

एक घूँट—हिन्दी का प्रथम आधुनिक एकांकी; सिद्धान्तवादी नाटक। दीपावली सं० १९८६ को प्रकाशित। इसमें एक ही दृश्य है। अरुणाचल आश्रम का एक कुञ्ज है। कवि रसाल की पत्नी वनलता हताश है। वह समझती है कि रसाल उसके प्रेम की उपेक्षा करता है। रसाल आनन्द के स्वागत में व्याख्यान देने की तैयारी में है। आनंद स्वच्छन्द प्रेम का उपासक है। वह बन्धनयुक्त वैवाहिक प्रेम को स्वास्थ्य और सौन्दर्य के लिए हानिकर समझता है। मुकुल और उसकी दूर के संबंध की बहन उसके प्रति आकर्षित तो हैं; पर उससे सहमत दिखाई नहीं देते। आश्रम के मंत्री कुंज रसालजी को लेकर आते हैं। रसाल

अपने व्याख्यान में आनंद के संदेश की व्याख्या करते हैं और चाहते हैं कि प्रेम को भी आश्रम के नियमों में सम्मिलित कर लिया जाय। प्रेमलता और वनलता इस चर्चा मे भाग लेती है। एक चंदुला विज्ञापन देता हुआ आता है कि एक घूंट सुधारस का पी लो। उसने चांद पर विज्ञापन लिखवा लिया है और सोने का एक सिक्का प्रतिदिन पाता है। इससे उसकी पत्नी सोने का हार बनवा कर मचलेगी, तो इसको क्या आनन्द न होगा? झाड़वाला और उसकी स्त्री एक सितार के लिए झगड़ पड़ते है। वनलता कहती है कि इस झगड़े में भी कितना सुख है! वनलता अपने अभाव का रोना रोती है, इस मे आनन्द उससे प्रेम-प्रस्ताव करते हुए कहता है कि हम तो हर एक मे प्रेम का एक-एक घूट लेना चाहते है; परन्तु वनलता कहती है कि मैं तो उसका प्रेम चाहती हूँ, जिसे मैं प्यार करती हूँ। रसाल चोरी-छिपे यह सुन रहा है। वह वनलता को हृदय से अपनाता है। वनलता बताती है कि आश्रम की एकमात्र कुमारी प्रेम-लता आनन्द से एक घूट पीने का अनुरोध करती है। आनन्द उसे ग्रहण करता है। इस प्रकार स्वच्छन्द प्रेम बधनयुक्त हो जाता है।

इस नाटक में प्रसाद की आनन्दवादी विचारधारा के दर्शन होते हैं, जो आगे चलकर 'कामायनी' और 'इरावती' में परिपक्व रूप में मिलती है। आनन्द कहता है—'जीवन का लक्ष्य सौन्दर्य है।... दुःख की कल्पना करना ही इस सौन्दर्य को मलिन बना देता है।' आनन्द विश्व की कामना का मूल रहस्य है। दुःख का चिन्तन पाप है। आनन्दवाद का आधार है ज्ञान, भाव और कर्म का सन्तुलन। इसे नाटकीय निबन्ध कहा गया है। वैसी ही व्यक्तिप्रधान शैली, वैसी ही एकसूत्रता और वैसा ही तर्क-वितर्क का क्रमिक विकास इसमें मिलता है। संवादों में सजीवता और सरसता का अभाव है। प्रसंग और विषय एक ही है—जीवन का लक्ष्य क्या है? स्त्री और पुरुष क्रमश हृदय और मस्तिष्क पक्ष के प्रतिनिधि है। दोनों के योग से ही मंगल की सृष्टि होती है।

सिद्धान्तवादी नाटक होने के कारण रंगमच के योग्य नही है। इसके पात्र कटपुतली मात्र है। उनके भीतर विचार तो है, चरित्र नही। रचना शिथिल है।

शैली का नमूना—

(वनलता दाहिने हाथ की तर्जनी से अपना अधर दबाये, बायें हाथ से दाहिनी कुहनी पकड़े, हँसने लगती है और रसाल उसकी मुद्रा साग्रह देखने लगता है, फिर चला जाता है।)

वनलता—(दांतों से ओठ दबाते हुए) हूँ! निरीह, भावुक प्राणी! जंगली पक्षियों के बोल, फूलों की हँसी और नदी के कलनाद का अर्थ समझ लेते है। परन्तु मेरे अन्तर्नाद को कभी समझने की चेष्टा भी नहीं करते। और मैंने ही...

(दूर से कुछ लोगों के बातचीत करते हुए आने का शब्द सुनाई पड़ता है। वनलता चुपचाप बैठ जाती है। प्रेमलता और आनन्द का बात करते हुए प्रवेश। पीछे-पीछे और भी कई स्त्री-पुरुषों का आपस में संकेत से बातें करते हुए आना। वनलता जैसे उस ओर ध्यान ही नहीं देती।)

आनन्द—(एक ढीला रेशमी कुरता पहने हुए है, जिसकी बाहें उसे बार बार चढ़ानी पड़ती है। बीच-बीच मे चदरा भी सम्हाल लेता है। पान को रूमाल से पोंछते हुए प्रेमलता की ओर गहरी दृष्टि से देखकर) जैसे उजली धूप सबको हँसाती हुई आलोक फैला देती है, जैसे उल्लास की मुक्त प्रेरणा फूलों की पंखड़ियों को गदगद कर देती है, जैसे सुरभि का शीतल झोंका सबका आलिंगन करने के लिए विह्वल रहता है, वैसे ही जीवन की निरन्तर परिस्थिति होनी चाहिए।

प्रेमलता—किन्तु, जीवन की झंझटें, आकांक्षाएं, ऐसा अवसर आने दें तब न! बीच-बीच मे ऐसा अवसर आजाने पर भी वे चिरपरिचित निष्ठुर विचार गुर्राने लगते है। तब।

आनन्द—उन्हें पुचकार दो, सहला दो, तब भी न मानें, तो किसी एक का पक्ष न लो। बहुत सम्भव है कि वे आपस में लड़ जायं और तब तुम तटस्थ दर्शकमात्र बन जाओ और खिलखिला कर हँसते हुए वह दृश्य देख सको। देख सकोगी न!

प्रेमलता—असम्भव! विचारों का आक्रमण तो सीधे मुझी पर होता है। फिर वे परस्पर कैसे लड़ने लगें? (स्वगत)

अहा, कितना मधुर यह प्रभात है! यह मेरा मन जो गुदगुदी का अनुभव कर रहा है, उसका संघर्ष किससे करा दूं।

एकान्त में—इन्दु कला ३, किरण २, कार्तिक १९६८। ३० पंक्तियों की कविता।—प्रकृति के नीरव सौन्दर्य का चित्रण हुआ है। संध्या का मनोहर समय, श्रीसम्पन्न आकाश में जलद, कुसुमों से पूर्ण विटप-शाखाएँ, निर्जन प्रशांत शैल-पथ, हँसती चलती स्रोतस्विनी, वेगपूर्ण जल का सोता, उत्तुंग गिरिश्रृंग पर खड़ा तरुराज—

होकर प्रमत्त खडा हुआ है।
यह प्रभंजन वेग में
हा, झूमता है चित्त के
आमोद के आवेग में।

वन की यह शून्यता बेजोड़ है। चंचल चित्त भी इससे धीर होने लगता है—'एकान्त में विश्रान्त मन पाता सुशीतल नीर है।' **—कानन-कुसुम**

एचिलीज़—दे० होमर।

एडवर्ड सप्तम—दे० शोकोच्छ्वास।

एण्टिगोनस = ऍंटिगोनस। **—(कल्याणी-परिणय)**

एनीसाक्रीटीज—ग्रीक विजेता सिकन्दर का सहचर। **—चन्द्रगुप्त**

एलिस[1]—यवन-सेनापति सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया की सहेली। **—चन्द्रगुप्त, ४-७, १०**

एलिस[2]—कोमल प्रकृति की सुन्दरी अंग्रेज महिला। सिपाही-विद्रोह से भयभीत। सरल। भारतीय परिवार में बहुत शीघ्र घुलमिल गई; यहां तक कि भारतीय वेश भूषा धारण कर ली। **—(शरणागत)**

ओ

ओ मेरी जीवन की स्मृति ओ अन्तर के आतुर अनुराग—मरणासन्न मालविका के सामने उसके अतीत के चलचित्र आने लगते हैं। सुनहली स्मृतियों के क्रोड में सोया हुआ जीवन जाग उठा है। अन्तर का अनुराग लहरें लेने लगा है। सामने मृत्यु मुंह बाये है; पर मालविका को सन्तोष है कि वह अपने प्रिय के लिए अपने को मिटा रही है।

इन भावों से मालविका के जीवन-बलिदान का महत्त्व बढ़ गया है।

—चन्द्रगुप्त, ४-४

ओ री मानस की गहराई !—तू सुप्त, शान्त, कितनी शीतल, जिस में सारा विश्व प्रतिबिम्बित होता है। तेरा विषाद गरल हो जाता है, और सुख-लहर जीवन को खिला देती है। तुम हँसो तो यह तारा, यह सुमन, यह राका, यह सृष्टि ही खिल जाती है। जीवन का लघु-लघु क्षण भी विषाद-मुक्त होकर हँसने लगता है। मनुष्य की सारी समस्याओं का हल 'मानस की गहराई' में है।

—लहर

औ

औण्टिगोनस—सीरिया पर औण्टिगोनस चढ़ाई करने वाला है। चन्द्रगुप्त ने सिल्यूकस की सहायता इस शत्रु को रोकने के लिए की। —चन्द्रगुप्त, ४-१४-१६

[Antigonos सिकन्दर की मृत्यु के बाद केन्द्रीय प्रांतों का राज्यपाल, यूडेमिस, सिल्यूकस आदि का प्रतिस्पर्धी।]

औरङ्गजेब[१]—शाहजहा का विद्रोही पुत्र। वह एक नारकीय पिशाच है, उसका किया क्या नहीं हो सकता, एक भले कार्य को छोड़कर। शाहजहां के बुड्ढे नकीब का सिर उड़ा दिया। जब वह बाप के साथ बेअदबी से पेश आया, तब बहिन ने फटकारा। कहने लगा, बादशाह-बेगम का कुछ दिमाग बिगड़ गया है। जहानारा अंतिम सासे लेने लगी, तो यह पाषाण भी पिघला। इसने क्षमा मांगी —नौ सौ चूहे खा के बिल्ली हज को चली।

—(जहांनारा)

औरङ्गजेब[२]—संगीत का तो जनाजा निकाला गया; पर रंगमंच से विहीन कुछ अभिनय बच गए—(नौटंकी, भांड आदि)। —(रंगमंच, पृ० ७१)

[राज्यकाल १६५८–१७०७। उसने शाहजहां (वृद्ध पिता) को १६५८ ई० से १६६६ ई०तक कैद में रखा।

औरंगजेब अपने धार्मिक विचारों में कट्टर सुन्नी मुसलमान था।]

क

कंस[१]—कृष्णशरण ने कथा में राजा कंस के वध का वर्णन किया।

—कंकाल, २-६

कंस[२]—वेण और कंस का शासन इसी नंद का-सा रहा होगा। (नागरिक)।

—चन्द्रगुप्त, ३-८

कंस[१]—कृष्ण ने कंस को मारा, रहा जो दुष्ट पीवर गात का। —(**कुरुक्षेत्र**)

कंस[२]—कंस-हृदय की दुश्चिन्ता-सा जगत् में अन्धकार है व्याप्त।

—(**श्रीकृष्ण जयन्ती**)

[श्रीकृष्ण का मामा, उग्रसेन का पुत्र, पूर्वजन्म में कालनेमि असुर, अत्याचारी अन्यायी राजा। कृष्ण इसका वध करने के बाद द्वारिका चले गए।]

कंस-बध—दे० पतञ्जलि।

कंकाल—प्रसादजी का प्रथम व्यंग्यात्मक सामाजिक उपन्यास (१९२९ ई०)। चार खण्ड ; प्रथम में ७, द्वितीय में ८, तृतीय में ७ और चतुर्थ में ९ अंश हैं। पृष्ठ संख्या दूसरा संस्करण ३७३। १० स्त्री चरित्र, ९ पुरुष चरित्र प्रमुख हैं। इसमें प्रसाद ने हमे सामयिक हिन्दू समाज के जर्जर कंकाल से परिचित कराया है। धर्म के नाम पर कितना पाप और अन्याय होता है, यह इस उपन्यास का विषय है। 'कंकाल' नाम बहुत सार्थक है। इसमें धार्मिक सूत्र बांधकर सामाजिक दृष्टिकोण रखा गया है। घटनाओं का संबंध प्रयाग, हरद्वार, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या और काशी से है। कंकाल मे मंगल और विजय के जीवन से सबंधित दो कथाएँ मुख्य रूप से चलती हैं। गौण कथाओं में किशोरी–निरञ्जन, रामा-भंडारी, श्रीचन्द–किशोरी, चन्दा-श्रीचन्द और वदन–गाला के प्रसंग आते है। अन्तर्-कथाओं में गोस्वामी कृष्णशरण और गाला की माता की कहानी बहुत कुछ अनावश्यक है।

प्रतिष्ठान के खण्डहर में और गंगातट की सिकता भूमि में अनेक शिविर और फूस के झोंपड़े खड़े हैं। माघ की अमावस्या की गोधूली में प्रयाग के बांध पर प्रभात का-सा जनरव और कोलाहल तथा धर्म लूटने की धूम कम हो गई है ; परन्तु बहुत से घायल और कुचले हुए अर्धमृतकों की आर्तध्वनि उस पावन प्रदेश को आशीर्वाद दे रही है। एक छायादार डोंगी जमुना के प्रशान्त वक्ष को आकुलित करती हुई गंगा की प्रखर धारा को काटने लगी—उस पर चढ़ने लगी। मांझियों ने कस कर डांड़े लगाए। नाव झूसी के तट पर जा लगी। एक सम्भ्रान्त सज्जन और युवती, साथ में एक नौकर, उस पर से उतरे। ये सज्जन थे अमृतसर के व्यवसायी श्रीचन्द और युवती थी उनकी पत्नी किशोरी। विवाह हुए कई वर्ष बीत गए, सन्तान नहीं हुई। पत्नी के आग्रह पर श्रीचंद किसी महात्मा की खोज में थे। कुंभ में ब्रह्मचारी देव-निरंजन की ख्याति सब से अधिक थी। ये लोग उसके शिविर में पहुँचे। महात्मा ने पूछा —'आप लोगों का शुभ नाम और परिचय क्या है ?' 'मेरा नाम श्री-चन्द है, और यह मेरी धर्मपत्नी है।' 'दासी का नाम किशोरी है।' महात्मा की दृष्टि में जैसे एक आलोक घूम गया। अनन्त आकाश में जैसे अतीत की घटनाएँ रजताक्षरों से लिखी हुई उसे

दिखाई पड़ने लगीं। झेलम के किनारे बालक-बालिका के रूप में निरंजन और किशोरी अपने प्रणय के पौधों को अनेक क्रीड़ा-कुतूहलों के जल से सींच रहे थे। निरंजन के पिता ने संतान के लिए ज्येष्ठ पुत्र को बलि देने की मनौती की थी। महात्मा की कृपा से निरञ्जन का जन्म हुआ था। निरञ्जन को गुरुद्वारे के महात्मा को सौंप दिया गया था। १९ वर्ष की अवस्था में वह देवनिरंजन नाम से गद्दी का उत्तराधिकारी बना। किशोरी पुत्र-कामना लेकर उसके सामने थी। देवनिरञ्जन को लगा कि उसकी तपस्विता परास्त होने को है। वह भागा। सब कुछ वहीं छोड़कर उसी रात वह चुपचाप हरद्वार चला गया। यहां भी वह रमणी तपश्चर्या में बाधा के समान उपस्थित हो गई। अमृतसर से तार पाकर व्यवसायी श्रीचंद तो चला गया। 'हर की पौड़ी' के पास किशोरी के लिए मकान और दासी की व्यवस्था करता गया। दो दिन बाद किशोरी ने मुलाकात की, पहचान हुई; और देवनिरञ्जन ने सन्तान, ऐश्वर्य और उन्नति देने की अपनी सारी शक्ति उसे दे दी। कुछ दिनों बाद श्रीचंद आए। मान मनाव हुआ। किशोरी अमृतसर चली गई, जहां उसके पुत्र हुआ, जिसका नाम रखा गया विजय। उसके आश्रम में रहने वाली विधवा रामा हरद्वार ही में रह गई।

पन्द्रह वर्ष बाद, काशी में ग्रहण था। विधवा रामा अब निरञ्जन के भण्डारी के संग में सधवा होकर अपनी कन्या तारा के साथ आई थी। भीड़ के एक ही धक्के में तारा अपनी माता और साथियों से अलग हो गई। यूथ से बिछड़ी हुई हरिणी के समान बड़ी-बड़ी आंखों से वह इधर-उधर देख रही थी। एक अधेड़ उम्र की कुटनी के चक्र में पड़ गई। स्वयंसेवक मंगलदेव ने ताड़ लिया, पर सकोचवश वह हठ करके उसे बचा न सका। तारा उस स्त्री के साथ चली गई। मंगल अपने साथी खिलाड़ियों के साथ खेलने लखनऊ गया। वहां उसने 'गुलेनार' वेश्या को देखा। उसने पहचाना कि यही वह युवती है जिसे उसने काशी के घाट पर बचाना चाहा था। मंगल ने उसके उद्धार का मार्ग निश्चित किया और एक दिन वह उसे हरद्वार भगा ले गया। रेल में भंडारीजी मिल गए, लेकिन पिता ने पुत्री को समाज के अंचल में लेने से इन्कार कर दिया। हरद्वार में आर्यसमाजी मित्रों के उत्साहित किए जाने पर मंगल संरक्षिता तारा के साथ विवाह करने को तैयार ही था कि चाची (नन्दो) से यह सुना कि तारा की मां भी दुश्चरित्र थी। तारा की मां की लांछना की लम्बी कहानी थी। मंगल को घृणा होने लगी। 'मैं इससे ब्याह करके कई कुकर्मों से कलुषित संतान का पिता कहलाऊँगा।' वह चुप-चाप भाग गया। तारा को तीन महीने का गर्भ था। वह अकेली रह गई—एक दम निराश्रित। वह चाची के घर जाकर

रहने लगी। लेकिन कुछ दिन बाद चाची ने निकाल दिया। उसने आत्महत्या करनी चाही तो एक संन्यासी ने उसे बचा लिया। अस्पताल में उसे पुत्र उत्पन्न हुआ। उसे वहीं छोड़ तारा फिर गंगा की गोद में जा कूदी ; परन्तु इस बार भी मनुष्य की निष्ठुर करुणा ने उसे मरने नही दिया। वह गंगा के किनारे-किनारे चल पड़ी और काशी पहुँच गई और किशोरी के यहां नौकर हो गई। यहां उसने अपना नाम यमुना बताया। . . . किशोरी के पुत्र हुआ, तो श्रीचन्द को संदेह हुआ। उसने यह निश्चय किया कि किशोरी काशी जाकर जारज सन्तान के साथ काशी में रहे और उसके खर्च के लिए वह कुछ भेजा करे। कई वर्ष से किशोरी और विजय काशी मे रहते थे। देवनिरञ्जन भी वही आ जाता था। विजय स्कूल मे पढता था। एक दिन घोड़े पर से गिरते-गिरते मंगल ने उसे बचाया। तभी उन दोनों की मैत्री हो गई। एक दिन विजय , मगल, किशोरी और दासी यमुना बजरे पर बैठ गंगा की सैर कर रहे थे। मंगल ने तारा को पहचाना, लेकिन तारा ने कहा—'तारा मर गई, मै उसकी प्रेतात्मा हूँ।' मंगल काशी से चला गया। तीर्थयात्रा के लिए किशोरी, देवनिरञ्जन, विजय और यमुना वृन्दावन गए। विजय के चरित्र का यहां विकास हुआ। वह समाज या परंपरा के बंधन को नहीं मानता था। यहां वह एक अल्हड़ गोपबाला विधवा घंटी के सम्पर्क में आया। विजय यमुना पर भी मुग्ध था। एक दिन उसने यमुना से कहा—'तुम मेरी आराध्य देवी हो, सर्वस्व हो।' लेकिन यमुना ने कहा—'मैं दया की पात्री एक बहिन होना चाहती हूँ।' विजय और घंटी में घनिष्ठता बढ़ चली। इस बात को लेकर किशोरी और विजय में झगड़ा भी हो गया। विजय मथुरा चला गया। किशोरी काशी लौट आई; और यमुना वृन्दावन ही में गोस्वामी कृष्णशरण के आश्रम में रह गई। मंगल यहीं एक ऋषिकुल चलाता था। घटना-चक्र ने विजय और घंटी को ईसाई समाज के बीच ला पटका। मथुरा में ईसाई गिरजा के पादरी जान, अंग्रेज व्यापारी बाथम और उस की भारतीय ईसाई पत्नी मार-गरेट लतिका और नौकरानी सरला मिलो। विजय और घंटी तांगे पर घूमने निकले थे। दो गुडों ने, जो तांगे वाले से मिले हुए थे, उन पर आक्रमण किया। विजय को चोट आई, घंटी चर्च में आ घुसी। विजय और घटी वहां आश्रय पाकर रहने लगे। विजय अच्छा कलाकार था। वह बाथम को चित्र बनाकर देने लगा। वहीं एक अंधे भिखारी ने आकर बताया कि घंटी वास्तव में नन्दो की लड़की है। नन्दो को गंगासागर के मेले में इस लड़की की जगह एक लड़का दिया गया था ; बाद में नन्दो ने लड़के को छोड़ दिया, लड़की को गोविन्दी चौबाइन ने पाला। वह लड़का इसी सरला दासी का था। उसके गले में त्रिकोण कवच था। विजय ने पहले तो चाहा कि सरला को उसके

पुत्र से मिला दे, फिर ध्यान आया कि मंगल शायद इसका पुत्र न हो। वृन्दावन से दूर एक टीले पर श्रीकृष्ण का मंदिर था। गोस्वामी कृष्णशरण यहां कथा करते थे, जिसमें विजय और घंटी भी सम्मिलित होते थे। एक दिन विजय ने गोस्वामी से घंटी से ब्याह करने की अनुमति मागी। उन्होंने कोई आपत्ति नही की। विजय और घंटी यमुना में नौका-विहार करने गए थे। लौटते हुए एक भीषण घटना हो गई। घंटी को भगा ले जाने के लिए जो षड्यंत्र चल रहा था, वे ही लोग सम्मुख आ गए। नवाब तांगेवाले और विजय में द्वन्द्व युद्ध हो गया। नवाब मारा गया। 'खून हो गया है, तुम लोग यहां से हट चलो,' कहते हुए बाथम घंटी को ले गया। उसी समय स्नान के लिए निकली हुई यमुना वहां आ गई। निरञ्जन भी उपस्थित था। दोनों ने आग्रहपूर्वक विजय को वहां से भगा दिया। उसके खून को यमुना ने ओढ़ लिया और पुलिस ने उसे हिरासत में ले लिया। निरंजन ने दिल खोलकर रुपया खर्च किया। कचहरी से यमुना को मुक्त कर दिया गया। लतिका और बाथम का सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। लतिका और सरला गोस्वामीजी के आश्रम मे आ गई। बाथम ने घंटी से विवाह कर लिया ; पर वह निकल गई और पागल होकर घूमने लगी। विजय ने एक नया जीवन आरंभ किया—अब उसका नाम था 'नए'। फतहपुर सीकरी से अछनेरा जाने वाली सडक के सूने अंचल में एक छोटा-सा जंगल है। वहां एक डाकू, बदन गूजर, के यहां विजय (नए) अपने दिन काटने लगा। गाला बदन की लड़की थी। बदन की इच्छा हुई कि गाला और नए की शादी हो जाए, लेकिन गाला ने कह दिया—"मैं अपने यहां पले हुए पुरुष से कभी ब्याह न करूँगी।... मेरा उद्देश्य है पढ़ना और पढ़ाना।" इसके बाद गाला मंगल की पाठशाला में काम करने लगी। मंगल अपनी मानसिक हलचल के कारण वृन्दावन छोडकर वही आ गया था। गाला से उसका सम्बन्ध घनिष्ठ होने लगा। बदन पुलिस की गोली से घायल होकर मरणासन्न हुआ। नए ने गाला को सूचित किया और पिता-पुत्री को मिला दिया। बदन की मृत्यु के बाद गाला मंगल के पास वृन्दावन चली गई। यहां उन्होने गोस्वामी कृष्णशरण, निरञ्जन आदि से मिलकर भारत-संघ की स्थापना की। यमुना के मुकदमे में मंगल और भारत-संघ के सदस्यों ने बडी दौडधूप की। मंगल को ज्वर आ गया। सरला बडी विह्वल हो उठी, कभी कृष्णमूर्ति के आगे और कभी यमुना माता के आगे प्रार्थना करने लगी—'मंगल का कल्याण करो और उसे जीवित कर के गाला को भी प्राणदान दो।' यमुना के किनारे एक साधु ने (विजय साधु हो गया था) सरला को एक कवच दिया, जो मंगल को पहना दिया गया और वह ठीक हो गया। मां-बेटे ने उस कवच से एक दूसरे को पा लिया। पागल घंटी को अपनी मां (नन्दो) मिल गई

और वह स्वस्थ हो गई। घंटी ने लतिका से क्षमा मांगी। 'भारत-संघ' में निरञ्जन और मंगल के भाषण हुए जिनमें उन्होंने सुधार, उद्धार और सेवा पर बल दिया। शुभ मुहूर्त में मंगल और गाला का विवाह हो गया। वृन्दावन में आनन्दोत्सव था। विजय उस समय वहीं था। उसका डरावना कण्ठस्वर गूंज उठा—"अच्छा तो है, चंगेज़ और वर्धनों की सन्तानों की क्या सुन्दर जोड़ी है।" इस घनी दाढ़ी मूछों वाले युवक साधु को यमुना (तारा) पहचान गई। चाची (नन्दो) ने तारा से इतना कष्ट देने के लिए क्षमा-याचना की। अस्पताल में छोड़े हुए अपने पुत्र की याद करके तारा रो पड़ी। चाची ने उसकी अश्रुधारा पोंछते हुए कहा—"बेटी! तुम्हारा लाल जीवित है, सुखी है।" "कहां है?" "वह काशी के एक धनी श्रीचन्द और किशोरी बहू का दत्तक पुत्र है।" तारा आनंद के आंसू बहाने लगी। वह विजय को लेकर बनारस चली आई। किशोरी और निरंजन में अनबन हो गई थी और झगड़ा बढ़ गया था। उसी दिन श्रीचंद आगए। उनका अमृतसर का व्यवसाय नष्ट हो गया था। चन्दा नाम की एक धनी विधवा से उनका संबंध हो गया था। लाली उसकी बेटी थी। श्रीचंद ने सोचा कि यदि लाली का विवाह विजय से हो जाय तो सारा धन उसका होगा। इसलिए ये लोग बनारस आए। श्रीचंद और किशोरी मिले। किशोरी ने अपने किए की विवशता प्रगट की, मनमुटाव दूर हुआ। दोनों मनोविनोद के लिए अयोध्या चले गए। चंदा और लाली अमृतसर लौट गईं। विजय का कुछ पता नहीं था, इसलिए निराश दम्पती ने अयोध्या ही में नन्दो से मोल लेकर मोहन को दत्तक बना लिया। किशोरी और श्रीचन्द के पास मोहन पल रहा था। परन्तु, माता के हृदय में विजय का स्थान यह दत्तक पुत्र कैसे ले सकता था? वह विजय के लिए व्याकुल रहने लगी। नित्य की मनोवेदना ने उसे रोग-शय्या पर लिटा दिया। तारा फिर यहां आकर नौकर हो गई और अपने पुत्र के पास रहने का सुख अनुभव करने लगी। वह विजय को भाई कहती थी। विजय दशाश्वमेध घाट पर अपने 'भालू' के साथ पड़ा रहता और भीख मांगकर अपना पेट भर लेता था। वाह रे नियति! किशोरी की मरणावस्था बताकर तारा उसे मां के पास ले आई। एक बार किशोरी ने उसे देखा, पर वे आंखें खुली की खुली रह गईं। विजय लौट आया। घाट पर पड़े-पड़े उसने एक पत्र खोला जिसमें निरंजन ने लिखा था कि तारा की माता से मेरा अवैध सम्बन्ध था। इसका अर्थ हुआ कि तारा सचमुच उसकी बहन थी। उस की धड़कन बढ़ने लगी और धीरे-धीरे उसके हृदय की गति बंद हो गई। आठ बजे 'भारत-संघ' के स्वयंसेवकों ने जुलूस निकाला। इसमें घंटी, मंगल, गाला आदि सम्मिलित थे। घंटी ने देखा कि एक भिखमंगा

बेचारा अनाहार मर गया है। उसका दाह-संस्कार...। इतने में यमुना मोहन को उठाए घाट पर पहुँची। अकस्मात् उसकी दृष्टि विजय के शव पर पड़ी। वह घबराई कि क्या करे। पास ही श्रीचंद टहल रहे थे। उनसे दस रुपए का नोट मिला। घंटी चार स्वयंसेवकों को लेकर आ पहुँची। मंगल भी गाला को लिए आ गया और देखा, एक स्त्री पास ही मलिन वसन में बैठी है। उसका घूंघट आंसुओं से भीग गया है। और, निराश्रय पड़ा है, एक कंकाल!

शैली का नमूना—

तपस्वी (देवनिरंजन) एकांत में तपस्या द्वारा मन को शांत करना चाहता था, परन्तु यहां भी वह रमणी-मूर्ति तपश्चर्या में बाधा के समान उपस्थित हुई।

रमणी चुपचाप समीप चली आई, साष्टांग प्रणाम किया। तपस्वी को क्रोध आया, परन्तु उसे तिरस्कार करने का साहस न हुआ, कहा—उठो, तुम यहां क्यों आई?

किशोरी ने कहा—महाराज, अपना स्वार्थ ले आया—मैंने आज तक संतान का मुंह नहीं देखा।

निरंजन ने गम्भीर स्वर में पूछा—अभी तो तुम्हारी अवस्था अठारह-उन्नीस से अधिक नहीं, फिर इतनी दुश्चिन्ता क्यों?

किशोरी लजा गई। परन्तु तपस्वी भी लड़खड़ा रहा था। भीतर-भीतर एक महान द्वन्द्व चल रहा था। उसने संभल कर कहा—अच्छा, तुमने यहां आकर ठीक नहीं किया, जाओ मेरे मठ में आना, अभी दो दिन ठहर कर। यह एकांत योगियों की स्थली है, यहां से चली जाओ।

व्यवसाय-वाणिज्य तो संभालना ही था, अमृतसर से तार पाकर श्रीचन्द चला गया। 'हर की पौड़ी' के पास किशोरी के लिये मकान और दासी की व्यवस्था करता गया।

उधर निरंजन ने दो दिन तक मन पर अधिकार जमाने की चेष्टा की। परन्तु वह असफल रहा। वह अपने विशाल मठ में लौट आया और महन्ती नये ढंग से देखी जाने लगी। भक्तों की पूजा और चढ़ावे का प्रबन्ध होने लगा। गद्दी और तकिये की देखभाल चली। दो ही दिन में मठ का रूप बदल गया।

एक दिन किशोरी ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, मेरे ऊपर दया न होगी।

निरंजन से न रहा गया। उसने कहा—किशोरी क्या तुम मुझे पहचानती हो?

पहचान हुई। किशोरी की तो दुनिया ही बदल गयी। उसकी समस्त धमनियों में हलचल मच गई। वह प्रसन्नता से बोल उठी—और क्या तुम वही रञ्जन हो?

लड़खड़ाते हुए निरञ्जन ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—हां किशोरी मैं वही रञ्जन हूँ। तुमको पाने के लिये ही जैसे आज तक तपस्या करता रहा, यह संचित तप तुम्हारे चरणों में निछावर है।

संतान, ऐश्वर्य और उन्नति देने की मुझमें जो शक्ति है वह सब तुम्हारी है।

किशोरी भूल गई—सब कुछ भूल गई। उसने ब्रह्मचारी के चौड़े वक्ष पर अपना सिर टेक दिया। (प्रथम संस्करण)

समीक्षा—उपन्यास घटना-प्रधान है और अनेक घटनाओं मे वैचित्र्य का समावेश किया गया है। इससे उपन्यास मे कथानक की उलझन और कृत्रिमता आ गई है। घटनास्थल अनेक है और कथा के विकास के साथ वे बड़ी शीघ्रता से बदलते रहते है—कभी हरद्वार, कभी काशी, कभी वृन्दावन और अयोध्या, कभी लखनऊ और कभी प्रयाग। ऐसे स्थानों पर कुछ नए पात्रों का अकस्मात् प्रवेश हो जाता है। ऐसे पात्र थोड़ी दूर चलकर ओझल हो जाते है। गाला की कथा एक लघु उपन्यास-सी लगती है। उपन्यास में हिन्दू-धर्म का दम्भ और पुरुष-प्रधान हिन्दू-समाज का खोखलापन दिखाया गया है जिसमे नारी का उत्पीड़न होता रहता है। नारीपात्र सभी समाज-संतप्त हैं। पात्रों का सम्यक चरित्र-विकास दिखानेमें उपन्यास-कार सफल नहीं हो सका। पात्रों मे न तो गत्यात्मक व्यक्तित्व हैं (विजय को छोड़कर), और न ही उनमें अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति है। चरित्र-चित्रण नाटकीय और भावात्मक ढंग से हुआ है। पात्रों के पारस्परिक संबंध बड़े रहस्यपूर्ण हैं। अधिकतर पात्र वर्णसंकर है। पात्रों में अन्तर्द्वन्द्विता बढ़ा कर कथा को आकर्षक बनाया गया है। स्त्रीपात्र अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उपन्यास में समाज के अनेक पक्षों और संस्थाओं पर प्रकाश डाला गया है—साधु-सन्त, सेवा-समितियां, विद्यार्थी, वेश्या, पादरी, यात्री, पुजारी, आर्यसमाज और सनातन धर्म के कार्यकर्त्ता, ईसाई और सूफी, आस्तिक और नास्तिक, गृहस्थ और विरक्त। परन्तु पुरुष और स्त्री की वासनाओं को कुछ अधिक उभार कर रखा गया है। समाज के आर्थिक और व्यक्तिगत संतुलन के परिणामों पर विचार नहीं किया गया। नारी के प्रेम-पक्ष का ही चित्रण हो पाया है। समाज में स्त्री की स्थिति क्या हो, इसका संकेत स्पष्ट है। प्रसाद व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के पोषक हैं। स्वातन्त्र्य का आधार संयम है। किशोरी और श्रीचन्द के विवाहित जीवन द्वारा विवाह-संस्था की त्रुटियों को दिखाया गया है। "जो कहते है अविवाहित जीवन पाशव है, उच्छृंखल है, वे भ्रान्त है।"—विजय। प्रसाद जी ने प्रसंगवश विवाह (जिसे वे हृदयों का सम्मिलन कहते हैं), वर्ण-व्यवस्था (जिसमें विशुद्ध कुछ भी नहीं है, सर्वत्र संकरता है), पाप-पुण्य, कर्मफल, सामाजिक विषमता आदि अनेक विषयों पर अपना स्पष्ट मत दिया है। उनका कहना है कि हिन्दू धर्म निषेधात्मक है—यह न करो, वह न करो; इसलिए उसमें कुछ खोखलापन आ गया है। भारत के बड़े-बड़े तीर्थों पर घटनाएँ घटित करने में लेखक का अभिप्राय

स्पष्ट है। 'कंकाल' का विशेष उद्देश्य है इस सड़े-गले समाज पर चोटें लगाना और उसके व्यंग्य बहुत स्पष्ट और चुटीले हैं। प्रसाद के निष्कर्ष नवयुग के पथ-प्रदर्शक हैं। उपन्यास में प्रकृति के दृश्यों का संश्लिष्ट चित्रण हुआ है। नियति का हाथ सर्वत्र दिखाई देता है। निरंजन का मठाधीश हो जाना, गाला को डाके का धन मिलना, मोहन का श्रीचन्द का दत्तक पुत्र हो जाना, मंगल और विजय का ठोकरें खाना सब नियति का खेल है। भाषा और शैली कौशलपूर्ण है। दे० 'प्रसाद के उपन्यास' भी।

कठ[1]—आत्मा की उपलब्धि तर्क अथवा बुद्धिवाद से नहीं हो सकती।

—(**रहस्यवाद**, पृ० २५)

[कठोपनिषद् यजुर्वेद की एक शाखा है। कठ मूलतः इस शाखा के आचार्य का नाम था।]

कठ[2]—कठ, पांचाल, काशी और कोशल में परिषदें थीं जो अद्वैतवाद और आनन्द की उपासक थीं।

—(**रहस्यवाद**, पृ० २५)

[दिल्ली के आस-पास का प्रदेश जो पंचनद और पांचाल के बीच मे पड़ता है।]

कण्व— (वनमिलन)

[वैदिक युग के एक ऋषि जिन्होंने शकुन्तला को अपनी पुत्री की तरह पाला-पोसा था। इनका आश्रम बिजनौर के पास था।]

कण्ववंश— —**इरावती**

[वैदिक ऋषि कण्व से काण्व नाम का एक ब्राह्मण कुल।]

कण्हपा—सिद्ध। शैवागम की अनुकृति में आनन्द-भावना का प्रचार किया।

—(**रहस्यवाद**, पृ० ३६)

[सहजयानी बौद्धों के गुरु, चौरासी सिद्धों में प्रसिद्ध कवि, कृष्णपाद।]

कथा-प्रसंग—'अजातशत्रु' नाटक की भूमिका जिसमें बुद्ध के ऐतिहासिक काल से आरंभ करके नंदवंश के पतन तक का विवरण बौद्ध, जैन और पौराणिक इतिहास के आधार पर दिया गया है और उसमें मगध, कोशल, कौशाम्बी तथा अवन्ती के बिम्बसार, प्रसेनजित, उदयन और प्रद्योत तथा उनके राजवंशों का सप्रमाण कथा-सूत्र उपस्थित किया गया है ताकि नाटक में वर्णित घटनाओं की ऐतिहासिकता को ठीक-ठीक आंका जा सके। —**अजातशत्रु**

कथा-सरित्सागर[1]—भारत के सहस्र-रजनी-चरित्र कथा-सरित्सागर का नायक उदयन ही का पुत्र नरवाहनदत्त (विष्णु-पुराण का अहीनर) था। काश्मीर-राज अनन्तदेव के राज्यकाल में कथा-सरित्सागर की रचना हुई। मूल कथा (वृहत्कथा नाम से) आचार्य वररुचि ने लिखी। —**अजातशत्रु, कथाप्रसंग**

कथासरित्सागर[2]—भारत की यथार्थ-वाद वाली धारा में कथासरित्सागर और दशकुमारचरित का विकास—विरह-गीत—महायुद्धों के वर्णन आते हैं।

—(**आरंभिक पाठ्यकाव्य**, पृ० ८०)

कथा-सरित्सागर[१]—कथासरित्सागर के साहसिक लोग बैताल या विद्याधरत्व की सिद्धि के असम्भावनीय साहस का परिचय देते हैं। —(**सहयोग**)

[गुणाढ्य की पैशाची 'बृहत्कथा' का संस्कृत अनुवाद जिसे काश्मीर के सोमदेव ने ९वीं शती में लिखा। इसमें १२४ तरंग (सर्ग) और २४००० श्लोक हैं। समय १०७० ई०।]

कनिष्क—कनिष्क ने एक चैत्य बनाया था। इस चैत्य के पास ही देवकी की समाधि थी। —**स्कंदगुप्त, ४**

[प्रथम शती में उत्तरपश्चिमी भारत के कुशानवंशीय प्रसिद्ध सम्राट जिन्होंने गान्धार, चीन, तिब्बत आदि देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार किया।]

कन्नौज[१]—कन्नौज में आततायियों ने घोड़े बेचे और साथ इरावती को भी बेचा। —(**दासी**)

कन्नौज[२] —(**प्रायश्चित्त**)

कन्नौज[३]—ग्रहवर्मा और राज्यश्री की राजधानी। नाटक का मुख्य घटना-स्थल। —**राज्यश्री**

दे० 'कान्यकुब्ज' भी।

[प्राचीन नाम कान्यकुब्ज। अब जिला फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) में। इसका महत्त्व ७वीं शती से मुसलमान काल तक रहा। गुर्जर प्रतिहार राजाओं के शासनकाल में यहां के शिल्प ने बड़ी उन्नति की।]

कपिञ्जल[१]—शिवमंदिर में पुजारी। —**इरावती, ३**

कपिञ्जल[२]—ऊपर से साधु, भीतर से अपने उद्देश्य की सिद्धि में आसक्त, ढोंगी। —(**व्रतभंग**)

कपिलवस्तु—कोशल-नरेश प्रसेनजित की पत्नी शक्तिमती यहीं की शाक्य-दासी-कुमारी थी। विरुद्धक ने यहां शाक्यों का जन-संहार किया। —**अजातशत्रु**

[शाक्यों की राजधानी, महात्मा बुद्ध से दो-तीन सौ वर्ष तक इसका महत्त्व बना रहा। वर्तमान भुइला।]

कपिशा[१]—कपिशा हुई थी लाल रण-रंगिनी का पानी पान कर।

—(**शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण**)

कपिशा[२]—इस प्रदेश को श्वेत हूणों ने पदाक्रान्त कर लिया।

—**स्कन्दगुप्त, १**

कपिशा[३]—भारतीय प्रदेश जिसे मुसलमानों ने वश में कर लिया।

—(**स्वर्ग के खंडहर में**)

[हिन्दूकुश पर्वत के दक्षिण में एक नदी = स्वर्णरेखा। कपिशा का अर्थ है लाल। नदी के नाम पर प्रदेश का नाम।]

कब—१० पंक्तियों की लघु कविता। 'शून्य हृदय में प्रेम-जलद-माला कब फिर घिर आवेगी?' यह कली जो मधु से रिक्त होकर सूख रही है कब खिलेगी? इन आंखों में तुम्हारी छबि कब आ बसेगी? मनमयूर कब नाच उठेगा? मेरे मन की रूखी सिकता को आर्द्र करने, मेरी कामनाओं को तृप्त करने, कब तक तुम्हारे प्रेम की सरिता आवेगी?

—**झरना**

कबीर—कबीर की 'शून्य महलिया' का सम्बन्ध छान्दोग्य के शून्य आकाश, बौद्धों के शून्य और आगमों की शून्य भूमिका से है, शाम देश से नहीं,—यह सेमेटिक प्रभाव नही है।

—(**रहस्यवाद, पृ० ३५**)

कबीर की तरह सिद्धों ने भी वेद, पुराण और आगमों का तिरस्कार किया। —(**रहस्यवाद, पृ० ३७**)

कबीर रहस्यवादी सिद्धों की परम्परा में हैं। कबीर मे विवेकवादी राम का अवलम्ब है। 'साधो सहज समाधि भली' इत्यादि मे सिद्धों की सहज भावना है। कवित्व की दृष्टि से भी कबीर पर सिद्धो की कविता की छाया है। —(**वही**)

कबीर ने कुछ रहस्यवाद का लोकोपयोगी अनुकरण आरम्भ किया था, उनके विवेकवाद ने उसे दबा दिया।

—(**आरंभिक पाठ्यकाव्य, पृ० ८१**)

कबीर ने निर्गुण, समन्वयकारक, सुधारक राम की प्रतिष्ठा की।

—(**वही, पृ० ८२-८३**)

खड़ी बोली को कहीं-कहीं अपनाया।

—(**वही, पृ० ८३**)

[हिन्दी के प्रसिद्ध निर्गुण ज्ञान-मार्गी सन्तकवि जो अधिकतर बनारस में रहे। समय सं० १४५६-१५७५ वि०।]

कमल—कहानी का प्रमुख पात्र। प्रारम्भ में विलासी, बाद में कर्मशील बन गया। समाज से डरता था और आत्महत्या करने की सोचता था। —(**विजया**)

कमला[१]—किशोर की पत्नी। मातृस्नेह से भरी हुई सोचने लगी कि हमारे बच्चों को देख कर अघोरी को मोह हो गया। —(**अघोरी का मोह**)

कमला[२]— —(**उर्वशी चम्पू**)

कमला[३]—(कमलावती)

मैं भी थी कमला,
रूप-रानी गुजरात की।

गुजरात नरेश हारकर भाग गया। यह अलाउद्दीन के रनिवास में पड़ी और भारतेश्वरी बनी। —(**प्रलय की छाया**)

कमला[४]—राज्यश्री की सखी; मन्दिर में राज्यश्री के मूर्च्छित होने के समय साथ थी। बन्दी गृह में भी साथ थी।

—**राज्यश्री, १-७, २-४**

कमला[५]—भटार्क की जननी; उसका वात्सल्य विवेक-शून्य नही है। वह भटार्क के राजद्रोही कार्यों का तीव्र विरोध करती है। भटार्क की आंखें खोलना कमला ही का काम है। कमला में असीम जीवन-शक्ति है। वह भग्न हृदय में भी उत्साह और आशा भर देती है। कमला आदर्श माता है। उसका उद्देश्य महान् है और उसमें कर्तव्य के प्रति बड़ी दृढ आस्था है। —**स्कन्दगुप्त**

कमलापुर—कमलापुर के निकलते हुए करारे को गंगा तीन ओर से घेर कर दूध की नदी के समान बहती थी। 'ग्राम गीत' की कथा यहीं से सम्बद्ध है।

—(**ग्रामगीत**)

कमलो—रामेश्वर के तीन बच्चे थे। मिन्ना सब से बड़ा था। उससे दो बरस

छोटा रञ्जन था और दो साल की बेटी कमलो थी । 'मां. . लाल' कहती तो बड़ी प्यारी लगती थी । लैला ने मूंगे की माला कमलो को पहना दी और उसका मुंह चूमती हुई चली गई ।

—(आंधी)

कम्बर—मलाबार में अब भी कम्बर के रामायण का छाया-नाटक होता है ।

—(नाटकों का आरम्भ, पृ० ६०)

[तामिल साहित्य में इनका नाम कम्बन् है । इन्होंने ११वीं शती में १०५०० वृत्त कविताओं से पूर्ण रामायण महाकाव्य की रचना की ।]

कर रहे हो, नाथ, तुम जब विश्वमङ्गल कामना—चन्द्रलेखा चैत्य से प्रार्थना करती हुई गाती है । हे नाथ, आप जब विश्व कल्याण के लिए चिन्तित हैं तो हमें क्या चिन्ता, क्या दुःख, क्या कष्ट । हे कर्णधार ! सँभालकर पतवार अपनी थामना ।

—विशाख २-६

करुण-क्रन्दन—सर्वप्रथम इन्दु कला ४, खण्ड १, किरण ४ (अप्रैल १९१३) में प्रकाशित कविता । इसमें कवि जीवन के झंझटों से त्रस्त होकर भगवान् से करुणा के लिए विनय करता है । वह मानसिक विप्लवों से मुक्ति चाहता है । हम अधम हैं, पापी हैं, पर 'गुण जो तुम्हारा पार करने का उसे विस्मृत न हो ।' हम दुःखों से घिरे है, सुख में तो तुम्हें याद नहीं किया , पर अब जब कि कुछ सूझता ही नहीं और जब कि "है बुद्धि चक्कर में भँवर सी घूमती उद्वेग में", तो तेरे बिना हमारा कौन है ?

—कानन-कुसुम

करुणा—दे० करुणावाद भी ।

करुणा प्रसादजी की कृतियों का मुखर स्वर है । करुणा के अन्तर्गत वे सहानुभूति, स्नेह, विश्वप्रेम, कर्तव्य-परायणता आदि सब मानवीय धर्मों को लेते हैं ।

'विशाख', 'राज्यश्री' और 'अजातशत्रु' में प्रसाद ने करुणा को एक सम्पूर्ण जीवन-दर्शन के रूप में स्वीकार किया है । प्रेमानन्द, दिवाकर-मित्र और गौतम इस दर्शन के व्याख्याता हैं ।

मूलगंध कुटी विहार में भी बुद्ध की करुणा का गुण-गान किया गया है । एवं

'भुनती वसुधा, तपते नग
दुखिया है सारा अग-जग
कटक मिलते हैं प्रति पग
जलती सिकता का यह मग
बह जा बन करुणा की तरंग ।'

—(अशोक की चिन्ता)

प्रसाद ने प्रायः स्त्रियों में करुणा की भावना मानी है । चन्द्रलेखा मूर्तिमती करुणा है, मल्लिका और राज्यश्री भी । 'ममता' शीर्षक कहानी में ममता, 'जहाँनारा' में जहाँनारा करुणा की मूर्ति हैं ।

विश्व भर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा है, जो प्राणिमात्र में सम दृष्टि रखती है । (गौतम) ।

—अजातशत्रु १-२

दे० गोधूली के राग-पटल में
स्नेहांचल फहराती है।
निष्ठुर आदि-सृष्टि पशुओं की
विजित हुई इस करुणा से।
मानव का महत्त्व जगती पर
फैला अरुणा करुणा से।।
(गौतम) —अजातशत्रु, १-२

करुणा से स्वर्ग। दे० स्वर्ग है नहीं दूसरा और —अजातशत्रु, पृ० १२२

करुणा की विजय हो। (गौतम)
—अजातशत्रु, पृ० १३०

भू-मण्डल पर स्नेह का, करुणा का, क्षमा का शासन फैलाओ। प्राणिमात्र में सहानुभूति को विस्तृत करो।
(गौतम) —अजातशत्रु, पृ० १३२

दे० अब भी चेत ले तू नीच।
दे० करुणा कादम्बिनि बरसे।

त्रस्त पथिक, देखो करुणा विश्वेश की
खड़ी दिलाती तुम्हें याद हृदयेश की
शीतातप की भीति सता सकती नहीं
दुख तो उसका पता न पा सकता कहीं।
भ्रान्त-शान्त पथिकों का जीवन-मूल है।
—(करुणा कुञ्ज)

दे० करुणावाद।

(व्यापक अर्थ में)
नाथ, स्नेह की लता सींच दो,
शान्ति जलद वर्षा कर दो।
हरी-भरी हो सृष्टि तुम्हारी,
करुणा का कटाक्ष कर दो।।
(प्रार्थना)
—जनमेजय का नागयज्ञ, ३-६

नम्रते ! करुणे ! तुझे प्रणाम।
—(धर्मनीति)
—दे० पत्थर की पुकार (अन्त)
—दे० साहित्य।

करुणा[२]—शान्तिदेव की बहिन। शान्तिदेव की मृत्यु के पश्चात् लालसा उसकी सम्पत्ति पर अधिकार कर लेती है, संतोष उसकी दयनीय दशा को देख उसकी सहायता करता है। क्रूरता और दंभ उन्हें ठगना चाहते है, पर विवेक उनकी रक्षा करता है। करुणा का जीवन सात्विक नारी के कष्टों की कथा है।
—कामना

करुणा कादम्बिनि बरसे—नाटक का भरत-वाक्य। दुःख से जली धरणी प्रमुदित हो, प्रेम और दया का प्रचार हो, कलह मिटे और शान्ति का राज्य हो।
—राज्यश्री, ४-४

करुणा की विजय—दो अनाथ भाई-बहनों की दुःख-गाथा। मोहन १३ वर्ष का था, रामकली ३ वर्ष की थी। चने बेच कर वे डेढ़ दो पैसे में अपना पेट भर लेते थे। किन्तु अब उसने अदृष्ट से हार मान ली थी। कुछ थोड़ा-सा खा-पीकर दोनों कुएँ की जगत पर सो गए। एक ही मार्ग सामने था—भीख मांगो। लेकिन मोहन का स्वाभिमान उसे भीख न मांगने देगा। तब मरो। करुणा, दरिद्रता और अभिमान अपना-अपना काम करने लगे। एक धमाका हुआ और रामकली को कुएँ ने अपनी शीतल गोद में ले लिया। मोहन को बंदी

बनाकर न्यायाधीश के सामने लाया गया। करुणा ने अपना प्रभाव डाला। मोहन को मुक्त कर दिया गया।

देश की एक महत्त्वपूर्ण समस्या इस कहानी में रखी गई है। नगर के व्यवस्थापक का, राष्ट्र का, यह कर्तव्य है कि वह असहाय, निर्धन और निर्बोध बच्चों की रक्षा करे। कहानी साधारण है, शिल्प का नितान्त अभाव है, कोई अंग पूर्ण नही है, पर दरिद्रता और करुणा का प्रसंग मार्मिक है।

—प्रतिध्वनि

करुणा-कुञ्ज—पहले इन्दु कला ३, किरण ४, (मार्च १९१२) में प्रकाशित ; प्रसाद की प्रतिनिधि कविताओं में एक। हे पथिक ! तुम किधर भटकते फिरते हो—यह क्लान्त शरीर, यह भारी बोझा, यह छल-छालों से छिले पैर, और फिर भी मृग-मरीचिका के पीछे चले जा रहे हो। इस वसन्त में मलयज, कुसुम-कली, पिक-पुंज, भ्रमर को नही देखते; वर्षा के मधुर हृदय, शरद-शर्वरी, शिशिर-प्रभंजन तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं ! तुम व्याकुल होकर चले ही जा रहे हो।

त्रस्त पथिक देखो करुणा विश्वेश की
शीतातप की भीति सता सकती नही।
भ्रांत शान्त पथिकों का जीवन-मूल है
इसका ध्यान मिटा देना सब भूल है।

—कानन-कुसुम

करुणालय—गीति-रूपक, इन्दु, मार्च १९१३ में प्रकाशित, 'चित्राधार' प्रथम संस्करण में सम्मिलित; प्रकाशक—भारती भण्डार, बनारस सिटी; २६ पृष्ठ, ३२२ पंक्तियां। पुरुषपात्र नौ और स्त्री पात्र दो हैं। प्रसाद जी का यह दृश्य-काव्य गीति-नाट्य के ढंग पर लिखा गया है। इसमें हरिश्चन्द्र-सम्बन्धी पौराणिक कथा है जिसका संकेत 'ब्रह्मर्षि' में हुआ है। पुस्तक पांच दृश्यों मे समाप्त होती है। प्रथम दृश्य में अयोध्या-नरेश हरिश्चन्द्र अपने सेनापति ज्योतिष्मान के साथ नौका-विहार करते दृष्टिगत होते हैं। अचानक उनकी नौका जल में स्तब्ध हो जाती हैं। राजा को भ्रष्ट-प्रतिज्ञ देख कर वरुण देवता के कुपित होने पर ऐसा होता है। हरिश्चन्द्र ने अपने पुत्र रोहित को वरुण की भेंट करने की प्रतिज्ञा की थी, किन्तु वे ऐसा न कर सके। अन्त में वरुण के कुपित होने पर राजा पुत्र की बलि देने का निश्चय करते हैं। रोहित यह जान कर अपनी सुरक्षा के लिए अजीगर्त के आश्रम में चला जाता है और उसके मँझले पुत्र शुनःशेफ को सौ गायों के बदले में क्रीत करके ले आता है। यज्ञशाला में रोहित के स्थान पर शुनःशेफ के बलि देने का आयोजन होता है। यूप से बांध कर उस पर ज्यों ही शस्त्र-प्रहार का उपक्रम होता है उसी समय एक दासी (सुव्रता) न्याय की भीख मांगती यज्ञशाला में आ उपस्थित होती है। उसी समय महर्षि विश्वामित्र भी

आ उपस्थित होते हैं। वे कुल-गुरु वशिष्ठ को ऐसा घृणित नरमेध करने से विरत करने की चेष्टा करते हैं। दासी शुनःशेफ और विश्वामित्र को पहचान लेती है; वह अपने को शुनःशेफ की माता और विश्वामित्र की गन्धर्व विवाहिता पत्नी बताती है, जिसे विश्वामित्र ने जंगल में छोड़ दिया था और वहीं शुनःशेफ का जन्म हुआ था। सुव्रता अपने पुत्र को छोड़ दासी बन गई थी। विश्वामित्र भी दोनों को पहचान लेते हैं। वरुण प्रसन्न होते हैं। शुनःशेफ का बन्धन आप से आप खुल जाता है। पुत्र अपने माता और पिता से मिलता है। बिछुड़े हुए पति पत्नी फिर एक बार मिल जाते हैं। शायद यह सब उस करुणालय की कृपा का ही फल था।

शैली का नमूना—

अजी०—

प्रिये! एक भी पशु न रहे अब पास में,
तीन पुत्र, भोजन का कौन प्रबन्ध हो,
यह अरण्य भी फल से खाली हो गया,
केवल सूखी डाल, पात फैले, अहो!

तारिणी—

दूंगी नहीं कनिष्ठ पुत्र को मैं कभी।

अजी०—

और ज्येष्ठ को मैं भी दे सकता नहीं।

रोहि०—

तो मध्यम सुत दे देना स्वीकार है—
बलि देने के लिए एक नरमेध में?

विश्वा०—(वशिष्ठ से)

कहो कहो इक्ष्वाकु वंश के पूज्य हे!
आः महर्षि! कैसा होता यह काम है?
हाय! मचा रखा क्या यह अन्धेर है?
क्या इसमें है धर्म? यही क्या ठीक है?
किसी पुत्र को अपने बलि देते कभी?
नहीं! नहीं! फिर क्यों ऐसा उत्पात है!

समीक्षा—

इसमें रोहिताश्व की एक प्रार्थना है जिसमें १८ पंक्तियां है जो सारी कृति में श्रेष्ठ है और अनुभूति-प्रधान हैं। प्रस्तुत काव्य में बौद्ध धर्म की अहिंसा का पर्याप्त प्रभाव है।

अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया,
रे मनुष्य कितने नीचे गिर गया
आज प्रलोभन भय तुझ से करवा रहे,
कैसे आसुर कर्म अरे तू क्षुद्र है
और धर्म की छाप लगाकर मूढ़ तू
फंस आसुरी माया में हिंसा जगी।

मानवता के कल्याण का स्वर भी प्रबल रूप से इसमें विद्यमान है। रूपक में विश्व-कल्याण की भावना व्याप्त है। तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजों पर प्रकाश डाला गया है। शुनःशेफ और रोहित दोनों पुत्रों के आदर्श भिन्न है, पर दोनों के सिद्धान्त का नैतिक आधार है। इसमें नाटकीय अंश कम है, कहानी तत्त्व-प्रधान है। चरित्र-चित्रण का विशेष आग्रह नहीं है। कथा-प्रवाह में कोई पात्र अपना व्यक्तित्व उभार नहीं पाता। इन्द्र के आत्मवाद की व्याख्या करने की चेष्टा की गई है।

[हरिश्चन्द्र निःसन्तान थे तो उन्होंने मनौती मानी थी कि पुत्र होने पर मैं उसे वरुण देव की बलि चढ़ा दूंगा।]

करुणावाद—मानवी सृष्टि करुणा के लिए है, यों तो क्रूरता के निदर्शक हिंसक पशु जगत् में क्या कम है। (पद्मावती)

—अजातशत्रु, १-१

राजन् !....विश्व भर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा है जो प्राणीमात्र में समदृष्टि रखती है।

गोधूली के राग-पटल में
स्नेहाञ्चल फैलाती है।
....मानव का महत्त्व जगती में,
फैला अरुणा करुणा में।

(गौतम) **—अजातशत्रु, १-२**

दे० आदेश, झरना

दे० करुणालय

त्रस्त पथिक, देखो करुणा विश्वेश की।

—कानन कुसुम

तुम्हारी करुणा ने प्राणेश
बना करके मनमोहन वेश
दीनता को अपनाया
उसी से स्नेह बढ़ाया।

दे० तुम, झरना

किसी मनुज का देख आत्म बल
कोई चाहे कितना ही
करे प्रशंसा, किन्तु हिमालय-सा
भी जिसका हृदय रहे
और प्रेम, करुणा, गंगा-यमुना
की धारा बही नही
कौन कहेगा उसे महान् ? न
मन में उसमें अन्तर है।

—प्रेमपथिक, पृ० २२

दुःख-परितापित धरा को
स्नेह-जल से सींच।
स्नान कर करुणा-सरोवर
धुले तेरा कीच।

—राज्यश्री, ३-२

'प्रायश्चित' और 'करुणालय' की कथाएँ करुणापूर्ण हैं।

करुणा-कादम्बिनि बरसे
दुःख से जली हुई यह धरणी प्रमुदित
हो सरसे।

—राज्यश्री (अन्त)

करुणे ! इस दुःखपूर्ण धरणी को अपनी क्रोड़ में चिरकालिक शान्ति दे, विश्राम दे। (दिवाकर)

—राज्यश्री पृ० ४६

मान लें क्यों न उसे भगवान् ?
नर हो या किन्नर हो कोई निर्बल या
बलवान्,
किन्तु कोश करुणा का जिसका हो पूरा,
दे दान।
...विश्व वेदना को जो सुख करता है
आह्वान।

(प्रेमानन्द) **—विशाख, २-६**

शीतल हो ज्वाला की आंधी
करुणा के घन छहरें
दया दुलार करे पल भर भी
विपदा पास न ठहरे। (देवकी)

—स्कन्दगुप्त, पृ० ६७-६८

दे० 'करुणा' भी।

'विशाख' में चन्द्रलेखा की दया-भावना और करुणा ही नरदेव की नृशंमता का अन्त करती है।

'अजातशत्रु' मे अजातशत्रु, प्रसेन-जित और विरुद्धक की नृशंसता और क्रूरता मल्लिका की करुणा से परास्त होती है।

कर्ण— —(सज्जन)

[कुन्ती का विवाह से पूर्व उत्पन्न पुत्र, कौरवों की सेना का वीर महा-रथी ।]

कर्णदेव—गुर्जर के राजा। कमला रानी के पति जो उसके मौन्दर्य पर प्रणत थे। 'गुर्ज्जरेश पांवड़े बिछाते रहे पलकों के ।' वे सच्चे राजपूत थे ।

—(प्रलय की छाया)

[गुजरात का बघेल राजा जिमे अलाउद्दीन खिलजी ने १२९७ ई० में हरा कर भगा दिया ।]

कर्णिक—तर्कशास्त्री (राक्षस, कार्नेलिया)

—चन्द्रगुप्त, ४-७

कर्म¹—कर्म का स्वरूप हिसात्मक है । कर्म अन्तर्मुखी होना चाहिए ताकि व्यक्तित्व का विकाम हो । उसमें व्यष्टि का आग्रह होना चाहिए ताकि सब का हित हो । कर्म उपभोग की वस्तु नही वरन् त्याग और सेवा की वस्तु है ।

निर्जन में क्या एक अकेले
तुम्हें प्रमोद मिलेगा।
नहीं इमी से अन्य हृदय का
कोई सुमन खिलेगा।।

कामायनी में असत् कर्म का वर्णन अधिक है, सत्कर्म का थोड़ा । दूसरों के सुख से सुखी तथा दुःख से दुःखी होना ही सत्कर्म है ।

अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।

कर्म का अर्थ ही है यज्ञ, परोपकार, आत्मविस्तार । जो व्यक्ति समष्टि के सुख में बाधक होता है, वह मनु के समान घायल होता है ।

दे० कामायनी ।

कर्म²—जो अपने कर्मो को ईश्वर का कर्म ममझ कर करता है, वही ईश्वर का अवतार है । (कमला)

—स्कन्दगुप्त, ४-७

कर्म की जाँच—हम कर्म की जांच परि-णाम से करते हैं। (प्रपंच बुद्धि) ।

—स्कन्दगुप्त, २-२

कर्मफल—यह एक व्यापक और भयानक मनोवृत्ति बन गई है कि मेरे कष्टों का कारण कोई दूसरा है; और मनुष्य अपने कर्मों को सरलता मे भूल जाता है । (देवनिवास) —(नीरा)

—कर्मफल लाभ एक बल है स्वयं ।

—महाराणा का महत्त्व

कर्मवाद—आर्य्यों का कर्मवाद संसार के लिए विलक्षण कल्याण-दायक है । ईश्वर के प्रति विश्वास रखते हुए भी उसे स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाता है । (ज्ञानदत्त) । —कंकाल, पृ० ४३

मनुष्यों को पाप-पुण्य की सीमा में

रखने के लिए इससे बढ़ कर कोई उपाय जगत को नहीं मिला। (सुभद्रा)

—कंकाल, पृ० ४४

हम हिन्दुओं का कर्मवाद में विश्वास है। अपने-अपने कर्मफल तो भोगने ही पड़ेंगे। (सरला) **—कंकाल, पृ० १३१**

दे० जीवन-दर्शन भी।

कलकत्ता[१] **—कंकाल**

कलकत्ता[२]—यहां का कार्निवाल का मैदान, सुरम्य बोटानिकल उद्यान जहा लाल कमलिनी से भरी एक छोटी-सी झील है। **—(छोटा जादूगर)**

कलकत्ता[३]—श्यामलाल कलकत्ता में रहते थे। सुखदेव चौबे ने भी वहां 'थेटर' की दरबानी की। मधुबन और रामदीन वहाँ गए और लोको आफिस में कोयला ढोने की नौकरी कर ली। फिर मधुबन रिक्शा चलाता रहा। यहाँ बदमाशों के अड्डे हैं। भाई, यहां तो छीना-झपटी चलती है। बीरू और ननी गोपाल से यहीं उसकी भेंट हुई।

बूढ़े रामनाथ पर बेदखली के समय तहसीलदार ने एक अभियोग यह भी लगाया कि यह नीचों को कलकत्ता-बम्बई कमाने जाने के लिए उकसाता है, जिससे लोगों को हलवाहे और मजदूर नहीं मिलते।

रामजस को कलकत्ता जाने की धुन थी। **—तितली**

कलकत्ता[३]—कहानी का घटनास्थल। इसके पास मटियाबुर्ज का उल्लेख हुआ है। **—(नीरा)**

कलकत्ता[३]—सूरदास का बालक—लोगों ने उसे बताया—कहीं कलकत्ता भाग गया था। **—(बेड़ी)**

कलकत्ता[३]—मोटर ड्राइवरी की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध। **—(भीख में)**

कलकत्ता[७]—महानगरी, जिसमें विशाल भवन और राजमार्ग हैं। व्यापार-केन्द्र।

—(मदन मृणालिनी)

[भारत का सबसे बड़ा नगर; १६९० ई० से पहले यहां पर कालीघाट, सूतानाटी और गोविन्दपुर नाम के तीन गांव थे। अँग्रेजों ने किला बनवाया। १९११ ई० तक अँगरेजी राज्य में भारत की राजधानी, बन्दरगाह; जनसंख्या १९३१ ई० में १९ लाख।]

कलश—पाटलिपुत्र का धन-कुबेर; नन्दन का पिता, धन का उपासक सेठ जो अपनी विभूति के लिए सदैव सशंक रहता है। उसे राजकीय संरक्षण तो था ही, दैवी रक्षा से भी अपने को सम्पन्न रखना चाहता था। इस कारण उसे नंगे साधु (कपिञ्जल) पर अधिक भक्ति थी। तभी तो उसके कहने पर कलश ने राधा को घर से निकाल दिया। **—(व्रतभंग)**

कला[१]—प्रतीकात्मक कहानी जिसमें रूप पर रस की विजय दिखाई गई है। कला विद्यालय की सुन्दरी छात्रा थी। सब की दृष्टि उस सरल बालिका की ओर घूम जाती थी, परन्तु रूपनाथ और रसदेव उसे बहुत चाहते थे। रूपनाथ कला के रूप का, उसके अधरों की लहरों और भवों की रेखाओं का उपा-

सक था। रसदेव को उसके हृदय के सौन्दर्य का ध्यान है। अपनी शिक्षा समाप्त कर जब कला चली गई तो उसकी स्मृति को रूपनाथ ने चित्रों द्वारा बनाए रखने का प्रयत्न किया। कुछ ही दिनों में वह कुशल कलाकार हो गया, पर वह कला के रूप को ठीक-ठीक चित्रित करने में असमर्थ रहा। रसदेव ने कठोर साधना के बाद कला की स्मृति के आत्मपक्ष को कविता द्वारा अभिव्यक्त किया। उसी नगर के रंगमञ्च पर कला का प्रदर्शन हुआ। उसने रसदेव की 'स्मृति' नामक कविता गाकर सुनाई और नृत्य गीत के अन्त में अपनी श्रद्धांजलि दूर खड़े कंगाल कवि (रसदेव) के चरणों में अर्पित की। रसदेव ने अपना गर्व-स्फीत सिर झुका दिया।

लेखक ने एक कठिन साहित्य-समस्या को सुलझाया है—कला का संबंध रूप से है अथवा रस से ? कहानी-कला की दृष्टि से इस कहानी का कोई महत्त्व नहीं। प्रसाद जी का यह दृष्टिकोण कि 'काव्यकला' चित्रकला से अधिक श्रेष्ठ हैं, स्पष्ट है। **—आकाश-दीप**

कला[२]—नवीन इन्दुकला-सी वह आलोकमयी और आंखों की प्यास बुझाने वाली थी। **—कला**[१]

कला[३]—कला गीतवाद्यादिका।
(अभिनव गुप्त)

कलयति स्व स्वरूपा वेशेन तत्तद् वस्तु परिच्छिन्नत्ति।
(क्षेमराज, शिवसूत्रविमर्शिनी)
—काव्य और कला, पृ० १२-१५

कलाएँ ६४ हैं। (दण्डि, ३-१७१)
कलाएँ कामाश्रय है— दण्डि,
(काव्यादर्श, ३-१६२)
काव्य और कला भिन्न वर्ग में—
(भरतनाट्य, १)
काव्य का विषय कलाश्रय भी है।
(भामह)
कला कर्तृशक्ति का नाम है।
(भोजराज, तत्त्व प्रकाश)

कलाधर—आरम्भ में जो कविताएँ व्रजभाषा में लिखी थीं उनमें प्रसादजी का उपनाम।

[शिव के उपासक का यह नाम ठीक ही है—पूरा नाम कलाधरप्रसाद = (जय) शंकर प्रसाद हो सकता है।]

कलावती—वह पढ़ी-लिखी नहीं है, पर है प्रगल्भ। पति पर व्यंग्य करने के लिए आधुनिका नारी बड़ी निर्लज्ज, चतुर, और बनी-ठनी रहती है। चीनी की पुतली को वह शिक्षा दी कि पति को मोहित कर लिया। वह सचमुच कलावती पत्नी है। **—(कलावती की शिक्षा)**

कलावती की शिक्षा—दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी साधारण कहानी। श्यामसुन्दर उपन्यास समाप्त करना चाहता हैं, परन्तु उसकी पत्नी कलावती बत्ती कम करके सोना चाहती है। इस पर थोड़ी-सी कहा सुनी हो गई, पति रुष्ट हो गया। पत्नी ने पान दिया तो वह अनमना-सा बोला—रख दो। कलावती एक चीनी की पुतली लेकर उसे पढ़ाने बैठी—"देखो, लज्जा कभी न

करना, किसी की कृतज्ञ न होना क्योंकि यह दासत्व है, प्रगल्भता का अभ्यास करना, अपना रूप बदलती रहा करो, समझी ना !" श्यामसुन्दर हँस पड़ा। दूसरे क्षण, श्यामसुन्दर के उपन्यास की नायिका की तरह, वह पति के गले लगी हुई थी। —नारी को प्रतिष्ठित स्थान दिलाना इस कहानी की मूल प्रेरणा है। कथानक का अभाव होते हुए भी कहानी रसपूर्ण है। प्रारंभ और अन्त नाटकीय है। —प्रतिध्वनि

कलिका—दे० सरमा।

वपुष्टमा की परिचारिका के रूप में सरमा। —**जनमेजय का नागयज्ञ ३-२**

कलिङ्ग—नतमस्तक आज हुआ कलिंग।
—(**अशोक की चिन्ता**)

[दक्षिणी उड़ीसा, गोदावरी और इन्द्रावती के बीच का प्रदेश। दे० अशोक, मणिपुर।]

कलुआ—कुत्ते का नाम। वह भी विलासिनी के स्नेह के कारण उसकी कुटी में पड़ा रहता। —(**चूड़ीवाली**)

कल्पना—दे० कल्पना-सुख।

कल्पना-सुख—सर्वप्रथम इंदु, किरण ५, मार्गशीर्ष, '६६, में प्रकाशित कविता। इसमें कल्पना का महत्त्व वर्णित किया गया है। कल्पना को सम्बोधित करके कवि ने उसे सुख-यान और जीवन-प्राण कहा है। प्रत्यक्ष, भूत और भावी को रंगने की शक्ति इसमें है। सारा संसार कल्पना की छाया में विश्राम करता है। वह व्याकुल मनुष्य की मित्र है। आशा और स्फूर्ति का संचार इसी के द्वारा होता है। मनुष्य को यही आकर सुख मिलता है।

तव शक्ति लहि अनमोल
कवि करत अद्भुत खेल।
लहि तृण सबिंदु तुषार
गुहि देत मुक्ता हार॥

कल्पना को सर्वस्व मानने वाले इस कवि के आगामी चरण का आभास इस कविता से मिलता है। —(**पराग**)

कल्याण-ज्योति—सूक्ष्म रूप से जो कल्याण-ज्योति मानवता में अन्तर्निहित है, मैं तो उसमें अधिक से अधिक श्रद्धा करता हूं। विपथगामी होने पर, वही संकेत करके मनुष्य का अनुशासन करती है, यदि उसकी पशुता ही प्रबल न हो गई हो तो। (प्रज्ञासारथि)
—(**आंधी**)

कल्याणी—नंद की पुत्री, मगध राजकुमारी ; साहसपूर्ण और गौरवशाली व्यक्तित्व। स्वावलम्बन और दृढता के सहारे वह अपने लक्ष्य तक पहुँचती है। उसके सामने दो प्रश्न है—चन्द्रगुप्त से प्रेम-निर्वाह और पर्वतेश्वर से अपने वैवाहिक सम्बन्ध की अस्वीकृति का प्रतिशोध। चन्द्रगुप्त से उसका परिचय बाल्यकाल से है। नन्द की हत्या हो जाने पर उसका प्रेम-स्वप्न भंग हो जाता है। संकटकाल में उसने पर्वतेश्वर की प्राणरक्षा की, लेकिन जब देखा कि वह उसके जीवन का अभिशाप बन गया है तो छुरे से उसकी हत्या कर डालती

है। वह पितृभक्त है। अपने वंश की मर्य्यादा और आत्मसम्मान का उसने सदा ध्यान रखा है और उसकी रक्षा-हेतु उसने आत्मबलि देकर जीवन का अन्त ही कर दिया। उसका जीवन आदि से अन्त तक द्वंद्व एवं दुःख से पूर्ण है। उसके प्रति सबकी सहानुभूति जगाकर प्रसाद जी ने इस चरित्र के निर्माण में सफलता प्राप्त की है। **—चन्द्रगुप्त**

कल्याणी-परिणय—नौ दृश्यों में २१ पृष्ठों का नाटक। सर्वप्रथम नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १७, १९१२ में प्रकाशित, 'चित्राधार' द्वितीय संस्करण में संकलित। बाद में परिवर्तित होकर 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक में सम्मिलित। आरंभ में प्रस्तावना तो नहीं, पर नान्दी है। नायक-नायिका के परिणय के अन्त म भरत-वाक्य की शैली का एक मंगल गान है। संवाद पद्यमय है। कथानक का आधार एक ही घटना है। आरभ में चाणक्य सिल्यूकस पर विजय पाने की चिन्ता में सारे प्रबन्ध का संगटन करते हैं। चन्द्रगुप्त अपने सेनापति चड विक्रम को ग्रीक सेना पर प्रत्याक्रमण करने का आदेश देता है। सिल्यूकस हार जाता है, उसकी पुत्री कार्नेलिया चन्द्रगुप्त पर मोहित होती है। सिल्यूकस मीरिया पर एंटिगोनस की चढ़ाई की सूचना पाकर लौट जाता है। चन्द्रगुप्त से कार्नेलिया का विवाह कर दिया जाता है।

न तो कथानक में नाटकीयता है न ही चरित्रों का विकास दिखाया जा सका है। दो-तीन प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ अवश्य सामने लाई गई हैं। कथाविस्तार के अभाव के कारण इनका भी पूरा चरित्र सामने नहीं आ पाया।

कल्लू[1]—सथिया मुसहरिन का मोटा-सा काला लड़का। उसकी मा मर गई तो मुसहरे उसको ले गए। वह पाठशाला में पढ़ता था। श्रीनाथ उस पर दया करते थे। श्रीनाथ के यहां रामेश्वर जब सपरिवार आए, तो वह बच्चों को बहलाए रखता था। **—(आंधी)**

कल्लू[2]—कल्लू की मां तारा के पास आ जाती। वह कसीदा सीखती थी। **—कंकाल, १-३**

कल्लो—शोरकोट की बालिका। **—तितली**

कल्हण—काश्मीर के पण्डित जिन्होंने राजतरंगिणी की रचना की। **—विशाख, परिचय**

[इनके पिता कश्मीर के राजा हर्ष (१०४८–११०१ ई०) के प्रधान अमात्य थे।]

कवि और कविता—इंदु, श्रावण '६७ में प्रकाशित एक निबन्ध।—कवि अमर होता है। वह मानव हृदय के लिए अभिनव सृष्टि करता है। वह क्लीव को भी कृपाण धारण करा सकता है। वह भाव-जगत् का शिल्पी है।

भावमयी कविता के दो प्रकार हैं—कथामूलक तथा भावमूलक। कथामूलक कविता में कवि सर्वत्र भावमय नहीं हो

सकता, उसे कथा का ध्यान रखना पड़ता है। अलबत्तः किसी-किसी भावनामय स्थल का वह काव्योचित उपयोग कर सकता है। भाव-प्रधान कविता में कथानक का हलका सा सूत्र भी भाव के अनुकूल रखा जा सकता है और स्फुट कविता भी (बिना किसी कथांश के) हो सकती है।

[उक्त प्रकार की कविता के नमूने आगे चलकर प्रसाद ने स्वयं प्रस्तुत किए— जैसे, महाराणा का महत्त्व, प्रेम-पथिक और मुक्तक कविताएँ।]

कविता—कवित्व वर्णमय चित्र है, जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है। अन्धकार का आलोक से, असत्य का सत्य से, जड़ का चेतन से और बाह्य-जगत् का अन्तर्जगत् से सम्बन्ध कौन कराती है?—कविता ही ना! (मातृगुप्त) **—स्कन्दगुप्त, १-३**

कविता करना अनन्त पुण्य का फल है। (मातृगुप्त) **—स्कन्दगुप्त, १-३**

कविता-रसास्वाद—इंदु, कला २, किरण ८, कार्तिक '६७ में प्रकाशित एक निबंध। इसमें बताया गया है कि रसात्मक कविता अलौकिक होती है। कविता का लक्ष्य आह्लाद है (उपदेश नहीं); अतः कविता के आस्वाद के लिए सहृदयता की आवश्यकता है।

कवित्त—'प्रियतम' अथवा 'अनुनय' खड़ी बोली का प्रारंभिक कवित्त है। दे० 'तुम।' दे० मकरन्द-बिन्दु।

कविपुत्र—दे० कालिदास।

कश्यप[1]—इनके कुल में मनु का जन्म।

—उर्वशी-चम्पू, कथामुख

कश्यप[2] **—(वनमिलन)**

कसौटी—'शुद्ध सुवर्ण हृदय है प्रियतम!' इसे तुम विरहाग्नि में तपा कर तिरस्कार और अविश्वास की कसौटी पर कस चुके। इसे तुम्हारे हाथों बेच रखा है। इसका मूल्य है तुम्हारा कृपा-कटाक्ष।

'खरी वस्तु है, कहीं न इसमें
बाल बराबर भी बल है।'

—झरना

कहो—८ पंक्तियां।—प्रियतम! क्या बात है कि आज छन्द व्याकुल है, वाणी मूक है, कंठ गद्‌गद् है, 'ऊँचे चढ़े हुए वीणा के तार मधुप से गूंज रहे।' जीवन-धन, 'बाह्यवियोग, मिलन या मन का, इसका कारण कौन कहो?' **—झरना**

कांगड़ा—तराई, इधर ही ज्वालामुखी तीर्थ है। पहाड़ी दृश्य। —**(भीख में)**

[पंजाब का पहाड़ी प्रदेश ; राजपूत चित्रकला के लिए प्रसिद्ध।]

कात्यायन—दे० वररुचि।

कानन-कुसुम—सं० १९६६ से १९७४ तक की स्फुट कविताओं का संग्रह है; 'चित्राधार' प्रथम संस्करण में सम्मिलित। प्राप्त पुस्तक में ४९ कविताएँ, १२६ पृष्ठ हैं। प्रकाशक हिन्दी पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय। प्रथम संस्करण में ४१ कविताएँ थीं, साहित्य सुमन-माला का तीसरा पुष्प, स्वयं प्रसाद जी द्वारा प्रकाशित। द्वितीय संस्करण में ८ कविताएँ बढ़ाई गयीं। अधिकतर गीतों पर रवीन्द्रनाथ

ठाकुर की 'गीतांजलि' का प्रभाव स्पष्ट है। उसमें अच्छे बुरे सब तरह के कुसुम संगृहीत हैं। प्रेम, प्रकृति आदि पर सुन्दर उद्गार हैं। अधिकतर कविताएँ बाह्य विषय-परक हैं। उल्लास के साथ हलकी-सी विषाद की झलक दिखाई देती है। कविताओं का क्रम इस प्रकार है—प्रभो, वन्दना, नमस्कार, मन्दिर, करुण-क्रन्दन, महाक्रीडा, करुणा-पुंज, प्रथम-प्रभात, नववसन्त, मर्मकथा, हृदय-वेदना, ग्रीष्म का मध्याह्न, जलदावाहन, भक्तियोग, रजनीगंधा, सरोज, मलिना, जल-विहारिणी, ठहरो, बाल-क्रीडा, कोकिल, सौन्दर्य, एकान्त मे, दलित कुमुदिनी, निशीथ-नदी, विनय, तुम्हारा स्मरण, याचना, पतित-पावन, खंजन, विरह, रमणी-हृदय, हां सारथे रथ रोक दो, गंगासागर, प्रियतम, मोहन, भाव-सागर, मिल जाओ गले, नहीं डरते, महाकवि तुलसीदास, धर्मनीति, गान, मकरन्द-विन्दु, चित्रकूट, भरत, शिल्प-सौन्दर्य, कुरुक्षेत्र, वीर बालक, श्रीकृष्ण जयन्ती।

कानीर विहार—रमण्याटवी मे एक स्थान जिसे कश्मीर-नरेश के पिता नरदेव ने नागों से अपहृत करके बौद्ध विहार के लिए दान कर दिया था। **—विशाख**

कान्य-कुब्ज—यवनों ने पंचनद पर अधिकार कर लिया तो मगध सम्राट् को डर हुआ कि कान्यकुब्ज भी हाथ से न जाता रहे। देवगुप्त यहां गए और वीरगति पा गए। **—इरावती**

—दे० कन्नौज। **—राज्यश्री**

[कन्याकुब्ज भी]

काफूर—

अधिकार-क्षुब्ध उस दास ने
अन्त किया छल मे काफूर ने
अलाउद्दीन का, मुमूर्षु सुलतान का. . .
राजमुकुट पहना। —लिया
प्रचण्ड प्रतिशोध निज स्वामी का
मानिक ने, खुसरू के नाम से।

—(प्रलय की छाया)

[मानिक को १००० दीनार में खम्भात (गुजरात) से खरीदा गया। मुसलमान होकर वह काफूर हजार-दीनारी के नाम से जाना गया। बाद में उसे बड़े उच्च पद मिले और उसने अलाउद्दीन के लिए अनेक देश जीते। इतिहास में वर्णित है कि अलाउद्दीन स्वास्थ्य बिगड़ जाने से मरा, मारा नहीं गया। खुसरो नाम का दूसरा व्यक्ति था, वह पहले हिन्दू था, उसका मुसलमानी नाम हसन था, खुसरो उसकी उपाधि थी। वह अलाउद्दीन के बेटे मुबारक का प्रधान मंत्री हो गया। बाद में मुबारक को मार कर सुलतान बन गया।]

काबुल—दे० कलकत्ता।

—(अमिट स्मृति)

—अकबर ने काबुल-यात्रा करने का और वहां से कश्मीर जाने का निश्चय किया। **—(नूरी)**

[अफगानिस्तान की राजधानी। काबुल पहले मुगल-राज्य का एक प्रान्त था।]

काम—दे० कामायनी।

काम के दो रूप हैं शरीरी और अशरीरी (अनंग)। एक विषय (दुर्व्यसन) है, तो दूसरा जीवन का फल। ऐन्द्रिक काम का रूप देवताओं की वासनाओं द्वारा दिखाया गया है। यही वासना मनु—देवता के जीवन में थी, तभी तो वह 'अमृतधाम' नारी-हृदय तक नहीं पहुँच सके थे। काम का यह भौतिक स्वरूप इड़ा के प्रसंग में मिलता है। इसी के कारण संघर्ष, अशान्ति और विध्वंस उपस्थित हुआ। कामायनी काम की पुत्री है। उसका जो सिद्धान्त इस महाकाव्य में स्पष्ट किया गया है वह काम ही का अशरीर रूप है। वह काम विश्व-मैत्री, मंगल साधना, समरसता, आनन्द आदि की मूल शक्ति है। यह उसका दूसरा रूप है। वह सृष्टि का आधार है। मनु और कामायनी के आकर्षण और पुनर्मिलन का कारण है। वह विश्व-प्रगति और आनन्दोपासना का प्रतीक है। दे० 'काम' सर्ग भी। —**कामायनी**

कामन्दकी—भिक्षुणी। —**इरावती, ३**

कामना[१]—आध्यात्तरिक नाटक जिसे भाव-रूपक भी कहा जा सकता है। इसमें मानव समाज की आदिम वृत्तियों का विकास दिखाया गया है। विलास, स्वार्थ, भौतिकता, राजनीति और संघर्ष का दुष्परिणाम और विवेक तथा संतोष से मंगल-विधान इस नाटक का विषय है। अंक १ (६ दृश्य), अंक २ (८ दृश्य), अंक ३ (८ दृश्य)। प्रसाद ने इसे दो सप्ताह में लिख डाला था—रचनाकाल १९२३–२४ ई०।—३-४ वर्ष अप्रकाशित रही। प्रथम संस्करण, १९२७ ई०, प्रकाशक हिन्दी पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय।

समुद्र-तट पर फूलों का एक द्वीप है। अपराधों और पापों से मुक्त तारा की सन्तान वहां शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही थी। महत्त्व और आकांक्षा का, अभाव और संघर्ष का लेश भी नहीं था। कामना उनकी उपासना-विधि का नेतृत्व करती थी। एक दिन समुद्र के पार से स्वर्ण का पट पहने विलास आया। उस पर—विशेषकर उसके स्वर्ण-पट पर, कामना मोहित हो गई। युवक विलास अपना स्वर्ण-पट खोलकर कामना के सिर पर बांध देता है। कामना की सखी लीला की प्रणयलीला संतोष के साथ चल रही है और कुछ कालोपरान्त वे दोनों एक सूत्र में बँधने वाले हैं। विलास क्रमशः कामना पर अपने व्यक्तित्व की भयंकर छाप छोड़ता जा रहा है। कामना के द्वारा उस भोली-भाली जाति पर वह अपना शासन जमाना चाहता है। शासन के लिए व्यक्तिगत महत्ता के प्रलोभन वाले विचारों का प्रचार करता है। उसकी महत्त्वाकांक्षा उसे उस जाति में स्वर्ण और मदिरा का प्रचार करके अपराध और पाप की धारा बहाने की प्रेरणा देती है। विलास की कुचेष्टाओं का पहला शिकार विनोद होता है। कामना विनोद का

विवाह लीला से कर देना चाहती हैं। लीला भी कामना के समान स्वर्ण-पट पहनने की इच्छा प्रकट करती है। कामना उसे दिलाने का वचन देती है। वन-लक्ष्मी उसे व्यर्थ का अभाव उत्पन्न करके अशान्ति मोल लेने से दूर रहने के लिए कहती है। वह उसे कामना द्वारा दी गई मदिरा को भी छोड़ देने के लिए कहती है ; एवं कामना और विलास को समुद्र में सदा के लिए सुला देने का प्रस्ताव करती है। किन्तु लीला इसके लिए बिलकुल तैय्यार नहीं है। वनलक्ष्मी के जाते ही कामना आती है। लीला वनलक्ष्मी से हुई अपनी बातचीत उससे बताती है। कामना और लीला आसव पीती हैं। इसी बीच में विवाह के वेश में विनोद आता है। लीला तो संतोष से विवाह करने के लिए तैय्यार बैठी थी , किन्तु मदिरा के प्रभाव और वासना की इच्छा से वह विनोद के साथ विवाह करती है। विवाहोपरान्त सब उपासनागृह को जाते हैं। कामना विलास का परिचय कराती है। विलास का कुछ लोग विरोध करते हैं। वह उन्हें पाप-पुण्य की व्याख्या बताता है । उन्हें ईश्वर से भय करने को कहता है। पहले सब उसका विरोध करते हैं पर मदिरा पीने के बाद सभी विलास की आज्ञा के वशवर्ती हो जाते हैं। अकस्मात् विवेक वहां आता है और उनकी यह दुर्दशा देखकर उन सब को सावधान करता है।

दूसरा अंक—विलास, विनोद, कामना और लीला वन-प्रान्त में घूम रहे हैं। इतने में कुछ युवक धनुष-बाण लेकर आते हैं। विलास उनमें अपराध करने की प्रवृत्ति डालता है। कामना एकान्त पाकर अपना चिरसंचित प्यार विलास के सामने प्रकट करती है। विलास युक्ति-पूर्ण बातों से कामना की इच्छा को ठुकराता है। विलास द्वारा फैलाई गई हत्या की प्रवृत्ति इतनी अधिक बढ़ गई है कि दो युवक तीरों से शान्तिदेव की हत्या करते हैं। शान्तिदेव के पास बहुत-सा सोना है। उसी के कारण कुछ लोग यह अपराध करते हैं। हत्यारे पकड़े जाते हैं। विलास अपना जाल फैलाता है। शिकारी सैनिक बनते हैं, विनोद सेनापति, और संग्रहालय कारागार में परिवर्तित होता है। अपराध की सृष्टि के बाद कारागार का बनना तो आवश्यक है ही। द्वीप में विलास के आने से नए-नए उपद्रवों का प्रारंभ होता है। विह्वलता, व्यभिचार, लज्जा और विलासिता में सभी युवक-युवती मग्न हैं। छिप कर बातें करना, कानों में मंत्रणा करना, छुरों की चमक से आखों में त्रास उत्पन्न करना, वीरता नाम के किसी अद्भुत पदार्थ की ओर अंधे होकर दौड़ना युवकों का कर्त्तव्य हो रहा है। वे शिकार और जुआ, मदिरा और विलासिता के दास होकर गर्व से छाती फुलाए घूमते हैं, कहते हैं हम धीरे-धीरे सभ्य हो रहे हैं। उपासना-गृह अब राज-दरबार में परिणत हो गया है। विलास की प्रेरणा

से कामना विलास को अपना मंत्री नियुक्त करती है। स्वयं कामना रानी के नाम से विख्यात होती है। आज तक स्वतंत्र रहने वाली तारा की सन्तान को विलास जबरदस्ती एक राष्ट्र के गुट में बांध देता है ; सभी को राजसत्ता के आज्ञापालन का पाठ पढ़ाता है। विवेक द्वीप-वासियों को सही मार्ग पर लाने का प्रयत्न करता है। पर अकेला चना कहां तक भाड़ फोड़ सकता है। उसे पागल समझ कर कोई उसकी बात नहीं सुनता। शान्तिदेव की बहन लालसा में वह चंचलता है जैसी चंचलता विलास चाहता है। वह उससे प्रणय-भिक्षा मांगता है। द्वीप के उपद्रवों से आक्रान्त शान्तिदेव की दूसरी बहन करुणा और संतोष दूर वन-प्रान्त में चले जाते हैं। सन्तोष करुणा को बहन मान कर अपने संरक्षण में ले लेता है। विलास एक मृगया-महोत्सव का आयोजन करता है। इसी महोत्सव के समय शान्तिदेव के हत्यारों का वध होता है। विवेक अपराध-से-अपराध—परम्परा चलाने वाले इस कदम को देखकर क्षुब्ध होता है। लालसा उन सब को वह स्थान बताती है जहा से शान्तिदेव बहुत-सा सोना लाया था। कृतज्ञता-वश विलास लालसा से विवाह करता है। कामना रानी पवित्रता के नाम पर अविवाहित रहती है।

तीसरा अंक—द्वीप निवासियों की पुरानी बस्ती से दूर एक नवीन नगर का निर्माण होता है। नगर दम्भ, दुर्वृत्त, क्रूर और प्रमदा के प्रभाव से पूर्णतया आच्छादित है। विवेक को ऐसी अपराध-नगरी में कहां स्थान मिल सकता है। सन्तोष कामना को आश्वासन देने आता है पर कामना राज्य-कल्पना की मानसिक अशान्ति से अभिभूत है। वह सन्तोष की पूर्ण बात नहीं सुन सकती। सन्तोष चला जाता है। स्वर्ण के लिए शत्रु-देश से युद्ध होता है। विनोद अत्यधिक मदिरा पीने से सेनापतित्व का कार्य नहीं कर सकता। विलास सेनापतित्व का पद ग्रहण करता है। शत्रु पराजित होते हैं। विलास एक शत्रु-स्त्री को पकड़ लाता है। इधर लालसा रास्ते में संयोगवश उसी शत्रु सैनिक से मिलती है जिसकी स्त्री विलास हर लाया था। लालसा उसे बातों में फांस कर घर ले जाती है। सन्तोष रुग्ण हो गया है। वह करुणा के साथ नगर में आता है। करुणा वैद्य को ढूंढ़ने जाती है। सन्तोष एक घर के सामने बैठ जाता है। घर का स्वामी संतोष को बुरा-भला कहता है। उधर करुणा को दुर्वृत्त घेरता है। विवेक समय पर आकर दोनों की रक्षा करता है। विवेक उन्हें लेकर अलग हट जाता है, उसी समय भूकंप आता है और नगर का वह भाग पृथ्वी के गर्भ में चला जाता है। जब विलास उस बन्दिनी स्त्री का कुछ बिगाड़ न सका और न लालसा ही अपनी दुष्ट चाल से शत्रु सैनिक को अपने वश में कर सकी तब वे उन पर शत्रु सेना के गुप्तचर होने का

अपराध लगाकर सैनिक न्यायालय के समक्ष लाते हैं। इधर विवेक को भी इस नीचता का हाल मिलता है। वह कुछ व्यक्तियों को लेकर न्यायालय में पहुँचता है। स्त्री और सैनिक के वध की आज्ञा होती है। उनके वध होते ही एक के बाद एक कई प्रार्थी अपनी प्रार्थना लेकर आते हैं। इस अपराध की बाढ़ से कामना घबरा उठती है। इतने में मृत सैनिक के बालक और बालिका आकर अपने माता-पिता के शव से लिपट जाते हैं। कामना यह दृश्य नहीं देख पाती। वह मुकुट उतारकर फेंकती है और विवेक की शरण में आती है। विनोद और लीला उसका अनुसरण करते हैं। विलास उन्हें पुनः वाग्जाल में फांसने का प्रयत्न करता है। नगर के बहुत-से लोग अपने स्वर्णाभूषण और मदिरा के पात्र तोड़ते हैं। विलास और लालसा नौका द्वारा दूर देश जाने का प्रयत्न करते हैं। नागरिक उन पर स्वर्ण फेंकते हैं। अत्यधिक बोझ के कारण नौका डूब जाती है। कामना संतोष का हाथ पकड़ती है।

शैली का नमूना—

(क्रूर, दुर्वृत्त, प्रमदा और दम्भ—नवीन नगर का एक भाग, आचार्य दम्भ का घर)

दम्भ—निर्जन प्रान्तों में गन्दे झोंपड़े। बिना प्रमोद की रातें। दिन-भर कड़ी धूप में परिश्रम करके मृतकों की-सी अवस्था में पड़ रहना। संस्कृति-विहीन, धर्म-विहीन जीवन! तुम लोगों का मन तो अवश्य ऊब गया होगा।

प्रमदा—आचार्य! कहो मदिरा की गोष्ठी के उपयुक्त स्थान नहीं! सकेत-गृहों का भी अभाव! उजड़े कुञ्ज, खुले मैदान और जंगल! शीत, वर्षा तथा ग्रीष्म की सुविधा का कोई साधन नहीं। कोई भी विलास-शील प्राणी कैसे सुख पावे।

दम्भ—इसीलिए तो नवीन नगर-निर्माण की मेरी योजना सफल हो चली है। झुंड-के-झुंड लोग इसमें आकर बसने लगे हैं। जैसे मधु-मक्खियां अपने मधु की रक्षा के लिए मधुचक्र का सृजन करती हैं, वैसे ही इस नगर में धर्म और संस्कृति की रक्षा होगी। नवीन विचारों का यह केन्द्र होगा। यहां धर्म-प्रचार में बड़ी सहायता मिलेगी।

दुर्वृत्त—बड़ा सुन्दर भविष्य है। सुन्दर महल, सार्वजनिक भोजनालय, संगीत-गृह और मदिरा-मंदिर तो हैं ही; इनमें धर्म-भवनों की भव्यता बड़ा प्रभाव उत्पन्न कर रही है। देहाती अर्द्धसभ्य मनुष्यों को ये विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। इससे उनके मानसिक विकास में बड़ी सहायता मिलेगी।

क्रूर—यह तो ठीक है। यहां पर अधिक-से-अधिक सोने की आवश्यकता होगी। यहां व्यय की प्रचुरता नित्य अभाव का सृजन करेगी, और अन्य स्थानों की अच्छी वस्तु यहां एकत्र करने के लिए नए उद्योग-धन्धे निकालने होंगे।

दम्भ—स्वर्ण के आश्रय में ही संस्कृति और धर्म बढ़ सकते हैं। उपाय जैसे भी हो, उनसे सोना इकट्ठा करो; फिर उसका सदुपयोग करके हम प्रायश्चित्त कर लेंगे।

प्रमदा—स्त्रियां पुरुषों की दासता में जकड़ गई है; क्योंकि उन्हें ही स्वर्ण की अधिक आवश्यकता है। आभूषण उन्हीं के लिए हैं। मैंने स्त्रियों की स्वतंत्रता का मन्दिर खोल दिया है। यहां वे नवीन वेषभूषा से अद्भुत लावण्य का सृजन करेंगी। पुरुष स्वयं अब उनके अनुगत होंगे। मैं वैवाहिक जीवन को घृणा की दृष्टि से देखती हूं। उन्हें धर्म-भवनों की देवदासी बनाऊँगी।

दुर्वृत्त—और यहां कौन उसे अच्छा समझता है। पर मैंने कुछ दूसरा ही उपाय सोच लिया है।

क्रूर—वह क्या?

दुर्वृत्त—इतने मनुष्यों के एकत्र रहने में सुव्यवस्था की आवश्यकता है। नियमों का प्रचार होना चाहिए। इसलिए इस धर्म-भवन से समय-समय पर व्यवस्थाएँ निकलेंगी। वे अधिकार उत्पन्न करेंगी, और जब उनमें विवाद उत्पन्न होगा, तो हम लोगों का लाभ ही होगा। नियम न रहने से विशृंखला जो उत्पन्न होगी।

क्रूर—प्रमदा के प्रचार से विलास के परिणाम-स्वरूप रोग भी उत्पन्न होंगे। इधर अधिकारों को लेकर झगड़े भी होंगे, मारपीट होगी। तो फिर मैं औषधि और शस्त्र-चिकित्सा के द्वारा अधिक-से-अधिक सोना ले सकूंगा।

प्रमदा—परन्तु आचार्य की अनुमति क्या है?

दुर्वृत्त—आचार्य होंगे व्यवस्थापक। फिर तो अवस्था देखकर ही व्यवस्था बनानी पड़ेगी।

दम्भ—संस्कृति का आन्दोलन हो रहा है। उसकी कुछ लहरें ऊँची हैं और कुछ नीची हैं। यह भेद अब फूलों के द्वीप में छिपा नहीं रहा। मनुष्य-मात्र के बराबर होने के कोरे असत्य पर अब विश्वास उठ चला है। उसी भेद भाव को लेकर समाज अपना नवीन सृजन कर रहा है। मैं उसका संचालन करूँगा।

दुर्वृत्त—परोपकार और सहानुभूति के लिए समाज की अत्यन्त आवश्यकता है।

दम्भ—योग्यता और संस्कृति के अनुसार श्रेणी-भेद हो रहा है। जो समुन्नत विचार के लोग हैं, उन्हें विशिष्ट स्थान देना होगा। धर्म, संस्कृति और समाज की क्रमोन्नति के लिए अधिकारी चुने जायँगे। इससे समाज की उन्नति में बहुत से केन्द्र बन जायँगे, जो स्वतंत्र रूप से इसकी सहायता करेंगे। उस समय हमारी जाति समृद्ध और आनन्दपूर्ण होगी। इस नगर में रहकर हम लोग युद्ध और आक्रमणों से भी बचेंगे।

समीक्षा—

चरित्र-विकास की गुंजायश कहीं

नहीं है। सभी पात्र किन्हीं विशिष्ट मनोदशाओं के सजीव रूप है। उनके चरित्र की स्थिरता आदि से अन्त तक बनी रहनी आवश्यक भी है। 'कामना' में 'कामायनी' का पूर्व रूप रखा गया है। पर कामना विध्वंसात्मक है, कामायनी निर्माणात्मक। कामना नई सभ्यता की प्रतीक है, कामायनी भारतीय जीवन-दर्शन की। 'कामना' में आधुनिक सभ्यता पर व्यंग्य किया गया है। 'कामना' की विचार-धारा महत्त्वपूर्ण है, आसुरी सभ्यता के विरुद्ध। नाटक कल्पना-प्रधान है। भाषा एवं भाव काव्यपूर्ण है। नाटक का स्वर नीतिवादी है। नवीन संस्कृति की विविध दशाओं और तज्जन्य दुःखावस्थाओं का चित्रण है। किसी भी व्यवस्था की स्थापना नहीं की गई है। इसमें तीन रूपक हैं—(१) मनोविकारों का संघर्ष, (२) मानव जीवन में जटिलता का विकास, (३) पश्चिम द्वारा भारत पर प्रभाव।

कामना[२]—फूलों के द्वीप की सर्वप्रिय युवती, भोली-भाली, चंचल, अभिमानिनी, भावुक, सरल। उसका प्रभाव सब पर है। उसी के पतन से द्वीप का पतन और उसके सचेत होने पर द्वीप का पुनरुत्थान होता है। वह नवीनता के लिये निरन्तर उत्सुक रहती है। वह विलास पर मुग्ध हो जाती है पर उसकी प्रतारणाओं से कामना का हृदय जर्जर हो जाता है और वह पुनः अपने प्रेमी सन्तोष को प्राप्त करती है; जिससे उसे वास्तविक सुख मिलता है! चमकीली वस्तु के प्रभाव से उसमें अनेक दुर्गुण आ गए हैं। वह विवेक के शब्दों में "मदिरा से ढुलकती हुई, वैभव के बोझ से दबी हुई, महत्वाकांक्षा की तृष्णा से प्यासी, अभिमान की मिट्टी की मूर्ति" बन जाती है। पर उसका विवेक नष्ट नहीं होता। इसी से उसका व्यक्तित्व फिर उभर आता है। "यदि राजकीय शासन का अर्थ हत्या और अत्याचार है तो मैं व्यर्थ रानी बनना नहीं चाहती।" नाटक में सबसे अधिक विस्तार कामना के चरित्र को मिला है। **—कामना**

कामरूप[१]—कामरूप से लेकर सौराष्ट्र तक, काश्मीर से लेकर रेवा तक, एक सुव्यवस्थित राष्ट्र हो गया।

—राज्यश्री, ३-३

पञ्चनद के उदितराज, कामरूप के कुमारराज, वल्भी के ध्रुवभट प्रयाग में गंगा-तट पर हर्षवर्धन के समारोह में सम्मिलित हुए। **—राज्यश्री, ४-१**

कामरूप[२]—दे० श्रीपर्वत।

[आसाम का प्राचीन नाम।]

काम-सङ्गीत—काम-सगीत की तान सौन्दर्य की रंगीन लहर बन कर, युवतियों के मुख में लज्जा और स्वास्थ्य की लाली चढ़ाया करती है। (ध्रुवस्वामिनी)

—चन्द्रगुप्त, १-१०

कामसूत्र—जिस काव्य को ललितकला माना गया है, वह केवल 'श्लोकस्य समस्यापूरण क्रीडार्थम् वादार्थम् च' बताई गई है। **—काव्य और कला, पृ० ४-५**

[वात्स्यायन-कृत काम-कला सम्बन्धी प्रसिद्ध ग्रन्थ। वात्स्यायन काश्मीर के रहने वाले थे। समय ४थी शती ई. पू.]

कामायनी[1]—प्रसाद जी की अंतिम काव्य-कृति, १५ सर्गों का मनोवैज्ञानिक सांस्कृतिक महाकाव्य, प्रथम संस्करण १९३६, भारती-भण्डार, इलाहाबाद। सर्गों का नामकरण स्थान, घटना या पात्र के नाम पर न करके मानसिक वृत्तियों के नाम पर किया गया है और मानसिक वृत्तियों का क्रम ऐसा रखा गया है जैसा मनुष्य के विकास में होता है—कुछ का संबंध पुरुष से है—कुछ का नारी से, कुछ का दोनों से। सर्गों के नाम ये हैं—चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य, आनन्द। 'कामायनी' प्रेमाख्यानक काव्य का नवीन सांस्कृतिक रूप है। यह छायावाद रहस्यवाद का सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि काव्य है।

सर्गगत कथा इस प्रकार है—

(चिन्ता)—'कामायनी' का आरम्भ जलप्लावित पृथ्वी से होता है। शतपथ ब्राह्मण की कथा के उस अंश को छोड़ दिया गया है जिसके अनुसार मनु जलप्लावन में एक मत्स्य के सींग के साथ अपनी नौका बांध देने के कारण बच गया था।

'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छांह।
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय-प्रवाह॥'

भीषण रव से धरती कांप रही थी। उदधि अखिल धरा को डुबा कर मर्य्यादाहीन हो गया था। अब उसकी लहरें क्षीण हो चली थीं। मनु चिन्तामग्न था। उसे देवजाति के वैभव और विलास पर क्षोभ हो रहा था। देखिए, महामृत्यु ताण्डव नृत्य कर रही है और देवता अपनी अमरता के दम्भ में, मिथ्याभिमान में पड़े हैं। इस नश्वर संसार में अमरता का ढोंग! अतीत की स्मृतियों से मनु का मन उद्विग्न हो उठा।

(आशा)—धीरे-धीरे धरातल से कोहरा हटने लगा। सागर का आन्दोलन शान्त हो रहा था। सिन्धु की शैय्या पर पृथ्वी नववधू के समान शोभायमान थी। ग्रह-नक्षत्रों को देखकर मनु में कुतूहल के साथ जिज्ञासा उठ खड़ी हुई और उसे लगा कि इनके पीछे कोई विराट् सत्ता है। वह आशा का अनुभव करने लगा। वह एक गुहा में निवास-स्थान बनाकर अग्निहोत्र करने लगा। पाक-यज्ञ का आरम्भ हुआ। मनु के हृदय में विचार आया कि सम्भव है मेरी ही भांति किसी और का जीवन बच गया हो। वह कोई साथी चाहता है। तपस्या और एकाकी जीवन लेकर वह अधिक समय तक नहीं चल सकेगा। उसका चित्त विह्वल हो उठा।

(श्रद्धा)—संयोग से काम-गोत्र की बाला कामायनी (श्रद्धा) यज्ञ-शेष की खोज में उधर आ निकली। आपस

में परिचय हुआ। मनु के नैराश्य-पूर्ण जीवन को देखकर श्रद्धा ने उसको उभारा—जिसे तुम दुःख समझते हो, वही तो सुख का मूल है। 'दुःख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात।' अकेले तुम आत्म-विस्तार नहीं कर पाओगे. मेरी सेवा तुम्हें समर्पित है। उठो कर्म से प्रवृत्त होवो। 'बनो संसृति के मूल रहस्य, तुम्हीं से फैलेगी वह बेल।' 'शक्तिशाली हो, विजयी बनो।' 'डरो मत अरे अमृत-सन्तान।' देव-संस्कृति से ध्वस्त मानव-संस्कृति की सृष्टि करो।

(काम)—मनु में उल्लास भर गया। वह सौन्दर्य के रहस्य को जानने के लिए उत्सुक हो उठा। व्रीडा ने बाधा डालनी चाही लेकिन स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से भरी सुषमा उसे व्याकुल करने लगी। स्वप्न में उसे काम ने सूचित किया कि मैं देवताओं का उपास्य था। मेरी स्त्री रति अनादि वासना है। देवताओं में "मैं तृष्णा था विकसित करता, वह तृप्ति दिखाती थी उनको।" वे देव रहे न विनोद रहा। मैं अब अनंग हूँ, मैं और रति शुद्ध रूप से पिछले कृत्यों का ऋण-शोध करेंगे। यह कामायनी हम दोनों की सन्तान है। यदि उसके पाने की इच्छा हो तो उसके योग्य बनो।

(वासना)—गृहपति और अतिथि में प्रतिदिन घनिष्ठता बढ़ती गई। इधर घर में शस्य, पशु और धान्य आदि उपकरण एकत्र हुए। एक दिन की बात है कि मनु अग्निशाला में बैठा था। देखा कि एक पशु श्रद्धा से खेल रहा है। दोनों का प्यार-दुलार देखकर मनु में ईर्ष्या जगी। इतने में अतिथि मनु को बाह से पकड़ कर चांदनी में ले गया। मनु ने अपना प्रेम प्रगट करते हुए कहा—तुम आज बहुत सुन्दर लग रही हो। मेरे प्राण अधीर हो उठे हैं। 'मैं तुम्हारा हो रहा हूँ।' यह वासना, यह 'धमनियों में वेदना-सा रक्त का संचार' क्या है! 'विश्वरानी! सुन्दरी नारी', मेरी चेतना तुम्हें समर्पित है। श्रद्धा लज्जा से झुक गई। शरीर में रोमाञ्च हो आया। 'आह! मैं दुर्बल! कहो क्या ले सकूगी दान!'—वह दान जिसका उपभोग करने के लिए मेरे प्राण पहले ही से विकल हो रहे हैं।

(लज्जा)—श्रद्धा के हृदय में हलचल मच गई। उसने अनुभव किया कि नन्ही बालिका के समान कोई है जो मेरी हँसी की तरलता को मुस्कान से, मेरी अभिलाषा की दौड़ को संकोच में और मेरी स्वतंत्रता को परवशता में बदल रही है। इसके कारण मेरे नेत्रों में बाकपन आ गया है। यह कौन है जिसने 'किरनों का रज्जु समेट लिया, जिसका अवलम्बन ले चढ़ती; रस के निर्झर में धँस कर मैं आनन्द-शिखर के प्रति बढ़ती।' वह छाया-प्रतिमा बोली—"मैं लज्जा हूँ। मैं सौन्दर्य की धात्री, रति की प्रतिकृति, शालीनता

की शिक्षिका, सुन्दरियों के मन की मरोर को जगाने वाली हूँ।" श्रद्धा बोली—"किन्तु मैं तो निर्बल नारी हूँ। मेरा मन शिथिल है। कोमल अंगों के सौन्दर्य और सौष्ठव के कारण पुरुष के सामने हार मान चुकी हूँ। मैं आत्म-समर्पण कर चुकी हूँ।" लज्जा बोली—"नारी! तुम श्रद्धा हो। अपने ऊपर विश्वास रखो। तुम देवों और दानवों के बीच सन्धि-पत्र लिखने वाली हो। तुम जीवन को सुन्दर समतल बनाती हुई अमृत के समान बहती चलो।"

(कर्म)—किलात और आकुलि नाम के असुर पुरोहितों के जाल में पड़कर मनु के पुराने देव-संस्कार पुनः जागृत हो गए। यज्ञ का अनुष्ठान करना, पशुबलि चढ़ाना, सोमपान करना उसे भाने लगा। वासना से अभिभूत वह श्रद्धा के पास आया। श्रद्धा ने मानवता की व्याख्या की और कहा कि अपने ही सुख में सुखी न रहना चाहिए। दूसरे प्राणियों का भी कोई अधिकार है। सब के सुख को अपना सुख मानना ही मानवता है जिसका मुख्य अंग है अहिंसा, स्वार्थ-त्याग और सेवा कर्म। मनु मान गए। दोनों ने सोमरस का पान किया। श्रद्धा की लज्जा जाती रही और वे एक दूसरे के आलिंगन-पाश में बंध गए।

(ईर्ष्या)—श्रद्धा के अंगों में आलस्य आने लगा। वह माता बनने वाली थी। असुर-पुरोहितों के प्रभाव से मनु अपना समय आखेट में बिताने लगा। उसे लगा कि श्रद्धा के प्रणय में वह रस नहीं रहा; न वह अनुरोध है न उल्लास। श्रद्धा मेरी उपेक्षा करने लगी है, जब देखो अन्न इकट्ठा कर रही है, कपड़ा बुन रही है। असह्य! मनु को घर से विराग होता गया। एक दिन दोनों में खुल कर बातें भी हुईं। श्रद्धा ने निरीह पशुओं के वध को अमानुषिक बताया; और मनु को सूचित किया कि भावी शिशु की आशा में सुख-साधन जुटा रही हूं। मनु ईर्ष्या और अहंकार से भर गया। बोला—"प्रेम को यों बांटने का ढंग मुझे पसन्द नहीं है।" और वह चला गया। श्रद्धा कहती ही रह गई, "रुक जा, सुन ले ओ निर्मोही।"

इस सर्ग में एक बहुत सुन्दर गीत है—"चल री तकली धीरे-धीरे।"

(इडा)—मनु भटकते-फिरते सार-स्वत प्रदेश में पहुंचा। सरस्वती के तट पर इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था। मनु को देवों और असुरों के संघर्ष की स्मृति हो आई। आज उसी संघर्ष का रूपान्तर उसे दीन-दुःखी बना रहा था। एक तीखी वाणी सुनाई दी—"मनु, पुरुषत्व के मोह में तुमने श्रद्धा को भुला दिया। तुमने यह न जाना कि नारी की भी अपनी सत्ता होती है। नारी ही पुरुष की पूरक है। तुमने प्रणय के रहस्य को नहीं जाना। तुमने वासना को अप-नाया, पवित्र प्रेम को नहीं। अच्छा... तुम्हारा जीवन दुःखमय हो। श्रद्धा-

वंचित मानव-सन्तान में संघर्ष, कलह, भेद-भाव, दारिद्रय, अकल्याण बढ़े ।" काम यह शाप देकर चला गया । मनु आगे बढ़ा । उसकी भेंट सारस्वत प्रदेश की रानी इड़ा से हुई । उसके देश में भौतिक हलचल मची थी, अतः वह किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में थी जो इसका राजकार्य सँभाले । मनु ने राज-काज अपने हाथ में लिया । उसे लगा कि मेरे विचारों को स्थिरता मिली और सुख-साधन का द्वार खुल गया ।

(स्वप्न)—श्रद्धा का जीवन सूना था । बारह बरस बीत गए और उसका परदेसी नहीं लौटा । उसके हर्ष और सुखदुःख का एक ही भागी था और वह था मनुजकुमार । श्रद्धा ने स्वप्न मे देखा—मनु को एक नारी का सहारा मिल गया है और सारस्वत प्रदेश मे भौतिक सुखों, ज्ञान और विज्ञान की बडी उन्नति हो रही है । श्रद्धा प्रासाद में पहुंची तो मनु आसव पी रहा था । मनु इडा को रानी कह कर अनुनय कर रहा था कि मैं रीता हूँ, अतृप्त हूं, मेरी प्यास बुझाओ। उसने इडा को अपनी भुजाओं में जकड लिया । इड़ा चिल्ला उठी । देवता क्रुद्ध हो उठे । रुद्र-नयन खुल गया । धरती कापने लगी । व्याकुल प्रजा राजद्वार पर चढ़ आई । मनु डर गया ।—यह भयानक स्वप्न देखकर श्रद्धा कांप उठी ।

(संघर्ष)—'श्रद्धा का था स्वप्न किन्तु वह सत्य बना था।' मनु पर आपत्ति आ गई थी किन्तु मनु अपनी सफलता पर फूल रहा था । वह अकड से सीधा नहीं हो रहा था । मैं नियामक, मैं प्रजापति, क्या मेरा कोई अधिकार नहीं। इड़ा उसे समझाती थी कि लोक को सुखी बनाने के लिए व्यक्ति अपना व्यक्तित्व राष्ट्र-शरीर में मिला दे—अनजाने में कोई विवादी स्वर न छेड़े। लेकिन मनु इडा पर अपना अधिकार चाहता था । उसने इडा पर हाथ बढाया ही था कि क्षुब्ध प्रजा सिंहद्वार तोड़ कर भीतर घुस आई । भयंकर युद्ध हुआ । मनु घायल हो गया । मनु ने देखा कि आकुलि और किलात विद्रोह का नेतृत्व कर रहे हैं । उसने दोनों को मार डाला । इडा चिल्ला रही थी—"युद्ध बन्द करो। ओ, सहारी मानव, आप भी जी और दूसरो को भी जीने दे ।" परन्तु वहां कौन सुनता था । शत्रु भीषण प्रहार कर रहे थे । मनु मूर्छित होकर गिर पड़ा ।

(निर्वेद)—इडा मनु की अवस्था और सुख-दुःख पर विचार कर रही थी कि उसने सुना, कोई कह रहा है—'अरे बता दो मुझे दयाकर कहा प्रवासी है मेरा' । यह श्रद्धा थी, उसके पीछे-पीछे मानवकुमार था । उन्होंने इडा के यहां शरण ली । सहसा श्रद्धा ने आलोक मे देखा मनु घायल पड़ा है । वह उसे होश मे लाई । पति-पत्नी और पिता-पुत्र का मिलन हुआ । मनु ग्लानि से दब रहा था, "श्रद्धे, तुमने मुझे जीवन का रहस्य बताया । तुमने

मेरे जीवन को हरा-भरा किया। 'किन्तु अधम मैं समझ न पाया उस मंगल की माया को।' आज मैं अपराधी हूँ। 'शापित मैं जीवन का यह ले कंकाल भटकता हूँ।' दिन बीत गया। रात आई। प्रातः काल हुआ, तो मनु का कहीं पता नहीं था। वह सब को सोता छोड़ गया।

(दर्शन)—श्रद्धा मनुजकुमार को समझाने लगी—यह विश्व कितना सुन्दर और उदार है। यह सुखद शान्ति से भरा एक नीड है। उसने इडा से कहा—"मनु तुम्हारे अपराधी हैं, पर नारी में माया और ममता का बल है, अतः मुझे विश्वास है कि तुम क्षमा करोगी।" इडा लज्जित थी, कहने लगी—"मुझे जनपद-कल्याणी कहा जाता है, परन्तु आज मैं अवनति का कारण बन रही हूँ। सर्वत्र भय की उपासना हो रही है। प्रकृति के साथ संघर्ष करने का बल मिथ्या सिद्ध हो रहा है।" श्रद्धा बोली—"तुम्हारी स्थिति जड़ता की रही है। तुम्हें हृदय नहीं मिला। लो, यह मेरा कुमार। तुम तर्कमयी हो, यह श्रद्धामय है। तुम मिल कर कर्म करो और संसार के सन्ताप को दूर करो।" श्रद्धा मनु की खोज में निकल पड़ी। सरस्वती के किनारे-किनारे चलकर एक उपत्यका में उसने मनु को पा लिया। मनु को अपनी भूलों का ज्ञान हो गया था। 'तुम देवि! आह कितनी उदार, हे सर्वमंगले तुम महती।' "मेरी लघुता मत देखो, मैं व्यथा का मारा हूँ।" श्रद्धा ने कहा कि अब मैं सदा तुम्हारे संग रहूँगी। मनु ने देखा कि सामने आनन्द खुल रहा है, जीवन उज्ज्वल हो रहा है और नटराज आनन्दपूर्ण सुन्दर ताण्डव नृत्य में रत हैं। मनु उस समरस, अखंड, आनन्दवेश शिव तक जाने की इच्छा करने लगे।

(रहस्य)—दोनों पथिक हिमालय पर चढ़ते जा रहे थे, ऊँचे, बहुत ऊँचे। आगे-आगे श्रद्धा थी और पीछे-पीछे मनु। मनु थक गया, उसका साहस छूट गया। अन्त में श्रद्धा उसे एक समतल भूमि पर ले आई। मनु को तीन आलोक-बिन्दु दिखायी पड़े, तीनों एक दूसरे से अलग। श्रद्धा ने बताया—ये तीन आलोक-बिन्दु क्रमशः इच्छा, कर्म और ज्ञान के लोक हैं। यह जो 'उषा के कन्दुक-सा सुन्दर है, यह इच्छा-लोक है।' 'यह जीवन की मध्यभूमि है।' यही माया-राज्य है, जिसमें जीव फँसते रहते हैं। 'भाव-भूमिका इसी लोक की जननी है सब पुण्य पाप की।' 'अमृत हलाहल यहां मिले हैं, सुख-दुःख बँधते एक डोर हैं।'—यह श्यामदेश कर्म लोक है। 'यहां सतत संघर्ष, विफलता, कोलाहल का यहां राज्य है।' यहां प्रतिक्षण लोग विवश होकर कर्म करते चले जाते हैं। परन्तु फिर भी उन्हें सन्तोष नहीं। और यह उजला-उजला ज्ञान-लोक है, 'सुख-दुःख से है उदासीनता; यहां न्याय निर्मम चलता है, बुद्धि चक्र, जिसमें न दीनता।' यही तीन बिन्दुओं का

त्रिपुर है। तीनों एक दूसरे से पृथक हैं— 'ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की।' इसके बाद मनु ने देखा कि इच्छा, क्रिया और ज्ञान मिल कर एक हो गए हैं और एक दिव्य अनाहत नाद उठ रहा है। यह था सामरस्य का आनन्द !

(आनन्द)—मनुज-कुमार, इडा और दूसरी माताएं और बच्चे पहाड़ी नदी के किनारे-किनारे चले जा रहे थे। वे जा पहुँचे कैलाश मानसरोवर के उस पवित्र तीर्थ में जहा श्रद्धा और मनु अपनी सेवा से ससार की पीड़ा हर लेते थे। उनके साथ धर्म का प्रतिनिधि नान्दी वृषभ भी था। वहाँ उन्हे श्रद्धा और मनु के दर्शन हुए। मनु बोले—

देखो कि यहा पर
कोई भी नहीं पराया
हम अन्य न और कुटुंबी
हम केवल एक हमी है,
...शापित है यहां न कोई
तापित पापी न यहा है।
जीवन-वसुधा सम तल है
समरस है जो कि जहां है।

श्रद्धा के सुन्दर अधरों में स्मिति बिखर रही थी। हिमालय की पाषाणी प्रकृति आज मगलमय हो रही थी। चारों ओर समरसता की चेतनता का विलास था और छाया हुआ था अखण्ड घना आनन्द।

समीक्षा—

कथा के तीन रूप है—मूल ऐतिहासिक कथा, प्राचीन रूपक का निर्वाह और नवीन रूपक की सृष्टि। यह है जीव के अन्नमय कोश से आनन्दमय कोश तक पहुंचने की कथा एवं मानव के सांस्कृतिक तथा सामाजिक विकास की कथा।

कामायनी का सांकेतिक अर्थ—(१) मनु मन का प्रतीक है। जब वह श्रद्धा (हृदय) की ओर झुकता है तो तर्क-शून्य होता है; जब वह इड़ा (बुद्धि) को अपनाता है तो यंत्रवत् हो जाता है। बुद्धि और हृदय के समन्वय से ही उसको सन्तुलन की उपलब्धि होती है। अन्त मे कवि हृदय-पक्ष की श्रेष्ठता स्थापित करता है। आत्मिक शान्ति के लिए श्रद्धा आवश्यक है।

(२) मानवता का विकास कैसे हुआ।

कामायनी उस सस्कृति के प्रति विद्रोह उपस्थित करती है जिसमें स्वार्थ है, जड़ता है, जो सुरा, सुरबाला और विलास का पोषण करती है; जिसके कारण व्यक्ति वा समाज में अशांति, विशृं-खलता, हिंसा, दम्भ, लालसा आदि दुर्गुण बढ़ते हैं। ऐसी वासना-प्रधान देव-संस्कृति भी असुर-संस्कृति से बुरी है। प्रसाद मानव-संस्कृति की प्रतिष्ठा चाहते हैं जिसमें ईश्वर-विश्वास, सहानुभूति, परदुःखकातरता और कार्यनिष्ठा हो।

कर्म-यज्ञ से जीवन के
स्वप्नों का स्वर्ग मिलेगा।

—कामायनी, कर्म, पृ० ११३

यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
यह विश्व कर्म रंगस्थल है।

—कामायनी, काम, पृ० ७५

तप में निरत हुए मनु, नियमित
कर्म लगे अपना करने।

—कामायनी, आशा, पृ० ३३

रचना-मूलक सृष्टि-यज्ञ यह
यज्ञ पुरुष का जो है
संसृति-सेवा-भाग हमारा
उसे विकसने को है।

—कामायनी, कर्म, पृ० १३२

दे० आत्मवाद भी।

बढ़ती है सीमा संसृति की
बन मानवता धारा।

भारतीय जीवन की पूर्णता भौतिकता मे नही, आध्यात्मिकता में है; आदर्श और यथार्थ के समन्वय में है।

कामायनी में सम्पूर्ण मानवता की व्याख्या है। इसमे करुणा आदि कोमल भावनाओं की प्रधानता है, यद्यपि ईर्ष्या, क्रोध आदि को लेकर कठोर भावों का वर्णन भी हुआ है।

सन्देश—श्रद्धा का सन्देश है
—मानवता
—श्रद्धा और बुद्धि का समन्वय
—सामरस्य

बुद्धि की अति और तज्जन्य विकारों से मनुष्य अशान्त होता है। श्रद्धा और बुद्धि के सन्तुलन में जीवन का समाधान है।

कामायनी का सब से बड़ा गुण है इसका काव्योत्कर्ष। इसका आधार मनोवैज्ञानिक है।

'कामायनी' की पूर्व-पीठिका में लिखी गई कृतियां —'प्रलय' कहानी 'कामना' नाटक, 'विषाद', 'भरत' (हिमालय-वर्णन) आदि हैं।

छन्द—कामायनी में लगभग १३ छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्रधान छन्द ताटंक है जो कभी लावनी का और कभी वीर छन्द का रूप धारण कर लेता है। 'चिन्ता', 'आशा', 'स्वप्न' और 'निर्वेद' सर्गों में ताटंक प्रयुक्त हुआ है।

'श्रद्धा' सर्ग में शृंगार छंद का तथा 'लज्जा' सर्ग में पद-पादाकुलक, 'वासना' सर्ग में रूपमाला, 'कर्म' में सार-छंद, 'संघर्ष' में रोला, 'ईर्ष्या' तथा 'दर्शन' में पद्धरि और पद-पादाकुलक का मेल है। 'इड़ा' सर्ग में टेक-युक्त गीत है। ताटंक के अन्त में एक गुरु जोड़कर कवि ने अपना छन्द 'रहस्य' सर्ग में प्रयुक्त किया है। 'आनन्द' का छन्द वही 'आंसू' का प्रसिद्ध छन्द है।

रस—कामायनी में शृंगार-रस ही प्रधान है। शान्त रस में उसका पर्यवसान हुआ है। श्रद्धा के विरह का वर्णन संयत और सन्तुलित है। शान्त रस 'निर्वेद' और 'आनन्द' सर्ग में आया है और थोड़ा प्रसंग 'आशा' सर्ग में मिलता है। करुण रस 'चिन्ता' सर्ग में विशेष रूप से व्याप्त है। प्रलय के वर्णन मे भयानक और रौद्र रस मिलते हैं। रहस्य सर्ग में भी भय का वर्णन है। नटराज के ताण्डव-नृत्य में और त्रिपुर-मिलन में अद्भुत रस की छटा है।

वीर रस का अभाव-सा है, केवल एक स्थल पर संकेत है। हास्य रस भी नहीं के बराबर है। वात्सल्य रस की व्यञ्जना मनुज-कुमार के प्रसंग में हुई है।

कामायनी[२]—दे० श्रद्धा।

कामिनी—निर्भीक, प्रगल्भ और स्वच्छंद वन्यबाला। युवती कामिनी मालिन का काम करती थी। उस का और कोई न था। वह कुसुम-कानन से फूल चुन ले जाती और माला बना कर बेचती। कभी-कभी उसे उपवास भी करना पड़ता। कुरंग-कुमारी के समान उसकी बड़ी-बड़ी आंखें थीं। —(**अपराधी**)

कामिनी देवी—युवक इसे विश्वास-घातिनी कहता था, लेकिन प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ चिल्लाता रहा कि वह निर्दोष थी। —(**खंडहर की लिपि**)

कामैया—अल्हड़, सहानुभूतिपूर्ण, दया-शील धीवर-कन्या। —(**अनबोला**)

कार्तिक कृष्णा कुहू क्रोध से काले करका भरे हुए—चन्द्रलेखा की पुकार। इस संकट और विपत्ति में तुम्हीं हो, और कोई नहीं, तुम्हारी छवि ही इस अन्ध-कार-मय जीवन में एक-मात्र प्रकाश है, वही प्राण है। —**विशाख २-४**

कार्नी—कार्नेलिया को सिल्यूकस इस नाम से पुकारता है। —**चन्द्रगुप्त**

कार्नेलिया[१]—सिंधुतट, भारत-भक्त ग्रीक युवती। —**कल्याणी-परिणय**

कार्नेलिया[२]—यवन-सेनापति सिल्यूकस की पुत्री, बाद में चन्द्रगुप्त की पत्नी। इसके चरित्र में कोई उतार-चढ़ाव नहीं दिखाया गया। वह ग्रीक-संस्कृति का प्रतीक है और भारत के प्रति उसे सहज अनुराग है। वह भारत की प्राकृतिक छटा पर मुग्ध है। यहाँ का सरल जीवन और दार्शनिक चिन्तन उसे मोहित करता है। वह भावुक और सहृदय है। चन्द्र-गुप्त के शील, वीरता-पूर्ण व्यवहार और साहस से वह आकृष्ट होती है और उसका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। उसमें संयम और गंभीरता है और वह आत्मबल के कारण प्रेम में सफल होती है। वररुचि के शब्दों में 'वह यवन-बाला सिर से लेकर पैर तक आर्य-संस्कृति से पगी है।' अपने पिता को चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने से रोकती है। 'आप ही ने मृत्यु-मुख से उसका उद्धार किया और उसी ने आपके प्राणों की रक्षा की थी।' 'और उसी ने आपकी कन्या के सम्मान की रक्षा की थी।' युद्ध हुआ और सिल्यूकस ने चन्द्र-गुप्त को दण्ड देना चाहा, तो वह फूट पड़ती है। इसी प्रेम के आधार पर कार्नेलिया भारत की कल्याणी बन सकी है। —**चन्द्रगुप्त**

[इतिहास में सिल्यूकस की कन्या का नाम हेलन बताया गया है। शायद पूरा नाम हेलना कार्नेलिया था। चन्द्र-गुप्त से इसका विवाह ३०३ ई० पू० में हुआ।]

कार्य-गौरव—हल चलाने से बड़े लोगों की जात नहीं चली जाती। अपना काम

हम नहीं करेंगे तो दूसरा कौन करेगा।
(रामनाथ) **—तितली, १-७**

कार्यारम्भ—परिणाम-दर्शी होकर कार्य आरम्भ करें। (देवगुप्त)
—राज्यश्री, १-३

काला पहाड़—मुहम्मद गोरी की सेना का एक गुलमपति। —(**देवरथ**)

कालिदास[१]—कालिदास, अश्वघोष, दण्डि, भवभूति और भारवि का काव्यकाल यथार्थवाद, युद्धवर्णन, रोमास का काल था।
—(**आरंभिक पाठ्यकाव्य, पृ० ८०**)

कालिदास[२]—इनके 'विक्रमोर्वशीय' त्रोटक की छाया 'उर्वशी' चम्पू के किसी-किसी अंश में मिलती है। **—उर्वशी, भूमिका**

कालिदास[३]—सन्दर्भ, कालिदास की उक्ति—"स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनम्।"
—(**कलावती की शिक्षा**)

कालिदास[४]—महाकवि जिसने अज का और मेघदूत में यक्ष का (अर्थात् पुरुषों का) विरह-वर्णन किया है।
—काव्य और कला, पृ० ३

कालिदास ने भास, सौमिल्ल और कविपुत्र आदि नाटककारों का उल्लेख किया है; उनमें से अभी केवल भास के ही नाटक मिले हैं।
—(**नाटकों का आरम्भ, पृ० ५६**)

'पटीक्षेप' का प्रयोग करते थे।
—(**रंगमंच, पृ० ६७**)

[संस्कृत के सर्वप्रसिद्ध कवि और नाटककार। इनके ग्रन्थों में रघुवंश कुमारसंभव, मेघदूत, और अभिज्ञान शाकुन्तल प्रसिद्ध हैं। समय गुप्तकाल —५वीं शती।]

कालिन्दी[१]—मायाविनी, नीति-चतुर, शिव-मंदिर में परिचारिका। "मंदिर के राग-भोग और परिष्कार आदि का काम करती हूँ।" इसके चरित्र में सौन्दर्य अभिमन्धि, बुद्धि, कौशल, महत्त्वाकांक्षा प्रेम और जाल-साजी है। मौर्य्यों ने नन्दवंश का नाश किया था, अतएव वह एक गुप्त संस्था 'स्वस्तिक-दल' का संगठन करके मौर्य्यों का नाश करना चाहती है। वह अग्निमित्र, बृहस्पतिमित्र और खारवेल पर डोरे डालती है। वह सचमुच निग्रह और अनुग्रह की क्षमता रखने वाली सम्राज्ञी सी दिखाई पड़ती है। उसमें नारी का रूप पूर्णतया जाग्रत है। **—इरावती**

कालिन्दी[२]—काशी में किशोर के मकान पर देवनिरंजन रास की राका रजनी का विवरण सुना रहा था—किस तरह गोपियों ने उमंग में उन्मत्त होकर कालिन्दी-कूल में कृष्णचन्द्र के साथ रास-क्रीड़ा में आनन्द-विह्वल होकर आत्म-समर्पण किया था। **—कंकाल**

[कलिंद पर्वत से निकलने वाली यमुना वृन्दावन-मथुरा से होकर बहती है। इसके एक किनारे पर मथुरा और दूसरे किनारे वृन्दावन है।]

काली आँखों का अन्धकार—गीत। जब काली आंखों का अन्धकार कलाकार को अचेतन कर देता है तो वह प्यार के रंगों से क्षितिज के पार चित्र उन्मी-

लित करता है। उन चित्रों में चांदनी रात, मधुप-मुकुल और मलय पवन का दुलार अंकित होता है। तभी कवि के मन में मधुर व्यथा जगती है और पतझड़ में सूखे किसलय की तरह रह जाता है। 'पागल पुकार फिर प्यार-प्यार।'

—लहर

काले खाँ—नीलकोठी का प्यादा जो देवनन्दन को पकड़ ले गया। **—तितली**

काव्य—प्रसाद ने काव्य की दो श्रेणियां की है—अभिनयात्मक (नाटक) और वर्णनात्मक (काव्य)। गीतिकाव्य और पाठ्यकाव्य भी दूसरे भेद के अन्तर्गत है। पाठ्यकाव्य के दो भेद है—१. काल्पनिक अथवा आदर्शवादी, और २. यथार्थवादी। काव्य के तीन और भेद भी है—आनन्दवादी, बुद्धिवादी और रहस्यवादी।

'काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक **श्रेयमयी** प्रेय रचनात्मक ज्ञान-धारा है।' आत्मा की मनन-शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व रूप में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है।

—काव्य और कला

दे० कवि और कविता भी।

काव्य और कला—निबन्ध। भौगोलिक परिस्थितियां और काल की दीर्घता तथा उसके द्वारा होने वाले सौन्दर्य-संबन्धी विचारों का सतत अभ्यास एक विशेष ढंग की रुचि उत्पन्न करता है, और वही रुचि सौन्दर्य-अनुभूति की तुला बन जाती है, इसी से भिन्न-भिन्न जातियों के विचार भिन्न-भिन्न हो जाते है। उदाहरण स्वरूप, भारतीय साहित्यिक रुचि के अनुसार स्त्री का उपालम्भ पुरुष के प्रति वर्णित किया जाता है। पर रुचि-भेद से परिवर्तन भी होता है। कालिदास ने 'रघुवंश' में अज का और 'मेघदूत' में यक्ष का विरह-वर्णन किया है। भारतीय वाङ्मय की सुरुचि-सम्बन्धी विचित्रताओं के निदर्शन बहुत से मिलेंगे। उन्हें बिना देखे ही अत्यन्त शीघ्रता से आजकल अमुक वस्तु अभारतीय है अथवा भारतीय संस्कृति इस सुरुचि के विरुद्ध है, कह देने की परिपाटी चल पडी है। सुखान्त प्रबन्ध ही भारतीय संस्कृति के अनुकूल है, लेकिन हमारे दो साहित्य-स्तम्भ रामायण और महाभारत तो दुःखान्त है। पूर्व और पश्चिम का रुचि-भेद भी विलक्षण है। यूरोप मे कला और दर्शन भिन्न है। भारतीय विचार-धारा मे कवि ऋषि है, द्रष्टा है। दर्शन कवित्व की महत्ता है। यूरोप मे कला का विभाजन मूर्त-अमूर्त के भेद से किया गया है। भारत मे कविता को शुद्ध अमूर्त नही कहा गया है। सौन्दर्य-बोध बिना रूप के हो ही नही सकता। भारत ने मूर्त और अमूर्त के एकीकरण पर बल दिया है। शास्त्र में श्रेय का विवेचन होता है, कला मे प्रेय

होता है, और काव्य में श्रेय और प्रेय दोनों का सामञ्जस्य होता है। काव्य श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान-धारा है। छन्दशास्त्र काव्योपजीवी कला का शास्त्र है। काव्य कला से भिन्न है। काव्य विद्या है और कला उपविद्या। काव्य में शुद्ध आत्मानुभूति की प्रधानता है—इसीलिए सूरदास वात्सल्य में और तुलसीदास भक्ति में सफल हैं। जब आत्मानुभूति तीव्र हो, तो अभिव्यक्ति स्वत: पूर्ण हो जाती है। कौशल या विशिष्ट पद-रचना-युक्त काव्य-शरीर अपने आप सुन्दर हो जाता है।

—काव्य और कला तथा अन्य निबंध

काव्यमीमांसा—काव्य-मीमांसा से पता चलता है कि भारत के दो प्राचीन महानगरों में दो तरह की परीक्षाएँ अलग थीं—काव्यकार-परीक्षा (विद्या) उज्जयिनी में और शास्त्रकार-परीक्षा (उपविद्या) पाटलिपुत्र में।

—काव्य और कला, पृ० ४

[कर्त्ता राजशेखर, समय ७वीं शती।]

काव्यादर्श—दे० कला।

[दे० दण्डी।]

काशी[१]—दे० कठ।

काशी[२]—काशी राज्य पहले कोशल के अन्तर्गत था। वासवी को पिता ने दहेज में दिया तो यह बिम्बसार के मगध-राज्य में सम्मिलित हुआ। बिम्बसार से जब अजात को राज्याधिकार मिला तो वासवी ने अपने पति के मान की रक्षा के लिए काशी का राजस्व अजात के कोष में नहीं जाने दिया। इस कारण से मगध और कोशल के बीच में युद्ध हुआ। अन्त में अजात का विवाह कोशलकुमारी वाजिरा से हुआ तो काशी का राज्य पुन: मगध में सम्मिलित हुआ। नाटक में बन्धुल यहां का सामन्त था, यहीं उसका वध हुआ। शैलेन्द्र की साहसिकता का यही क्रीड़ास्थल था। समुद्रदत्त को यहां काशी के दण्डनायक द्वारा शैलेन्द्र के स्थान पर फांसी दी गई। श्यामा यहां की प्रसिद्ध वारविलासिनी थी जिसका प्रभाव बड़े-बड़े लोगों पर था। **—अजातशत्रु**

[काशी पर प्रसेनजित का अधिकार था। इसमें की एक लाख की आय का उपयोग मगधराज करता था।]

काशी[३]—पूरे नाटक में चार दृश्य (दूसरे अंक में) काशी से सम्बद्ध हैं। **—अजातशत्रु**

काशी[४]—दे० 'गंगा' भी। **—आकाशदीप**

काशी[५]—काशी का बना, स्वर्णतारों से खचित नीला लहंगा। **—इरावती, ७**

काशी[६]—तीर्थ जहां चन्द्रग्रहण के अवसर पर स्नानार्थियों की भीड़ थी। तारा और मंगल का प्रथम मिलन यहीं हुआ। किशोरी अपने जारज-पुत्र के साथ काशी में रहने लगी, जहां देवनिरञ्जन भी आ जाते। कथाएँ होतीं, दान-यज्ञ होते। किशोरी काशी की एक भद्र महिला गिनी जाने लगी।

पगली घंटी एक बार किशोरी के साथ काशी आई।

'काशी में बड़े-बड़े अनाथालय, बड़े-बड़े अन्न-सत्र हैं, और उनके संचालक स्वर्ग

में जानेवाली आकाश-कुसुमों की सीढ़ी की कल्पना छाती फुलाकर करते है।'

श्रीचन्द भी किशोरी के साथ काशी में रहने लगे थे।

विजय और किशोरी का देहान्त और नाटक का अन्त यहां पर हुआ। —कंकाल

काशी[७]—जिसके लिए सारी वसुन्धरा काशी हो, वही महापुरुष है। —(**गान**)

काशी[८]—जहा उपनिषद् के अजातशत्रु की परिषद् मे ब्रह्म-विद्या सीखने के लिए विद्वान् ब्रह्मचारी आते थे। गौतम बुद्ध और शंकराचार्य के धर्म-दर्शन के वाद-विवाद, कई शताब्दियों से लगातार मन्दिरो और मठों के ध्वंस और तपस्वियों के वध के कारण, प्राय: बन्द से होगए थे। यह सन् १७८१ की बात है। काशी पर अँग्रेजों का कबजा था, राजा चेतसिंह का नाम ही था। काशी का जीवन निराश और विच्छिन्न था। गुण्डे बढ गए थे। काशी की रगीली वेश्याएँ प्रसिद्ध रही हैं। ...शिवालय-घाट पर जहां चेतसिंह बन्दी थे, तिलंगों की कम्पनी का पहरा था। तिलंगों के कारण भय और सन्नाटे का राज्य था। चौक में चिथरूसिंह की हवेली अपने भीतर काशी की वीरता को बद किये कोतवाल का अभिनय कर रही थी। —(**गुंडा**)

काशी[९]—'घीसू' कहानी का घटना-स्थल। घीसू रेजगी और पैसे की थैली लेकर दशाश्वमेध पर बैठता था।

—(**घीसू**)

काशी[१०]—काशी के एक सम्भ्रान्त कुल के व्यक्ति का चित्र 'चूड़ीवाली' कहानी में दिया गया है और साथ ही काशी की वेश्या का जीवन भी चित्रित किया गया है। —(**चूड़ीवाली**)

काशी[११]—काशी मे स्वामी दयानन्द के साथ पण्डित-मण्डली के शास्त्रार्थ हो रहे थे। यहा के स्थान—दुर्गाकुण्ड।

—**तितली**, १-७

[स्वामी दयानन्द नवम्बर १८६९ ई० में काशी में थे।]

काशी[१२]—निआल्तगीन ने इस नगरी को खूब लूटा और यहा के हीरे-जवाहिरात पाकर इतना समृद्ध हुआ कि महमूद गजनवी से विद्रोह कर दिया।—(**दासी**)

काशी[१३]—काशी के उत्तर में धर्मचक्र विहार, मौर्य्य और गुप्त सम्राटों की कीर्ति का खंडहर था। भग्न चूड़ा, तृण-गुल्मों से ढके हुए प्राचीर, ईंटों की ढेर मे बिखरी हुई भारतीय शिल्प की विभूति, जहा गौतम ने पहले उपदेश दिया। वही स्तूप बना था। (सारनाथ में)। —(**ममता**)

[दे० सारनाथ।]

काशी[१४]—तीस वर्ष पहले जब काशी में रगमंच की उतावली थी, तब भी किसी दक्षिणी नाटक-मण्डली द्वारा 'मृच्छ-कटिक' का अभिनय देखा था। कदाचित् उसका नाम 'ललित-कलादर्श-मण्डली' था। —(**रंगमञ्च**, पृ० ७२)

काशी[१५]—काशी के घाटों की सौधश्रेणी जाह्नवी के पश्चिमी तट पर धवल शैल-माला-सी खड़ी है। यहीं से सरला को शैलनाथ दिखाई दिये।—(**रूप की छाया**)

काशी[१६]—यहां के बने बहुमूल्य उत्तरीय, रत्नजटित कटिबन्ध प्रसिद्ध थे। यहां के कौशेय, अंगराग, ताम्बूल और कुसुम दूर-दूर जाते थे। —(**सालवती**)

काशी[१७]—'सन्देह' तथा 'अमिट स्मृति' कहानी की पृष्टभूमि।

प्रसाद ने काशी के दुर्गाकुंड, त्रिलोचन, दशाश्वमेध, राजघाट, पंचगंगा घाट, शिवालय घाट, क्वींस कालेज, मान मंदिर, गोदौलिया, बजाज चौक, विश्वनाथ मन्दिर, आदि स्थानों का विशेष उल्लेख कई कृतियों में किया है।

दे० बनारस, वाराणसि, गंगा भी। दे० परिशिष्ट भी।

[प्राचीन नगरी जो काश नाम के राजा ने बसाई। वास्तव मे काशी प्रदेश का नाम था और बनारस उसकी राजधानी का। विष्णुपुराण, भागवत और हरिवंश आदि पुराणों मे काशी का कई जगह वर्णन है और दिवोदास, अजातशत्रु और पौण्ड्रक-वंश के राजाओं का उल्लेख मिलता है। बुद्ध के समय में काशी महानगर था। ह्वेन-सांग के समय में काशी राज्य का घेरा ८०० मील था। ११९३ ई० मे इस पर मुसलमानों का और १७७८ से अँगरेजों का अधिकार हुआ। बनारस में सैकड़ों मंदिर, बीसियों मसजिद और लगभग ५० घाट है। रेशमी कपड़े का व्यापार अब भी होता है। सारनाथ यहां से ४ मील उत्तर को है।]

काश्मीर[१]—बेगम—मैं चलना चाहती सुखद काश्मीर को।

मुझे हुक्म हो तो जाऊँ काश्मीर ही, क्योंकि वही जलवायु मुझे है स्वास्थ्यकर। रहीम खां—(अकबर से)

—**महाराणा का महत्त्व**

काश्मीर—लकड़ी पर खुदाई के काम के लिए प्रसिद्ध। —**ध्रुवस्वामिनी, २**

काश्मीर[२]—यूसुफ खां अंतिम स्वतंत्र शासक। सुन्दर प्रकृति, सुन्दर स्त्री-पुरुष। —(**नूरी**)

काश्मीर[३]—फारस में जिस सूफी धर्म का विकास हुआ, उस पर काश्मीर के साधकों का बहुत कुछ प्रभाव था।

—(**रहस्यवाद, पृ० २१**)

[काश्मीर शैवाद्वैतवाद का केन्द्र रहा है।]

काश्मीर[४]—दे० कामरूप।

—**राज्यश्री, ३-३**

काश्मीर[६]—नरदेव का राज्य। 'विशाख' नाटक की मुख्य पृष्ठभूमि। सुन्दर आराधना की, करुणा की भूमि। —**विशाख**

काश्मीर[७]—मातृगुप्त की जन्मभूमि। दे० सिंहल भी। काश्मीर-मंडल में हूणों का आतंक है। (मातृगुप्त)। —**स्कन्दगुप्त, १**

स्कन्द ने उसे अपने साम्राज्य के अन्तर्गत किया और मातृगुप्त को वहां का शासक बनाया। —**स्कन्दगुप्त, ३**

बाद में हूणों ने आक्रमण किया तो मातृगुप्त ने काश्मीर से विदा ली।

—**स्कन्दगुप्त, ४**

काश्मीर[८]—देवपाल को काश्मीर से

सहायता की आशा थी। नारा काश्मीर की रूप-माधुरी थी।

—(**स्वर्ग के खण्डहर में**)

दे० श्रीनगर, एवं परिशिष्ट भी।

[कश्यप ऋषि के नाम पर काश्मीर है। ऐतिहासिक काल में इस प्रदेश ने भारत के सांस्कृतिक उत्थान में महत्त्वपूर्ण भाग लिया। काश्मीर के शासकों में कनिष्क, मिहिरकुल हूण, ललितादित्य, अवन्ति-वर्मा, जैनुल आबदीन और गुलाब सिंह प्रसिद्ध हुए है। राजधानी श्रीनगर। अन्य प्रसिद्ध स्थान गुलमर्ग, पहलगांव, अमर-नाथ, अनन्तनाग आदि।]

काश्यप—पौरवों का पुरोहित, लोभी, दुर्विनीत, क्रोधी, कुचक्री, नीच और स्वार्थी। "राजकल पर विशेष आतंक जमाने के लिए प्रायः वह विरोधी बन जाया करता है, और फिर पूरी दक्षिणा पा जाने पर प्रसन्न होता है।"—(वेद)। रानी के मणिकुण्डल न मिलने पर वह जनमेजय और उत्तंक दोनों के विरुद्ध कांड खड़े करता है। धन तो उसे प्राण से भी प्यारा है। वह तक्षक से मिल जाता है किन्तु तक्षक के प्रति भी वह निश्छल नहीं है। वह वेद जैसे विद्वान् और तुर जैसे कर्मकाण्डी याज्ञिक के लिए अनादर-पूर्ण शब्दों का प्रयोग करता है। यह कपटी अन्त में एक नाग द्वारा मारा जाता है। दे० प्राक्कथन[१] भी।

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ**

[महाभारत में वर्णित मान्त्रिक ब्राह्मण।]

कितने दिन जीवन-जलनिधि में - गीत। कई लहरियां उठीं और गिरी, अतीत की गाथाएँ निनादित हो उठीं। परन्तु न तो लहरियों को कूल मिला, न ही गाथाओं को सहारा। आशा ही आशा में सूर्य, चन्द्रमा और तारागण जीवन के वक्ष पर अपने चंचल चित्र बनाते रह गये। —**लहर**

किन्नरी—'किन्नरी सचमुच हिमालय की किन्नरी है। ऊनी लंबा कुरता पहने है, खुले हुए बाल एक कपड़े से कसे हैं जो सिर के चारों ओर टोप के समान बंधा है। कानों में दो बड़े-बड़े फीरोजे लटकते है। सौन्दर्य है, जैसे हिमानी-मण्डित उपत्यका में वसन्त की फूली हुई वल्लरी पर मध्यान्ह का आतप अपनी सुखद कान्ति बरसा रहा हो। हृदय को चिकना कर देने वाला रूखा यौवन प्रत्येक अंग में लालिमा की लहरी उत्पन्न कर रहा है।'

—(**हिमालय का पथिक**)

किरण—इस कविता में किरण को केवल भौतिक रूप में नहीं देखा गया। वह 'नव-वधू सी, कोकनद मधुधारा सी तरल', 'भूलोक और स्वर्ग के बीच में सूत्र सदृश'; 'अरुण शिशु की घुंघराली लट', उषा के अंचल में अश्रान्त तो है ही, उसमें संकेत भी मिलते हैं। वह 'किसी अज्ञात विश्व की विकल-वेदना-दूती' है, वह प्रेम और आनन्द के निकेत की ओर संकेत करती है। वह भूलोक और स्वर्ग-लोक को मिलाती है। कविता में उपमानों का बाहुल्य है। —**झरना**

किलात—दे० आकुलि।

किशोर[१]— ललित का निर्धन मित्र जिसकी

दीनता को ललित बांट लेना चाहता था। दार्शनिक भुलक्कड़ जो अघोरी के रूप में अपने प्रिय मित्र को न पहचान सका। —(अघोरी का मोह)

किशोर[२]—वनपालिका का राजकुमार से पुत्र। उसने एक सुन्दर कुरंग पकड़ा। राजपुत्र उसे देख मचल गया। किशोर मूल्य मांगने लगा। रक्षको ने कुछ देकर उसे छीन लेना चाहा। किशोर ने कुरंग का फन्दा ढीलाकर दिया। राजपुत्र रोने लगा। रक्षकों ने किशोर को पकड लिया। वे उसे राजमन्दिर की ओर ले चले। रानी ने अपने पुत्र को देखा तो आगबबला हो गई। किशोर को बेतों से पीटने की आज्ञा दी। उसने बिना रोए-चिल्लाए और आसू बहाए बेतों की चोट सह ली। राजा ने देखा, पर उनकी दया कुछ काम न आई। वनपालिका ने बच्चे को गोद मे उठा लिया और कहा — 'आह! वे कितने निर्दय हैं।' जब फिर राज-पुत्र शिकार खेलने आया तो किशोर का तीर कुरंग को बेधता हुआ राज-पुत्र की छाती में घुस गया। किशोर को राजा ने बाणों से छिदवा दिया। —(अपराधी)

किशोर[३]—प्रेम-पथिक का नाम।

—**प्रेमपथिक**

किशोर[४]—मृणालिनी का भाई। उसे मदन और मृणालिनी दोनों से पूर्ण सहानुभूति है। दोनों की संकट के समय सहायता करता है। —**मदन मृणालिनी**

[उपर्युक्त चारों किशोर कल्पित पात्र हैं।]

ठा० किशोर सिंह—चन्दनपुर के जमीन्दार। —(**शरणागत**)

किशोरी—श्रीचन्द की लाड़िली पत्नी, परिस्थितियों के वश में होकर पतित। सन्तान-कामना उसके हृदय की सबसे बलवती आकांक्षा है। सन्तान का वरदान पाने के लिए जब वह तीर्थों में महात्माओं की चरण-धूलि लेती फिर रही थी, तभी उसे बाल्यकाल का साथी रंजन, संन्यासी देवनिरंजन के रूप में मिला। उसी से उसको पुत्र हुआ। विजय की उत्पत्ति पर अपने पति श्रीचन्द का कोप सहना पड़ा। वह काशी में रहने लगी। वह एक स्वार्थ से भरी चतुर स्त्री थी। स्वतंत्रता से रहा चाहती थी, इसलिए अपने बेटे विजय को भी स्वतन्त्र होने में सहायता देती थी। बाह्य धर्माचरण दिखलाना उसके दुर्बल चरित्र का आवरण था। घंटी को लेकर जब विजय से उसका मनमुटाव हो गया तब उसे विजय का साथ छोड़ना पड़ा। परन्तु मातृ-स्नेह उमड़-उमड़ पड़ता था। वह रंजन को पुत्र-त्याग का कारण समझती थी। निरंजन ने तंग आकर घर छोडने का निश्चय किया तो इसने कहा था— "रोकता कौन है, जाओ! ..जाओ तपस्या करो, तुम फिर महात्मा बन जाओगे। सुना है, पुरुषों के तप करने से घोर-से-घोर कुकर्मों को भी भगवान् क्षमा करके उन्हें दर्शन देते है। पर मैं हूँ स्त्री-जाति! मेरा यह भाग्य नहीं, मैंने पाप करके जो पाप बटोरा है उसे

ही मेरी गोद में फेंकते जाओ।" किशोरी के जीवन भर के पाप-पुण्य का संचित धन विजय ही था। वह हत्या के अपराध में बन्दी हुआ। श्रीचन्द ने मोहन को दत्तक पुत्र बना लिया। इन बातों से किशोरी का मन और शरीर जर्जर हो गया। वह चिर रोगिणी हुई। मृत्यु शय्या पर पड़ी दुःखिया मां का स्नेह विजय को खींच ही लाया और वह चिरविश्रान्ति की गहरी नींद सो गई। —**कंकाल**

किशोरी[२]—श्यामा की लड़की। नगण्य पात्र। —(**सन्देह**)

किसे नहीं चुभ जायँ, नैनों के तीर नुकीले!—कालमा के प्रेम-गीत की तीन पंक्तियां। —**कामना, २-६**

कीटागिरि—दे० विनयपिटक।

[काशी के निकट जनपद—विनयपिटक २.७१]

कीन—१९वीं शताब्दी में अंग्रेजी रंगमंच की नई योजना और खोज करने वाले, शेक्सपियर के नाटकों के अभिनय की नई शैली के प्रवर्तक।

—(**रंगमंच, पृ० ७१**)

[प्रसिद्ध अभिनेता जिनकी १८१४—२५ के बीच में बड़ी ख्याति थी।]

कुक्कुटाराम—बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों का विहार। —**इरावती, २-५**

[कौशाम्बी में उदयन के समय में महात्मा बुद्ध के लिए निर्मित विहार।]

कुछ नहीं—कविता। जिसके पास हम समझते हैं कुछ भी नहीं, उसके पास सब कुछ है, क्योंकि उसे आवश्यकता ही नहीं। शान्त रत्नाकर के नाविक अथवा गुप्त निधियों के यक्ष को ही देख लीजिए। लोग उसी का तो दिया हुआ संचित किए बैठे हैं। —**झरना**

कुञ्ज—अरुणाचल आश्रम का मंत्री। एक सुदक्ष प्रबन्धक और उत्साही सञ्चालक, सदा प्रसन्न रहनेवाला अधेड़ मनुष्य। गौण पात्र, जो प्रश्न करके वादविवाद बढ़ाने में सहायक होता है। —**एक घूंट**

कुञ्जनाथ—युवक श्रद्धालु भक्त, जिसकी श्रद्धा पत्नी की मृत्यु से उखड़ गई। धनी-जमींदार-सन्तान था, उसमें प्रगल्भ व्यवहार करना साधारण काम नहीं था। दरिद्रा सास को वह बड़ी अनादर की दृष्टि से देखता था। उससे कभी मिलना भी अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझता था। दरिद्र कन्या से ब्याह करके उसे समाज में सिर नीचा करना पड़ा था। इस पाप का फल रजनी की मा को बिना दिए, बिना प्रतिशोध लिए कुञ्जनाथ को चैन नहीं था। लेकिन भक्ति का उद्रेक होते ही धनी और दरिद्र का भेद जाता रहा और उसने रजनी को स्वीकार किया। —(**प्रतिमा**)

कुञ्जविहारी[१]=कृष्ण। कुञ्जनाथ के पहले उपास्य। —(**प्रतिमा**)

कुञ्जविहारी[२]—महन्त का जमादार। इसी की लाठी से गधे मारा गया। —(**विरामचिह्न**)

कुञ्ज में वन्शी बजती है—नरदेव की राजसभा में नर्तकी का पहला गीत। कुञ्ज का स्वर आकम्पित कर रहा है,

रागमयी संध्या की तानें आह्वान कर रही है। लज्जा छोड़कर उधर जाने को मन चाहता है। —**विशाख, १-३**

कुणीक = अजातशत्रु। घरवालों का रखा हुआ नाम। —**अजातशत्रु**

कुनाल—अशोक का पुत्र। सरल दृष्टि, सुन्दर अवयव। विमाता के प्रेम-प्रस्ताव मे बडा विस्मित और भीत होकर बोला —"पुत्र का सौन्दर्य तो माता ही का दिया हुआ है।... माता जी, मेरा प्रणाम ग्रहण कीजिए और अपने इस पाप का शीघ्र प्रायश्चित कीजिए।" अनाथ और जैनियों पर दया की, और जब राज-पत्र मिला कि कुनाल की आंखे निकाल दी जायें तो सहर्ष कहा कि यह तो तुम्हे करना ही होगा। तिष्यरक्षिता को दण्डित किया गया तो इसने पिता से क्षमा चाही, पर अशोक ने तिष्यरक्षिता को क्षमा नही किया। —**(अशोक)**

[अशोक का उसकी बडी रानी असन्धि-मित्रा से उत्पन्न पुत्र; ह्य्वेन-साग ने लिखा है कि तक्षशिला के उत्तर में कुणाल का मंदिर है जहा अन्धे लोग आकर पूजापाठ करके दृष्टिलाभ कर लेते हैं।]

कुन्तक—कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवित में कहा है—शब्द और अर्थ की स्वाभाविक वक्रता ही विछित्ति (छाया) है।

—**(यथार्थवाद और छायावाद पृ० ९०)**

इनका मत—वैदग्ध्य भंगी भणिति में शब्द और अर्थ की वक्रता से उज्ज्वला छायातिशय रमणीयता आती है।

—**(वही, पृ० ९०-९१)**

(छायावाद) प्रसिद्ध व्यवहार से भिन्न अभिव्यक्ति के कारण (अस्पष्ट रहता) है। —**(वही, पृ० ९३)**

[कहीं-कहीं राजानक कुन्तल नाम भी मिलता है। वक्रोक्तिजीवितकार नाम से इनकी अधिक प्रसिद्धि है। समय लगभग ९५० ई०।]

कुन्दनलाल—महाजन। कुसुमपुर के एक गण्य भूस्वामी ने कार्यवश उनसे कुछ ऋण लिया। जब वह रुपए जुटाकर उनके पास गया तो उन्होने कहा कि सात-आठ रोज़ मे ले आना, इस समय रेहननामा नही मिल रहा है। रुपया उसने खर्च कर दिया और कुन्दनलाल ने दावा करके इलाका नीलाम करा दिया और वे कुसुमपुर के ज़मीदार बन गए। —**(ग्राम)**

कुबेर—खेल मे बौना कहता है कि मै दिग्विजय करने के लिए कुबेर पर चढ़ाई करुंगा। —**ध्रुवस्वामिनी, १**

[यक्षराज; धन-समृद्धि तथा ऋद्धि के स्वामी; उत्तर दिशा के अधिष्ठाता, कैलास और अलकापुरी में रहनेवाले देवता।]

कुभा—रणक्षेत्र, जहां स्कन्द की सेनाएँ लड़ो। भटार्क ने बांध तोड़ दिया तो बाढ़ आगई। बहुत-से सैनिक बह गए।

—**स्कन्दगुप्त, ३**

[काबुल नदी का प्राचीन नाम जो अटक के पास सिन्धु नदी में आ मिलती है।]

कुमारगुप्त—मगध का सम्राट्, प्रौढ़ा-वस्था में विलास की मात्रा बढ़ गई थी। विषय-विह्वल हो तरुणी (अनन्त देवी)

की आकांक्षाओं का साधन बन गया। उसकी मति एक-सी नहीं रहती। वह अव्यवस्थित और चञ्चल रहता है।

—स्कन्दगुप्त

[कुमारगुप्त प्रथम का शासन-काल ४२५ ई० के आस-पास ३३ वर्ष का माना जाता है। उसके जीवन की दो प्रमुख घटनाएं हैं, एक अश्वमेध यज्ञ और दूसरी, पुष्यमित्रों से युद्ध। इसका राज्य बंगाल से सौराष्ट्र तक और हिमालय से नर्मदा तक था।]

कुमारदास=धातुसेन। —स्कन्दगुप्त

[महावंश के अनुसार इसका शासन-काल सन् ५११–५२४ तक ठहरता है। यह बहुत अच्छा कवि था। इसका रचित काव्य 'जानकी हरण' माना जाता है। इसे कालिदास का समकक्ष और सम-कालीन माना जाता है।]

कुमारिका—दे० हिमालय।

—(प्रलय की छाया)

कुमुद—नागराज जिसने अपनी पुत्री का विवाह कुश से किया।

—(अयोध्या का उद्धार)

[वाल्मीकि रामायण (युद्धकाण्ड,५५) के अनुसार गोमती नदी के तीर पर रहने वाला राम-सेना का एक पराक्रमी वानर।]

कुमुद्वती—कुमुद नाग की कन्या।

—(अयोध्या का उद्धार)

कुरुक्षेत्र¹—कविता का आरम्भ मोहन के बाल-गोपाल रूप से होता है। बांसुरी की एक धुन पर गोवालों की सभा एकत्र हो जाती थी। सभी उस रंगीले राग में अनुराग पाते थे। व्रजभूमि में ऐसा कौन था जो मोहन को देखकर मोहित नहीं हो जाता था? कालिन्दी के मनोहर कूल में धेनु-चारण-कार्य करते थे। कृष्ण ने कंस को मार डाला और इसके पश्चात् सत्रह आक्रमणों का सामना किया। कृष्ण ने सुभद्रा का विवाह पार्थ से करा दिया। वीर बार्हद्रथ कठिन रण-नीति से मारा गया। कृष्ण पाडवों के संरक्षक बने और धर्मराज्य की स्थापना की। राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया। शिशु-पाल का वध भी किया। फिर पाण्डव कौरवों की चालबाजी से वनवासी हुए। अन्त में महाभारत का युद्ध हुआ। कृष्ण सारथी बने। रथ रणभूमि में आकर खड़ा हुआ तो अर्जुन का हृदय दैन्य से भर गया। तब कृष्ण ने उन्हें कर्म करने का उपदेश दिया—

कर्म जो निर्दिष्ट है,
हो धीर करना चाहिए।
पर न फल पर कर्म के
कुछ ध्यान रखना चाहिए।
उठ खड़े हो अग्रसर हो,
कर्मपथ में मन लगे।
क्षत्रियोचित धर्म जो है
युद्ध निर्भय हो करो।

—(कुरुक्षेत्र)

कुरुक्षेत्र²—दे० सरस्वती।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ १-१

[दिल्ली के पश्चिम में वर्तमान कर-नाल जिला (पंजाब) के अन्तर्गत एक

मदान जहां कौरवों और पाण्डवों का महाभारत युद्ध हुआ था। आजकल यहां सूर्य्य-ग्रहण के अवसर पर बहुत भारी मेला लगता है। दे० स्थाणीश्वर भी]

कुरङ्ग—मगध के एक चर का नाम।

—चन्द्रगुप्त, ३-४

कुलसम—मारिशम में बुड्ढे की पत्नी, नीरा की मां, साध्वी गृहिणी। कुलसम के ईश्वर से विद्रोह होने के कारण ही वह नास्तिक हो गया था। यह बात कुलसम को असह्य थी। जब वहां गोली चली, तब कुलसम के वहां जाने की आवश्यकता नहीं थी। पर वह गई और मारी गई। आत्महत्या करने का वह उसका नया ढंग था। **—(नीरा)**

कुश—तुम वा कुल के कुमार हो
हरिश्चन्द्रादि जहां उदार से।
. . . जेहि वंश-चरित्र को लिखे
कवि वाल्मीकि अजौ सुख्यात है
. . .जेहि राम सुराज्य को सदा
रहिहैं या जग मांहि नाम है।
तेहि के तुमहूँ सपूत हो।

—(अयोध्या का उद्धार)

[राम-सीता के छोटे पुत्र।]

कुशावती—लसत चारु नगरी कुशावती।

—(अयोध्या का उद्धार)

[वर्तमान पश्चिमी पंजाब में कसूर नगरी जो लाहौर के निकट है।]

कुसुमकुमारी—राजकन्या जिसने अपने प्रेमी से अमरलोक में मिलने के लिए विषपान किया। कहानी में वह निष्क्रिय सी है। **—(रसिया बालम)**

कुसुमपुर[१]—मगध की राजधानी। "रहस्यों की नगरी।" अग्निमित्र और इरा को बंदी बनाकर यहां लाया गया। **—इरावती**

कुसुमपुर[२]—मोहनलाल की जमींदारी।

—(ग्राम)

कुसुमपुर[३]—'चन्द्रगुप्त' नाटक की मुख्य घटनास्थली : मगध की राजधानी जहां राजा नन्द के राजभवन, राजसभा आदि थी। **—चन्द्रगुप्त**

कुसुमपुर[४]— **—(व्रतभंग)**

कुसुमपुर[५]—गुप्त-सम्राटों की राजधानी।

—स्कन्दगुप्त

[=पाटलिपुत्र, पटना।]

कृतज्ञता—कृतज्ञ होना दासत्व है। चतुरों ने अपना कार्य-साधन करने का अस्त्र इसे बनाया है। **—(कलावती की शिक्षा)**

—अनुग्रह पाने से मनुष्य कृतज्ञ होता है। कृतज्ञता परतंत्र बनाती है। (सालवती)

—(सालवती)

कृशाश्व—दे० भरत[१०]।

कृष्ण[१]—लीलापुरुषोत्तम ; दार्शनिक, विवेकवादी, पर उनमें प्रेम और आनन्द की मात्रा भी मिली थी। श्रीकृष्ण में नर्त्तक भाव का भी समावेश था, मधुरता के साथ-साथ ही उनमें १८ अक्षौहिणी के विनाश-दृश्य के सूत्रधार होने की भी क्षमता थी। कृष्ण ने इन्द्र की पूजा बंद करके इन्द्र के आत्मवाद को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया।

—(आरम्भिक पाठ्य काव्य, पृ० ८२)

कृष्ण[२]—कृष्णचन्द्र की बाल-लीला से

अलंकृत भूमि में रहकर हृदय को आनन्द-पूर्ण बनाने किशोरी, निरंजन आदि गोकुल में आ गए। वृन्दावन से दूर एक टीले पर श्रीकृष्ण का मन्दिर था जिसके अध्यक्ष कृष्णशरण गोस्वामी थे। मन्दिर में श्रीकृष्ण की एक विलक्षण मूर्ति थी—एक श्याम, ऊर्जस्वित, वयस्क और प्रसन्न गंभीर मूर्ति। इसी मंदिर मे गोस्वामी जी कृष्ण के जीवन की कथा सुनाते थे। **—कंकाल, खंड २**

पगली (तारा) मोहन मे कृष्ण का साक्षात्कार करती थी। **—कंकाल, ४-१**

मंगल ने कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने स्त्रियों और शूद्रों के लिए परागति पाने की व्यवस्था दी है। **—कंकाल, ४-३**

मंगल बीमार पड़ा तो सरला कृष्ण की प्रतिमा के सामने प्रार्थना करती थी। **—कंकाल ४-६**

मंगल का उपदेश कि हम लोग एक हैं, ठीक उसी प्रकार है जैसे श्रीकृष्ण ने कहा है,—"अविभक्तं च भूतेषु विभक्त-मिव च स्थितम्।" **—कंकाल, ४-८**

कृष्ण[२]—कृष्ण ने साम्य, विश्व-मैत्री, प्रेम और मानवता का उपदेश दिया। यदि कृष्ण चाहते तो, यादवों का नाश न होता, किन्तु उसका परिणाम अन्य जातियों के लिए भयानक होता। अपने मित्र अर्जुन से वे अभाव, जड़ता आदि विषयों की चर्चा करते हैं। "पुरुषार्थ करो, जड़ता हटाओ। इस वन्य प्रान्त (खाण्डव) मे मानवता का विकास करो जिसमे आनन्द फैले।...दुर्वृत्त प्राणियों (नागों) का हटाया जाना ही अच्छे विचारों की रक्षा है।.... लगा दो इस (खाण्डव) में आग।"

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, १-१

कृष्ण[३]—सुधारक कृष्ण, राधा और राम-चन्द्र का जो रूप आधुनिक हिन्दी साहित्य में आने लगा वह वर्तमान युग के अनुकूल हुआ—यथार्थवादी। 'राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है' वाला सिद्धान्त कुछ निर्बल हो चला।

—(यथार्थवाद और छायावाद, पृ० ८५)

कृष्ण[४]—इनमे बुद्धिवादी (गीता का) और आनन्दवादी (लीला और द्वारका का ऐश्वर्य-भोग) पक्षों का समन्वय है।

—(रहस्यवाद, पृ० ३१)

दे० इन्द्र भी।

उपनिषदों के षोडशकला पुरुष के प्रतिनिधि, सोलह कलापूर्ण अवतार श्रीकृष्णचन्द्र बने।

—(रहस्यवाद, पृ० ३३)

द्वैत उपासकों ने कृष्ण को आलम्बन मान कर आनन्द और प्रेम के साथ विरह और दुःख को मिलाया।

—(वही, पृ० ३५)

कृष्णचन्द्र में आनन्द और विवेक का, प्रेम और सौन्दर्य का सम्मिश्रण था। **—(वही, पृ० ३८)**

कृष्ण[५]— **—(श्रीकृष्ण जयन्ती)**

[यदुवंशी वसुदेव और देवकी के पुत्र जो विष्णु के आठवे अवतार माने जाते है। विस्तृत वर्णन हरिवंश और भागवत मे मिलता है। वे गोकुल-वृन्दा-

वन में पलकर बड़े हुए, मथुरा में कंस को मारा। वहां से द्वारका में राज्य स्थापित किया। कुरुक्षेत्र में अर्जुन के सारथि रहे। इन्होंने जरासंध, शिशुपाल, केशी आदि अत्याचारियों को मारा। मृत्यु द्वारका में हुई।]

कृष्णमोहन—श्यामलाल का लडका जो कलकत्ता में थियासोफिकल स्कूल में पढ़ता है। वह भी शेरकोट आया हुआ था। **—तितली, खण्ड १**

कृष्णशरण (गोस्वामी)—वृन्दावन से दूर, यमुना के तट पर एक हरा-भरा टीला है। वहां एक छोटा-सा श्रीकृष्ण का मंदिर है। गोस्वामी कृष्णशरण उस मंदिर के अध्यक्ष, एक साठ-पैंसठ बरस के तपस्वी पुरुष हैं। उनका स्वच्छ वस्त्र, धवल केश, मुख-मंडल की अरुणिमा और भक्ति से भरी आंखें अलौकिक प्रभा का सृजन करती हैं। **—कंकाल**

कृष्णसिंह—सालुम्ब्रापति, सरदार, जिन्होंने प्रताप से युद्ध का वृत्तान्त कहा और रहीम खां की पत्नी के बन्दिनी बनाकर लाये जाने की सूचना दी।

—महाराणा का महत्त्व

[ऐतिहासिक व्यक्ति।]

कृष्णा[१]—

कृष्णा क्रीड़ित निज
नव तरलित जल लहरी सों।

—(प्रेमराज्य)

[दक्षिण भारत की नदी जो पूना, महाबलेश्वर के निकट निकलती है और आन्ध्र प्रदेश में बहती हुई निजामपटम के पास बंगाल की खाड़ी में आ गिरती है। दूसरा नाम किष्टना, कृष्णवेणी।]

कृष्णा[२]—धर्मराज युधिष्ठिर के संग।

—(बभ्रुवाहन)

[=द्रौपदी, कृष्णवर्णा।]

केकेय—इसी प्रदेश के पहाड़ी दुर्ग के समीप शेख का स्वर्ग था।

—(स्वर्ग के खंडहर में)

[काश्मीर का पुराना नाम (कक्का) कुछ विद्वानों ने ब्यास और सतलुज के बीच के प्रदेश को केकेय माना है।]

केन—उपनिषद्। मन, प्राण, वाणी, चक्षु, श्रोत्र आदि को कौन नियुक्त करता है? इस प्रकार के संकल्पात्मक विचार हैं।

—(रहस्यवाद, पृ० २६)

[सामवेद का वेदान्त सम्बन्धी उपनिषद् जो ब्रह्म को सब का कारणस्वरूप मानता है।]

केलिस्थनीज़—केलिस्थनीज के अनुयायियों ने क्या किया? (चाणक्य)

—चन्द्रगुप्त, २-५

[सिकन्दर का यूनानी गुल्मपति।]

केशव—दे० कृष्ण।

[विष्णु के केश से उत्पन्न।]

केशी—एक दैत्य जो उर्वशी को उठाकर ईशान दिशा की ओर ले भागा; पर्वताकार दानव जिसके पैशाचिक अग्निस्फुलिंगों को विनिर्गत करने वाले नेत्र थे। पुरुरवा से युद्ध हुआ। केशी ने गदा से प्रहार किया, "किन्तु रण-चतुर नरनाथ ने हटकर एक ऐसा तीव्र असि-प्रहार किया कि वह भीषण राक्षस धराशायी हो

गया।" —उर्वशी-चम्पू, कथामुख

[यह केशी उस केशी से भिन्न है जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिए भेजा था और जो कृष्ण के हाथों मारा गया था। इस केशी की कथा मत्स्य-पुराण में आती है।]

कैकेयी—अनन्तदेवी ने वही किया जो कैकेयी ने किया। (स्कन्द)

—स्कन्दगुप्त, ५

[केकय देश के राजा अश्वपति की कन्या, अयोध्या-नरेश दशरथ की छोटी रानी जिसने अपने पुत्र भरत को राज्य दिलाने के लिए सौतेले बेटे राम का अकाज किया।]

कैलवाड़ा—राजस्थान में एक प्रदेश।

—(चित्तौर-उद्धार)

कैलास —कामायनी

[मानसरोवर के उत्तर में हिमालय की एक चोटी जो पुराणों में शिव और कुबेर का वासस्थान मानी गई है। स्वर्ग।]

कैसी कड़ी रूप की ज्वाला—यह गीत अमात्य राक्षस को सचेत करने के लिए नेपथ्य से गाया गया है। इसके अन्तर्गत रूप की ज्वाला में मन-पतंग के जलने, हाला के रागमयी होने और मृदुता के पीछे कठोरता रहने का संकेत है।

—चन्द्रगुप्त, ४-२

कोई खोजने—'कामायनी' के 'काम' सर्ग का कुछ अंश जो पहले 'हंस', अप्रैल १९३० में प्रकाशित हुआ।

कोकिल—कविता। पहले इन्दु कला ३, किरण ५ (अप्रैल १९१२) में प्रकाशित। नवल रसाल पर मधुकर मत्त है, मकरन्द भरा है, मलयज चल रहा है; हृदय, समय, कुंज, कंज सभी कुछ नया है। ऐसे में, हे कोकिल, नया राग गाओ। लो चन्द्रमा भी निकल आया। गाओ, नए उन्माद में गाओ और एक पल भर भी न रुको। मलयज पवन में स्वर भर दो। —कानन-कुसुम

दे० वसन्त विनोद।

कोमल कुसुमों की मधुर रात—गीत। शशि-शतदल खिला है, मलयज पवन जिसकी साँस है। लाजभरी कलियां (टमटमाते तारे) घूंघट से कँप-कँप कर नीरव बातें कर रही हैं। नक्षत्र-कुमुदों के किरण-पात खुल गए, और कितने खुल कर के फिर गिरने लगे। 'हो रहा विश्व सुख-पुलक-गात।' —लहर

कोमा—मिहिरदेव की पालित पुत्री जिसने अपनी प्रकृति से भिन्न प्रकृति वाले शकराज पर अपने हृदय को न्यौछावर कर दिया है। यही उसके जीवन की करुण कथा है। कोमा में प्रसाद ने नारीत्व की कोमलता के साथ-साथ दार्शनिक मधुरता, विनम्रता, दैन्य, त्याग आदि कोमल तथा सरस हृदय-भावनाएं अंकित की हैं। वह जीवन-दर्शन की व्याख्या करती है। वह प्रेम की उपासिका है, इसीलिए वह चाहती है कि युद्ध न हो। शकराज युद्ध में लिप्त है, वह उसे रोकती है। जब शकराज ने ध्रुवस्वामिनी की मांग की तो वह उत्तेजित हो उठी, "मेरे राजा, आज तुम एक स्त्री को अपने पति

मे विच्छिन्न कराकर अपने गर्व की तृप्ति के लिए कैसा अनर्थ कर रहे हो? राज-नीति का प्रतिशोध क्या एक नारी को कुचले बिना पूरा नहीं हो सकता?" उसका विवेक उसके प्रेम-मोह को विजित कर लेता है और वह मिहिरदेव के साथ चली जाती है। उसकी दयनीय दशा तब प्रकट होती है, जब वह शकराज के शव की याचना करने जाती है। शव मिलने के बाद वह नारी के शाश्वत रूप मे प्रकट होती है—"असहाय, निर्बल, बलिदान की मूर्ति, जिस पुरुष-द्वारा इतनी तिरस्कृत रही, उसी के लिए बावली। प्रेम में अटल कोमा निष्ठुर शकराज के मारे आत्म-विसर्जन करती है।"

कोमा, अनुभूति, चिन्तन, मोह, विवेक, विनम्रता, आत्म-समर्पण, दैन्य और त्याग का अद्भुत मिश्रण है।

—ध्रुवस्वामिनी

कोशल[१]—प्रसेनजित का राज्य; वासवी और वाजिरा यहीं की राजकुमारियां थीं। राजधानी श्रावस्ती थी। पहले अंक में दो दृश्य, दूसरे मे एक और तीसरे में दो दृश्य श्रावस्ती मे सम्बद्ध हैं।

—अजातशत्रु

बौद्धकाल तक इस राष्ट्र की मर्य्यादा विशेष थी; किन्तु वह जर्जर हो रहा था। —अजातशत्रु, कथाप्रसंग

कोशल[२]—दे० कठ।

कोशल[३]—राजधानी श्रावस्ती, कहानी का घटना-स्थल। —(पुरस्कार)

[गोमती, सरयू और इरावती नदियों का प्राचीन प्रदेश; उत्तरकोशल की राजधानी श्रावस्ती और दक्षिण-कोशल की राजधानी अयोध्या थी। दे० अयोध्या।]

कोह-काफ़—शीरीं का बुलबुल हिंदोस्तान मे लौटकर आज सबेरे दिखलाई पड़ा; पर जब वह पास आ गया और मैंने उसे पकड़ना चाहा, तो वह उधर कोह-काफ की ओर भाग गया। —(बिसाती)

[काकेशस पर्वतमाला (ईरान के पश्चिमोत्तर में) जहा के रहने वाले बहुत सुन्दर होते है।]

कौटिल्य—राजशास्त्र को लोकोपजीवी मानता था।

—काव्य और कला, पृ० ७

दे० चाणक्य भी।

[राजनीति के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' के रचयिता—विष्णुगुप्त चाणक्य। समय ३२३ ई० पू० के बाद।]

कौशल्या—दे० राम। —कंकाल

[उत्तर कोशल की राजकुमारी, राम की माता।]

कौशाम्बी—उदयन के वत्स-राष्ट्र की राजधानी जिसके खण्डहर इलाहाबाद से २० मील दक्षिण-पूर्व में यमुना के किनारे 'कोसम' नाम से प्रसिद्ध हैं। उदयन यहां का राजा था। प्रथम अंक में तीन दृश्य और दूसरे अंक में एक दृश्य कौशाम्बी से सम्बद्ध है। —अजातशत्रु

कौशाम्बी का खण्डहर जिला बांदा (करवी सब-डिवीजन) में यमुना-किनारे 'कोसम' नाम से प्रसिद्ध है।

इन्द्रप्रस्थ नष्ट होने पर कौशाम्बी राजधानी बनी। —अजातशत्रु, कथाप्रसंग

[बौद्धों ने लिखा है कि "गौतम ने अपना नवां चातुर्मास्य कौशाम्बी में उदयन के राज्यकाल में व्यतीत किया।"]

क्या सुना नहीं कुछ, अभी पड़े सोते हो—नाग-सैनिकों को उत्तेजित करने के लिए मनसा और उसकी सखियों का गान। तुम्हारी स्वतंत्रता खतरे में है, शत्रु चढ़ आया है, तुममें आवेश नहीं, प्रतिहिंसा नहीं, जातीय मान नहीं। सचमुच तुम पुरुष नहीं हो, तुम तो नारी हो, कुल-ललनाओं की लाज बचा लो, नहीं तो अयश होगा। अपने स्वत्वों के लिए जूझो, अपनी दीन-दशा पर तुम्हें दया भी नहीं आती; उठो, अभी पड़े सोते हो। —जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-३

क्राइस्ट—मूसा के सिद्धान्त के विरुद्ध ईश्वर का पुत्र होने की घोषणा की, अतः सूली पर चढ़ा दिये गए।

—(रहस्यवाद, पृ० १९)

दे० ईसा भी।

[ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा, कुमारी मरियम के पुत्र।]

क्रूर—क्रूरता का मूर्तरूप (पात्र)।

—कामना

क्रूरता—शत्रु को दुःखी देखना और घृणित उपाय से बल-प्रयोग करने को क्रूरता कहते हैं। —(सज्जन, दृश्य ३)

क्रोध—क्रोध से न्याय नहीं होता। (प्रेमानन्द) —विशाख, १-५

क्षणिकवाद—जीवन की क्षणभंगुरता को देख कर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। (बिम्बसार)

—अजातशत्रु, १-२

क्षणिकवाद— —(अशोक की चिन्ता)

—आपत्तियां वायु की तरह निकल जाती हैं; सुख के दिन प्रकाश के सदृश पश्चिमी समुद्र में भागते रहते हैं।... और यह ध्रुव सत्य है कि दोनों का अन्त है। (सरला)

—कंकाल, पृ० १९९

—समझदारी आने पर यौवन चला जाता है—जब तक माला गूँथी जाती है तब तक फूल कुम्हला जाते हैं। जिससे मिलने के सम्भार की इतनी धूम-धाम, सजावट, बनावट होती है, उसके आने तक मनुष्य हृदय को सुन्दर और उपयुक्त नहीं बनाये रह सकता। मनुष्य की चंचल स्थिति तब तक उस श्यामल कोमल हृदय को मरुभूमि बना देती है। यही तो विषमता है। (चाणक्य)

—चन्द्रगुप्त, ३-६

दे० चिट्टन, झरना।

दे० सब जीवन बीता जाता है
धूप-छांह के खेल-सदृश।

दे० वैराग्य भी।

दे० स्कन्दगुप्त भी।

क्षत्रिय-धर्म—स्त्रियों की, ब्राह्मणों की, पीड़ितों और अनाथों की रक्षा में प्राण-विसर्जन करना, क्षत्रिय का धर्म है। (जयमाला) —स्कन्दगुप्त, १-७

क्षत्रियों का कर्त्तव्य है—आर्त्तत्राण-परायण होना, विपद का हँसते हुए आलि-

गन करना, विभीषिकाओं की मुसक्या कर अवहेलना करना, और—और विपन्नों के लिए, अपने धर्म के लिए, देश के लिए प्राण देना। (बन्धुवर्मा)

—स्कन्दगुप्त, २-५

क्षमता—सब काम सब मनुष्य नहीं कर सकते। (यमुना)

—कंकाल, पृ० ११८

क्षमा—क्षमा से बढ़कर दण्ड नहीं है। (मल्लिका) —अजातशत्रु, ३-५

क्षमा सर्वोत्तम दण्ड है। (प्रेमानन्द)

—विशाख, २-६

क्षमा पर मनुष्य का अधिकार है, वह पशु के पास नहीं मिलती। प्रतिहिंसा पाशव धर्म है। (देवकी)

—स्कन्दगुप्त, २-७

दे० प्रतिहिंसा भी।

क्षेमराज—दे० कला;

आगमों के टीकाकार। अद्वैत आनन्द के प्रचारक।

—(रहस्यवाद, पृ० २७)

जीवात्मा और आत्मा का संबंध मित्र अथवा दम्पती का है। समरसता में ही आनन्द है। —(वही)

रहस्य-सम्प्रदाय अद्वैतवादी था। (शिवसूत्रविमर्शिणी की भूमिका में)

—(रहस्यावाद, पृ० २८)

रस का पूर्ण चमत्कार समरसता में होता है। —(रस, पृ० ४५)

चित्तवृत्तियों की आत्मानन्द में तल्लीनता (विश्रान्ति) समाधि-सुख ही है।

—(रस, पृ० ४६)

[क्षेमराज श्री अभिनवगुप्त के शिष्य, ११वीं शती, जिन्होंने 'शिवसूत्र' की टीका 'शिवसूत्रविमर्शिणी' में काश्मीर के शैव अद्वैतवाद की व्याख्या की है।]

ख

खञ्जन—प्रथमतः इन्दु कला ५, खंड १, किरण २, फरवरी '१४ में प्रकाशित। ४-४ पंक्तियों के ५ पद, जिनमें शरद् का सुन्दर वर्णन है। स्वच्छ शुभ्र उषा है, नव आलोक में दृश्य स्वर्णमय है, एक दो जलधर हैं, वे भी हवा के संकेत पाकर भागने लगे हैं। हंस हँसा, मल्लिका महकी, भौरे मधुर-मधु से छक गए, कलियां खिलीं, नदी प्रफुल्लित हो गाती जा रही है, शतदल चू पड़ा, हिम-विन्दु दृष्टिगोचर हो रहे हैं—यही शरद् है। इस दृश्य में दो नीलोज्ज्वल खंजन दिखाई पड़ गए।

सत्य क्या जीवन-शरद के ये प्रथम खंजन अहो

—कानन-कुसुम

खड़ी बोली—सीतल इत्यादि ने खड़ीबोली की नींव पहले से रख दी थी। सहचरी शरण, कहीं-कहीं कबीर और श्री हरिश्चन्द्र ने भी इसको अपनाया था। —(आरम्भिक पाठ्य काव्य, पृ० ८३)

(दे० सीतल।)

खण्डहर की लिपि—मौर्यकालीन ऐतिहासिक वातावरण में एक कल्पनाचित्र

(fantasy)। खंडहरों में सोए हुए एक युवक ने एक स्वप्न देखा जिसमें सिंहल द्वीप से लौटते हुए उसे एक दासी ने आकर कहा—"महाश्रेष्ठि धनमित्र की कन्या कामिनी देवी ने श्रीमान् के लिए उपहार भेज कर प्रार्थना की है कि आज के उद्यानगोष्ठि में आप अवश्य पधारें।" युवक ने कठोर शब्दों में इनकार करते हुए कहा कि अपनी स्वामिनी से कह देना कि तुम सरीखी अविश्वासिनी स्त्रियों से मैं दूर ही रहना चाहता हूं। दासी चली गई। युवक ने देखा कि सामने का कमल (जो धनमित्र की कन्या का मुख लगता था) मुरझा रहा है। उससे मकरन्द नहीं, अश्रु गिर रहे हैं; और भौंरे गुंजार रहे हैं, "मैं निर्दोष हूँ।" युवक स्वप्न से चौंक पड़ा। उसे ज्ञात हुआ कि दालान पर लिखा है—"निष्ठुर, अन्त को तुम नहीं आए।" उसी समय वह पुरानी छत धम से गिर पड़ी। वायुमंडल में 'आओ-आओ' का शब्द गूंजने लगा।

कहानी का कथानक तो नगण्य है, पर उत्तरार्ध बड़ा प्रभाव-शाली है। भाषा प्रांजल है। उद्देश्य अस्पष्ट है।

—प्रतिध्वनि

खाण्डववन—कुरुक्षेत्र से निकाले जाने पर, नाग जाति खाण्डव वन में अपना उपनिवेश बना कर रहने लगी थी। अर्जुन ने खाण्डव-दाह किया। प्राणियों की बड़ी संख्या भस्म हो गई और नाग लोग भाग गए। यह दृश्य सरमा द्वारा मन्त्रबल से क्षितिज में दिखाया गया है। —जनमेजय का नाग-यज्ञ, १-१

[वर्तमान मुजफ्फरनगर के निकट वह बन जिसे अग्नि ने अर्जुन की सहायता से जलाया। यह प्रदेश धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को दे दिया और इन्होंने इस स्थान पर इन्द्रप्रस्थ बसाया। दे० कृष्ण ।]

खान खानाँ—दे० रहीम खां।

—महाराणा का महत्त्व

खारी—फतहपुर सीकरी से अछनेरा जाने वाली सड़क पर अछनेरा और सिघार-पुर के बीच की पहाड़ी से टकराती हुई एक नदी। —कंकाल, ३-५, ७

[यमुना की एक सहायक नदी, भरतपुर के पास से निकलती है।]

खिङ्गल—राजनीतिक दूत, शक-सन्धि का प्रस्ताव-वाहक राजभक्त।

—ध्रुवस्वामिनी

हूण आक्रमणकारी, बर्बरतापूर्ण पात्र।

—स्कन्दगुप्त

[हूण आक्रमण ४५५ ई० में हुए।]

खुसरू=काफूर।

खुसरो—राजकुमार, कवि, जिसने भार-तीय रुचि के अनुसार पद्य लिखे।

—काव्य और कला, पृ० २

[जहांगीर का बड़ा बेटा जिसने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और जिसे गुरु अर्जुनदेव ने आशीर्वाद दिया था। तब से मुगलों और सिक्खों में शत्रुता हो गई।]

खेल लो नाथ, विश्व का खेल—नाटक में राजा अलग है, जनता अलग, समता कैसे हो? फूट, दुःख, निराशा बढ़ी है। आओ मिलकर खेल खेलें जिससे आनन्द और आशा का संचार हो।

—कामना, ३-८

खोल तू अब भी आँखें खोल—'एक-घूंट' का प्रथम नेपथ्य-गीत। इससे प्रसाद का सौन्दर्य-प्रेम स्पष्ट होता है। सौन्दर्य शाश्वत आनन्द का कारण है। छवि की किरणें बिखर रही है, इनमें खिलो, सौन्दर्य-सुधा-सीकर से सिक्त हो जाओ। सौन्दर्य का जो अनन्त-स्वर है, उस स्वर में अपना स्वर मिला दो। सौन्दर्य से ही सारा संसार जाना जाता है। फिर उसे जानने-पहचानने का अभिनय कैसा? अपने को मत भूलो, लोक-लाज का बन्धन खोल सौन्दर्य का उपभोग करो। —एक घूंट

खोलो द्वार—सर्वप्रथम इन्दु, कला ५, खण्ड १, किरण १, जनवरी १९१४ में प्रकाशित, चतुर्दशी। कवि दुःख की घुटन से व्याकुल है। वह अपने प्रियतम से द्वार खोलने की अनुनय करता है जिससे उसका भी सुप्रभात हो।

डरो न इतना, धूल धूसरित
होगा नहीं तुम्हारा द्वार
...अब तो छोड़ नहीं सकता हूँ,
पाकर प्राप्य तुम्हारा द्वार।

—झरना

ग

गङ्गा[1]—बजरे में जल-विहार के लिए।

—(अघोरी का मोह)

गङ्गा[2]—होली के दो दिन मनोहरदास गंगा में बजरे पर ही रहते थे।

—(अमिट स्मृति)

गङ्गा[3]—इस समय (प्रथम शती) मगध-साम्राज्य गंगा के पूर्व में था।

—इरावती

गङ्गा[4]—कंकाल के बहुत से दृश्य गंगातट के हैं। प्रयाग के पास; माघमेले के अवसर पर दोनों तटों पर शिविर, साधुओं के जुलूस।

तारा ने मंगल के भाग जाने पर गंगा में कूद कर आत्महत्या करने का प्रयत्न किया। पुत्रोत्पत्ति के बाद फिर गंगामाई के अंक में जा गिरी। स्नेहमयी जननी के समान गंगा ने तारा को अपने वक्ष में ले लिया। फिर वह, संन्यासी द्वारा बचाए जाने पर, गंगा के किनारे-किनारे चलकर समुद्र में डूबने चल पड़ी।

विजय ने यहीं प्राण छोड़े।

—कंकाल, १-१, १-४

गङ्गा[5]—काशी और रामनगर के बीच। दे० रामनगर। —(गुंडा)

गङ्गा[6]—कमलापुर के पास की गंगा। रोहिणी गंगा के चन्द्रिका-रंजित प्रवाह में अस्त हो गई। गंगा-किनारे ही रोहिणी की कुटिया थी और इधर करारे पर ठाकुर जीवनसिंह का कोट था।

—(ग्रामगीत)

गङ्गा[7]—गंगा के किनारे घीसू पैसे की दुकान लगाकर बैठता और बिन्दो नित्य गंगा नहाने आती थी। जब घीसू गोविंदराम की डोंगी पर उस पार जाता है तो लौटते हुए बीच गंगा में से उसकी लहरीली तान सुनाई पड़ती है; किन्तु घाट पर आते-आते चुप।
—(घीसू)

गङ्गा[8]—कुसुमपुर के समीप। एक दृश्य।
—चन्द्रगुप्त, ३-६

गङ्गा[9]—हवड़ा के पास ही गंगा का चांदपाल घाट। **—तितली**

गङ्गा[10]—धामपुर तालुका में बंजो की झोंपड़ी। मल्लाहों के लड़के अपनी डोंगी पर बैठे हुए मछली फँसाने की कँटिया तोल रहे थे। दो-एक बड़ी-बड़ी नावें माल से लदी हुई, गंगा के प्रशान्त जल पर धीरे-धीरे सन्तरण कर रही थीं। चुनार की पहाड़ी। **—तितली, १-२**

गंगा की कछार की झाड़ियों में सन्नाटा भरने लगा। नालों के करारों में चरवाहों के गीत गूंज रहे थे।—इन्द्रदेव शिकार को निकले। गंगा-तट बन्दूक के धड़ाके से मुखरित हो गया।—करारे के ऊपर मल्लाहों की बस्ती थी। नीचे धीरे-धीरे गंगा बह रही थी।
—तितली, २-१

करारों में सुर्खाब पक्षियों के झुंड विचरते थे। **—वही १-२**

मल्लाहों की जीविका तो गंगा-तट से ही थी। **—वही, १-६**

कराकुल चिड़ियों का झुंड शीतल बालू में बैठा था। **—वही, २-१०**

गङ्गा[11]—विमल ने नवल से कहा—"चलो, मैं थोड़ा घूम कर गंगा-तट पर मिलूगा।" **—(पत्थर की पुकार)**

गङ्गा[12]—गंगा-तट पर निस्साहय श्यामा की झोंपडी थी जो बारी समेत तारा ने खरीद ली। **—(प्रतिध्वनि)**

गङ्गा[13]—जयचन्द ने गंगा में डूब कर जान दी। **—(प्रायश्चित्त)**

गङ्गा[14]—दे० प्रयाग[5]।
—राज्यश्री, अंक ४

गङ्गा[15]—सेठ कलश का प्रासाद गंगा-तट की एक ऊँची चट्टान पर था।...गंगा के बीच में एक गृह में राधा और उसके दास-दासी रहते थे। इसी जगह से कहानी का अंतिम अंश सम्बद्ध है। **—(व्रत-भंग)**

गङ्गा[16]—इसके उत्तरी तट पर विदेह, वज्जि, लिच्छवि और मल्लों के गणतंत्र थे। **—(सालवती)**

गङ्गा[17]—(काशी में) दशाश्वमेध घाट; मान-मन्दिर घाट पर बजरा ठीक किया गया, बजरा पंचगंगा घाट के समीप पहुँच गया। **—(सन्देह)**

गङ्गा[18]—दे० हिमालय तथा सरयू।
—स्कन्दगुप्त

दे० परिशिष्ट भी।

[उत्तरी भारत की एक प्रधान और पवित्रतम नदी जिसे राजा भगीरथ तप करके स्वर्ग से पृथ्वी पर लाये। इसी से इसका नाम भागीरथी है। भगीरथ से लाई हुई गंगा विश्वामित्र

के मूल पुरुष जह्नु के यज्ञ को बहा ले जाने लगी तो वे इसे पी गए। भगीरथ की प्रार्थना पर जह्नु ने गंगा को छोड़ दिया इससे इसका नाम जाह्नवी हुआ। यह उत्तराखंड में गंगोत्री से निकल कर हरिद्वार के निकट मैदान में प्रवेश करती है और गढ़मुक्तेश्वर, कानपुर, प्रयाग, बनारस, पटना और कलकत्ता होती हुई गंगासागर में जा मिलती है। लम्बाई लगभग १६०० मील।]

गङ्गा सागर[१]—यहां गंगा आकर समुद्र हो जाती है। मकरसंक्रान्ति के योग में मेला लगता है। घंटी और मंगल की माताएँ यहीं बदल दी गई थीं।

—**कंकाल, २-४**

गङ्गा सागर[२]—इन्दु, कला ५, किरण ४, अप्रैल '१४ में प्रकाशित। रूपक कविता। कवि अपने प्रिय को अगाध सागर मानता है।

जलधि! मैं न कभी चाहती
कि 'तुम भी मुझ पर अनुरक्त हो।'
पर मुझे निज वक्ष उदार में
जगह दो, उसमें सुख से रहूँ।

—**कानन-कुसुम**

[बंगाल की खाड़ी में कलकत्ता के निकट।]

गजनी—सुलतान महमूद की राजधानी। कहानी का आरंभ इसी स्थान से होता है, जहां बलराज, फीरोजा आदि गुलामी में रहते थे। बाद में गजनी से हिन्दुस्तान आए। वहां की नदी का नाम भी गजनी है। —**(दासी)**

[अफगानिस्तान का प्रसिद्ध नगर जो काबुल और कंधार के बीच में स्थित है। १०वीं—११वीं शताब्दी में एक बड़े साम्राज्य की राजधानी रहा। वर्तमान समय में जनसंख्या केवल १० हजार है।]

गणेश—भवानी के प्रिय पुत्र जिसके सम्बन्ध में स्कन्द कहते हैं—तुम भारत के आलसियों की तरह हो। बुद्धि में चतुर। —**(पंचायत)**

[शंकर-पार्वती का अयोनिज पुत्र। गणेश पुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण में गणपति की विस्तृत कथाएँ हैं।]

गन्धमादन—शिव और पार्वती की विहारभूमि, पुरुरवा मृगया खेलते-खेलते गन्धमादन की एक अधित्यका में पहुँचे जहां अप्सराओं से पता चला कि उर्वशी को केशी नाम का दैत्य उठा ले गया है।

—**उर्वशी-चम्पू, कथामुख**

[पुराणवर्णित रुद्र हिमालय का एक भाग, सुगन्ध वन-पर्वत जिसकी अवस्थिति बदरिकाश्रम से मानसरोवर तक इलावृत्त खण्ड में बताई जाती है।]

गान—१४ पंक्तियों का गीत। ऐसे युवक आगे चल कर महापुरुष बनेंगे, जिनके लिए जन्मभूमि जननी हो, वसुन्धरा काशी हो, विश्व स्वदेश हो, ईश्वर पिता हो, जिन्हें दम्भ छू भी न जाए; जिनका मस्तक शीतल और रक्त उष्ण हो, सिर नीचा और कर ऊँचा हो, हृदय उदार हो, मन शान्त हो; जो अछूतों, किसानों, दुःखियों, मजदूरों के सहा-

यक हों और अचल सत्य जिनका संकल्प हो । —कानन-कुसुम

गाने दो—इस शीर्षक से एक गीत। इन्दु, कला ८, किरण ३, (मार्च १९२७) में, और बाद में 'स्कन्दगुप्त' अंक ३ में प्रकाशित ।

दे० सब जीवन बीता जाता है ।

गान्धार[1]—गांधार से दिमित्र यवन पंचनद की ओर बढ़ा था । डर था कि वह गंगा पार कर के मगध पर आक्रमण न कर दे । —**इरावती, २**

गान्धार[2]—

श्रद्धा ओढ़े थी,
मसृण गान्धार देश के, नील
रोम वाले मेषों के चर्म।

—**कामायनी, श्रद्धा, पृ० ४६**

गान्धार[3]—गांधार की राजधानी तक्षशिला थी । उस समय गांधार आर्य्यावर्त के अन्तर्गत था । —**चन्द्रगुप्त**

गान्धार[4]—कुरुक्षेत्र और खाण्डव से भगाए हुए नाग गान्धार देश की सीमा में आ गए; और उसके बाद नागों ने आभीरों से मिल कर यादवियों का अपहरण किया। —**जनमेजय का नाग-यज्ञ, १-१**

तक्षशिला के बाद जनमेजय ने गांधार-विजय की।—**जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-२**

गान्धार[5]—दाख के लिए प्रसिद्ध । रहीम खाँ नें तुर्क देश से लेकर गांधार तक वीर भूमि के शतशः कानन देखे थे, पर जो प्रसन्नता मेवाड़ भूमि में लड़कर हुई वह कहीं न मिली थी ।

—**महाराणा का महत्त्व**

गान्धार[6]—स्कन्दगुप्त, बन्धुवर्मा आदि ने सेनाओं के साथ गान्धार में हूणों का नाश किया, पर बन्धुवर्मा काम आए ।

—**स्कन्दगुप्त, ३**

गान्धार[7]—भारत का एक प्रदेश, जहाँ राजा भीमपाल का राज्य था । मुसलमानों ने हस्तगत कर लिया ।

—(**खण्डहर के स्वर्ग में**)

[=गन्धर्व देश, सिन्धु नदी से परे वर्तमान सीमाप्रान्त और अफगानिस्तान का प्रदेश । धृतराष्ट्र की पत्नी गाधारी यहीं की राजकुमारी थी । १२वीं शती तक इस प्रदेश का नाम गांधार ही मिलता है ।]

गालव— —(**वन-मिलन**)

[पुराणों में गालव विश्वामित्र के पुत्र और शिष्य बताए गए हैं ।]

गाला—दस्यु बदन की पुत्री । पिता क्रूरकर्मा, पुत्री में सेवा भाव—बड़ा विरोध खड़ा हो गया । गाला सिकरी के जंगल में सुखी और निर्भय रहती थी। उसकी वयस यद्यपि बीस के ऊपर थी, फिर भी कौमार्य्य के प्रभाव से वह किशोरी ही जान पड़ती थी। वह पशु-पक्षियों को पकड़ने और पालने में बड़ी चतुर थी । मां मुगल होकर भी कृष्ण से प्रेम करती थी । यही संस्कार गाला पर पड़े थे । यह कानन-वासिनी गूजर-बाला अपने उत्साह और दान से सीकरी में एक बालिका-विद्यालय चलाने लगी । बदन उसे छोड़ कर चला गया । गाला ने मंगल की पाठशाला में बालिकाओं को

पढ़ाने का कार्य्य सम्भाला। उसे यहां प्रेम का अनुभव होने लगा। प्रेम को वह स्त्री का जन्मसिद्ध अधिकार मानती है, "स्त्री का हृदय प्रेम का रंगमंच है।" दोनों का विवाह हो जाता है और वे 'भारत-संघ' के प्रचार और सेवा-कार्य में लग जाते हैं। सेवाकार्य में वह मंगल की सहगामिनी है। —**कंकाल**

गिरिधरदास—मनोहरदास के साथ मांझे में जवाहिरात का व्यापार करते थे।

—(**अमिट स्मृति**)

गिरिव्रज[१]—वाह्लीक प्रदेश में एक नगर जहां लज्जा, विक्रम आदि ने आश्रय लिया और जहां से बालक-बालिका को 'स्वर्ग' के लोग भगा ले गए।

—(**स्वर्ग के खँडहर में**)

गिरिव्रज[२]—दे० नगरहार।

गीता—मातृगुप्त गीता से यह श्लोक उद्धृत करते हैं—'न त्वेवाहं जातु नास्मी न त्वं न मे।' —**स्कन्दगुप्त, १**

[महाभारत का एक अंश जिसमें १८ अध्यायों में कृष्ण और अर्जुन के बीच में आध्यात्मिक चर्चा हुई है।]

गुजरात—

कमनीयता थी जो समस्त गुजरात की।
...हरा-भरा कानन प्रफुल्ल गुजरात हो।
...गुर्जर स्वतंत्र सांस लेता था सजीव सा।

—(**प्रलय की छाया**)

[=गुर्जर प्रदेश, पहले सौराष्ट्र में; १२वीं शती से गुजरात नाम। खिलजी-वंश के पतन के बाद यहां स्वतंत्र मुसलमानी राज्य रहा जिसे अकबर ने समाप्त किया।]

गुण्डा—ऐतिहासिक वातावरण में लिखित सफल कहानी। १८वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में, लार्ड हेस्टिंग्स के समय, काशी में ऐसे गुंडों का प्राधान्य था जो मस्ती लेने के साथ-साथ दीनों और अनाथों की रक्षा भी करते थे। नन्हकू सिंह ऐसा ही गुण्डा था। एक प्रतिष्ठित जमीदार का लड़का था, ५० बरस की उम्र में भी युवकों से अधिक बलिष्ठ। सब पर उसका आतंक था। गोरे रेजीडेण्ट के एजेण्ट मौलवी अलाउद्दीन कुबरा ने दुलारी गायिका पर रौब गांठा तो नन्हकू चिढ़ गया। कुबरा को एक ऐसा झापड़ लगाया कि सिर घूम गया। दुलारी ने यह समाचार राजा चेतसिंह की माता पन्ना देवी तक पहुँचाया। उसकी पुरानी स्मृतियां जाग उठी। किसी समय नन्हकू ने उससे प्रेम किया था, पर वह जबरदस्ती राजा बलवन्त सिंह की पत्नी बनाई गई थी। नन्हकू ने विवाह ही नहीं किया। रात को उसने सुना कि राजा चेतसिंह और राजमाता पन्ना को अँग्रेज कलकत्ता ले जाने वाले हैं। नन्हकू जान पर खेल कर किले में पहुँच गया और उनको डोंगी में बिठाकर भिजवाने का प्रबन्ध किया। नन्हकू ने अँग्रेज लेफ्टीनेंट, कुबरा आदि को धराशायी किया और स्वयं बुरी तरह घायल हुआ। डोंगी पर जाते हुए चेतसिंह ने देखा कि गुंडे का

एक-एक अंग कट कर वहीं गिर रहा था।

कथातत्त्व, घटनाक्रम, कथोपकथन, शैली सभी दृष्टियों से सुन्दर कहानी है। नन्हकू का चित्र विशेषतया प्रभावपूर्ण है। —**इन्द्रजाल**

[१६ अगस्त १७८१ को राजा चेतसिंह बन्दी बनाए गए। दे० चेतसिंह भी। रामनगर राज्य की नींव रखने वाला मन्साराम भूमिहार ब्राह्मण था। उसने पिंड्रा गांव (बनारस से १५ मील जौनपुर की ओर) के जमीदार बरियारसिंह को नीचा दिखाया। अन्ततः बरियारसिंह की कन्या गुलाब कुंवर और मन्साराम के बेटे बलवन्त सिंह का विवाह हुआ। चेतसिंह का जन्म एक राजपूत कन्या से हुआ। गुलाब कुंअर की एक लड़की ही थी।]

गुदड़ी में लाल—एक बुढिया का रेखा-चित्र। वह भले घर की बहू-बेटी थी। पर अब दिनों के फेर से स्वयं उपार्जन करके पेट भरती; किसी की सहायता स्वीकार नहीं करती थी। उसका स्वाभिमान इसे भीख समझता। बाबू रामनाथ ने उसे मासिक वृत्ति पर अपनी दूकान पर रख लिया। कई बरस मजे से कट गए। बुढ़िया और बूढ़ी हो गई। एक दिन लाल मिर्च फटकने मे वह मूर्च्छित हो गई। रामनाथ ने उसे घर बैठे 'पिसिन' देने का इरादा किया, परन्तु बुढ़िया का स्वाभिमान झल्ला उठा। वह अपनी कोठड़ी में गई और बोरिया-बिस्तर बांध कर चलने की तैय्यारी करने लगी। "हे भगवन्, हे अभाव, असन्तोष और आर्त्तनादों के आश्चर्य ! क्या तुम्हीं दीनानाथ हो ? निष्ठुर ! तुम्हारी कठोर करुणा की जय हो।" और वह इस लोक से चली ही गई। रामनाथ ने कहा कि बुढ़िया का सच्चा स्वाभिमान उसकी गुदड़ी का लाल था। यही उसका बचा हुआ धन था।

—कथानक नगण्य है। अन्त स्वाभाविक नही हुआ। बुढिया के आत्माभिमान का विश्लेषण सुन्दर है। कथोपकथन थोड़ा किन्तु अच्छा है। भाषा साधारण है। —**प्रतिध्वनि**

गुर्जर—गुर्जर के थाले मे मरन्द वर्षा करती मै (कमला)।

—(**प्रलय की छाया**)

[=गुजरात दे० ; ७वी शती तक वर्तमान गुजरात सौराष्ट्र के अन्तर्गत था। मारवाड़ को तब गुर्जर कहते थे। इसके बाद गुर्जर और गुजरात एक प्रदेश माना गया।]

गुल[१]—लैला का एक साथी, ईरानी या बिलोची लड़का। —(**आंधी**)

गुल[२]—राजकुमार का शैल के स्वर्ग मे मुसलमानी नाम। विलासी। वह कभी मीना की ओर आकृष्ट होता है, कभी बहार की ओर।

—(**स्वर्ग के खण्डहर में**)

गुलमुहम्मद खाँ—पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त के एक गांव का मुखिया, अमीर खां का पिता जिसके नेतृत्व में नन्द-

राम और उसके पिता लेखराम ने कबीले की रक्षा के लिए कई लड़ाइयां लड़ी थीं। ७० वर्ष का बूढ़ा। प्रेमा उसे 'बाबा' और नन्दराम 'चाचा' कह कर पुकारते थे। —(सलीम)

गुलाम—ऐतिहासिक कथा। रुहेला-कुमार गुलाम कादिर सम्राट् शाह आलम का प्रिय गुलाम था। वह बड़ा सुन्दर था। विलासी सम्राट् ने उसका पुंस्त्व नष्ट कर दिया। युवा होने पर जब कादिर को इसका अनुभव हुआ तो उसके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला भड़क उठी। अतः वृद्ध पिता की सेवा के व्याज से वह सहारनपुर चला आया और सेना बटोर कर सम्राट् के विरुद्ध दिल्ली पर चढ़ आया। दिल्ली पर कादिर का अधिकार हो गया और अपने हृदय की ज्वाला को शान्त करने के लिए उसने सम्राट् को अन्धा कर दिया। इस काम में मन्सूर ने उसकी सहायता की। कहानी बहुत साधारण कोटि की है। कथोपकथन सुन्दर है। भाषा मुगल-दरबार के उपयुक्त है। दरबारी विलासिता का यथार्थ चित्रण हुआ है। —छाया

[इस घटना का उल्लेख 'वाकिआत अजफरी', 'तारीख तैमूरी' और 'नादिरात शाही' में मिलता है। गुलाम कादिर खान आलमगीर और शाह आलम के सेनापति नजीबुद्दौला का पोता था। मराठों ने सम्राट् का बदला गुलाम कादिर से लिया और उसके दोनों कान काट कर एक डिबिया में और दोनों आंखें, नाक तथा होंठ काट कर दूसरी डिबिया में बन्द करके अपने आश्रित सम्राट् के पास भेजे।]

गुलाम कादिर—सुकुमार रुहेला बालक जिसे शाह आलम ने दरबार में साकी बना दिया। 'खास तालीम' के लिए ख्वाजा सरा के सुपुर्द कर दिया गया। धीरे-धीरे वह युवक हो गया। उसके उन्नत स्कंध, भरी-भरी बाहें और विशाल वक्षस्थल बड़े सुहावने हो गए; किन्तु उसका पुंस्त्व तो छीन लिया गया था। एक दिन उसने दर्पण में देखा अपरूप सौन्दर्य, उसका पुरुषोचित सुन्दर मुखमण्डल तारुण्य-सूर्य्य के आतप से आलोकित हो गया; परन्तु उसने सोचा कि उसका रूप और तारुण्य कुछ नहीं है, जब कि उसकी सारी सम्पत्ति उससे छीन ली गई है। यहीं से विद्रोह की भावना उठी। रुहेलों की सेना लेकर और नमकहराम मंसूर की सहायता पाकर दिल्ली पर चढ़ आया। शाह आलम से बोला—"मेरे कलेजे में बदले की आग धधक रही है। इन्हीं तुम्हारी आंखों ने मेरी खूबसूरती देखकर मुझे दुनियां में किसी काम का न रखा। लो मैं तुम्हारी वही आंखें निकालता हूँ, जिससे मेरा कलेजा कुछ ठंढा होगा।" गुलाम की पाशविकता और उसके विश्वासघात का कारण स्पष्ट है। —(गुलाम)

गुलेनार—वही तारा। —कंकाल

गूदड़ साईं[१]—एक रेखा-चित्र। गूदड़साईं एक फकीर थे। मोहन नाम का एक लड़का उनसे हिल-मिल गया था। मोहन से बातें करके और उसकी दी हुई एक रोटी से तृप्त होकर उसे अक्षय आनन्द की प्राप्ति होती थी। मोहन के पिता आर्य-समाजी थे, उन्हें 'ढोंगी फ़कीरों' से चिढ़ थी। उन्होंने मोहन को डांटा। साईं कई दिन बाद इधर आए तो एक लड़का उनका गूदड़ उठा ले भागा। साईं उसके पीछे-पीछे दौड़े, पर ठोकर लग जाने से गिर पड़े और सिर फट जाने से खून बहने लगा। दूसरी ओर से मोहन के पिता ने उस बालक को पकड़ लिया और दूसरे हाथ से साईं को पकड़ कर उठाया। नटखट लड़के के सिर पर चपत पड़ने लगे, तो साईं रो पड़े और लड़के को छुड़वाया। मोहन के पिता ने पूछा—"जब यही बात थी, तो तुम गूदड़ के लिए दौड़ते क्यों थे?" साईं बोले—"रामरूप भगवान् को और मैं क्या दे सकता हूँ। इस चीथड़े को लेकर भागते हैं भगवान् और मैं उनसे लड़कर छीन लेता हूँ, फिर उन्हीं से छिनवाने के लिए। सोने का खिलौना तो उचक्के भी छीनते हैं, पर चीथड़ों पर भगवान् ही दया करते हैं।" यह कह कर बालक को गले लगाया और चले गए।

कथानक छोटा किन्तु मार्मिक है। कथोपकथन सुन्दर है। साईं का चरित्र बहुत ही प्रभावोत्पादक है। —**प्रतिध्वनि**

गूदड़ साईं[२]—बैरागी—माया नहीं, मोह नहीं। गूदड़ रखता था, इसलिए 'गूदड़ साईं' यह नाम पड़ गया। बच्चों से प्यार करता है और उन्हें रामरूप भगवान् मानता है। सिर फटने पर भी जिसे रुलाई नहीं, वह एक लड़के को रोते देख कर रोने लगा। मोहन के पिता ने इसे पहले तो 'ढोंगी फकीर' कहा, पर बाद में बोले—"तुम निरे गूदड़ नहीं, गुदड़ी के लाल हो।"

—(**गूदड़ साईं**)

गृहिणी—एकमात्र पति-कुल की कल्याण-कामना से भरी हुई, दिनान्त में भी सब को खिला-पिला कर जो स्वयं यज्ञ-शिष्ट अन्न खाती हुई, उपालम्भ न देकर प्रसन्न रहती है, वह गृहिणी है, अन्न-पूर्णा है।....बाधा, विघ्न, रोग, शोक, आपत्ति, सम्पत्ति सब में अटल अपने सब अधिकार का उपभोग करने वाली ऐसी स्त्री दुर्लभ है..।(धनदत्त)

—**इरावती, पृ० ८७**

गोकुल—निरञ्जनदास का प्रस्ताव था कि कुछ दिन गोकुल (कृष्ण की बाल-लीला से अलंकृत भूमि) में चल कर रहा जाय। —**कंकाल, २-१**

[वृन्दावन के पास का एक गांव जहां नन्द रहते थे और जहां कृष्ण का पालन-पोषण हुआ था।]

गोधूली के रागपटल में स्नेहांचल फहराती है—गीत; जिसमें भगवान् बुद्ध बिम्बसार को करुणा की महिमा बताते हुए कहते हैं कि इसका वैभव प्रकृति

और जीव में व्याप्त है। सन्ध्या का राग-रंजित आंचल, ऊषा का शुभ्र हास्य, प्यारे बालक की मुख-चन्द्रिका, ताराओं के ओस-कण, आदि काल के मानव का विकास, सब करुणा के कारण हैं। सच तो यह है, करुणा ने ही उसे पशुत्व से ऊपर उठा कर धरा पर गौरवान्वित किया है। —अजातशत्रु, १-२

गोपाद्रि—स्कन्दगुप्त ने यहां पुनः संघटन किया। —स्कन्दगुप्त ,५

[ग्वालियर के पास एक पर्वत, इसी से ग्वालियर नाम बना।]

गोपाल—मनोहरदास के सांझीदार गिरिधरदास का छोटा भाई जिसको मनोहरदास आपबीती सुना रहे थे।

—(अमिट स्मृति)

गोमती—लखनऊ की नदी। शराबी गोमती के किनारे घूमने जाया करता था। —(मधुआ)

[यह नदी पवित्र मानी गई है। हिमालय की तराई से निकलती है और लखनऊ, जौनपुर से होती हुई गाजीपुर और बनारस की सीमा पर गंगा में जा मिलती है।]

गोली—कंजड़-दल में बांसुरी बजाने वाला युवक, बेला का प्रेमी। उसका बाप नट था, वह भी यह विद्या अच्छी तरह जानता था। पहले महुअर बजाता था, बेला के संगीत में साथ देने के लिए बांसुरी बजाने का अभ्यास किया। वह सुकुमार, लजीला और निरीह था, और अपने प्रेम की माधुरी में विह्वल। प्रेम के आवेश में नाचने लगता था। प्रेम की गहनता ने उसमें इतना पुरुषार्थ भर दिया कि उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी भूरे को जो 'भयानक भेड़िए' के समान था छुरे से घायल कर दिया। सरदार की आज्ञा से बेला छिन गई तो उसने दल को ही छोड़ दिया। कई साल बाद वह बड़ी चालाकी से नट का खेल दिखाते-दिखाते बेला को भगा लाया। वह सच्चा प्रेम-पुजारी था। —(इन्द्रजाल)

गोविन्दगुप्त—कुमारगुप्त का भाई। संन्यासी के वेश मे। भाई से रूठ गया था, पर स्कन्द पर बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाए रहा। नाटक में उसका प्रभाव स्पष्ट है। —स्कन्दगुप्त

[राज्य के अन्तर्विद्रोह से दुःखी होकर वह मालवा चला आया जहां वह सन् ४३८ ई० तक जीवित रहा।]

गोविन्दराम—घीसू का मित्र; इनके साथ बूटी छनती थी। —(घीसू)

गोविन्दी चौबाइन—निःसन्तान चौबे की विधवा जिसने गंगासागर के मेले में घंटी को गोद में ले लिया। वह यजमानों की भीख पर जीवन व्यतीत करती रही और घंटी को दरिद्र छोड़ गई। —कंकाल, २-४

गौड़ पाद—उन्होंने मनोनिग्रह का उपाय बताया (माण्डूक्य कारिका ४३), कामभोग और मानसिक सुख को हेय कहा (मा० ४५)।

—(रहस्यवाद, पृ० ३१)

[उपनिषदों की कारिकाएँ शंकरा-

चार्य के गुरु के गुरु गौडपाद (समय ७०० ई०) ने मायावाद की व्याख्या में लिखीं ।]

गौड़ प्रदेश—नरेन्द्र गुप्त शशांक गौड़-प्रदेश के राजा थे । —**राज्यश्री, २-१**

[मध्य बंगाल ।]

गौतम[१]—अहल्या के पति जिनके शाप से वह पत्थर हो गई ।—**कंकाल, ४-१**

[ऋषि, धर्मशास्त्राकार, तपस्वी ।]

गौतम[२]—बुद्धदेव । मरल-चरित्र । 'अजातशत्रु' नाटक में करुणा, अहिंसा, प्रेम, वाणी की शीतलता और जीवन की सरलता का उपदेश करते मिलते हैं । वे लोकोत्तर हैं, उनमें न संघर्ष है न अन्तर्द्वन्द्व । वे राजा बिम्बसार को राय देते हैं कि अजातशत्रु को अधिकार सौंप करके विश्राम लें और छोटी रानी से मधुर भाषा द्वारा काम ले । वे शैलेन्द्र द्वारा मारी हुई श्यामा को अपने आश्रम में उठा लाते हैं और उसकी सेवा-सुश्रूषा करके बचा लेते हैं । वे प्रसेनजित से विरुद्धक को क्षमा ले देते हैं । इस प्रकार उनका प्रभाव व्यापक है । शत्रु भी जानते हैं कि लोगों में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ रही है ।—**अजातशत्रु**

गौतम[३]—काशी के पास उनका उपदेश ग्रहण करने के लिए पंचवर्गीय भिक्षु मिले थे ।

गौतम[४]—गौतम के पद-रज से पवित्र भूमि को देख चुका हूं । (कुमार दास)

—**स्कन्दगुप्त, १**

"हत्या रोकना, अहिंसा गौतम का धर्म है । यज्ञ की बलियों को रोकन करुणा और सहानुभूति की प्रेरणा कल्याण का प्रचार करना ।" (प्रपं बुद्धि) —**स्कन्दगुप्त,**

ब्राह्मणों की हिंसा-नीति और अह कारमूलक आत्मवाद का खण्डन तथा गत ने किया था ।....समग्र जम्बू द्वीप ने उस ज्ञान-रणभूमि के प्रधान मल के समक्ष हार स्वीकार की थी ।... गौतम का अनात्मवाद पूर्ण है ।

—**स्कन्दगुप्त,**

गौतम[५]—लज्जा ने जब विरक्त हो क सुदान की तपोभूमि मे बौद्ध-विहार : शरण ली, तो उसने वहा गौतम क गम्भीर प्रतिमा के चरण-तल में बै कर निश्चय किया, सब दुःख है, स क्षणिक है, सब अनित्य है ।

—(**स्वर्ग के खंडहर में**

दे० बुद्ध भी ।

[कोशल के अन्तर्गत कपिलवस्तु के शाक्य-राजा शुद्धोदन के पुत्र, बौद्ध धर्म के प्रवर्तक ; समय ५६३-४८३ ई० पू० ।]

गौतमी[१] —(**मकरन्द बिन्दु**)

गौतमी[२] —(**वन मिलन**)

ग्रहवर्मा—कान्यकुब्ज का मौखरी राजा राज्यश्री का पति । मृगया और युद्ध मे अनुरक्त ; अचल, शान्त और धीर व्यक्ति, सुशासक और प्रेमी पति ।

—**राज्यश्री**

[अवन्तिवर्मा का पुत्र, जिसे मालव-नरेश ने ६०५ ई० में मार डाला ।]

ग्राम—इन्दु, कला २, किरण २, भाद्रपद, १९६७। प्रसाद की प्रथम कहानी। श्रावण मास की सुहावनी संध्या थी। कारिन्दों के गड़बड़ी मचाने के कारण बाबू मोहनलाल ने कुसुमपुर में अपनी जमींदारी के निरीक्षणार्थ गाड़ी से प्रस्थान किया। कुसुमपुर स्टेशन पर उतरे तो घोड़े पर सवार हो गए। मार्ग में रात्रि हो गई, वे अपने रास्ते से भटक गए और रात एक दुखिया स्त्री के यहां ठहरे। उससे उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके पिता बाबू कुन्दनलाल ने अन्यायपूर्वक उस दुखिया के पति से कुसुमपुर का इलाका आत्मवश कर लिया था।

कहानी में स्टेशन, ग्राम, रजनी आदि का वर्णन प्रधान है। यह कहानी यथार्थोन्मुख है। इसे स्केच कहा गया है। मूल धारा अस्पष्ट है। कथानक के अनेक अंग असंगत हैं। —**छाया**

ग्राम-गीत—असफल प्रेम की एक दुःखांत कहानी। शरदपूर्णिमा थी। कमलापुर के निकलते हुए कगारे को गंगा तीन ओर से घेर कर बहती है। मैं अपने मित्र ठाकुर जीवनसिंह के साथ उनके सौध पर बैठा था। एक छोटी-सी तारिका आकाश-पथ में भ्रमण कर रही थी। वह जैसे चन्द्र को छू लेना चाहती थी; पर छूने नहीं पाती थी। जीवन ने बताया यह नक्षत्र रोहिणी होगी। दूर मे एक गीत का स्वर सुनाई पड़ा, और वह निकट आता गया। जीवन ने बताया कि एक बार खेत पर से लौटते समय वह ग्रीष्म की दुपहरी में नन्दन भाट की कुटिया में ठहरा। उसकी विधवा कन्या आकृष्ट हुई और फिर विजया के त्योहार पर उसने सहसा जवारा ठाकुर के कानों में अटका दिया। इस पर उसकी सहेलियों ने उसको इतना छेड़ा कि वह पागल हो गई। मेरे सामने ही वह ठाकुर के पास आई और गीत की अन्तिम पंक्तियां गाकर चली गई, और गंगा में कूद कर मर गई। मैंने ऊपर देखा, रोहिणी चन्द्रमा का पीछा कर रही थी और नीचे बुद्-बुदों में प्रतिबिम्बित रोहिणी की किरणें विलीन हो रही थीं।

कहानी साधारण है, परन्तु प्रसाद ने इस में भावुकता भर कर कलापूर्ण बना दिया है। विनोदशंकर व्यास जी ने इसे निकृष्ट कहानी कहा है, पर यह तो बड़ी प्रौढ़ और मार्मिक कहानी है।

—(**आंधी**)

गीत इस प्रकार है—

बरजोरी बसे हो नयनवां में
अपने बाबा की बारी दुलारी
खेलत रहली अँगनवां में
बरजोरी बसे हो।

(इसमें उन्मत्त वेदना, कलेजे को कचोटने वाली करुणा थी।)

(इसमें कोई भूली हुई सुन्दर कहानी थी।)

ई कुल बतियां कबों नही जनली,
देखली कबों न सपनवां में
बरजोरी बसे हो।

मुरि मुसुक्याई पढ़यो कछु टोना
गारी दियो किधों मनवां में
बरजोरी बसे हो ।
ढीठ! बिसारे बिसरत नाही
कैसे बसू जाय बनवां में
बरजोरी बसे हो ।

(यह थी पगली के हृदय की सरल कथा, मार्मिक वेदना ।)

ग्राम-सुधार—गावो का सुधार होना चाहिए । कुछ पढ़े-लिखे सम्पन्न और स्वस्थ लोगों को नागरिकता के प्रलोभनों को छोड़ कर देश के गावों मे बिखर जाना चाहिए । उनके सरल जीवन में—जो नागरिकों के संसर्ग से विषाक्त हो रहा है—विश्वास, प्रकाश और आनन्द का प्रचार करना चाहिए । उनके छोटे-छोटे उत्सवों मे वास्तविकता, उनकी खेती में सम्पन्नता और चरित्र में सुरुचि उत्पन्न करके उनके दारिद्रय और अभाव को दूर करने की चेष्टा होनी चाहिए । इसके लिए सम्पत्तिशालियों को स्वार्थ-त्याग करना अत्यन्त आवश्यक है । (इन्द्र देव) —**तितली, ३-७**

ग्रीष्म का मध्याह्न—२० पंक्तियों की कविता । इन्दु, कला ३, किरण ५ (अप्रैल १९१२) में प्रकाशित । दिवाकर अग्नि-कण छोड़ रहा है ; धरा तप्त है । जीव छाया का आश्रय ढूढ़ते हैं, पर छाया कहां ! व्योम तक फैले धूलि-कणों में ज्वाला है । पथिक एक पैर चल नही पाता । निर्जन वन में तरुवर प्रेम मे खड़े हैं । पक्षी क्रन्दन करते है । लू के झोको से शाल्मली वृक्ष के कोटर से जीव निकल पड़े हैं । पत्ते सूखकर गिर रहे है जिन्हे प्रभंजन उड़ाये लिए जा रहा है । —**कानन-कुसुम**

ग्रीस—ईसाई धर्म (सेमिटिक धर्म होते हुए भी) ग्रीस और रोम की आर्य संस्कृति से प्रभावित है ।

—**तितली, २-६**

[यूनान देश । यूरोप में प्राचीन संस्कृति का केन्द्र ।]

ग्वालियर—अकबर के समय मे मुगलों के अधीन । तानसेन यहीं का रहने वाला था । —**(तानसेन)**

[दे० गोपाद्रि; आगरा से ६५ मील । इसकी नीव सूर्य्यवंशी कछवाहा तोरामन के पुत्र सूर्यसेन ने २७५ ई० में रखी । कछवाहा वंश के ८३, परिहार वंश के ७ राजा हुए । बाद में मुसलमानों के हाथ आया । बीच में तोमर-वंश ने स्वतंत्रता प्राप्त की । १७६१ ई० में गोहद के जाट राना ने इसे मुसलमानों की डाढ़ से निकाला । कुछ काल में मराठों ने इसे छीन लिया ।]

घ

घण्टी—एक अल्हड़, चंचल बाल-विधवा । व्रजभूमि के स्वच्छन्द वातावरण ने उसे और भी निःसंकोच बना दिया था । वह परिहास करने में बड़ी निर्दय थी ।

उसके स्वभाव की मादकता ने विजय को आकृष्ट किया। "विजय कौन है जो मैं उसे रसाल वृक्ष समझ कर लता के समान लिपटी हूँ"....."लेकिन और कौन दूसरा है मेरा।" जीवन-ज्वाला में पड़कर उसका अल्हड़पन गुरु-गम्भीरता में बदल गया। जब वह हत्या के अपराध से विमुक्त हुई तो बाथम की दुष्ट दृष्टि उस पर पड़ी। नवाब टांगे वाले ने यमुना-घाट पर इसे पकड़ना चाहा, तो विजय ने उसका वध कर दिया। यह डर कर बाथम के साथ भाग गई। गोस्वामी कृष्णशरण का आश्रय उसकी रक्षा का साधन बना। उसने 'भारत-संघ' की स्थापना की—समाज-संतप्त नारी की सेवा के लिए। प्रेमचन्द ने कहा है कि घंटी का चरित्र बहुत ही सुन्दर हुआ है—सत्य के अधिक निकट। —कंकाल

घन आनन्द—दे० देव।

[प्रेम-सम्बन्धी कवित्त-सवैयों के रचयिता। समय सं० १७४६-१७९६ वि०।]

घनश्याम—शिकारी के वेष में क्रूर, निर्दय, धनी, जिसने अपनी वासना की अभिव्यक्ति का पाप किया। नीला भिल्लिनी का आलिंगन करना चाहा था। स्त्री के देहान्त ने उसके हृदय पर कड़ी चोट लगाई। करुणा-कमल का उसके आर्द्र मानस में विकास हुआ। अब वह बड़ा ही सीधा, धार्मिक, निरीह एवं परोपकारी हो गया।—(**पाप की पराजय**)

घने घन बीच कुछ आकाश में यह चन्द्रलेखा-सी।
मलिन पट में मनोहर है निकष पर हेम-रेखा सी॥

इन दो पंक्तियों में विशाख चन्द्रलेखा की प्रशंसा में कहता है कि दरिद्र होकर के भी वह कितनी सुन्दर है!

—**विशाख, १-१**

घने प्रेम-तरु तले—इस गीत के द्वारा देवसेना अपनी सखी विजया को सीख देती है कि इस घने प्रेम तरु तले, श्रद्धा-सरिता-कूल पर, स्नेह से गले मिलो। जो अविश्वास तुम करने जा रही हो, उसे हृदय से बाहर कर दो। छवि-रस-माधुरी पीकर जीवन-वेलि सींच लो और सुख से जियो।—वह नहीं जानती थी कि कल्पना के ये सुख प्राप्त नहीं होंगे। —**स्कन्दगुप्त, अंक २**

घबराना मत इस विचित्र संसार से—आचार्य प्रेमानन्द का विशाख को उपदेश। संसार विचित्र है, इससे घबराओ मत, किसी को आतंकित मत करो, आनन्द की कोई सीमा नहीं, चालों में पड़ कर अपना सत्यानाश मत कर लो, सीधी राह चले चलो, किसी से धोखा मत करो, सत्य पक्ष निर्बल भी हो तो भी उसे मत छोड़ो, शुचिता से जीवन के अन्धकार को दूर करो।

—**विशाख, १-४**

घिरे सघन-घन नींद न आई—गीत। सामने अन्धकार है, आलोक दिखाई नहीं देता, क्योंकि प्रिय नहीं आए।

प्रेम-रस बरस गया, पर मन अभी भी कुम्हलाया है। हृदय में प्यास भरी है, नींद नहीं आती, क्योंकि वह निर्दय अभी नहीं आया। —**कामना, १-४**

घीसू[१]—एक यथार्थवादी दुःखान्त कहानी। घीसू का काम था तान उड़ाना, बूटी घोंटना और पीना, नन्द बाबू की बीन सुनना और दशाश्व-मेध घाट पर रेजगी बेचना। बिन्दो एक विधवा थी। जब कभी रेजगी लेने वह घीसू के सामने जाकर खड़ी होती, तो घीसू को असीम आनन्द मिलता। एक संध्या, वापसी पर निकट के उद्यान में बिन्दो और उसको घर में रखने वाले किसी पुरुष के झगड़ने का स्वर सुनाई पड़ा। अतः रक्षार्थ वह भीतर घुसा। इस पर बिन्दो के यार ने उसे निकाल दिया। घीसू को उसे अपनी कोठरी में जगह देनी पड़ी, और स्वयं अन्यत्र गोविन्दराम की मढ़ी में रहने लगा। बिन्दो नित्य उसकी दूकान पर आ जाती और वह उसे चार आने के पैसे दे देता। एक दिन ज्वराक्रान्त होकर वह चल बसा और मरते समय अपनी अवशिष्ट निधि बिन्दो को दे गया। वह रेजगी की दूकान चलाने लगी। 'उसका यौवन, रूप-रंग कुछ नहीं रहा—थोड़ा-सा पैसा और बड़ा-सा पेट—और पहाड़ से आने वाले दिन।'

—कथावस्तु रोमांटिक, कथोपकथन सुन्दर, प्रारंभ तथा अन्त संवेदनात्मक और चरित्र-विकास स्वाभाविक है। कहानी कारुणिक है। —**आंधी**

घीसू[२]—३० वर्ष का युवक, उसे गाने का चसका था; परन्तु जब कोई न सुने। कन्धे तक बाल, छोटी-छोटी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी गुलाबी आंखें। 'इस दुनियां में मुझसे अधिक कोई न घिसा होगा। इसीलिए तो मेरे माता-पिता ने घीसू नाम रक्खा था।' बिन्दो के लिए उसने बड़ा त्याग किया था।

—(**घीसू**)

च

चक्रपालित—महानायक पर्णदत्त का पुत्र, स्पष्टवादी, सीधा। 'वीर हृदय है, प्रशस्त वक्ष है, उदार मुख-मण्डल है।' (विजया)। देश-हित में स्कन्द के साथ रहता है। —**स्कन्दगुप्त, २**

[गिरनार का विषयपति, जिसने सुदर्शन झील का पुनरुद्धार किया।]

चक्रवर्ती का स्तम्भ—चक्रवर्ती अशोक के स्तंभ के पास पहुंचकर भेड़ें चराते हुए अपने वृद्ध पिता धर्मरक्षित से भोली सरला ने उस स्तंभ के विषय में कई प्रश्न किए। थोड़ी देर में एक धर्मशील कुटुम्ब उस स्थान पर आकर अर्चना में अगरु का गन्ध-दीप जला गया। इतने में मुसलमान अश्वारोहियों का आक्रमण हुआ। उन्होंने हिन्दुओं को बांध लिया—सरला को भी। बूढ़े ने अशोक के उद्देश्यों (शील और धर्म) की दुहाई दी, लेकिन वहां कौन सुनता? उसी समय वर्षा

और आंधी का तूफान खड़ा हो गया। अकस्मात् गर्जन के साथ एक धमाका हुआ। वह विशाल स्तम्भ गिरा और उसके नीचे सब दब गए। कोई किसी का बन्दी न रहा।

यह भी 'खंडहर की लिपि' की कोटि की कहानी है, पर यह कहानी अधिक सुन्दर और सफल मानी गई है।

—**प्रतिध्वनि**

चङ्गेज[१]—माला और मंगल के विवाह पर विजय ने कहा—"अच्छा तो है चंगेज और वर्धन की सन्तानों की क्या ही सुन्दर जोड़ी है!" —**कंकाल, ४-८**

चङ्गेज[२]—जगद्दाहक मंगोल सरदार जिसे अशोक-विहार के स्थविर ने बौद्ध कहा है। इसने समस्त गांधार-प्रदेश को जला कर, लूट-पाट कर उजाड़ दिया, और बाद में उद्यान के मंगली-दुर्ग पर अधिकार कर के शाहीवंश के अंतिम राजकुमार देवपाल को बंदी बनाया।

—(**स्वर्ग के खंडहर में**)

[शुरू में मामूली सरदार, बाद में विध्वंसक विजेता जिसने उत्तरी चीन, बलख, बुखारा, हिरात, गजनी आदि अनेक देशों को जीता। जन्म ११५५ ई०। भारत पर १२२१ ई० में आक्रमण किया।]

चञ्चल चन्द्र सूर्य है चञ्चल—गौतम-बुद्ध द्वारा गाए गए गीत का विषय सृष्टि की अस्थिरता है। 'चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, पवन, अग्नि, जल-थल, सारी प्रकृति चंचल है।' 'मन की चंचल लीला है,' दुःख सुख भी चंचल हैं, ओ चंचल मानव, तू क्यों भटक रहा है, यह संसार असार है। —**अजातशत्रु, १-६**

चणक—चाणक्य का पिता, 'विद्रोही ब्राह्मण,' जिसकी वृत्ति नन्द ने छीन ली और उसे निर्वासित कर दिया। (चाणक्य) —**चन्द्रगुप्त, ३-६**

चण्ड भार्गव—जनमेजय का सेनापति, गौण पात्र। —**जनमेजय का नाग-यज्ञ**

चतुराई—मनुष्य अधिक चतुर बनकर अपने को अभागा बना लेता है, और भगवान् की दया से वंचित हो जाता है। (रामनिहाल) —(**सन्देह**)

चनाब = चन्द्रभागा। —(**दासी**)

चन्दन—सुकुमार युवक, धनदत्त का साथी पथिक। —**इरावती, ६**

चन्दनपुर— —(**शरणागत**)

चन्दा[१]—इंदु, कला २, किरण ३, आश्विन '६७ में प्रकाशित। यह कहानी कोल-जीवन से संबंधित है। इसमें प्रेम, रोमांस, प्रतिहिंसा और उत्सर्ग की कथा है। आरंभ में वातावरण की योजना है। चन्द्रमा अपना उज्ज्वल प्रकाश चन्द्रभागा के निर्मल जल पर डाल रहा था। हीरा और चन्दा एक शिला पर बैठे प्रेमवार्ता में मग्न थे कि उनका प्रतिद्वन्द्वी रामू वहां आ निकला। हीरा और रामू में लड़ाई छिड़ गई। हीरा घायल हुआ। वृद्ध कोल-सरदार की कृपा से उसे चेतना आई। सरदार ने अपनी पुत्री चंदा का विवाह उससे कर दिया। ससुर की मृत्यु के बाद वह कोल-सरदार घोषित किया

गया। एक समय राजा साहब शिकार खेलने आए, तब एक घायल चीते की खोज में हीरा को जाना पड़ा। चीते ने उसे धर दबोचा। राजा ने उसकी सहायता के लिए रामू को भेजा, पर रामू ने उसकी सहायता न की। हीरा मारा गया। चंदा ने प्रतिशोध लेने का निश्चय किया। कुछ दिनों बाद राजा साहब पुनः शिकार खेलने आए। इस बार घायल शेर की तलाश में रामू को जाना पड़ा। छद्मवेश में चंदा उस के साथ हो ली। जब घायल शेर रामू पर आक्रमण कर रहा था तब चंदा ने रामू को छुरे से मार डाला। परन्तु प्रतिशोध उसकी मनोव्यथा को शान्त न कर सका। उसी छुरी से आत्महत्या करके पति से मिलने परलोक की राह ली।

कहानी बहुत बढ़िया नहीं है। कथोपकथन में नाटकीयता है। कथानक स्पष्ट तो है पर बहुत शक्तिशाली नहीं है। चरित्र-चित्रण सुंदर है। अन्त कलात्मक है। प्रसाद की प्रारंभिक कहानियों में यह सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। —छाया

चन्दा[२]—नदी, कहानी का घटना-स्थल। —(आंधी)

[यह नदी मध्यप्रदेश में वर्धा के निकट है।]

चन्दा[३]—अमृतसर की एक धनवती रमणी श्रीचन्द से मिला करती। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि श्रीचन्द पूर्ण रूप से उसकी ओर आकृष्ट था। हां यह हुआ कि आमोद-प्रमोद की मात्रा बढ़ चली। श्रीचन्द को व्यवसाय में सहसा घाटा पड़ा, तो इसने अपना धन लगा दिया। इसे आशा थी कि विधवा-विवाह सभा के द्वारा श्रीचन्द इसे अपनी गृहिणी बना लेगा। इसको यह भी पसंद था कि इसकी लड़की लाली का विवाह विजय से हो जायगा। जब श्रीचन्द ने किशोरी को अपनाया तो यह अपनी लड़की को लेकर वापस पंजाब चली आई। —कंकाल, खंड ३

चन्दा[४]—आदर्श प्रेमिका। वीर-बाला, सती। —(चन्दा)

चन्दुला—सुधारस का विज्ञापन करनेवाला एक विदूषक। उसकी चंदुली खोपड़ी पर बड़े अक्षरों में लिखा है 'एक घूंट', और विज्ञापन पर लिखा है 'पीते ही सौन्दर्य चमक उठेगा।' इसके लिए प्रतिदिन वह सोने का सिक्का पाता है। —एक घूंट

चन्द्र—दे० वसन्त विनोद।

चन्द्रकेतु—

कल किशोर वय चारु,
नवल यौवन के रंग सों।
वीर रसोज्ज्वल व्यञ्जक
मंजुल गठन सुअंग सों॥
दया वीर को प्रगट रूप,
सुमनोहर मोहत।
मदनहु बदन जु लखै,
रहै ठाढ़ो वहि जोहत।
—(प्रेमराज्य)

चन्द्रगुप्त[१]—मृगयाप्रिय, युद्ध-कुशल, वीर, व्यवहार-पटु युवक मौर्य्य सम्राट्। —कल्याणी-परिणय

चन्द्रगुप्त[२]—मौर्यकालीन ऐतिहासिक नाटक, सं० १९८८ (१९३१ ई०) में प्रथम बार प्रकाशित। नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, भाग २ (१९१२) मे प्रकाशित 'कल्याणी-परिणय' का परिवर्द्धित रूपान्तर। नाटक की भूमिका १९०९ में प्रकाशित हो गई थी (दे० चन्द्रगुप्त मौर्य)। नाटक में २५ वर्षों का इतिहास लिया गया है। स्कंदगुप्त मे पांच, और अन्य नाटकों मे तीन दृश्य है। 'चन्द्रगुप्त' की कथा ४ अंकों मे विभाजित है। वस्तुतः इस नाटक का कथानक तीन अंकों में संपूर्ण है। कहा जाता है कि प्रसाद जी इसे पांच अंकों का नाटक बनाना चाहते थे। प्रथम दो अंको में ११–११, तीसरे अंक में ९ और चौथे अंक में १६ दृश्य है। द्वितीय संस्करण में दृश्यो का हेर-फेर भी किया गया है। अनेक दृश्य निरर्थक है अथवा कम किए जा सकते है। पहले दो अंकों का सम्बन्ध उत्तर भारत से, तीसरे का मगध से और चौथे का भिन्न है। चौथा अंक रस और कार्य-संकलन की दृष्टि से महत्त्वहीन है। कथा का विस्तार बहुत अधिक है। कथानक शिथिल है। पात्रों की संख्या भी बहुत अधिक है। वस्तु-योजना शिथिल है। अनेक दृश्य , अनेक प्रसंग, अनेक पात्र अनावश्यक हैं। कल्पना अधिक है, इतिहास पीछे छूट जाता है। वीर रस की प्रधानता है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त की महत्ता में सन्तुलन रखा गया है। इसलिए प्रश्न होता है—नायक कौन है? राष्ट्रभावना संकुचित है। चाणक्य के चरित्र को छोड़, अन्य चरित्रों में न तो अन्तर्द्वन्द्व है, न विकास, और न ही वैविध्य। अभिनेयता की दृष्टि से यह नाटक सबसे अधिक असफल है। नायिका की अनिश्चितता खटकती है। कार्नेलिया और कल्याणी 'कल्याणी-परिणय' में एक ही है; इस नाटक में दो पात्र हैं। प्रसाद ने चन्द्रगुप्त को मौर्य्य सेना-पति का पुत्र माना है।

प्रकाशक—भारती-भंडार, काशी।

अंक—चार।

पुरुष पात्र—

चाणक्य (विष्णुगुप्त) मौर्य-साम्राज्य का पिता
चन्द्रगुप्त—मौर्य्य-सम्राट्
नन्द—मगध-सम्राट्
राक्षस—मगध का आमात्य
वररुचि (कात्यायन)—मगध का आमात्य
शकटार—मगध का मंत्री
आम्भीक—तक्षशिला का राजकुमार
सिंहरण—मालवगण-मुख्य का राजकुमार
पर्वतेश्वर—पंजाब का राजा (ग्रीक ऐतिहासिकों का पोरस)
सिकंदर—ग्रीक-विजेता
फिलिप्स—सिकन्दर का सत्रप
मौर्य्य-सेनापति—चन्द्रगुप्त का पिता
एनीसाक्रिटीज—सिकन्दर का सहचर
देवल—मालव गण-तंत्र के पदाधिकारी
नागदत्त— " " "
गणमुख्य— " " "

साइबर्टियस—यवन-दूत
मेगस्थनीज—   ”
गान्धार-नरेश—आम्भीक के पिता
सिल्यूकस—सिकन्दर का सेनापति
दाण्ड्यायन—एक तपस्वी
स्त्री-पात्र—
अलका—तक्षशिला की राज-कुमारी
सुवासिनी—शकटार की कन्या
कल्याणी—मगध राजकुमारी
नीला—कल्याणी की सहेली
लीला—   ”   ”
मालविका—सिन्धु देश की कुमारी
कार्नेलिया—सिल्यूकस की कन्या
मौर्य्य-पत्नी—चन्द्रगुप्त की माता
एलिस—कार्नेलिया की सहेली

प्रथम अंक में ११ दृश्य हैं। प्रथम दृश्य में तक्षशिला के गुरुकुल-मठ में चाणक्य और मालवगण-मुख्य के कुमार सिंहरण की वार्ता चल रही है। सिंहरण बात-चीत ही में तक्षशिला में पनपते हुए भावी कुचक्र की ओर संकेत करता है, तब तक तक्षशिला का राजकुमार आम्भीक अपनी बहन अलका के साथ आ पहुँचता है। आम्भीक और सिंहरण के बीच कुछ कटु वार्त्ता हो जाती है। आम्भीक तलवार खींच लेता है। चन्द्रगुप्त सहसा पहुँचकर उसे रोकते हैं। अलका भी अपने भाई आम्भीक को मना करती है। चाणक्य की आज्ञा से आम्भीक को अलका ले जाती है। चाणक्य चन्द्रगुप्त और सिंहरण को तक्षशिला छोड़ देने का आदेश देते हैं। अलका भी सिंहरण को तक्षशिला का परित्याग शीघ्रातिशीघ्र कर देने का परामर्श देती है। द्वितीय दृश्य मगध-सम्राट् नन्द के विलास-कानन से सम्बद्ध है। विलासी युवक और युवतियों का दल विहार कर रहा है। सुवासिनी अभिनय-शाला की रानी बनाई जाती है। राक्षस के गीत से मुग्ध होकर नन्द उसे अपना आमात्य नियुक्त करता है। सुवासिनी राक्षस से निवेदन करती है कि वह उसकी अनुचरी ही रहना चाहती है। वह नन्द की विलास-सामग्री नहीं बनना चाहती। मगध-राजकुमारी कल्याणी चन्द्रगुप्त के साथ कुछ स्नेह-पूर्ण बातें करती दिखायी देती है। पांचवां दृश्य मगध में नन्द की राज-सभा का है। चंद्रगुप्त नन्द से पंचनद-नरेश पर्वतेश्वर की सहायता करने का अनुरोध करता है। चाणक्य चन्द्रगुप्त का समर्थन करता है। वहीं पता चलता है कि पर्वतेश्वर ने राजकुमारी कल्याणी से विवाह करने के नन्द के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। नन्द इस अपमान के कारण पर्वतेश्वर की सहायता नहीं करना चाहता। चाणक्य की खरी-खोटी बातों से क्रुद्ध होकर नंद उसकी शिखा पकड़कर घसिटवाता है और उसे बंदी बना लेता है। चाणक्य नंदवंश के नाश की प्रतिज्ञा करता है। छठे दृश्य में सिन्धु-तट पर अलका सिन्धु-देश की राजकुमारी मालविका से मिलती है। अलका के हाथों में एक मानचित्र है। सहसा एक यवन सैनिक आता है। वह मानचित्र लेने के लिए अलका से जबरदस्ती करना चाहता

है। तब तक सिंहरण आ पहुँचता है। वह यवन-दूत को घायल करके भगा देता है। सिंहरण नाव पर बैठकर मालविका के साथ प्रस्थान करता है। यवन सैनिक अलका को बन्दी कर लेते हैं। सप्तम दृश्य में, मगध के बंदीगृह में राक्षस और वर-रुचि चाणक्य से मिलने जाते हैं। वे उसे पर्वतेश्वर के विरुद्ध भेजना चाहते हैं। चाणक्य इंकार कर देता है। तब तक चन्द्रगुप्त नंगी तलवार लिए आता है। प्रहरी तथा अन्य अधिकारियों को मारकर वह चाणक्य को, छुड़ा ले जाता है। अष्टम दृश्य में गान्धार-नरेश के समक्ष अलका उपस्थित की जाती है। गांधार-नरेश उसे मुक्त कर देते हैं। वह गान्धार छोड़कर आर्य्यावर्त की राह पर चल पड़ती है। गांधार-नरेश आम्भीक के कन्धों पर सारा राज्य-भार छोड़कर स्वयं अलका की खोज में चल पड़ते हैं। नवम दृश्य में मगध में विद्रोहार्थ पर्वतेश्वर से सहायता लेने चाणक्य उसकी राजसभा में जाता है, किन्तु वहां भी चाणक्य अपमानित होता है। दशम दृश्य में अलका से सिल्यूकस की भेंट होती है। प्यासे चन्द्रगुप्त को सिल्यूकस पानी देता है और अपने यहां उसे आमंत्रित करता है। चाणक्य उसके शिविर में आने का वचन देता है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त को सिल्यू-कस के साथ पाकर अलका को संदेह होता है। वह महात्मा दाण्ड्यायन के दर्शनार्थ उनके आश्रम की ओर चल पड़ती है। एकादश दृश्य में महात्मा दाण्ड्यायन के आश्रम में चन्द्रगुप्त, चाणक्य, अलका, सिकन्दर, एनिसाक्रिटीज़, और सिल्यूकस पहुँचते हैं। सिकन्दर चन्द्रगुप्त का परिचय प्राप्त करता है। वह उसे आमंत्रित करता है। ज्यों ही वह भारत-विजय की बात करता है, महात्मा दाण्ड्यायन उसे सावधान करते हुए चन्द्रगुप्त को भारत का भावी सम्राट् घोषित करते हैं। सब स्तब्ध रह जाते हैं। इस प्रकार प्रथम अंक में गान्धार से लेकर मगध तक की राजनीतिक परिस्थिति स्पष्ट हो जाती है।

द्वितीय अंक में ग्यारह दृश्य हैं। प्रथम दृश्य में सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया भारत की शोभा का वर्णन करती है। सिकन्दर का क्षत्रप फिलिपस आता है। वह कार्नेलिया से अपनी कुत्सित इच्छा प्रकट करता है। तब तक चन्द्रगुप्त आकर फिलिपस से कार्नेलिया को मुक्त करता है। कार्नेलिया चन्द्रगुप्त की ओर आकृष्ट होती है। द्वितीय दृश्य में सिकन्दर चंद्रगुप्त से मगध के विरुद्ध सहायता मांगता है। चन्द्रगुप्त इन्कार कर देता है। उसे बन्दी बनाने का आदेश दिया जाता है। आम्भीक, फिलिपस, एनिसा-क्रिटीज उस पर टूट पड़ते हैं और वह तीनों को घायल करके निकल जाता है। तृतीय दृश्य में झेलमतट के जंगल में चाणक्य, चन्द्रगुप्त और अलका भविष्य के कार्यक्रम पर विचार करते हैं। अलका को खोजते हुए वृद्ध गांधार-नरेश वहां आ पहुँचते हैं। कल्याणी पुरुष-वेश में

अपनी सेना के साथ पर्वतेश्वर के सहायतार्थ तथा उसे नीचा दिखाने के लिए युद्ध-भूमि में उपस्थित है। चन्द्रगुप्त, सिंहरण तथा अलका वेष बदले हुए वहां पहुँच जाते हैं। इन पर आम्भीक के अनुचर होने का सन्देह किया जाता है और ये बंदी बनाए जाते हैं। चतुर्थ दृश्य में युद्ध-भूमि का दृश्य है। पर्वतेश्वर युद्ध में सिल्यूकस को घायल कर देता है। सिकन्दर पर्वतेश्वर से मित्रता का प्रस्ताव करता है। पर्वतेश्वर चन्द्रगुप्त के विरोध के बावजूद उसका प्रस्ताव अस्वीकृत कर देता है। मगध की राजकुमारी कल्याणी अपना शिरस्त्राण फेंक देती है; किन्तु जब पर्वतेश्वर को ज्ञात होता है कि वह मगध की राजकुमारी है तो वह किंकर्तव्य-विमूढ़-सा खड़ा रह जाता है। पंचम दृश्य में चन्द्रगुप्त और मालविका मिलते हैं। चाणक्य चन्द्रगुप्त को सावधान करते हैं, क्योंकि प्रेमालाप करने का समय अब नही रहा। षष्ठ दृश्य में सिंहरण और अलका बंदीगृह में पड़े हुए हैं। पर्वतेश्वर अलका को अपनी रानी बनाना चाहता है। वह सिंहरण को मुक्त करने के लिए पर्वतेश्वर का प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है; किन्तु शर्त यह थी कि सिंहरण के देश मालवा पर जो यवन-आक्रमण होने वाला है उसमें पर्वतेश्वर सिकंदर की सहायता न करें और अपने देश की रक्षा के लिए उसे मुक्त किया जाय। पर्वतेश्वर उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है। सप्तम दृश्य में हम स्कन्धावार में युद्ध-परिषद् को विचार-विमर्श करते हुए पाते हैं। अन्त में चन्द्रगुप्त सेनापति चुना जाता है। अष्टम दृश्य में पर्वतेश्वर चिन्तित है। सिकन्दर ने रावी-तट पर आठ हजार सैनिकों सहित पर्वतेश्वर से मिलने को कहा है। अलका को दिए वचन को भूलकर जब पर्वतेश्वर एक हजार सैनिक लेकर जाने का निश्चय करता है तो अलका वहां से भागने का प्रबन्ध कर लेती है। नवम दृश्य में आकर मालविका, चन्द्रगुप्त तथा सिंहरण से मिलती है। शत्रु को शत्रु की ही नीति से पराजित करना होगा। यह निश्चय होता है। दशम दृश्य में राक्षस और कल्याणी मगध लौटने को उत्सुक हैं; किन्तु चाणक्य उन्हें रोकता है। यह बतलाता है कि नंद को सुवासिनी और राक्षस पर सन्देह है इसलिए उसका मगध जाना उचित नही है। एकादश दृश्य में मालव-दुर्ग पर यवनों का आक्रमण होता है। सिकन्दर सिंहरण के हाथों घायल हो जाता है; किन्तु उसे छोड़ दिया जाता है। चन्द्रगुप्त सिल्यूकस को छोड़ देता है। इस प्रकार भारतीयों की शत्रु के प्रति उदारता दिखाई गई है।

तृतीयांक में नौ दृश्य हैं। प्रथम दृश्य में राक्षस को यह पता चलता है कि सुवासिनी कैद कर दी गई है और राक्षस की गिरफ्तारी के लिए मगध-सम्राट् ने पुरस्कार की घोषणा की है। राक्षस कैद किया जाता है; किन्तु चाणक्य द्वारा नियुक्त राक्षस के अंगरक्षक उसे छुड़ा

लेते हैं। सिंहरण और अलका के विवाह में राक्षस आमंत्रित किया जाता है। सिकन्दर भी सम्मिलित होने वाला है। द्वितीय दृश्य में पर्वतेश्वर आत्महत्या करना चाहता है, किन्तु चाणक्य उसे रोक लेता है। चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया बात-चीत कर रहे हैं। फिलिपस आता है। वह चन्द्रगुप्त से युद्ध करने की इच्छा प्रकट करता है। चन्द्रगुप्त आश्वासन देता है कि जिस समय वह चाहे उससे युद्ध कर सकता है। चाणक्य सुवासिनी को मुक्त कराने का लोभ देकर राक्षस से उसकी मुद्रा ले लेता है। तृतीय दृश्य में सिकन्दर को सब विदा करते हैं। सिकन्दर भारत से प्रस्थान करता है। चतुर्थ दृश्य में राक्षस को यह मालूम होता है कि सुवासिनी के कैद हो जाने की सूचना गलत थी। मगध के विरुद्ध चाणक्य पर्वतेश्वर को तैय्यार करता है। चाणक्य पर्वतेश्वर को वचन देता है कि आधे साम्राज्य का स्वामी उसे बनाया जायगा। पंचम दृश्य में सुवासिनी से नंद प्रेमाभिसार करना चाहता है, तभी राक्षस आ जाता है। नंद लज्जित होकर उसे छोड़ देता है। षष्ठ दृश्य में चाणक्य मालविका को राक्षस की मुद्रा के साथ एक पत्र देता है। राक्षस और सुवासिनी का विवाह होने वाला है। मालविका नर्तकी के रूप में प्रस्थान करती है। बंदी शकटार सुरंग-द्वारा बंदीगृह से बाहर निकलता है। उसके सात पुत्र बंदीगृह में मर चुके हैं। चाणक्य उसे अपने साथ ले जाता है। सप्तम दृश्य में वररुचि, मौर्य्य-पत्नी (चन्द्रगुप्त की माता) और मालविका कैद किए जाते हैं। राक्षस और सुवासिनी को भी बंदी बनाए जाने की आज्ञा दी जाती है। अष्टम दृश्य में ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त ने द्वन्द्व-युद्ध में फिलिपस को मार डाला। गुफाद्वार से मौर्य, मालविका, शकटार, वररुचि सब बाहर निकाल लिए जाते हैं। पर्वतेश्वर को चाणक्य आदेश देता है कि जिस समय चन्द्रगुप्त अन्दर से विद्रोह करे उसी समय वह नगर-द्वार पर बाहर से आक्रमण कर दे। नवम दृश्य में राक्षस और सुवासिनी बंदी रूप में नंद की सभा में उपस्थित होते हैं। राक्षस जाली पत्र सुनकर स्तब्ध रह जाता है। अपने को निर्दोष साबित करने के लिए उसके पास कोई प्रमाण नहीं। तत्काल राज-सभा में पहुँचकर चन्द्रगुप्त नन्द को बंदी बना लेता है और वह सम्राट् घोषित हो जाता है।

चतुर्थ अंक मे सोलह दृश्य हैं। प्रथम दृश्य में कल्याणी पर्वतेश्वर का वध कर देती है, क्योंकि मद्यप पर्वतेश्वर कल्याणी को अपनी रानी बनाने के लिए जबरदस्ती कर रहा था। कल्याणी स्वयं आत्महत्या कर लेती है और इस प्रकार चन्द्रगुप्त के दोनों विरोधियों के नष्ट हो जाने पर उसका मार्ग निष्कण्टक हो जाता है। द्वितीय दृश्य में सूचित किया जाता है कि राक्षस चन्द्रगुप्त से प्रतिशोध लेना चाहता है। तृतीय दृश्य में विजयोत्सव

की तैय्यारी हो रही है; किन्तु चाणक्य नहीं चाहता इसलिए सभी क्षुब्ध हो रहे हैं। चन्द्रगुप्त के माता-पिता राज्य छोड़कर चले जाते हैं। राक्षस इस विरोध से लाभ उठाना चाहता है। चतुर्थ दृश्य में मालविका चन्द्रगुप्त को दूसरे शयनागार में भेज कर स्वयं उसकी सेज पर सो जाती है; क्योंकि षड्यंत्रकारी आज चन्द्रगुप्त की हत्या करनेवाले थे। वहीं उसकी हत्या हो जाती है। चाणक्य इस बीच में रुष्ट होकर पश्चिमोत्तर प्रदेश की ओर चला जाता है। षष्ठ दृश्य में हम चाणक्य को कात्यायन (वररुचि) के साथ सिंधु-तट पर अपने पर्णकुटीर में पाते हैं। आम्भीक चाणक्य से सहायता के लिए आता है क्योंकि यवन-आक्रमण पुनः भारत पर होने वाला है। आम्भीक और सिंहरण देश-रक्षा की शपथ लेते हैं। सप्तम दृश्य में राक्षस कार्नेलिया को पढ़ाने आता है; किन्तु वह पढ़ने से इनकार कर देती है। सिल्यूकस कार्नेलिया को बतलाता है कि चाणक्य राज्य छोड़कर चला आया है। इस कारण भारत-विजय अब एक सरल कार्य होगा। अष्टम दृश्य से यह ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त का पथ निष्कंटक कर के चाणक्य राज्य-कार्य राक्षस को सौंपकर स्वयं तप करेंगे। सुवासिनी से जब चाणक्य बताते हैं तो वह अवाक् हो जाती है। नवम दृश्य में चन्द्रगुप्त युद्ध के लिए उद्यत दिखायी पड़ता है। दशम दृश्य में सुवासिनी बंदी बनाकर ग्रीक शिविर में पहुँचाई जाती है। कार्नेलिया उसे अपनी सहेली बना लेती है। एकादश दृश्य में चाणक्य सिंहरण को अपनी सारी युद्ध-योजना बतलाता है। बारहवें दृश्य में चन्द्रगुप्त और सिल्यूकस मिलते हैं। युद्ध-भूमि में सिल्यूकस आम्भीक के हाथों घायल होता है; किन्तु आम्भीक अपने प्राण खो बैठता है। तेरहवें दृश्य में ग्रीक-शिविर पर आक्रमण होता है। कार्नेलिया आत्महत्या करने को उद्यत होती है, तब तक चन्द्रगुप्त आकर उसे पकड़ लेता है। सिल्यूकस पराजित हो जाता है। चौदहवें दृश्य से ज्ञात होता है कि एंटिगोनस ने भी आक्रमण कर दिया है। इस आक्रमण में चन्द्रगुप्त से सन्धि रखना आवश्यक था। सिन्धु के पश्चिमी प्रदेश और कार्नेलिया चन्द्रगुप्त को सौंपी जाती है। पन्द्रहवें दृश्य में मौर्य्य-सेनापति तपस्या में लीन चाणक्य की हत्या करने को तलवार उठाता है। ठीक समय पर चन्द्रगुप्त पहुँचकर अपने पिता को रोक लेता है। राक्षस के लिए चाणक्य सुवासिनी के अतिरिक्त अपना मंत्रित्व भी छोड़ देता है। मौर्य-सेनापति ने शस्त्र फेंककर चाणक्य की सलाह के अनुसार संन्यास ले लिया। सोलहवें दृश्य में कार्नेलिया-चन्द्रगुप्त का विवाह, सिल्यूकस सब की अनुमति से कर देते हैं। चन्द्रगुप्त की तीन प्रेमिकाएँ थीं—कल्याणी, मालविका तथा कार्नेलिया। कल्याणी पर्वतेश्वर की हत्या करके आत्महत्या कर लेती है। मालविका षड्यंत्र-

कारियों के हाथ से मारी जाती है तथा कार्नेलिया का चन्द्रगुप्त से विवाह हो जाता है।

नाटक की तीन प्रमुख घटनाएँ हैं—सिकन्दर का आक्रमण, नन्द-कुल का उन्मूलन और सिल्यूकस का पराभव—तीनों का श्रेय एक व्यक्ति को दिया गया है। आधिकारिक कथा के अतिरिक्त इसमें सिंहरण और अलका, फिलिपस और कार्नेलिया, चन्द्रगुप्त और मालविका, कल्याणी और पर्वतेश्वर की प्रासंगिक कथाएँ हैं। नाटक के फल का उपभोक्ता चन्द्रगुप्त है, इसलिए वही नायक है। वीररस प्रधान है। शृंगाररस का योग निरन्तर रहता है। प्रसाद जी का प्रेम-वर्णन संयत और उदात्त होता है। कथोपकथन रस के अनुकूल हैं—वीररस के लिए आवेग और गर्व-पूर्ण संवाद और शृंगार रस के लिए मधुरता आदि गुण भाषा और भाव-व्यंजना में भरे गए हैं। नाटक में तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षणिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

शैली का नमूना—

चन्द्र०—आर्य, प्रणाम!

चाणक्य—कल्याण हो आयुष्मन्, आज तुम्हारा प्रणाम कुछ भारी-सा है!

चन्द्र०—मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।

चाणक्य—यह तो मैं पहले ही से समझता था! तो तुम अपने स्वागत के लिए लड़कों की तरह रूठे हो?

चन्द्र०—नहीं आर्य, मेरे माता-पिता—मैं जानना चाहता हूँ कि उन्हें किसने निर्वासित किया।

चाणक्य—जान जाओगे तो उसका वध करोगे! क्यों?

(हँसता है)

चन्द्र०—यह अक्षुण्ण अधिकार आप कैसे भोग रहे हैं? केवल साम्राज्य का ही नहीं देखता हूँ आप मेरे कुटुम्ब का भी नियंत्रण अपने हाथों में रखना चाहते हैं!

चाणक्य—साम्राज्य चलाने की इच्छा न थी, चन्द्रगुप्त! मैं ब्राह्मण हूँ, मेरा साम्राज्य करुणा का था, मेरा धर्म प्रेम का था। आनन्द समुद्र में शांति द्वीप का अधिवासी ब्राह्मण—चन्द्र-सूर्य्य, नक्षत्र मेरे दीप थे, अनन्त आकाश वितान था, शस्य-श्यामला कोमला विश्वम्भरा मेरी शय्या थी। बौद्धिक विनोद कर्म्म था, संतोष धन था। उस अपनी ब्राह्मण की जन्म-भूमि को छोड़कर कहां आ गया! सौहार्द के स्थान पर कुचक्र; फूलों के प्रतिनिधि कांटे; प्रेम के स्थान में भय; ज्ञानामृत के परिवर्तन में कुमंत्रणा। पतन और कहां तक हो सकता है! ले लो मौर्य्य चन्द्रगुप्त! अपना अधिकार, छीन लो। यह मेरा पुनर्जन्म होगा। मेरा जीवन राजनीतिक कुचक्रों से कुत्सित और कलंकित हो उठा है। किसी छाया-चित्र, काल्पनिक महत्त्व के पीछे, भ्रम-पूर्ण अनुसंधान करता दौड़ रहा हूँ। शांति खो गई, स्वरूप विस्मृत हो गया! अभिमान-वश, दुस्तर कुहेलिका समुद्र के

समान संसार का सन्तरण करना चाहता था ! आज विदित हुआ—मैं कहां और कितने नीचे हूँ !

(प्रस्थान)

चन्द्र०—जाने दो !—(दीर्घ निश्वास लेकर)—तो क्या मैं असमर्थ हूँ ? ऊँह, सब हो जायगा !

सिंहरण—(प्रवेश करके) सम्राट् की जय हो ! कुछ विद्रोही और षड्यंत्र-कारी पकड़े गए हैं। एक बड़ी दुःखद घटना भी हो गई है !

चन्द्र०—(चौंककर) क्या ?

सिंह०—मालविका की हत्या ...... (गद्गद् कण्ठ से)—आपका परिच्छद पहनकर वह आप ही की शैय्या पर लेटी थी।

चन्द्र०—तो क्या, उसने इसीलिए मेरे शयन का प्रबन्ध दूसरे प्रकोष्ठ में किया ! आह ! मालविका !

सिंह०—आर्य्य चाणक्य की सूचना पाकर नायक पूरे गुल्म के साथ राजमंदिर की रक्षा के लिए प्रस्तुत था। एक छोटा-सा युद्ध होकर वे हत्यारे पकड़े गए। परन्तु उनका नेता राक्षस निकल भागा !

चन्द्र०—क्या ? राक्षस उनका नेता था!

सिंह०—हां सम्राट् ! गुरुदेव बुलाए जायँ ?

चन्द्र०—वही तो नही हो सकता, वे चले गए ! कदाचित् न लौटेंगे।

सिंहरण—ऐसा क्यों ? क्या आप ने कुछ कह दिया ?

चन्द्र०—हां सिंहरण ! मैंने अपने माता-पिता के चले जाने का कारण पूछा था।

सिंह०—(निश्वास लेकर) तो नियति कुछ अदृष्ट का सृजन कर रही है ! सम्राट्, मैं गुरुदेव को खोजने जाता हूँ।

चन्द्र०—(विरक्ति से) जाओ ; ठीक है—अधिक हर्ष, अधिक उन्नति के बाद ही तो अधिक दुःख और पतन की बारी आती है।

(सिंहरण का प्रस्थान)

चन्द्र०—पिता गए, माता गई, गुरुदेव गए, कंधे से कंधा भिड़ाकर प्राण देने वाला चिर सहचर सिंहरण गया ! तो भी चन्द्रगुप्त को रहना पड़ेगा, और रहेगा ! परन्तु मालविका ! आह स्वर्गीय कुसुम !

(चिंतित भाव से प्रस्थान)

चन्द्रगुप्त[१]—नन्दवंश के नाश के पश्चात् मौर्य्यवंश का प्रथम सम्राट्। 'चन्द्रगुप्त' नाटक का धीरोदात्त नायक। उसमें धैर्य्य, त्याग, पराक्रम, रणकुशलता, उत्साह, उदारता, कृतज्ञता आदि नायकत्व के अनेक गुण हैं। कार्नेलिया के शब्दों में वह 'शृंगार और रौद्र का संगम है,' 'उसमें कितनी विनयशील वीरता है।' उसके चरित्र में कौमार्य की चंचलता, यौवन का उत्साह और प्रौढ़ावस्था की गम्भीरता का क्रमिक विकास है। संकल्प, पुरुषार्थ, कार्य-कुशलता, आर्तपरायणता आदि गुणों के कारण वह साधारण अवस्था से उठकर भारत का सम्राट् बन जाता है। शास्त्र

और शस्त्र-विद्या ने उसे कार्य-कुशल और कर्त्तव्यशील बनाया है। इससे उसमें स्वावलम्बन और आत्मसम्मान भरा है। वह गुरुदेव से लड़ बैठता है। सिंहरण उसका साथ छोड़ देता है, तो भी उसका उत्साह मन्द नहीं होता। बल्कि ऐसे समय में उसका क्षात्रतेज प्रज्ज्वलित हो उठता है। दाण्ड्यायन, सिल्यूकस और पर्वतेश्वर सब कहते हैं कि वह भारत का सम्राट् होने योग्य है। वह न्याय-प्रिय है; क्रूर नहीं है। विपन्न कार्नेलिया की रक्षा करता है, कल्याणी को चीते से बचाता है और सिल्यूकस तक की प्राण-रक्षा करता है। सिकन्दर का वध नहीं करता। चन्द्रगुप्त में चारित्रिक दृढ़ता और पवित्रता है। उसके हृदय की दुर्बलता मालविका के मामले में प्रगट होती है। वह कार्नेलिया से हार्दिक प्रेम प्रकट करता है। परन्तु देश की दुर्दशा से व्याकुल होकर वह यह सब कुछ भूल जाता है। वह एक वीर योद्धा और योग्य शासक है, चाणक्य के हाथ की कठपुतली मात्र नहीं है। चाणक्य के कारण प्रसाद ने चन्द्रगुप्त के चरित्र को धूमिल नहीं होने दिया। वह सच्चे अर्थों में इस नाटक का नायक है।

—चन्द्रगुप्त

ग्रीक साहित्य में इसे सन्ड्रोकोटस कहा गया है। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि चन्द्रगुप्त मोरिय जाति का क्षत्रिय था। [कहते हैं कि चन्द्रगुप्त और नन्दकुमारी में प्रेम था और बाद में दोनों का विवाह भी हुआ। इससे वह महानन्द का पुत्र नहीं था] कुछ लोगों ने इसे मुरा नाम की दासी, नापित-कन्या से उत्पन्न बताया है। प्रसाद जी इस बात को नहीं मानते।

चन्द्रगुप्त के जीवन की घटनाओं का उल्लेख—अर्थकथा, स्थविरावली, कथा-सरित्सागर, ढुण्ढि, अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज के विवरण में मिलता है। इसने २४ वर्ष राज्य किया। चन्द्रगुप्त की विजयों और शासन-प्रबन्ध का वर्णन प्रसाद ने भूमिका में दिया है।

—चन्द्रगुप्त, भूमिका

[मौर्य-राज्य के संस्थापक, भारत के प्रथम सम्राट्। राज्यकाल ३२२—२९८ ई० पू०।]

चन्द्रगुप्त[२]—धीर, वीर, उदार नायक। स्निग्ध, सरल, सुन्दर मूर्ति! सरल और सुन्दर युवक, प्रेम का उज्ज्वल प्रतीक। उसने पिता का दिया हुआ स्वत्व और राज्य का अधिकार तो छोड़ ही दिया; इसके साथ ही अपनी एक अमूल्य निधि भी.. (अर्थात् ध्रुव-स्वामिनी); 'कितना समर्पण का भाव है उसमें?' (मन्दाकिनी)। कितना बड़ा त्याग है पारिवारिक कलह मिटाने की चिन्ता में! समुद्र-गुप्त के कुल की मर्यादा की रक्षा में वह सदैव सचेष्ट रहता है। नारी की रक्षा के लिये भी वह सदैव कटिबद्ध रहता है। उसे अपने बाहुबल और भाग्य पर विश्वास है। वह मूक प्रेम को

लेकर ही जीवन के पथ पर अग्रसर होता है। उसी आलोक को देखता हुआ वह रामगुप्त के सभी अत्याचारों को सहता है। उसके बिना उसकी कोई सत्ता नहीं, कोई महत्ता नहीं। ध्रुवस्वामिनी भी उसके गुणों पर मुग्ध है। 'मेरे जीवन-निशीथ का ध्रुवनक्षत्र' (ध्रुवस्वामिनी)। दोनों का सुख-दुःख एक हो जाता है। दोनो राजचक्र में एक साथ पिसते हैं और अन्त में दोनों सुख-शांति का लाभ करते हैं। स्वभावतः वह गंभीर, कर्तव्य-परायण, शांति-प्रिय और निर्भीक है।
—ध्रुवस्वामिनी

[समुद्रगुप्त का पुत्र जिसके समय में चीनी यात्री फाहियान भारत मे आया; कुमारगुप्त (दे० स्कन्दगुप्त नाटक) का पिता; राज्यकाल ३७५-४१३ ई०।]

चन्द्रगुप्त[३]—दे० सिन्धु[२]। —स्कन्दगुप्त
[दे० चन्द्रगुप्त[१]]

चन्द्रदेव[१]—प्रयाग विश्वविद्यालय का स्नातक जो नौकरी न करके स्वतंत्र व्यवसाय करता है। उसकी थोड़ी-सी सम्पत्ति, बिसात-खाने की दूकान और रुपयों का लेनदेन, और उसका शारीरिक गठन सौन्दर्य का सहायक बन गया था। वह था तार्किक, दार्शनिक, कोरा आदर्शवादी। भीतर से वह जानता था कि कुछ भी करने की क्षमता उसमें नहीं है। —(परिवर्तन)

चन्द्रदेव[२]—एक ताल्लुकेदार का पुत्र; क्षुद्र-हृदय जो धन का दुरुपयोग अरुचिकर ढंग से कर रहा था। मदिरा पीता था। सांप पकड़ने वाली नेरा की ओर आकृष्ट हुआ। —(सुनहला सांप)

चन्द्रप्रभा—नदी। —(चन्दा)
[चन्दा नदी का प्राचीन नाम।]

चन्द्रभागा—नदी। कहानी के उत्तरार्द्ध की घटनाएँ इस प्रदेश से सम्बन्धित हैं।
—(दासी)

[आधुनिक नाम चनाब—पंजाब में। कश्मीर में हिमालय से निकलती है और जेहलम तथा रावी नदियों को लेती हुई सतलुज में आ मिलती है। झंग और मुलतान इसके किनारे के प्रसिद्ध नगर हैं। लम्बाई ७५० मील।]

चन्द्रलेखा[१]—इस से महाराजपुत्र राज्यवर्धन का अवैध सम्बन्ध था। ऐसा मंगल के यंत्र में भरे कागज से मालूम हुआ। —कंकाल, १-६

चन्द्रलेखा[२]—सुश्रवा की कन्या, बाद में विशाखदत्त की प्रिया और पत्नी—सुन्दर रूप और मलिन वेश, सरल स्वभाव, पवित्र आचरण, मानवोचित सहानुभूति, सतीत्व और अनन्य प्रेम उसके चरित्र के विशेष गुण हैं। उस में आत्म-सम्मान और सन्तोष भरा है। 'मेरी इस झोपड़ी में राजमन्दिर से कहीं बढ़ कर आनन्द है।' वीर नारियों की-सी निर्भीकता उसमें नहीं है। चैत्य में दीप के बुझते ही वह डर जाती है। 'तब तू अवश्य इस चैत्य का कोई दुष्ट अपदेवता है। आज से इस राख के

टीले पर कभी नहीं आऊँगी।' सच्ची पतिव्रता नारी है। नरदेव के प्रेम को ठुकरा देती है और उसके रोष से भय-भीत नहीं होती। उसे 'मूर्तिमती करुणा' कहा गया है। —विशाख

चन्द्रावली—दे० इन्द्रसभा

दे० भारतेन्दु।

[नाटिका, जिसमें कृष्ण के प्रति ब्रज की चन्द्रावली के अलौकिक प्रेम का वर्णन है।]

चन्द्रोदय—ब्रजभाषा का पद्य। इन्दु, कला २, होलिकांक '६७ में। प्रकृति-विषयक कविता है जिसमें उपमाओं की भरमार है।

शून्य हृदय विरही को
तामें प्रियावदन सुख देवै।
तैसहि शून्य विशाल गगन महँ
चन्द हिलोरे लेवै॥

—(पराग)

चमेली[1]—'चमेली' शीर्षक से खड़ी बोली के 'प्रेम-पथिक' का दूसरा अंश जो इन्दु, कला ५, खंड २, किरण ६, दिसम्बर '१४ में प्रकाशित हुआ।

चमेली[2]—प्रेम-पथिक की प्रिया।

—प्रेम-पथिक[2]

चम्पा[1]—पोताध्यक्ष मणिभद्र के प्रहरी की कन्या, भारत की क्षत्रिय बालिका, मणिभद्र की बन्दिनी, अपनी महिमा में अलौकिक। बुद्धगुप्त से प्रेम करने लगी, पर जब उसे विश्वास हुआ कि वह उसके पिता का हत्यारा है और उसके धर्म पर व्यंग्य करता है तो वह उससे घृणा करने लगी। इसी से उसको वैराग्य-सा हो गया। 'मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है; सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब मिला कर मेरे लिए एक शून्य है।' बुद्धगुप्त भारत लौट गया और वह रह गई चम्पा-द्वीप में 'निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।' उसकी मृत्यु के बाद द्वीप-निवासी उस माया-ममता और स्नेह-सेवा की देवी की पूजा करते थे। —(आकाशदीप)

चम्पा[2]—द्वीप, जहां सिंहल के वणिकों का प्राधान्य रहा। बुद्धगुप्त ने अपनी प्रेयसी के नाम पर इसका नाम चम्पा रखा। —(आकाशदीप)

चम्पा[3]—एक नगरी, जाह्नवी के किनारे। चम्पा यहीं की रहने वाली थी।

—(आकाशदीप)

[चम्पानगरी अंग देश की राजधानी थी और वर्तमान भागलपुर के पास बसी थी। चम्पा द्वीप बाली, सुमात्रा के पास दक्षिण-पूर्वी द्वीपों में है।]

चम्पू—निबन्ध, 'उर्वशी-चम्पू' की भूमिका के रूप में। यही भूमिका बाद में अनावश्यक अंशों को काट-छांट कर इन्दु, कला २, किरण १, श्रावण '६७ में एक स्वतंत्र निबन्ध के रूप में प्रकाशित हुई। इस निबन्ध में चम्पू के लक्षण, इसके २८ भेद, संस्कृत में चम्पू की परम्परा और तब तक के हिन्दी-चम्पुओं का विवेचन और शास्त्रीय

अध्ययन उपस्थित किया गया है। हिन्दी के ६ चम्पुओं के नाम गिनाए गए हैं।

नरहरि चम्पूकार ने काव्य के छः भेद बताए हैं। साहित्य-दर्पण, अम्बिकादत्त जी की गद्यकाव्य-मीमांसा मे काव्य के दो भेद गिनाए गए हैं। हमारा कथन है कि चम्पू केवल श्रव्य ही होता है। अभिज्ञानशकुन्तला आदि भी गद्य-पद्य मिश्रित है, पर इन्हें नाटक ही कहा जाता है, चम्पू नहीं। साहित्य-दर्पण में "गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते", इसके टीकाकार तर्कवागीश महाशय के अनुसार "गद्यपद्यमयानि श्रव्यकाव्यानि इत्यर्थः भेदाः श्रव्यकाव्यः विशेषाः", और अग्निपुराण के अनुसार भी चम्पू श्रव्यकाव्य होता है। हिन्दी में चम्पू नामांकित प्रथम काव्य प्रयाग-निवासी पं० रामप्रसाद तिवारी ने बनाया है जोकि सन् १८९६ ई० में इंडियन प्रेस में मुद्रित हो चुका है, जिसकी संक्षिप्त आलोचना पं० देवीदत्त त्रिपाठी नरहरि-चम्पूकर्त्ता ने अपने चम्पू की भूमिका में की है।

चरणाद्रि—दे० प्रतिष्ठान।

—**स्कन्दगुप्त, ३**

[=चुनार।]

चल वसन्त बाला अञ्चल से किस घातक सौरभ में मस्त—बिम्बसार की स्थिति पर प्रकाश डालने वाला नेपथ्य-गान। वसन्त की मादक वायु, समय की गति से ग्रीष्म की लू हो जाती है। वसन्त के आरम्भ में सुगंधि और शीतलता लिए हुए यह वायु सब को प्रफुल्लित करती है, भौंरे भी मस्त होकर फूल-पत्तियों का रस चूसते हैं। कुछ समय बाद पत्तिया पीली होकर और फूल मुरझाकर गिर जाते हैं। बहुत समय तक फूलों की हँसी दिखाई नहीं देती। फिर नई सृष्टि का आरंभ होता है।

इसमें वसन्त की संध्या का सुन्दर दृश्य उपस्थित है। —**अजातशत्रु, ३-९**

चला है मन्थर गति से पवन रसीला नन्दन कानन का—मादकता का स्वांग भर कर श्यामा समुद्रदत्त को रिझाने लगी है। प्रकृति में उन्माद भर रहा है। यह सुमधुर नंदन कानन की मंद-मंद वायु, फूलों पर मंडराते हुए ये भौरे, यह मस्ती में खिला कमल, सब मादकता से भरे हैं। मदमत्त हो जाने पर उचित अनुचित की भूल नही सूझती और सब मनमानी करते हैं। तुम भी 'कर लो अपने मन का'। —**अजातशत्रु, २-४**

चाची—हरद्वार की दुष्टा, खुर्राट; दे० नन्दो। —**कंकाल**

चाणक्य[१]—दूरदर्शी, निस्पृह, निर्लिप्त; बुद्धि और कर्मण्यता का प्रतीक। कथा का सूत्र उसी के हाथ मे है।

—**कल्याणी-परिणय**

चाणक्य[२]—विष्णुगुप्त चाणक्य (कौटिल्य), मौर्य्य-साम्राज्य का निर्माता, ब्राह्मणत्व का प्रतीक। साधारण स्थिति का कृषक ब्राह्मण जो राजनीतिक प्रतिभा, विद्वत्ता, साहस और निर्भीकता के भरोसे

उत्तरापथ के संगठन और नेतृत्व में अग्रसर हो जाता है। एक ओर वह स्वदेशानुराग से प्रेरित होकर यवनों के आक्रमण को विफल बनाने का प्रयत्न करता है और दूसरी ओर अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए मगध का शासन उलटना चाहता है। पर्वतेश्वर द्वारा निकाले जाने पर भी वह हतोत्साह नही होता। वह अपने बुद्धिबल और संगठन शक्ति से सिकन्दर जैसे जगद्विजेता को पराजित करता है। वह अपनी प्रखर प्रतिभा और कूट राजनीति से सभी कण्टकों को हटा कर, गाधार से लेकर मगध तक का एकच्छत्र राज्य चन्द्रगुप्त के हाथ मे सौप देता है। वह परम निर्भीक, कठोर और साहसी है—आम्भीक को फटकारने, एवं नन्द के दरबार मे कड़कने से उसकी निर्भीकता का पता चलता है। वह एकाकी सब शत्रुओं से टक्कर लेता है। उसने जिस बात का संकल्प किया उसको पूरा कर दिखाया और स्वजनों तक को दण्डित किया। 'वही होकर रहेगा जिसे चाणक्य ने विचार कर के ठीक कर लिया है।' (स्वयं)। अपराधी को दण्ड देना उसकी नीति का दृढ़ पक्ष है। 'चाणक्य सिद्धि देखता है साधन चाहे कैसे ही हों'। (स्वयं)। राक्षस से मुद्रा लेने, मौर्य्य सेनापति को हटाने, पर्वतेश्वर को प्रलोभन देने और कल्याणी द्वारा उसकी हत्या कराके वह अपने लक्ष्य को सिद्ध करता है। वह क्रूर और महत्त्वाकांक्षी है। पर उसकी क्रूरता स्वभाव-जन्य नहीं है। वह परिस्थितियों की उपज है। उसके शब्दों मे 'महात्त्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है।' पर उसकी महत्त्वाकांक्षा स्वार्थ-मूलक नहीं है। वह तो मंत्रि-पद तक राक्षस को देकर हट जाता है। उसमें ब्राह्मणोचित विद्वत्ता, निर्भीकता और साथ ही उदारता और क्षमाशीलता भी है। नन्द, मौर्य-सेनापति, सिकन्दर और राक्षस के प्रति उसकी अंतिम भावनाएँ कितनी उदार हैं! सुवासिनी से चिर-प्रणय होने पर भी, वह उसके सुख की चिन्ता करके उसे राक्षस के साथ विवाह कर लेने की आज्ञा देता है। उसके त्यागमय कर्मठ जीवन की शत्रु-मित्र सभी सराहना करते हैं। सिल्यूकस उसे 'बुद्धि-सागर' कहता है। राक्षस भी उसकी 'विचक्षण बुद्धि' और 'प्रखर प्रतिभा' से चकित है। एक तरह से नाटक के पहले तीन अंकों का केन्द्र चाणक्य ही है।

—चन्द्रगुप्त

चाणक्य के बहुत से नाम मिलते हैं—विष्णुगुप्त, चाणक्य, पक्षिल स्वामी, वात्स्यायन, द्रुमिल इत्यादि। कोई (पर्य्यटक) इन्हें कोंकणस्थ ब्राह्मण लिखते हैं, कोई (जैन) इन्हें गोल्ल ग्रामवासी मानते हैं, कोई (बौद्ध) इन्हें तक्षशिला-निवासी बतलाते हैं। जस्टिस तैलंग, वी० ए० स्मिथ, कामन्दकीय नीतिसार, हेमचन्द्र, श्रीचंद्र जैन, कनिंघम आदि ने इनका चरित्र अंकित किया है।

इनकी कृतियों में चाणक्य-नीति, अर्थ-शास्त्र, काममूत्र और न्यायभाष्य गिने जाते हैं। —चन्द्रगुप्त, भूमिका

चाणक्य[१]—चाणक्य ने लिखा है कि राजपुत्र भेड़िये हैं, उनसे पिता को सावधान रहना चाहिए।.....चाणक्य का नाम ही कौटिल्य है। (धातुसेन)।

—स्कन्दगुप्त, १

ज्योतिषी की दुम, मातृगुप्त ने यह पत्नी दिलाकर मुझे मिट्टी में मिला दिया। "शाप दूंगा। एक शाप! दांत पीस कर, हाथ उठा कर, शिखा खोलते हुए चाणक्य का लकड़दादा बन जाऊँगा।"

—स्कन्दगुप्त, ३

दे० कौटिल्य भी।

[दे० चन्द्रगुप्त, दे० अर्थशास्त्र।]

चित्तौर—मेवाड़ में सिसौदिया-वंश का दुर्ग जिसे छल से मालदेव ने हस्तगत कर लिया था। हम्मीर ने इसका उद्धार किया। —(चित्तौर-उद्धार)

[राजस्थान का प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान। रत्नसिंह की मृत्यु के बाद हम्मीर के समय से चित्तौर का उदय होता है, १४५० ई० में महाराणा कुम्भा ने विजय-स्तम्भ बनवाया। यह नौतला भवन है जो १२२ फुट ऊँचा है। राणा सांगा, महाराणा प्रताप और उदयपुर के राणा इन्हीं कुम्भा के वंश में हुए हैं।]

चित्तौर-उद्धार—राजपूत-इतिहास से सम्बद्ध कहानी। सिसौदिया-वंश का प्रसिद्ध चित्तौर-दुर्ग मालदेव के हाथ में था। चित्तौर के वास्तविक स्वामी हम्मीर को लांछित करने के लिए उसने अपनी बाल-विधवा पुत्री का विवाह कुमार हम्मीर के साथ कर दिया। उदार-हृदय हम्मीर न तो नारियल का तिरस्कार कर सके और न ही राजकुमारी का विधवा होने पर भी तिरस्कार कर सके। हम्मीर को चित्तौर-उद्धार की बड़ी चिन्ता थी, किन्तु राजकुमारी के कारण संकोच में पड़े थे। राजकुमारी उनकी अन्तर्वेदना को समझ कर देवपूजा के बहाने अपने पिता के यहां चित्तौर चली जाती है और अवसर देख कर, मालदेव की अनुपस्थिति में, हम्मीर को आमन्त्रित करती है। दोनों दलों में युद्ध छिड़ जाने पर क्षत्राणियां राजकुमारी के नेतृत्व में निकल पड़ती हैं। बस, युद्ध स्थगित हो जाता है और हम्मीर सपत्नीक अपने पैतृक सिंहासन पर आसीन होते हैं। भील, राजपूत और शत्रुओं का अभिवादन ग्रहण कर लेने पर महाराणा महिषी से पूछते हैं—क्या अब भी तुम कहोगी कि तुम हमारे योग्य नहीं हो?

इस कहानी की ऐतिहासिकता सिद्ध है। हम्मीर और राज-कुमारी का चरित्र प्रभावोत्पादक है। अन्तिम अनुच्छेद अनावश्यक-सा है। कहानी में राजपूतों का पारस्परिक वैमनस्य भी दिखाया गया है।

—छाया

[१३०१ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौर जीता था। उसकी मृत्यु

(१३१६) के बाद राणा हम्मीर ने उस पर फिर अधिकार कर लिया।]

चित्र—इन्दु, कला २, किरण २, भाद्रपद '६७ में प्रकाशित प्रसाद जी की पहली खड़ी-बोली की कविता। इसमें एक प्रगतिशील जीवन-दर्शन की नियोजना है। आशा की नदी का कूल नहीं मिलता। कमलाकर में चतुर अलि भूल जाता है। अन्त में—

मन को अथाह गम्भीर समुद्र बनाओ।
चंचल तरंग को चित्त से वेग हटाओ॥

चित्रकूट[१]—रोला छन्द में यह तुकान्त प्रबन्ध इन्दु, जनवरी १९१३ में, 'सत्य-व्रत' शीर्षक से प्रकाशित हुआ और बाद में 'कानन-कुसुम' में संकलित हुआ। लगभग सात पृष्ठों में वर्णित है। इसके चार भाग हैं। दूसरे के पद अतुकान्त हैं।—चित्रकूट चित्र-लिखा-सा.मन्दाकिनी तरंग से खेल रहा था। स्फटिक शिला पर राम और सीता आसीन थे। कानन में सर्वत्र शान्ति थी। राघव बोले देख जानकी के आनन को—"स्वर्गगा का कमल मिला कैसे कानन को"। "नील मधुप को देखा, वहीं उस कंज-कली ने स्वयं आगमन किया,"—कहा यह जनक-लली ने।

राम ने पूछा कि तुम्हें इस भयावह वन में डर नहीं लगता! तुम्हें घर के सुख स्मरण नहीं हो आते! जानकी बोली—"जिसके पास इतना बड़ा धनुर्धर हो, उसे क्या डर। और 'नारी के सुख सभी साथ पति के रहते हैं।'" मधुर-मधुर आलाप करते जानकी राम की गोद में सो गई। कच-भार बिखर गए। राम पुलकित थे। उसका नैसर्गिक सौन्दर्य देख मुग्ध-से हो रहे थे। इतने में लक्ष्मण आए और आज्ञा पाकर बोले—अभी मैं टहलकर लौट रहा था कि एक भील मिला जो अपने को निषाद-पति का दूत बताता था। उसने बताया कि भरत चतुरंग सैन्य सजाए चढ़ा आ रहा है। राम हँस दिए।—प्रभात होने वाला था। प्रकृति सो रही थी। उस ब्रह्मवेला में सर्वत्र शान्ति थी। जानकी चन्द्राभामय जल में स्नान करके अपनी पर्णकुटी में गई और अपनी हेमाभ उँगली से राघव के चरण-सरसिज को छूकर उन्हें जगाया और स्वयं फल-फूल लाने गई। राम नित्यकृत्य करके भोजन के लिए आ बैठे। जानकी ने लक्ष्मण को भी बुलाया तो वह ताजा फल लाने के बहाने वृक्ष पर चढ़ गया और बोला—'धनुष मुझे दीजिए, दुष्ट भरत आता ले सेना संग में, आता करने को कुछ कुत्सित कार्य है।' राम ने कहा—"तुम्हें भ्रम है, पेड़ पर से उतर आओ।" उसी क्षण भरत आ गए। भरत भी आ गए, और भाई-भाई गले मिलने लगे।

—कानन-कुसुम

चित्रकूट[२]— —(चित्रकूट)

[बांदा जिला, उत्तर प्रदेश में स्थित एक पर्वत जहां वनवास-काल में राम-सीता-लक्ष्मण रहते रहे और जहां भरत से उनकी भेंट हुई।]

चित्र-मन्दिर—कल्पना-प्रधान प्रागैतिहासिक कहानी। अभी नर-नारी के हृदय में कोमल भाव-लोक की सृष्टि नहीं हुई थी। विन्ध्य के अंचल में हिरन के पीछे एक नर अपनी नारी को छोड कर चला गया। नारी के मन मे एक ललित आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। एक दिन पेट का भूखा नर नुकीले भाले मे हिरनों का शिकार करता मिल गया। उसे आलिंगन करके भी वह युवक चला गया और बसा गया नारी के हृदय मे सपनों का एक मधुर संसार। नारी के हृदय में प्रत्याख्यान की पहली ठेस लगी। एक मृग-शावक को अपनी मां का स्तन-पान करते देख नारी के हृदय में एक नूतन भाव-सृष्टि होने लगी। एक दूसरा युवक वहां आ निकला। ईर्ष्या में ये दो नर लड़ मरे। नारी का हृदय चीत्कार कर उठा। गुहा-भित्ति पर नारी ने एक चित्र बनाया—हिरनों के झुंड में वह नारी और पीछे भाला उठाए भीषण नर। ललित कला के खोजी उसे पहला चित्र-मन्दिर कहते हैं।

कहानी का तत्त्व तो सूक्ष्म है, पर वातावरण की सृष्टि और आदि युग के नर की पाशव वृत्ति का सुन्दर चित्रण हुआ है। यह अपने ढंग की अनूठी कहानी है। कहानी की भाषा प्रांजल एवं सरस है।

—इन्द्रजाल

चित्रवाले पत्थर—निराश प्रेम की कथा, उत्तम पुरुष में। कहानी का "मैं" संगम हाल का कर्मचारी था। एक बार वह पत्थरों की जांच के लिए किसी पर्वतीय प्रदेश में गया। वहां पर मुरली नामक एक व्यक्ति ने उसे चित्र बने कुछ पत्थर देकर अपनी कथा सुनाई कि विधवा मंगला को एक बार विवाह के अवसर पर देख कर वह उसकी ओर आकृष्ट हुआ। उसको न पाकर वह एक कुटी बनाकर संन्यासी का जीवन व्यतीत करने लगा। एक रात नदी के किनारे शिला पर देखा कि एक पुरुष और स्त्री सो रहे हैं। वह मंगला थी और उसका प्रेमी छविनाथ। कई महीने वे मुरली की कुटी में रहे। एक दिन मंगला ने प्रस्ताव किया कि अपने इस मदिरा-मांस-प्रिय प्रेमी को मार कर मुरली के साथ भाग जाए। मुरली ने स्वीकार न किया और भाग गया। मंगला ने हृदय के भावों को एक लकड़ी के टुकड़े पर उत्कीर्ण कर दिया। मुरली ने जो पत्थर कर्मचारी को दिखाया उस पर एक स्त्री की धुंधली आकृति—राक्षसी-सी, छुरा हाथ में लिए—और मुरली की छायाकृति थी; और बताया कि वहां सब पत्थरों पर यही छवि अंकित है। तीसरे पहर कर्मचारी को एक उन्मत्त स्त्री दिखाई दी। उसने पहचान लिया कि पत्थर पर इसी स्त्री की आकृति है।

कहानी कल्पना-प्रधान है। इसका वातावरण बड़ा रहस्यात्मक है। कहानी में आधुनिक दान-प्रणाली, विधवा-जीवन, प्रेम की एक स्थिति, वन्य-प्रकृति का वर्णन है। भाषा सरस और सजीव है, चरित्र-

चित्रण मनोवैज्ञानिक है और कथा का विकास कलात्मक ढंग से हुआ है।

—इन्द्रजाल

चित्रसेन—गन्धर्वराज। —(सज्जन)

[विश्वावसु का पुत्र, जिसने अर्जुन को गन्धर्व विद्या सिखलाई। यह कर्ण से भी लड़ा था।]

चित्राङ्गदा—मणिपुर की राजकुमारी, अर्जुन की पत्नी। —(बभ्रुवाहन)

[चित्रवाहन राजा की कन्या, बभ्रुवाहन की माता; वह पाण्डवों के महाप्रस्थान के समय बभ्रुवाहन को लेकर अपने पिता के पास चली गई थी।]

चित्राङ्गदा-चम्पू—'बभ्रुवाहन' का पहला नाम यही था। दे० चम्पू।

चित्राधार—प्रथम संस्करण सं० १९७५, द्वितीय संस्करण सं० १९८५ में, प्रकाशक साहित्य-सरोज-कार्यालय, बनारस। पृष्ठ-संख्या १९०। प्रथम में कानन-कुसुम, प्रेम-पथिक, महाराणा का महत्त्व, सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य, छाया, उर्वशी, राज्यश्री, करुणालय, प्रायश्चित्त और कल्याणी-परिणय—इन १० रचनाओं का संग्रह है। "प्रसाद की बीस वर्ष की अवस्था तक की प्रायः सभी कृतियां संगृहीत कर दी गई हैं।" —प्रकाशक।

दूसरे संस्करण में केवल वे रचनाएँ हैं जो उस अवस्था के बाद की हैं, और जहां से उनकी खड़ी बोली का प्रारंभ होता है, अर्थात्

१. उर्वशी (चम्पू)
२. बभ्रुवाहन (चम्पू)
३. अयोध्या का उद्धार (प्रबंध काव्य)
४. वन-मिलन (प्रबन्ध काव्य)
५. प्रेम-राज्य (प्रबन्ध काव्य)
६. नाट्य (प्रायश्चित्त, सज्जन)
७. कथा-प्रबन्ध (२ कहानियां ब्रह्मर्षि और पंचायत; ३ लेख, प्रकृति-सौन्दर्य, सरोज और भक्ति)
८. पराग (२२ निबन्धात्मक कविताएँ)
९. मकरन्द-विन्दु (३९ मुक्तक, २३ कवित्त, ३ सवैया, १४ पद और १ दोहा)

प्रथम आठ अलग-अलग पुस्तक बन कर भी प्रकाशित हुई।

चित्रा-बकावली—दे० इन्द्रसभा।

[पुराना पद्यमय किस्सा।]

चिदम्बरम—पंडा, जो देवदासियों का संगीत-शिक्षक भी था। उसका चरित्र महान् है। वह अशोक की जी जान से रक्षा करता है। —(देवदासी)

चिन्ता[१]—चिन्ता जब अधिक हो जाती है, तब उसकी शाखा-प्रशाखाएँ इतनी निकलती है कि मस्तिष्क उनके साथ दौड़ने में थक जाता है। किसी विशेष चिन्ता की वास्तविक गुरुता लुप्त होकर विचार को यांत्रिक और चेतना-वेदना-विहीन बना देती है। तब पैरों से चलने में, मस्तिष्क से विचार करने में, कोई विशेष भिन्नता नही रह जाती।

—कंकाल, पृ० २३३

चिन्ता[२]—संसार में कौन चिन्ता-ग्रस्त नहीं है? पशु-पक्षी, कीट-पतंग, चेतन और

अचेतन, सभी को किसी प्रकार की 'चिन्ता है। जो योगी हैं, जिन्होंने सब-कुछ त्याग दिया है; संसार जिनके वास्ते असार है, उन्होंने भी इसको स्वीकार किया है। यदि वे आत्म-चिन्तन न करें, तो उन्हें योगी कौन कहेगा ?

—(मदन मृणालिनी, पृ० १६०)

चिन्ता[२]—चिन्ता दुःखमूलक है। कर्म-संबंधी इसमें कोई प्रेरणा नहीं, बीज अवश्य है। वह 'विश्व वन की व्याली', 'अभाव की चपल बालिका', 'तरल गरल की लघु लहरी', 'व्याधि की सूत्रधारिणी', 'हृदय-गगन मे धूम-केतु-सी' है। चिन्ता में चेतनता है, पश्चात्ताप है, व्याकुलता है; लेकिन इस चिन्ता और व्याकुलता से मानव की प्रगति होती है। —कामायनी

चिन्ता[३]—भक्ति, चित्राधार, पृ० १३५

चिर तृषित कण्ठसे तृप्त विधुर—गीत। सागर में लहरियां उठती है असीम जल है, पर वह जो निराश है, अपने अश्रु-कण देखता है। जिस प्रकाश में सब कर्म उज्ज्वल हो जाते है, उस उषा के राग में, उस प्रेमी का विराग, मोह और अन्धकार (वासना) जग उठता है। डालियों पर कुसुम और सौरभ झूमने लगा है, पर उसके लिए तो विषाद के कांटे हैं। उसके हृदय-सीप को स्वाति का एक विन्दु भी न मिला, और—

धीरे से वह उठता पुकार
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

अरे ! वह मिला नहीं करता। उसे तो देना ही पड़ता है—'गिन-गिन कर अश्रुकणों का ऋण।' कवि 'वञ्च-कता, पीड़ा, घृणा, मोह' के अन्धकार (वासना) से परे 'कोमल, उज्ज्वल, उदार', 'स्मितिमय चांदनी' (शुद्ध प्रेम) की ओर संकेत करता है। —लहर

चिलियान वाला—तोपें मुंह खोले खड़ी देखती थीं त्राम से चिलियान वाला में। —(शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण)

[झेलम नदी के किनारे चिलियां-वाला में शेरसिंह ने ३०,००० सैनिकों के साथ, १८४९ ई० में, अँगरेजो को लोहे के चने चबवाए थे।]

चिह्न—२० पंक्तियों की कविता। यौवन का नव-वसन्त था। 'तपती थी मध्याह्न किरण-सी प्राणों की गति लोम विलोम', 'हृदय एक निःश्वास फेंककर खोज रहा था प्रेम-निकेत'। —झरना

चीन—गीत। चीन को भारत ने दृष्टि दी। —स्कन्दगुप्त, ५

[भारत के उत्तर में स्थित प्राचीन काल से उन्नत सभ्य देश जहां का बौद्ध-धर्म भारत से गया।]

चुनार—गंगा के किनारे चुनार की एक पहाड़ी कन्दरा में रामदीन कैद था और रिफार्मेटरी का कुछ काम करता था। —तितली ३-८

[दे० चरणाद्रि। जिला मिर्जापुर उत्तर-प्रदेश में स्थित स्वास्थ्यप्रद स्थान; यहां बंगाल-बिहार के पाल राजाओं ने दुर्ग बनवाया था। भर्तृहरि की तपोभूमि यही जगह है।]

चूक हमारी—दे० 'विनोद-विन्दु'।

चूड़ामणि—रोहिताश्व-दुर्गपति का मंत्री, ब्राह्मण, ममता का पिता। पुत्री के लिए धन बटोरने में तत्पर। शेरशाह के पठान सैनिकों के हाथों मारा गया। —(**ममता**)

चूड़ीवाली—सर्वप्रथम 'चांद' में 'कला का मूल्य' शीर्षक से प्रकाशित एक सुखान्त प्रेम-कथा। प्रसाद की सफल-सुन्दर कहानियों में से एक। इस में प्रेम और विवाह की समस्या को उठाया गया है और काशी के सम्भ्रान्त धनियों का जीवन अंकित किया गया है। नगर की प्रसिद्ध नर्तकी की कन्या विलासिनी को गृहवधू बनने की बड़ी इच्छा थी। बाबू विजयकृष्ण (सरकार) पर उसका मन आ गया। वह चूड़ीवाली बनकर उसकी पत्नी को चूड़ी पहनाने के बहाने आ जाती। बहू को कुछ सन्देह हुआ। वह अपनी मनोवेदना को सम्भाल न सकी और राजयक्ष्मा से मर गई। सरकार एक मुकदमे में सब कुछ नष्ट कर बैठे। वेश्या के द्रव्य पर जीना उन्हे अच्छा न लगा और वे विलासिनी के विनय और अनुरोध का प्रत्याख्यान कर चले गए। विलासिनी अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर एक गांव में रहने लगी और पथिकों की सेवा में अपना जीवन बिताने लगी। चार वर्ष बाद सरकार फटे हाल उसी ग्राम में आए। चूड़ीवाली का त्याग-सेवामय जीवन देखकर उनकी आंखें खुलीं। उन्होंने विलासिनी को कुलवधू होने के उपयुक्त पाया और उस की आकांक्षा पूर्ण हुई। कहानी नाटकीय ढंग की है। चूड़ीवाली का चरित्र अच्छी तरह उभर कर आया है। आरंभ और विकास अच्छा हुआ है, अंत इतना सुन्दर नहीं है। कहानी सफल है और एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्या की ओर संकेत करती है। —**आकाशदीप**

चेतराम—राजा चेतसिंह को पकड़ने लेफ्टीनेंट के साथ आया था। नन्हकू ने उसकी भुजा उड़ा दी। —(**गुण्डा**)

चेतसिंह—काशी के राजा।

—(**गुण्डा**)

[प्रसिद्ध योद्धा काशीनरेश बलवन्त सिह का पुत्र, जिसे १७८१ ई० में वारन हेस्टिंग्ज ने अनुचित मांगें न मानने पर कैद कर लिया और उसकी जमींदारी छीन ली तथा च्यरी साहब को रेजिडंट नियुक्त किया।]

चौसा—यहां युद्ध में हुमायूं शेरशाह के हाथों हारा और जान बचाकर भागा।

—(**ममता**)

[बक्सर के निकट स्थान, १५३९ ई० में जहां हुमायू और शेरशाह सूरी के बीच मे युद्ध हुआ।]

च्यवन—महर्षि कुलपति। वे सोमश्रवा को ब्राह्मणों के उच्चादर्शों का संदेश देते हैं।

—**जनमेजय का नागयज्ञ**

[भृपुत्र; ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, पञ्चविंश ब्राह्मण, महाभारत आदि ग्रंथों मे इनका उल्लेख हुआ है। वृद्ध से युवा हो गये थे। च्यवनप्राश उन्ही की आविष्कृत ओषधि है।]

छ

छविनाथ—सुखी परिवार में पला हुआ युवक, परन्तु उसका रंगरूप नष्ट हो गया था। कष्टों के कारण उसमें कटुता आ गई थी। मांस और मदिरा ने उसका बुरा हाल कर दिया था।

—(**चित्रवाले पत्थर**)

छल—छल का बहिरंग सुन्दर होता है—विनीत और आकर्षक भी ; पर दुःखदायी और हृदय को बेधने के लिए। (मिहिरदेव)

—**ध्रुवस्वामिनी, पृ० ५३**

छलना—मगध-सम्राट् की छोटी रानी, अजातशत्रु की मां (राजमाता), जिसकी 'धमनियों में लिच्छिवी रक्त बड़ी शीघ्रता से दौड़ता है।' वह क्रूर, स्वार्थी, कुटिल और ईर्ष्यालु है। बिम्बसार, वासवी और पद्मावती के साथ उसका व्यवहार बहुत बुरा है। राजमाता होने की महत्त्वाकांक्षा उसे साधारण धर्म से भी गिरा देती है और अन्यायपूर्ण आचरण कराती है। वह अजात को जबरदस्ती युवराज बनवाती है। देवदत्त की राय से उसका पथ-प्रदर्शन करती है, लेकिन उसकी अदूरदर्शिता के कारण अजात दूसरे युद्ध में हार जाता है और बन्दी होता है। पुत्र-प्रेम से विह्वल होकर वह पश्चात्ताप करती है और अन्त में वासवी तथा बिम्बसार से क्षमा-याचना करती है। —छलना के चरित्र में स्वाभिमान, प्रमाद और प्रतिहिंसा आदि दोष भी हैं। वाग्बाणों से वह राजा और वासवी को विरुद्ध करने में संकोच नहीं करती। महत्त्वाकांक्षा के कारण वह पति और पुत्र दोनों को खो देती है, आत्मबोध पाकर दोनों को पुनः प्राप्त करती है।

—**अजातशत्रु**

[बौद्ध इतिहास मे इसको वैशाली की राजकुमारी और वैदेही बताया गया है। कहा गया है कि वह जैनमतावलम्बिनी थी, इसीलिए देवदत्त को प्रश्रय दिया जब कि उसने अहिंसा के सिद्धान्त को बुद्ध से मनवाना चाहा। वह वैशाली की वृजजाति के राजवंश से थी।]

छाने लगी जगत में सुषमा निराली—अकेले में राजा नरदेव उद्यान की शोभा वर्णित करते हुए अपने प्रेमोल्लास का संकेत करते हैं। जगत् में निराली सुषमा छाई है, कोकिला मधुर मंगल गाती है, पराग फैला है, मलयानिल बधाई देने आई है और भ्रमर गुंजार कर रहे हैं।

—**विशाख, २-३**

छान्दोग्य—उपनिषद्। इस में आनन्दवादियों की साधना-पद्धति का उल्लेख है।

—(**रहस्यवाद, पृ० २६**)

[सामवेद का उपनिषद् जिसमें ब्रह्म-प्राप्ति का वर्णन है। प्रत्यक्ष संसार असत्य है, इस बात का सर्वप्रथम उल्लेख इसी ग्रन्थ में हुआ है।]

छाया—साहित्य सुमन-माला का दूसरा पुष्प ; प्रथम संस्करण (१९१२ में) स्वतः प्रसादजी द्वारा प्रकाशित। हिन्दी का प्रथम कहानी संग्रह—इसमें पांच कहानियां थीं (ग्राम, चन्दा, मदन-मृणालिनी, रसिया बालम, तानसेन)। द्वितीय संस्करण (१९१८) हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, लहेरिया सराय, बिहार। इसमें छः कहानियां और जोड़ दी गईं (जहांनारा, शरणागत, अशोक, सिकंदर की शपथ, गुलाम, चित्तौर-उद्धार)। कहानियां साधारण कोटि की है। कथानक की प्रधानता, ऋतु आदि के वर्णन, सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य,भावुकता, आलंकारिकता, आदि इनकी विशेषताएं हैं। विचार-धारा में कलात्मक प्रवाह का अभाव है। भाषा प्रायः अशुद्ध, साधारण और शैली कृत्रिम है। भाषा को पात्रों के अनुकूल रखा गया है और उर्दू-फारसी के शब्द भी प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए है। यह बात प्रसाद की परवर्ती कृतियों में नहीं है। प्रेममूलक कहानियों की अपेक्षा ऐतिहासिक कहानियों में चरित्र-चित्रण कुछ सफल है। कथा-शिल्प की दृष्टि से कहानियां महत्त्वपूर्ण नहीं, इनका ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है। कुछ कहानियों में प्रासद की प्रतिभा के दर्शन होते हैं। प्रारंभिक रचना होने के कारण इसमें शिल्प-विधान अथवा कला की खोज करना भूल होगी। इस संग्रह की सबसे पुरानी कहानी 'ग्राम' है, लेकिन 'चन्दा' इन कहानियों में सर्वश्रेष्ठ है। जो छः कहानियां दूसरे संस्करण में बढ़ाई गईं, वे सब ऐतिहासिक हैं, पर 'तानसेन' से अच्छी कोई भी नहीं है। कहानी-कला के अंश अविकसित हैं। सात कहानियां ऐतिहासिक हैं। अधिकतर कहानियां प्रेम-रोमांस की हैं। 'ग्राम' कहानी यथार्थोन्मुख है और यह एक स्केच है।

'छाया' के गल्प छोटे-छोटे होने पर भी पाठक को रुला-रुला कर शिक्षा देने वाले हैं। वे हृदय पर अपूर्व भावों की छाया डालते हैं।—लोचनप्रसाद पांडेय (१९१५)।

शैली के नमूने—

अंशुमाली अपने तीक्ष्ण किरणों से वन्य देश को परितापित कर रहे हैं। मृग-सिंह एक स्थान पर बैठकर, छाया-सुख में अपने वैर-भाव को भूलकर, ऊँघ रहे हैं। चन्द्रप्रभा के तट पर पहाड़ी की एक गुहा में, जहाँ कि छतनार पेड़ों की छाया उष्ण वायु को भी शीतल कर देती है, हीरा और चन्दा बैठे हैं। —(चन्दा, ३)

सरल-स्वभावा ग्रामवासिनी कुलकामिनीगण का सुमधुर संगीत धीरे-धीरे आम्र-कानन में से निकलकर चारों ओर गूंज रहा है। अन्धकार-गगन में जुगनू-तारे चमक-चमक कर चित्त को चंचल कर रहे हैं। ग्रामीण लोग अपना हल कन्धे पर रक्खे, बिरहा गाते हुए बैलों की जोड़ी के साथ, घर की ओर प्रत्यावर्तन कर रहे हैं। —(ग्राम, २)

संसार को शान्तिमय करने के लिए रजनी देवी ने अभी अपना अधिकार

पूर्णतः नहीं प्राप्त किया है। अंशुमाली अभी अपने आधे बिम्ब को प्रतीची में दिखा रहा है। केवल एक व्यक्ति अर्बुद-गिरि-सुदृढ़ दुर्ग के नीचे एक झरने के तट पर बैठा हुआ उस अर्ध-स्वर्ण-पिण्ड की ओर देखता है, और कभी-कभी दुर्ग के ऊपर राजमहल के खिड़की की ओर भी देख लेता है, फिर कुछ गुनगुनाने लगता है। —(रसिया-बालम, १)

कादिर—लेकिन इससे क्या होगा! अगर तुम मर जाओगे तो मेरे कलेजे की आग किसे झुलसायेगी ; इससे बेहतर है कि मुझसे जैसी चीज छीन ली गई है, उसी तरह की कोई चीज तुम्हारी भी ली जाय। हां, इन्हीं आंखों से मेरी खूब-सूरती देखकर तुमने मुझे दुनियां के किसी काम का न रक्खा। लो, मैं तुम्हारी आखें निकालता हूँ, जिससे मेरा कलेजा कुछ ठंडा होगा। —(गुलाम, ४)

छायावाद—प्रसाद के अनुसार छायवाद की निम्नलिखित विशेषताएँ है—

वेदना की प्रधानता, स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति, भावों की सूक्ष्म व्यंजना ; कथन की वक्रता, नवीन पद-अर्थ मयी शैली।

उल्लेख निम्नलिखित कविताओं में—

अब जागो जीवन के प्रभात।
अरे आ गयी हैं भूली-सी।
अस्ताचल पर युवती संध्या।
आज इस यौवन के माधवी-कुञ्ज में।
—चन्द्रगुप्त

आंसू के अनेक छन्द।
उठ उठ री लघु लघु लोल लहर।
काली आंखों का अन्धकार।
जिस निर्जन सागर में लहरी
अम्बर के कानों में गहरी
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो।
—लहर

झरना में 'दीप' 'विह्न', 'किरण', प्रकृति सौन्दर्य' आदि —चित्राधार

प्रसाद के अनुसार छायावाद एक ऐसी ध्वन्यात्मकता है जो साधारणतः पकड़ मे नहीं आती। उसे शब्दों में अथवा परिभाषा मे बांधा नहीं जा सकता। उसमें *अनुभति और अभिव्यक्ति* की भंगिमा ही प्रधान है।

—यथार्थवाद और छायावाद

दे० जीवन वन में हरियाली है
—एक घूंट

दे० अस्ताचल पर युवती संध्या
—ध्रुवस्वामिनी

दे०—ले चल वहा भुलावा देकर।
वसन्त की प्रतीक्षा।
वसुधा के अंचल पर।
वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे!
दे० समुद्रसंतरण ;
दे० हे सागर-संगम।
दे० रहस्यवाद भी।

छिपाओगी कैसे—आँखें कहेंगी— शिकारी लोगो का विनोद और लालसा, तथा लीला और विलास के प्रेम को प्रगट करनेवाला समवेत गान।

—कामना, २-८

छुन्नू—आनन्द को समझाते हुए मुकुल कहता है, संसार में अनेक जीव दुःखी हैं जैसे, छुन्नू मूंगफली वाला, जिसके एक रुपए की पूंजी का खोमचा लड़कों ने उछलकूद कर गिरा भी दिया और लूट कर खा भी गए, जिसके कारण उसके घर में रुग्ण बालिका को कुछ पथ्य भी नहीं मिल रहा। —एक घूंट

छोटा जादूगर—कारुणिक लघु कथा। श्रेष्ठ कहानियों में से एक। कलकत्ता नगर का किस्सा है। एक छोटा-सा बालक अपनी रुग्णा माता की परिचर्य्या के लिए इधर-उधर घूमकर तमाशा दिखाता था। वह कठिन परिश्रम करके अपना और अपनी मां का पेट पालता था। एक सज्जन को उस पर दया आगई। एक दिन उन्होंने उसकी कुछ सहायता भी कर दी। परंतु खेल तो उसे रोज ही दिखाना होता था। एक दिन जब उसकी माँ अपनी मृत्यु के समीप पहुँच चुकी थी, तब वह खेल दिखाने निकल गया। वही सज्जन मोटर में बिठाकर उसे झोंपड़े में पहुँचा गया। परन्तु माँ का जीवनदीप बुझ चुका था। छोटा जादूगर मां के शव से लिपटकर रोने लगा। 'छोटा जादूगर' देश के असंख्य दुःखी प्राणियों के जीवन की व्याख्या है। प्रथम पुरुष (लेखक ही वे सज्जन हैं) की शैली में होने से इसकी मार्मिकता बढ़ गई है। कथोपकथन का प्रयोग कलात्मक है। बालक का चरित्र, उसकी चतुराई, गाम्भीर्य और विषाद, अत्यंत सफल ढंग से चित्रित हुआ है। कहानी का सत्य यह है कि आवश्यकता एक छोटे से बालक को भी पूर्ण चतुर बना देती है। —इन्द्रजाल

ज

जग की सजल कालिमा रजनी में—गीत। तुम्हारा मुख-चन्द्र जग की कालिमा, मेरे हृदय के अंधकार को भगा देगा। आओ और प्रेम-गीत सुना जाओ। स्नेहालिंगन करो। 'जीवन-धन! इस जले जगत् को वृन्दावन बन जाने दो।' —लहर

जगती की मंगलमयी ऊषा बन—मूलगन्ध कुटी, विहार, के समारोहोत्सव में मंगलाचरण के रूप में गाया गया गीत—दे० अरी वरुणा की शान्त कछार!

बुद्ध के जन्म से विश्व में प्रकाश फैला। भय-संकुल रजनी बीत गई, दुःख की निर्ममता दूर हुई। वरुणा के जल में शीतलता भर गई। शान्त तपोवन आलोकित और कुसुमित हो उठे। पशु-पक्षी विपदा से छूटे। प्राची का वह पथिक चला आता था—प्रत्येक परमाणु को पुनीत करता हुआ, व्यथित विश्व में चेतना भरता हुआ।

उस पावन दिन की पुण्यमयी
स्मृति लिए धरा है धैर्यमयी

जब धर्म-चक्र के सतत प्रवर्तन की प्रसन्न ध्वनि छाई थी।

कल्याण-संघ की यह भूमि नव मानवता

को आमंत्रित करती आ रही है। हम उसके सन्देश को न भूलें। —लहर

जगन्नाथ—ललित का नौकर, बर्फी खिलाने वाला। —(**अघोरी का मोह**)

जगमोहन्या—दरिद्र, नटखट, स्वाभिमानी, मातृभक्त नवयुवक। —(**अनबोला**)

जड़ और चेतन—जिन पदार्थों की शक्ति अप्रकाशित रहती है, उन्हें लोग जड़ कहते है। किन्तु देखो जिन्हे हम जड़ कहते है, वे जब किसी विशेष मात्रा में मिलते है, तब उनमें एक शक्ति उत्पन्न होती है, स्पन्दन होता है, जिसे जडता नहीं कह सकते। वास्तव में सर्वत्र शुद्ध चेतन है। जडता कहा? (श्रीकृष्ण)

—जनमेजय का नागयज्ञ, १-१

यह पूर्ण सत्य है कि जड के रूप में चेतन प्रकाशित होता है। **—वही**

जनमेजय—इन्द्रप्रस्थ का सम्राट्। नाटक का धीरोदात्त नायक। उसके चरित्र में दृढ़ता, पराक्रम, धैर्य्य, संयम, विनम्रता, क्षमाशीलता, तेजस्विता, सहनशीलता, हृदय की सरलता आदि गुण है। जरत्कारु ऋषि की हत्या पर उसे ग्लानि होती है, इससे उसके हृदय की शुद्धता प्रगट होती है। नागों के विरुद्ध उसका द्वेष परम्परागत है, उनके प्रति वह क्रूरता का व्यवहार करता है। उसमें जातीय अभिमान भरा है। सरमा को वह कहता है—"चुप रहो, पतिता स्त्रियों को श्रेष्ठ और पवित्र आर्य्यों पर अपराध लगाने का कोई अधिकार नहीं है।" रानी के गुप्त होने का समाचार पाकर वह क्रूरता और प्रतिहिंसा से भर जाता है। पर वह विवेकी और न्यायशील है। आस्तीक की प्रार्थना को सुनकर वह आज्ञा देता है—'छोड़ दो तक्षक को।' वह नाग-कन्या मणिमाला के नैसर्गिक सौन्दर्य से प्रभावित होता है और आत्म-समर्पण करके अपनी भावुकता और सरलता का परिचय देता है। वह कभी-कभी चिन्ता से निरुत्साह-सा हो जाता है। वह भाग्यवादी है, यह उसके चरित्र का त्रुटिपूर्ण पक्ष है। वह प्रसाद जी के नियतिवाद का समर्थक है। वह कहता है—"मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है।" परन्तु वह अकर्मण्य नही होता। सरमा को वह 'दस्यु महिला' और 'पतिता' कहता है।

—जनमेजय का नागयज्ञ

[अर्जुन का प्रपौत्र, परीक्षित-भाद्रवती का पुत्र।]

जनमेजय का नागयज्ञ—प्रकाशक भारती-भंडार, इलाहाबाद। प्रथम संस्करण के प्रकाशक, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, काशी, सं० १९८३

पुरुष पात्र—

जनमेजय	इन्द्रप्रस्थ का सम्राट्
तक्षक	नागों का राजा
वासुकि	नाग सरदार
काश्यप	पुरोहित
वेद	कुलपति
उत्तंक	वेद का शिष्य
आस्तीक	मनसा वा जरत्कारु का पुत्र
सोमश्रवा	उग्रश्रवा का पुत्र, जनमेजय का नया पुरोहित

माणवक	सरमा और वासुकि का पुत्र
जरत्कारु	ऋषि, मनसा का पति

स्त्री पात्र—

वपुष्टमा	जनमेजय की रानी
मनसा	जरत्कारु की पत्नी, वासुकि की बहन
सरमा	वासुकि की पत्नी
मणिमाला	तक्षक की कन्या
दामिनि	वेद की पत्नी
शीला	सोमश्रवा की पत्नी

नाटक तीन अंकों में विभक्त है; प्रथम अंक में सात दृश्य, दूसरे और तीसरे में आठ-आठ दृश्य हैं। आर्य्यों और नागों का वैर पूर्व काल से चला आता था। सरमा कुकुरवंश की यादवी (आर्य) थी। द्वारिका-ध्वंस के बाद जब अर्जुन यादवियों को लेकर इन्द्रप्रस्थ जा रहे थे तब आभीरों को साथ मिलाकर नागों ने यादवियों का हरण किया था। इन्हीं यादवियों में सरमा भी थी जो नाग-सरदार वासुकि की वीरता पर मुग्ध होकर उसकी पत्नी बन गई थी। वासुकि और सरमा का पुत्र माणवक था। नाग-कन्या मनसा, वासुकि की बहन, आर्य्यों से विशेष द्वेष रखती थी। वह खाण्डव वन में नागों पर किए गए अत्याचारों को याद कर के विचलित हो जाती थी। उसे नागों के शौर्य्य पर गर्व था। वह प्रसन्न थी कि नागों ने शृंगी ऋषि से मिल कर तक्षक द्वारा परीक्षित का संहार किया। मनसा के आर्य-विद्वेष से दुःखी होकर सरमा अपने पुत्र माणवक को साथ ले इन्द्रप्रस्थ चली गई। उसका पुत्र यज्ञशाला में चला गया। लोगों ने आरोप लगाया कि उसने घी का पात्र जूठा कर दिया। जनमेजय के भाइयों ने उसे खूब पीटा। सरमा राजदरबार में न्याय की दुहाई देने गई तो राजा जनमेजय और रानी वपुष्टमा ने उसे पतिता कहा—नागजाति के पुरुष से विवाह कर लेने के कारण। बालक माणवक जनमेजय की गुप्त हत्या करना चाहता था, पर सरमा ने उसे रोका। वह मां को छोड़कर चला गया। बेचारी सरमा न नागों में न आर्यों में, पुत्र भी खो दिया। अन्त में विवश होकर वह फिर वासुकि के पास रहने लगी। —ब्रह्मचारी उत्तंक शिक्षा समाप्त कर चुका तो उसने गुरु वेद को गुरु-दक्षिणा देनी चाही। गुरु-पत्नी दामिनी ने इच्छा प्रकट की कि मुझे रानी वपुष्टमा के मणिकुण्डल ला दो। उत्तंक, कुण्डल मांग लाया, लेकिन रास्ते में जनमेजय के लोभी पुरोहित काश्यप की सहायता से तक्षक ने उसे पकड़ लिया। अपने ब्रह्मतेज के बल से उत्तंक बच निकला। कुंडल पाकर दामिनी बहुत प्रसन्न हुई और उसने उत्तंक से प्रणय-निवेदन किया। उत्तंक भागकर जनमेजय की शरण में जा पहुँचा। उसने राजा को बताया कि परीक्षित की मृत्यु काश्यप की सहायता से तक्षक के हाथों हुई थी। जनमेजय उत्तेजित हुआ, और उसने नागों का दमन करने का निश्चय किया। जनमेजय को ब्रह्म-

हत्या के प्रायश्चित का विधान भी करना था। हिरन के धोखे में उसने मनसा के पति ऋषि जरत्कारु को तीर से मार डाला था। इसके लिए अश्वमेध का अनुष्ठान किया गया और पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए नागयज्ञ की तैय्यारी शुरू हुई। नीच काश्यप को हटाकर सोमश्रवा को नया पुरोहित बनाया गया। नाग गांधार में आश्रित हो गए थे। तक्षशिला उनका केन्द्र था। हस्तिनापुर के आस-पास भी नागों के कुछ केन्द्र थे। वेद की पत्नी दामिनी और काश्यप द्वारा जनमेजय के रहस्य को जानकर तक्षक और वासुकि संगठित होने लगे। मनसा ने नागों को उत्तेजना दी। गांधार-विजय से लौट जनमेजय ने तक्षशिला में अश्वमेध का समारंभ किया और साथ ही नागों का अपार जनक्षय। इस बीच में अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए सरमा राज-कुल में दासी के रूप में रहने लगी। माणवक भी आकर उससे वहीं मिल गया। अश्वमेध के घोड़े को नागों ने पकड़ लिया। जनमेजय ने उन्हें परास्त कर दिया। अब नागों ने काश्यप की कुमंत्रणा से रानी वपुष्टमा का अपहरण करने की योजना बनाई। जब सरमा को इसका पता लगा तो उसने अपने पुत्र को रानी की रक्षा का आदेश दिया। नाग रानी वपुष्टमा को भगा ले चले। माणवक ने किसी तरह उसको वेदव्यास के पास पहुँचा दिया। जनमेजय का क्रोध सीमा के बाहर हो गया। तक्षक, उसकी कन्या मणिमाला और उसके अन्य साथियों को आर्य सेनाओं ने बंदी बना लिया था। बंदी नागों को अश्वमेध के अग्निकुंड में डाला जाने लगा। ब्राह्मणों का रानी के अपहरण में हाथ था। उनको देश से निकल जाने की आज्ञा हुई। जनमेजय और मणिमाला की भेंट से कथानक में परिवर्तन आने लगता है। इस बीच मे वेदव्यास जरत्कारु के पुत्र आस्तीक को लेकर जनमेजय के पास पहुँच गए। आस्तीक ने अपने पिता की हत्या के बदले में जनमेजय से नागयज्ञ बंद करने की याचना की। सरमा और माणवक वपुष्टमा को लेकर पहुँचे। राजा और रानी उनके उपकृत थे। सरमा ने यों प्रतिशोध ले लिया। नाग और आर्य एक और दृढ़ बन्धन में बंध गए—मणिमाला का विवाह जनमेजय के साथ हो गया। काश्यप युद्ध की विभीषिका में समाप्त हो गया। ब्राह्मण पुनः प्रसन्न हुए। 'जय हो उसकी जिसने अपना विश्वरूप विस्तार किया'—इस समवेत गीत के साथ नाटक समाप्त हुआ।

शैली का नमूना—

(सरमा का प्रवेश)

सरमा—दुहाई है! दुहाई! न्याय कीजिये, सम्राट्, दुहाई है!

जनमेजय—क्या है? किस बात का न्याय चाहती हो?

सरमा—मेरे पुत्र को आपके भाइयों

ने अकारण पीटा है। वह कुतूहल से यज्ञ-शाला में चला गया था। वे लोग कहते हैं कि उसने घी का पात्र जूठा कर दिया।

काश्यप—अवश्य ही वह चोरी से घी खाने घुसा होगा।

वपुष्टमा—आर्यपुत्र। न्याय कीजिये! नारी का अश्रुजल अपनी एक-एक बूंद में नदियाँ लिये रहता है।

जनमेजय—तुम्हारा नाम क्या है? तुम क्यों यहां आई हो?

सरमा—मैं यादवी हूँ। मैंने अपनी इच्छा से नाग परिणय किया था, पर उनकी कुटलता न सह सकी। कारण यह कि वे दिन रात आर्यों से अपना प्रतिशोध लेने की चिन्ता में रहते थे। यह मुझसे सहन न हो सका, इसीलिये मैं उनका राज्य छोड़कर चली आई।

वपुष्टमा—छी:! आर्य ललना होकर नाग जाति के पुरुष से विवाह किया। तभी तो यह लाञ्छना भोगनी पड़ती है।

सरमा—सम्राज्ञी! मैं तो एक मनुष्य जाति देखती हूँ—न दस्यु और न आर्य! न्याय की सर्वत्र पूजा चाहती हूँ—चाहे वह राजमन्दिर में हो, या दरिद्रकुटीर में। सम्राट् न्याय कीजिये।

जनमेजय—दस्यु महिला के लिये कोई आर्य न्यायाधिकरण में नहीं बुलाया जायगा। तुमने व्यर्थ इतना प्रयास किया।

सरमा—सम्राट्,मनुष्यता की मर्यादा भी क्या सब के लिये भिन्न-भिन्न है? क्या आर्यों के लिये अपराध भी धर्म हो जायगा?

जनमेजय—चुप रहो! पतिता स्त्रियों को श्रेष्ठ और पवित्र आर्यों पर अपराध लगाने का कोई अधिकार नहीं है।

सरमा—किन्तु पतिता पर अपराध करने का आर्यों को अधिकार है? राजाधिराज, अधिकार का मद न पान कीजिये! न्याय कीजिये।

जनमेजय—असभ्यों में मनुष्यता कहां! उनके साथ तो वैसा ही व्यवहार होना चाहिये। जाओ सरमा! तुमको लज्जित होना चाहिये!

सरमा—इतनी घृणा! ऐश्वर्य का इतना घमण्ड! प्रभुत्व और अधिकार का इतना अपव्यय! मनुष्यता इसे नहीं सहन करेगी। सम्राट्, सावधान!

काश्यप—जा, जा, चली जा। बक बक करती है।

सरमा—काश्यप, मैं जाती हूँ। किन्तु स्मरण रखना, दुःखिता, अनाथा रमणी का अपमान, पीड़ित की मर्मव्यथा, कृत्या होकर राजकुल पर अपनी कराल छाया डालेगी। उस समय तुम्हारे जैसे लोलुप पुरोहित उससे राजकुल की रक्षा न कर सकेंगे।

(वेग से प्रस्थान)

समीक्षा—

'जनमेजय का नागयज्ञ' साधारण नाटक है जिसमें ब्राह्मणों और क्षत्रियों के तत्कालीन संघर्ष को उभारकर रखा गया है। कथा-वस्तु और चरित्र-चित्रण शिथिल और अस्पष्ट है। पात्रों की संख्या भी कुछ अधिक है। नायक अपने

पूर्ण लक्षणों के साथ नहीं दिखाया गया। अनेक दृश्य प्रभावहीन हैं।

इस नाटक के पुरुष पात्रों में माणवक और त्रिविक्रम तथा स्त्री पात्रों में दामिनी और शीला काल्पनिक हैं। प्रासंगिक रूप में वेदव्यास और दामिनी की कथा चलती है। इसे ऐतिहासिक रचना नहीं कह सकते। उसके आधार पुराण और ब्राह्मण-ग्रन्थ होते हुए भी रूप सांस्कृतिक है। कथा-वस्तु दुरूह है। नागों और आर्य्यों के विरोध का शमन परिणय-सूत्र से होता है। 'चन्द्रगुप्त' और 'अजातशत्रु' मे भी ऐसा ही हुआ है। कथानक की रूपरेखा बहुत स्पष्ट न होते हुए भी 'अजातशत्रु' की अपेक्षा अधिक संगठित है। पुरुष-पात्रों की संख्या (१८) बहुत अधिक है। पात्रों की इतनी भीड़ में चरित्र-चित्रण का अवकाश मिलना कठिन है।

[पूर्वपीठिका के रूप में इतिहास की घटनाएँ इस प्रकार है—महाभारत के उपरान्त कुरु देश पर परीक्षित का शासन स्थापित हुआ; परन्तु आर्य्यों की शक्ति क्षीण हो गई थी। अनेक जंगली जातियों ने उत्पात मचाना आरंभ कर दिया था। नाग-जाति ने गांधार से उठकर तक्षशिला और पंजाब पर अधिकार कर लिया और हस्तिनापुर पर आक्रमण करके परीक्षित को मार डाला। परीक्षित की हत्या में काश्यप ब्राह्मणों ने तक्षक नाग की सहायता की थी। परीक्षित के चार पुत्र थे—जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन। ऐतरेय ब्राह्मण में भी आता है कि वीर जनमेजय ने शासन-व्यवस्था को फिर से संभाल लिया। जनमेजय से भूल में ब्राह्मण की हत्या हो गई थी। प्रायश्चित के लिए उसने, इन्द्रोत देवाप शौनक के आचार्यत्व में अश्वमेध यज्ञ किया जिसमें तुरकावषेय पुरोहित थे। ब्राह्मणों में बड़ा विरोध उत्पन्न हुआ और असितांगिरस काश्यप ने प्रमुख भाग लिया। पूर्वकाल में अर्जुन ने खाण्डव वन का दाह किया था। इसका बदला लेने के लिए नागों ने बड़ा उपद्रव खडा किया। काश्यप भी उनसे जा मिला। उत्तंक आदि ने जनमेजय को उत्साहित किया कि नागों का दमन करें। जनमेजय ने तक्षशिला-विजय के साथ नागों का नाश किया और कुछ दिनों के लिए तक्षशिला को अपनी राजधानी बनाया।]

भूमिका में लेखक ने लिखा है "इस नाटक मे ऐसी कोई घटना समाविष्ट नहीं है जिसका मूल भारत और हरिवंश में न हो।"

जब प्रीति नहीं मन में कुछ भी—सुरमा विकटघोष को गाना सुनाती है और उपालम्भ देती है। 'सर्वस्व ही तो हमने था दिया, तुम देखने को तरसाने लगे।'

—राज्यश्री, ३-४

जमाल (मिरज़ा)—मुगल-वंश का एक शाहज़ादा। मथुरा और आगरा के बीच में उनकी जागीर के कई गांव थे। पर वे प्रायः दिल्ली में रहते थे। कभी-कभी

सैर-शिकार के लिए जागीर पर चले आते। उन्हें प्रेम था शिकार से, हिन्दी कविता से। जायसी के पूरे भक्त थे। संस्कृत और फारसी से भी प्रेम था।

—कंकाल, ३-६

जमुना[१]—प्रयाग के पास, प्रशान्त वक्ष। दे० यमुना। —कंकाल १-१

जमुना[२]—पंडित दीनानाथ की लड़की, तितली की सहेली। —तितली, ३-३

जम्बूद्वीप[१]—देवगुप्त उसी गुप्त-काल का है जिसके नाम से एक दिन समस्त जम्बूद्वीप विकम्पित होता था।

—राज्यश्री, १-६

जम्बूद्वीप[२]—बुद्ध के ज्ञान के सामने समस्त जम्बूद्वीप ने हार स्वीकार की थी। —स्कन्दगुप्त, ४

[=भारत]

जयचन्द—पृथ्वीराज का श्वसुर, कन्नौज का राजा, दुर्वृत्त, द्वेषी। प्रायश्चित की भावना तो उसमें आती है, पर वह त्रस्त, अकर्मण्य और कायर ही बना रहता है और अन्त में आत्महत्या कर लेता है। उसका पश्चात्ताप कायरता और विवशता का पर्याय है। —(प्रायश्चित्त)

[राठौर वंशीय देशद्रोही राजा। इतिहास में वर्णित है कि उसे ११९४ ई० में यमुना के किनारे, फीरोजाबाद के पास लड़ाई में मुहम्मद गोरी ने परास्त किया और वह हाथी पर से गिर कर मर गया।]

जय जयति करुणा सिन्धु—राज्यश्री चिता में कूदने से पहले दीनबन्धु, करुणा-सिन्धु, पतित-पावन, जगत्पति भूप से प्रार्थना करती है।

—राज्यश्री, ३-५

जयपुर—जयपुरी गमछा। —(घीसू)

[राजस्थान की राजधानी, कछवाहा-नरेश सवाई जयसिंह ने १७२८ ई० में जयपुर बसाया था। बड़ा सुन्दर नगर है। संगमरमर और नक्काशी का काम अच्छा होता है।]

जयमाला—बंधुवर्मा की स्त्री, मालव की रानी, अपने पति के समान शूर और धीर; सच्ची क्षत्राणी। वह शत्रुओं से युद्ध भी करती है। वह स्कन्दगुप्त को राज्य नहीं देना चाहती। "तुम कृतघ्नता का समर्थन करोगी, वैभव और ऐश्वर्य के लिए ऐसा कदर्य प्रस्ताव करोगी, इसका मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था।" (बन्धुवर्मा)

स्वार्थपूर्ण ममत्व इस नारी की सहज दुर्बलता है। पर वह दुराग्रही नहीं है। वह अपने पति के अटल निश्चय के सामने सिर झुका देती है। यही उसके चरित्र का गौरव है। वह "आग की चिनगारी और ज्वालामुखी की सुन्दर लट के समान है।" जब बन्धुवर्मा वीर-गति को प्राप्त हुए तो वह सती हो जाती है। उसके चरित्र में गम्भीरता, उत्साह, स्वावलम्बन आत्मविश्वास, स्पष्टवादिता, आदि गुण भरे हैं। वह व्यावहारिक जगत् की प्रतिनिधि है। उसका अंत सती का अन्त है।

—स्कन्दगुप्त

जयशङ्कर प्रसाद—दे० प्रसाद।

जय हो उसकी, जिसने अपना विश्व-रूप विस्तार किया—गीत। उस प्रेम की जय हो, जिसका सब में प्रचार-प्रसार है, जो प्रकृति के कण-कण में व्याप्त है, जो प्रेमानन्द जगत् का आधार है, जो हमारे अन्तस् में छिपकर 'अहमिति' का अनुभव कराकर अद्वैत-भावना भरता है।

—जनमेजय का नागयज्ञ, ३-८

जया—चम्पा की दासी, चम्पा-द्वीप की रहने वाली, जंगली, श्यामा युवती। नील-नभामण्डल-से मुख से शुभ्र नक्षत्रों की पंक्ति के समान उसके दांत हँसते रहते थे। वह चम्पा को रानी कहती, तेरी बड़ा-रानी की आज्ञा थी।—(आकाशदीप)

जरत्कारु—यायावर वंशीय ऋषि, मनसा का पति। मृगया करते जनमेजय के बाण से मारा गया।

—जनमेजय का नागयज्ञ

[कारु का अर्थ है शरीर, जिसने तप से शरीर को क्षीण किया वह जरत्कारु हुआ। कथा प्रसंग दे० महाभारत आदि-पर्व १४-४३।]

जरासंध[1]—कृष्णशरण की कथा में प्रसंग—कृष्ण ने धर्म-राज्य की स्थापना करते हुए आततायियों का दमन किया। मागध जरासन्ध मारा गया।—कंकाल, २-७

जरासन्ध[2]—मगध का पराक्रमी राजा।

—चन्द्रगुप्त, ३-८

[बृहद्रथ का पुत्र: मा के पेट से दो भागों में विभक्त उत्पन्न हुआ और जरा नाम की राक्षसी द्वारा जोड़ा गया, इससे जरासन्ध कहलाया। कंस का ससुर। कृष्ण से रहस्य पाकर भीम ने उसे परास्त किया और फिर उसके दो टुकड़े कर डाले। कथा हरिवंश, पद्मपुराण (उत्तरखंड), भागवत, महाभारत आदि में है।]

जर्मनी—बाथम ने भारतीय चित्र और कलापूर्ण सामान के व्यापार में जर्मनी आदि देशों में बड़ी सुख्याति पाई है।

—कंकाल, २, ३

[यूरोप का एक देश, जनसंख्या ५ करोड़। राजधानी बर्लिन।]

जलद-आवाहन—१८ पंक्तियों की कविता। हे जलद! आओ। हमारा मन ग्रीष्म से संतप्त है, तेरे बिना धरती प्यासी और आकाश शून्य है और लूह की पंचाग्नि में जल रहा है। वल्लरियां पत्रहीन हो गई हैं, पर्वतों के साधक भी काली घटा की प्रतीक्षा में हैं। दूर्वादल झुलस गए हैं। आओ,

नेत्रनिर्झर सुख-सलिल से
भरें, दुख सारे भगें
शीघ्र आ जाओ जलद
आनन्द के अंकुर उगें।

—कानन-कुसुम

जलधर की माला घुमड़ रही जीवन घाटी पर—प्रेमलता द्वारा गाया हुआ कवि रसाल का दुःखवादी गीत। जीवन-घाटी पर दुःख की घटा घुमड़ रही है। आशा-लतिका कांप रही है, कामना-कुंज गिर रहा है। करुणा-बाला हताश है। यौवन की अभिलाषा मन्द है। मृत्यु सामने है। क्रन्दन, अन्धकार

और असफलता व्याप्त है, और क्षणिक सुखों पर सतत झूमती शोकमयी ज्वाला।

—एक घूंट

जल-विहारिणी—पहली बार इन्दु, कला २, किरण ५, मार्गशीर्ष '६७ में प्रकाशित ४६ पंक्तियों की वर्णनात्मक कविता। चांदनी खिली है। कुसुम विकसित हैं। दूर-दूर तक सुधा का सरोवर हिलोरें ले रहा है। सम्मुख ही गिरि-श्रेणी का उपवन है। ऐसे में न जाने कहां से प्रकृति का सुन्दर गान सुनाई दे रहा है:—

गान में कुछ बीण की
सुन्दर मिली झनकार है।
कोकिला की कूक है
या भृंग का गुंजार है॥

नीर की चंचल तरंगों में छोटी-सी तरी चली जा रही है। विद्याधर की बालाएँ जल-विहार करने निकली हैं। मेघों की एक घटा है, अम्बर चारु-तारा-वलित है, चांद खिला है। नीचे कमल खिले हैं। एक सुन्दरी के कंज-कर की उँगलियां तार बजा रही हैं और तरंगें वायुमंडल में व्याप्त हो रही हैं।

प्रकृति अपने नेत्र-तारा
से निरखती है छटा
घिर रही है घोर एक
आनन्द घन की सी घटा।

—कानन-कुसुम

जहाँगीर—खुसरो के पद में स्त्री का उपालम्भ पुरुष के प्रति न समझ सकने के कारण क्रुद्ध हो गया।

—काव्य और कला, पृ० २, ३

[भारत का मुगल-सम्राट्, अकबर का बेटा, राज्यकाल १६०५–१६२७ ई०।]

जहाँनारा[१]—शुद्ध ऐतिहासिक कहानी। यमुना के किनारे वाले महल में शाहजहां बीमार पड़ा है। औरंगजेब ने सिंहासन से हटाकर उसे अब कैद कर लिया है। शाहजहां की बेटी जहांनारा भी वहीं पहुँचा दी गई। उसने प्राण-पण से पिता की सेवा की—सब कुछ त्याग करके और तपस्विनी बनकर। जब पिता की मृत्यु हो गई तो उसका जीवन भी सूना हो गया। वह बीमार पड़ी—एक पुराने पलंग पर, जीर्ण बिछौने पर। उसने दवा का सेवन भी नहीं किया। अब पाषाण भी पिघला, औरंगजेब ने क्षमा मांगी। उसी समय उसकी अंतिम ज्योति निकल गई। उसकी अंतिम आकांक्षा यही थी कि मेरी कब्र पर घास ही अच्छी लगेगी और कोई सजावट नहीं।

कहानी नाटकीय शैली में है और करुणा-प्रधान है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से कहानी सुन्दर है। भाषा पात्रानुकूल है।

—छाया

जहाँनारा[२]—पितृभक्त, तपस्विनी, मूर्त्ति-मती करुणा, मुगल राजकुमारी। अपने भाई को बहुत फटकारा और कटार तक निकाल ली। जब कटार छिन गई तो क्रन्दन और अश्रु का प्रयोग करते हुए दया की भिक्षा मांगी। अन्त में इसने अपने अभागे पिता शाहजहां के साथ रहना स्वीकार किया। दासी-वेश में, बहुमूल्य अलंकार छोड़-छाड़ कर

पिता की सेवा में वह तपस्विनी हो गई। उसकी उदारता पहले से भी बढ़ गई। दीन और दुःखी के साथ उसकी ऐसी सहानुभूति थी कि लोग उसे 'मूर्त्तिमती करुणा' मानते थे। बीमारी और फिर मौत को उसने आत्म-समर्पण कर दिया। याद रहे कि इतिहास की जहानारा में न इतनी करुणा है न इतना तेज।

—(जहांनारा)

[शाहजहां की बड़ी बेटी, बालब्रह्मचारिणी।]

जाओ सखी, तुम जी न जलाओ—कामना और उसकी सखियों का संवादात्मक गान। कामना का विलास के प्रति आकर्षण है। सखियां ताड़ जाती हैं और कामना को चिढ़ाती हैं। कामना अपने मन को छिपाती है, पर वे कहती हैं कि तुम्हारे नयनों से सब कुछ प्रगट है।

—कामना, ३-२

जागरण—काशी का पत्र जो पाक्षिक रूप में, ११-२-१९३२ से शिवपूजन सहाय के सम्पादकत्व में और बाद में साप्ताहिक रूप में मुंशी प्रेमचन्द के सम्पादकत्व में प्रकाशित होता था। 'इन्दु' बन्द हो जाने पर प्रसादजी की कृतियां 'जागरण' और 'हंस' में प्रकाशित होती रहती थीं। उनकी निम्नलिखित कविताएं इनमें प्रकाशित हुईं—

ले चल मुझे भुलावा देकर, वरुणा की शान्त कछार; प्रबोधिनी, सागर संगम, ज्वाला, मेरी आंखों की पुतली में तू बनकर प्राण समा जा रे; खोई खोजने; मानवता का विकास; प्रलय की छाया; आत्मकथा; तांडव। बहुत से सामयिक लेख प्रसाद जी ने सम्पादकीय रूप में लिखे। दे० परिशिष्ट।

जान—मथुरा के चर्च में पादरी, जो लतिका को अपनी लड़की के समान प्यार करता है। घंटी को बपतिस्मा देकर जीवन का कर्त्तव्य पूरा कर लेने की प्रसन्नता से वह कुछ सीधा हो गया, अब वह झुक कर नहीं चलता।

—कंकाल, खंड २

जान अली—इत्र के दुकानदार; मौलवी कबरा इनकी दुकान पर आते रहते थे।

—(गुंडा)

जानकी[1]—　　—(चित्रकूट)

जानकी[2] = सीता।

जायसी—जमाल मिरजा को हिन्दी-कविता में जायसी से बहुत प्रेम था। मां ने गाला को कहा था कि बेटी, जायसी की 'पदमावत' स्त्रियों के लिये जीवन-यात्रा में पथ-प्रदर्शक है। पदमावत पढ़ना कभी न छोड़ना।　—कंकाल, ३-६

['पदमावत' के रचयिता प्रसिद्ध अवधी सूफी कवि, समय १५५०—१६०० वि०।]

जार्ज पञ्चम—दे० राजराजेश्वर।

[भारत के अँगरेज सम्राट्, राज्य-काल १९११—१९३६ ई०। वे १९११ में भारत भी आए थे।]

जालन्धर[1]—(पंजाब) —(भीख में)

जालन्धर[2]—राज्यवर्धन, जालन्धर (पंच-

नद) के स्कन्धावार में उदितराज को छोड़ कर कन्नौज की ओर चला।

—राज्यश्री, २-३

जालन्धर[१]—कुसुमपुर की सेना जालन्धर से भी आगे बढ़ चुकी है।

—स्कन्दगुप्त, ३

[पंजाब में स्थित प्रसिद्ध सांस्कृतिक नगर, जिसे जालंधर ऋषि ने बसाया था।]

जावा—दे० बाली।

[पूर्वी एशिया का एक बड़ा द्वीप—यव-द्वीप।]

जावाला—दे० सत्यकाम। —कंकाल

जाह्नवी[१]—इसके तट पर चम्पा नगरी थी। चम्पा यहीं की एक क्षत्रिय बालिका थी। —(आकाशदीप)

जाह्नवी[२]—हरद्वार के पास, जहां तपोवन का रमणीय दृश्य है। —कंकाल, १-१

जाह्नवी[३]—शिव की जटा में।

—(प्रतिमा)

जाह्नवी[४]—'भिखारिन' एवं 'अघोरी का मोह' शीर्षक कहानी की पृष्ठभूमि।

जाह्नवी[५]—काशी के पास, घाटों की सीढ़ियों पर विभिन्न वेष-भूषा वाले भारत के प्रत्येक प्रान्त के लोग टहल रहे हैं। कीर्तन, कथा और कोलाहल से जाह्नवी-तट पर चहल-पहल है। पश्चिमी तट पर धवल शैलमाला-सी खड़ी सौध-श्रेणी। उस पार चमकीली रेत बिछी थी, उसके बाद वृक्षों की हरियाली। —(रूप की छाया)

दे० गंगा, दे० परिशिष्ट भी।

जिहून—नदी। बलराज, जिहून के किनारे तुर्कों से लड़ा था। —(दासी)

[अफगानिस्तान में]

जीनत-महल—शाह आलम की बेगम।

—(गुलाम)

जीने का अधिकार तुझे क्या, क्यों इसमें सुख पाता है—जनमेजय को सचेत करने के लिए नेपथ्य-गान। मानव, तूने कुछ सोचा है, क्यों आता क्यों जाता है। यह संसार कर्म-क्षेत्र है। जिसको तू सुख समझे हुए है वही दुःख है, और जिस कर्म को तू दुःखकर मानता है, अन्ततः उसी में सुख है।

तू स्वामी है, तू केवल है,
स्वच्छ सदा तू निर्मल है।
जो कुछ आवे, करता चल तू,
कहीं न आता जाता है।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, २-१

जीवक—मगध का राजवैद्य, राजकुल का प्राचीन सेवक, स्वामिभक्त, महाराज की प्राण-रक्षा में चिंतित कौशाम्बी और कोशल भागा-भागा फिरता है। वह भाग्यवादी नहीं, कर्म पर विश्वास करता है। मगध की उच्छृंखल नवीन राज-शक्ति का विरोधी होकर घर-द्वार छोड़ देता है। —अजातशत्रु १-४,६; १-९

[तक्षशिला में आयुर्वेद का विद्यार्थी था। वहां से पढ़कर आया तो बिंबसार के दरबार में राजवैद्य नियुक्त हुआ। बिम्बसार ने उसे अपने मित्र, वासवदत्ता के पिता, की चिकित्सा के लिए अवन्ति भेजा था।]

जीवन—मानव-जीवन में कभी पतझड़ है, कभी वसन्त। (करुणा)।

दे० मानवता भी।

—कामना, २-७

जीवन वसुधा समतल है
समरस है जो कि यहाँ है।

—कामायनी, आनन्द, पृ० २८

संगीत मनोहर उठता
मुरली बजती जीवन की।

—कामायनी, आनन्द, पृ० २९३

—प्राचीन ऋषियों ने बतलाया है कि भीतर जो काम का और जीवन का युद्ध चलता है, उसमें जीवन को विजयी बनाओ। —तितली, २-६

जीवन की अतृप्ति पर विजय पाना ही भारतीय जीवन का उद्देश्य है। (शैला)। —तितली, २-६

युद्ध का परिणाम मृत्यु है। जीवन से युद्ध का क्या सम्बन्ध! युद्ध तो विच्छेद है और जीवन में शुद्ध सहयोग है। (रामनाथ)। —तितली, २-६

जीवन युद्ध न होकर समझौता, सन्धि का मेल है, जहां परस्पर सहायता और सेवा की कल्पना होती है—झगड़ा-लड़ाई, नोच-खसोट नहीं। —वही

—हमारी धार्मिक भावनाएँ बँटी हुई हैं, सामाजिक जीवन दम्भ से और राजनीतिक क्षेत्र कलह और स्वार्थ से जकड़ा हुआ है। शक्तियां हैं; पर उनका कोई केन्द्र नहीं। (बलराज) —(दासी)

सुख तो जीने में है। ऐसी हरी-भरी दुनियां, फूल-बेलों से सजे हुए नदियों के सुन्दर किनारे, सुनहला सबेरा, चांदी की रातें! इन सबों से मुंह मोड़ कर आंखें बन्द कर लेना! (फीरोजा) —(दासी)

—इतने काल से जो जीवन बिता रहा हूँ, उसके विचार में भी जीवन ही सबसे अमूल्य वस्तु है। —(बेड़ी)

—संसार ही युद्ध-क्षेत्र है, इसमें पराजित होकर शस्त्र-समर्पण करके जीने से क्या लाभ? (प्रपंचबुद्धि) —स्कन्दगुप्त, २-२

दे० मानव-जीवन, दे० अगले शब्द भी।

जीवन का लक्ष्य—विश्व चेतना के आकार धारण करने की चेष्टा का नाम 'जीवन' है। जीवन का लक्ष्य 'सौन्दर्य' है, क्योंकि आनन्दमयी प्रेरणा जो उस चेष्टा या प्रयत्न का मूल रहस्य है, स्वस्थ—अपने आत्मभाव में, निर्विशेष रूप से—रहने पर सफल हो सकती है। (आनन्द)

—एक घूंट, पृ० १५

जीवन की सुविधाएँ—मेरी सम्मति में जीवन को सब तरह की सुविधा मिलनी चाहिए। यह मैं नहीं मानता कि मनुष्य अपने सन्तोष से ही सम्राट् हो जाता है और अभिलाषाओं से दरिद्र। मानव-जीवन लालसाओं से बना हुआ सुन्दर चित्र है। उसका रंग छीनकर उसे रेखा-चित्र बना देने से मुझे सन्तोष नहीं होगा। उसमें कहे जाने वाले पुण्य पाप की सुवर्ण कालिमा, सुख-दुःख की आलोक-छाया और लज्जा-प्रसन्नता की लाली-हरियाली उद्भासित हो। और चाहिए उसके लिए विस्तृत भूमिका, जिसमें

रेखाएँ उन्मुक्त होकर विकसित हों। (इन्द्रदेव) —तितली, २-९

जीवन तत्त्व—अपनी रक्षा करने के लिए, अपने प्रतिशोध के लिए, जो स्वाभाविक जीवन-तत्त्व के सिद्धान्त की अवहेलना करके चुप बैठता है, उसे मृतक, कायर, सजीवता-विहीन, हड्डी-मांस के टुकड़े के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं समझता। (देवपाल) —(स्वर्ग के खँडहर में)

जीवन-मरण—जीवन एक प्रश्न है, और मरण है उसका एक अटल उत्तर। (मालविका) —चन्द्रगुप्त, ४-४

जीवन भर आनन्द मनावे, खाये पिये जो कुछ पावे—बौद्ध महंत का गान। लोग तृष्णा को काली सांपिन कहते हैं, पर क्या इससे छुटकारा हो सकता है? बच्चा मां से मार खा करके भी 'मां, मां' पुकारता है, इसी प्रकार मनुष्य संसार को सब कुछ मानता है। —विशाख १-१

जीवन-वन में उजियाली है—प्रेमलता का गीत। जीवन में प्यार है, किरनो में अनुराग है, लेकिन हमारा हृदय प्रेम से शून्य है, इसमें वेदना भरी है। यह समीर भी चोरी-छुपे कुसुम-बाल से प्रेम-मधु की मांग करता है। उसी प्रेम-मधु के एक घूंट की प्यास इस जीवन को है, परन्तु क्या जाने—

कौन छिपाए है उसका धन
कहां सजल वह हरियाली है।

—एक घूंट

जीवनसिंह—कमलापुर के जमींदार। —(ग्रामगीत)

जुलेखा—शीरीं की सखी जिसने शीरीं के प्रेमी को बुलबुल कहा। "शीरीं! वह तुम्हारे हाथों पर आकर बैठ जाने वाला बुलबुल आजकल नहीं दिखलाई देता?" और फिर "सुना है कि ये सब हिन्दोस्तान में बहुत दूर तक चले जाते हैं।" "तूने अपने घुंघराली अलकों के पाश में उसे क्यों न बांध लिया?" "अच्छा लौट आवेगा, चिन्ता न कर।" इन बातों में जुलेखा ने एक प्रकार से कहानी के पूरे कथानक का संकेत कर दिया। —(बिसाती)

जेन—शैला की मां, जो शैला के जन्म से पहले नीलकोठी में रहती थी। बार्टली साहब की बहन। वह माया-ममता की मूर्त्ति थी। कितने ही बार्टली के सताए हुए लोग उसके रुपये से छुटकारा पाते, जिसे वह छिपा कर देती थी। जेन के कई बच्चे वहीं मर गए। जब बार्टली मरा तो वह अपने देश चली गई। वहां बेचारी बहुत दुःखी रही। —तितली

जैक—लंदन में एक आवारा। दरिद्र शैला इसे पैसे मांगकर ला देती और वह शराब में उड़ा देता है। उसने इन्द्रदेव के मेस में जाती शैला पर अश्लील व्यंग्य किया। —तितली, १-२

जोरावरसिंह—शहीद।

—(वीर बालक)

[गुरु गोविन्दसिंह के छोटे पुत्र जिन्हें सरहिंद के सरदार वजीरखां ने जीते-जी दीवार में चिनवा दिया और सिर काट

डाला। यह घटना लगभग सन् १७०५ ई० की है।]

ज्ञानदेव—हरद्वार में मंगल के आर्य-समाजी मित्र। —**कंकाल, खंड १**

ज्योतिष्मती—प्रतीकात्मक कहानी। वनलता अपने अंधे पिता वनराज के लिए बड़ी व्यग्रता से ज्योतिष्मती लता खोज रही थी। मार्ग में उसे एक साहसिक मिला। वह उसकी सहायता करने के लिए तैय्यार हो गया। बहुत परिश्रम करने पर एक स्थान में ज्योतिष्मती दिखाई दी—फूलों से लदी हुई, मंद-मारुत से विकंपित। साहसिक ने हाथ बढ़ाया। यह सच है कि ज्योतिष्मती के उज्ज्वल फूलों के स्पर्श से अंधी आंखें भी ज्योतित हो जाती हैं, परन्तु जिसने चन्द्रशालिनी ज्योतिष्मती रजनी के चारों पहर कभी अपने प्रिय की चिन्ता में न बिताए हों, उसे ज्योतिष्मती नहीं छूनी चाहिए। साहसिक के स्पर्श से ज्योतिष्मती एक दीर्घ निश्वास फेंक कर जैसे सो गई। साहसिक शून्य में मिल गया। वनलता छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़ी।

प्रेम इतनी पवित्र वस्तु है, उसके लिए तप और साधना चाहिए, यही इस कहानी का संकेत है। यदि ज्योतिष्मती को ब्रह्म का प्रतीक माना जाये तो यह कहानी रहस्यवादी है। —**आकाशदीप**

ज्योतिष्मान—सेनापति। —**करुणालय**

ज्वाला—जागरण अंक ४, २२ मार्च १९३२ में, 'आंसू के कतिपय छंद' इस शीर्षक से प्रकाशित हुए।

ज्वालामुखी—पंजाब में पहाड़ी तीर्थ-स्थान। —**(भीख में)**

[जिला कांगड़ा, सती की पीठ। यहां के मंदिर में अम्बिका (मातेश्वरी) की मूर्ति है।]

झ

झरना[1]—पद्यमय 'समर्पण' और 'परिचय' के अतिरिक्त इसमें ४८ कविताएँ हैं। पृष्ठसंख्या ९६। झरना पहली कविता का शीर्षक भी है। अन्तिम शीर्षक 'बिन्दु' के अन्तर्गत ७ कविताएँ हैं। इसमें प्रसाद जी की सं० १९७१ से १९७८ तक की कविताएं संकलित हैं। 'झरना' नाम से ऐसा लगता है कि इसमें प्रकृति-सम्बन्धी कविताएँ अधिक होंगी, लेकिन इसमें प्रकृति के सुन्दर चित्रों के साथ प्रेम का लौकिक और आध्यात्मिक स्वरूप भी है। प्रथम संस्करण —अगस्त १९१८—में २५ कविताएँ थीं। वर्तमान संस्करण का रूप १९२७ में निश्चित हुआ—खोलो द्वार, विषाद, वसन्त की प्रतीक्षा, किरण, बालू की बेला, बिखरा हुआ प्रेम आदि बाद की जोड़ी हुई कविताएँ हैं। झरना में निम्नलिखित कविताएँ सगृहीत हैं—

१—झरना, २—अव्यवस्थित, ३—प्रथम प्रभात, ४—खोलो द्वार, ५—रूप, ६—दो बूंदें, ७—पावस-प्रभात,

८—वसन्त की प्रतीक्षा, ९—वसन्त, १०—किरण, ११—विषाद, १२—बालू की बेला, १३—चिह्न, १४—दीप, १५—अर्चना, १६—बिखरा हुआ प्रेम, १७—कब ?, १८—स्वभाव, १९—असन्तोष, २०—अनुभव, २१—प्रियतम, २२—कहो, २३—निवेदन, २४—प्यास, २५—पी कहां, २६—पाईं बाग, २७—प्रत्याशा, २८—स्वप्नलोक, २९—दर्शन, ३०—मिलन, ३१—आशालता, ३२—सुधासिंचन, ३३—तुम, ३४—हृदय का मौन्दर्य, ३५—प्रार्थना, ३६—होली की रात, ३७—झील में, ३८—रत्न, ३९—कुछ नहीं, ४०—आदेश, ४१—देवबाला, ४२—कसौटी, ४३—अतिथि, ४४—सुधा में गरल, ४५—उपेक्षा करना, ४६—वेदने ठहरो, ४७—धूल का खेल, ४८—विन्दु।

झरना[२]—इस कविता में झरना एक जल-प्रपात मात्र नहीं है, उससे कुछ आध्यात्मिक संकेत मिलता है—'बात कुछ छिपी हुई है गहरी।' स्मरण होता है 'इसका प्रथम वर्षा से भरना' और 'शैल काट के फूट पडना'। इसी तरह तुम्हारे कटाक्ष मे मेरे हृदय से प्रेम का झरना फूट पड़ा था और मेरा तापमय जीवन शीतल हो गया।

सत्य यह तेरी सुघराई में।
प्रेम की पवित्र परछाईं में॥

सौन्दर्य का सत्य यही है कि वह सन्तप्त जीवन को शीतल कर सकता है। —**झरना**

झाड़ू वाला—एक पढ़ा-लिखा किन्तु साधारण स्थिति का मनुष्य, जो अपनी स्त्री की प्रेरणा से अरुणाचल आश्रम में रहने लगता है। उसकी स्त्री के हृदय में स्त्री-जन-सुलभ लालसाएँ उठती हैं, किन्तु पूर्ति का कोई उपाय नहीं। वह जीवन मे असन्तुष्ट है। —**एक घूंट**

झील में—'झील में झाईं पड़ती थी', 'चन्द्रमा नभ में हँसता था', प्रकृति का मौन्दर्य बिखर रहा था, हम थे और वे थे। ऐसे में उनसे कह दिया—"मिलेगा कब ऐसा एकान्त" और उनका हाथ हमने हाथ में ले लिया। यह देख झील, झाईं, नभ, शशि, तारा सब अश्रान्त हो उठे। इस कविता में प्रेमी-प्रेमिका के एकान्त-मिलन का चित्र है। —**झरना**

झूसी—प्रयाग से गंगा-पार, माघ मेले का दृश्य। —**कंकाल, १-१**

[प्राचीन नाम प्रतिष्ठान।]

झेलम[१]—बालक-बालिका के रूप में रंजन आठ वर्ष का और किशोरी सात वर्ष की झेलम के किनारे अपने प्रणय के पौधे को अनेक क्रीड़ा-कुतूहलों के जल से सींच रहे हैं। —**कंकाल १-१**

झेलम[२]—झेलम नदी के पूर्व में पर्वतेश्वर का राज्य था। —**चन्द्रगुप्त**

झेलम[३]—दे० सिन्ध[१]। —**(नूरी)**

[कश्मीर में श्रीनगर के पूर्व में झील वूलर से निकलने वाली नदी जो नमक के पहाड़ के पास होती हुई झंग (पंजाब)

के पास चनाब में जा मिलती है। लोक-नाम जेहलम है। लम्बाई ४५० मील। इसके किनारे सिकन्दर और पर्वतेश्वर के बीच में युद्ध हुआ था।]

ट

टालीकोट—टालीकोट सुयुद्धभूमि।
—(प्रेमराज्य)

[दक्षिण में कृष्णा नदी के किनारे। दक्कन की मुसलमान रियासतों ने बीजापुर की सरदारी में विजयनगर के हिन्दू राजा कृष्णदेव राय के मंत्री और अभिभावक रामराज को परास्त करके उसके विशाल राज्य का अन्त किया—समय १५६५ ई०।]

ठ

ठहरो—सर्वप्रथम प्रकाशन इन्दु, कला ३, किरण ७, कार्तिक '६८ में। छः-छः पंक्तियों के पाच छन्द। एक दीन आतुर दृष्टि से तुम्हारी ओर देख रहा है। वह क्रोध, भय और अपमान नहीं चाहता, 'उसको सम्बोधन मधुर से तुम्हे बुलाना चाहिए।' यदि उसका वस्त्र मलीन है, तो एक उज्ज्वल वस्त्र पहना दो, घृणा तो न करो। उसे तलवार मत दिखाओ।

डरता है वह तुम्हें देख,
निज करको रोको।
उस पर कोई वार
करे तो उसको टोको।

हैं भीत जो कि संसार से,
असि नही है उसके लिए।
हैं उसे तुम्हारी सान्त्वना
नम्र बनाने के लिए।

—कानन-कुसुम

ड

डाकू—हम लोग डाकू हैं, हम लोगों को माया-ममता नही। परन्तु हमारी निर्दयता भी अपना निर्दिष्ट पथ रखती है, वह है केवल धन लेने के लिए। भेद यही है कि धन लेने का दूसरा उपाय हम लोग काम में नही लाते, दूसरे उपायों को हम लोग अधम समझते हैं—धोखा देना, चोरी करना, विश्वासघात करना, ये सब जो तुम्हारे नगरों के सभ्य मनुष्यों की जीविका के सुगम उपाय हैं, हम लोग उनसे घृणा करते है। (बदन)।

—कंकाल, पृ० २०८

त

तक्षक—बर्बर, क्रूर, पर अपनी जाति का हित-चिंतक नाग-राज, जो जातीय अपमान के कारण प्रतिहिंसा से प्रेरित है। "प्रतिहिंसे ! तू बलि चाहती है तो ले, मैं दूगा। छल, प्रवञ्चना, कपट, अत्याचार सब तेरे सहायक होंगे। हाहाकार, क्रन्दन और पीड़ा तेरी सहेलियां बनेंगी।" वह सर्वत्र आतंक उत्पन्न करना चाहता है। सोये हुए उत्तंक को मार डालने की चेष्टा करता है, फिर मरमा की हत्या करना चाहता है, रानी वपुष्टमा का अपहरण करने का उद्योग करता है, प्रलोभन द्वारा कश्यप से जनमेजय के सब रहस्य जान लेता है, ब्राह्मणों को फोड़ने की सफल चेष्टा करता है। बन्दी होकर भी वह जनमेजय से प्राण-भिक्षा नहीं मांगता। वह निर्भीक है। वह अपनी कन्या मणिमाला और आस्तीक की उपेक्षा करता है—अपने पराये का अन्तर नहीं देखता। वह बड़ा चतुर दस्युकर्मी और आतंकवादी है। उसका साहस अनन्त है। **—जनमेजय का नाग-यज्ञ**

[कश्यप तथा कद्रू का पुत्र ; खाण्डव वन जलने के बाद वह कुरुक्षेत्र चला गया। परीक्षित का वध किया। वह उत्तंक से कुंडल छीन कर पाताल लोक को भाग गया, उत्तंक ने वहां तक पीछा किया। दे० 'जनमेजय ना नाग-यज्ञ'।]

तक्षशिला[१]—अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत। **—(अशोक)**

तक्षशिला[२]—गान्धार की राजधानी। आम्भीक और अलका की जन्मभूमि। चाणक्य यहां अध्यापन-कार्य करते रहे। चन्द्रगुप्त और सिंहरण यहीं शिक्षा ग्रहण करते थे। नाटक में दो दृश्य यहां के हैं। **—चन्द्रगुप्त**

भारत की अर्गला। कनिंघम ने लिखा है कि रामचन्द्र के भाई भरत के दो पुत्र थे—तक्ष ने तक्षशिला और पुष्कल ने पुष्कलावती बसाई। **—चन्द्रगुप्त, भूमिका**

तक्षशिला[३]—तक्षशिला की विजय के बाद जनमेजय का अभिषेक हुआ। **—जनमेजय का नाग-यज्ञ, १-२**

नागों का दमन करने के लिए फिर प्रस्थान। यहीं पर वासुकि आदि से युद्ध हुआ। चण्डभार्गव के सेनापतित्व में तक्षशिला-विजय में कितने ही नाग जलाए गए। **—जनमेजय का नाग-यज्ञ**

तक्षशिला[४]—शिक्षा का केन्द्र; विशाखदत्त यहीं का स्नातक था। **—विशाख**

[कोसल, काशी, मल्ल इत्यादि राज्यों के राजकुमार यहां आकर विद्याभ्यास करते थे। सिकन्दर के आक्रमण-काल में यह विद्याकेन्द्र राजनीति का केन्द्र बना हुआ था। अब इस प्राचीन नगरी के खंडहर रावलपिण्डी (पाकिस्तान) के पास मिलते हैं।]

तटस्थ—(न्याय-बुद्धि) तटस्थ की यही शुभेच्छा सत्त्व से प्रेरित होकर, समस्त

सदाचारों की नींव विश्व में स्थापित करती है। (गौतम) —अजातशत्रु, १-२

तत्त्व प्रकाश—दे० कला[१]।
[भोजराज-कृत।]

तथागत[१]—जरा हम लोग नित्य देखते हैं, पर तथागत के समान किसने इस दृश्य से लाभ उठाया? (कान्यकुब्ज के मंत्री)। —ध्रुवस्वामिनी, १-४

तथागत[२]—दे० गौतम। —स्कन्दगुप्त
[अर्थ 'सत्यस्वरूप', रूढार्थ 'बुद्ध'।]

तपस्या—कष्ट हृदय की कसौटी है, तपस्या अग्नि है। (देवसेना)। —स्कन्दगुप्त, ५-५

तरला—स्वल्पात्र महापिंगल की स्त्री, कुरूप और कर्कश। पति पर शासन करती है। पति को बैल का भाई कहती है, वह भाग मांगता है तो कहती है कि तुझे संखिया घोल कर पिलाती हूं। उसे गहनों से बड़ा मोह है। पति से गहने का नाम सुनकर ठंढी पड़ जाती है। चांदी से सोना बनवाने के लोभ में पड़ी। बेचारी के गहने एक भिक्षु ऐंठ ले जाता है। —विशाख

तर्कवागीश—'मालिनी दास' के टीका-कार। —उर्वशी, भूमिका

ताण्डव—कामायनी के 'दर्शन' सर्ग का कुछ भाग जो हंस, नवम्बर १९३३ में प्रकाशित हुआ।

तानसेन[१]—प्रकाशन अक्टूबर १९११। सम्राट् अकबर के समय की कहानी जिसका आधार किंवदंती रही होगी। 'छाया' संग्रह की ऐतिहासिक कहानियों में सर्वोत्तम; रोमांस। शिकार से लौटते समय ग्वालियर के दुर्गपति, जो सम्राट् अकबर के सरदारों में से थे, रामप्रसाद की स्वर-लहरी में मग्न हो गए। वे उसे ग्वालियर ले आए। धीरे-धीरे सरदार को प्रतिदिन सन्ध्या के समय उसका संगीत सुनने की आदत भी हो गई। दरबार की गायिका, सौसन, रामप्रसाद के गुण पर रीझ गई। एक दिन सरदार-पत्नी और सरदार में होड़ मची कि सौसन और रामप्रसाद में कौन श्रेष्ठ गायक है। एक संगीत-प्रतियोगिता हुई। रामप्रसाद श्रेष्ठ माना गया। सरदार ने कहा कि तुम्हें जो मांगना हो मांगो। रामप्रसाद ने कहा कि मुझे सौसन दे दीजिए। सरदारनी ने सौसन से पुछवाया कि तुम भी कुछ मांगो। सौसन ने कहा कि मुझे दासीपन से मुक्त कर दीजिए। सौसन रामप्रसाद की हो गई और रामप्रसाद 'तानसेन' हो गया। तानसेन बोला—आज से हमारा धर्म 'प्रेम' है।

कहानी में पात्र अथवा वातावरण-योजना का अधिक ध्यान नहीं है। ध्यान उद्देश्य की ओर है। प्रेम जाति और वर्ण के भेदभाव को नहीं मानता। कहानी रसपूर्ण है। —छाया

तानसेन[२]—पहले इसका नाम रामप्रसाद था। अकबर के दरबार की गायिका सौसन के प्रेम में मुसलमान हो गया। संगीतकला में प्रवीण था, इसी से ग्वालियर के किलेदार ने उसे 'तानसेन' की उपाधि दी। —(तानसेन)

तानसेन[1]—मुगल-दरबारों में तानसेन की संगीत-परम्परा चलती रही।
—(**रंगमंच, पृ० ७१**)

[मृत्यु १५८८ ई०, समाधि ग्वालियर में।]

ताम्रपर्णी—ताम्रपर्णी की तरंग-मालाएँ मुझे बुला रही हैं। मेरा जाना निश्चित है। (प्रज्ञासारथि)। —(**आंधी**)

दे० लंका, सिंहल।

[लंका की एक नदी, जिसके नाम पर इस द्वीप का भी यह नाम बौद्ध-साहित्य में आता है।]

ताम्रलिप्ति—बुद्धगुप्त यहां का निवासी था। —(**आकाशदीप**)

[बंगाल का एक भूखण्ड, आधुनिक नाम तामलूक।]

तारा[1]—विधवा रामा की पुत्री जो काशी में चन्द्रग्रहण के अवसर पर मां से बिछुड़ गई। वह सुन्दरी थी। होनहार सौन्दर्य उसके प्रत्येक अंग में छिपा था। वह युवती हो चली थी, परन्तु अनाघ्रात कुसुम के रूप की पंखुरियां विकसी न थीं। वेश्या गुलनार के रूप में इसकी विवशता दयनीय थी। मंगल के भाग जाने के बाद बेचारी को जब चाची ने भी निकाल दिया तो अत्यन्त उद्विग्न हो गई। उसकी छाती में मधुविहीन मधुचक्र-सा एक नीरस कलेजा था, जिसमें वेदना की ममाछियों की भन्नाहट थी। "मंगल! भगवान् जानते होंगे कि तुम्हारी शय्या पवित्र है। कभी मैंने स्वप्न में भी तुम्हें छोड़कर इस जीवन में किसी से प्रेम नहीं किया, और न तो मैं कलुषित हुई।...मरण को छोड़कर दूसरा कौन शरण देगा?" प्रणय में विश्वासघात पाया। यमुना बनी। सबको प्रसन्न करने की चेष्टा की।

मैंने केवल एक अपराध किया है—"वह यही कि प्रेम करते समय साक्षी नहीं इकट्ठा कर लिया था।....पर किया था प्रेम। यदि उसका यही पुरस्कार है तो मैं उसे स्वीकार करती हूँ।" वेश्या बनी, दासी बनी, दुःख सहे, पर आत्मनिष्ठा अटूट रखी। —**कंकाल**

तारा[2]—धनाढ्य विधवा। वैधव्य का पूर्ण अनुभव वह कभी न कर सकी। वैधव्य उसे दूर ही से डराकर चला जाता। —(**प्रतिध्वनि**)

तारा[3]—दे० लंका। —**स्कन्दगुप्त, १**

तारा[4]—काश्मीर की रूप-माधुरी जिसने देवपाल के हृदय में लज्जादेवी का स्थान छीन लिया। वह अधिक रूप-शालिनी थी। देवपाल को काश्मीर से सहायता की भी आशा थी। बाद में दोनों का विवाह हो गया। जब चंगेजखां ने उद्यान के मंगली-दुर्ग पर अधिकार करके देवपाल को बन्दी बना दिया तो तारा ने आत्महत्या कर ली। —(**स्वर्ग के खँडहर में**)

तारिणी—अजीगर्त की स्त्री। कल्पित नाम। —**करुणालय**

तितली[1]—प्रथम संस्करण चैत्र '९१वि०, पृष्ठ संख्या ४था संस्करण २९५। पहले 'जागरण' प्रथम अंक से धारावाहक रूप से प्रकाशित होता रहा। इसके चार खंड हैं। प्रथम में ७, द्वितीय

में १०, तृतीय में ८ और चतुर्थ खंड में ५ अंश हैं; कुल ३० परिच्छेद। प्रसाद जी का दूसरा उपन्यास है, १० स्त्री और १८ पुरुष पात्रों का चित्रण है। कथानक की दृष्टि से 'तितली' 'कंकाल' से अधिक आकर्षक और सफल है, किन्तु भाषा, चरित्र-चित्रण इतना सुन्दर नहीं है। भाषा सरल तो है पर प्रौढ़ नहीं है। साहित्यिक वर्णन कंकाल से अधिक है। चरित्र घटनाक्रम के अनुसार बनते हैं। अधिकतर चरित्र भावुक है। 'कंकाल' में ध्वंसात्मक आलोचना और 'तितली' में रचनात्मक है। तितली की कथावस्तु सुलझी हुई और जीवन के अधिक निकट है। विकास-गति स्वाभाविक है। अन्तर्द्वन्द्व और बाह्य द्वन्द्व दोनों चलते है। संघर्षमय जीवन का अन्त सरसमय दिखाया गया है। मुख्य कथाएँ दो हैं—शैला और इन्द्रदेव की, तथा तितली और मधुवा की। प्रासंगिक कथाएं—रामदीन-मलिया, अनवरी-श्यामलाल, बनारस के मुकुन्दलाल-नन्दरानी की है। घटना-बाहुल्य नहीं है। 'कंकाल' में शहरी जीवन है, 'तितली' में ग्रामीण जीवन। इसमें भारतीय दाम्पत्य जीवन के सुन्दर और स्निग्ध चित्र अंकित किए गए हैं। पात्र व्यक्तित्वपूर्ण और स्वाभाविक है। परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव है। पात्र-सृष्टि में योजना है—सद्वृत्ति वाले और दुर्वृत्ति वाले। विजय सद्वृत्तियों की होती है। आदर्शवाद स्पष्ट है। व्यक्ति का अन्तर्द्वन्द्व दिखाया गया है। सम्मिलित कुटुम्ब व्यवस्था को दुःखदायी और ग्राम-सुधार को आवश्यक बताया गया है। ग्राम-जीवन की विषमता और दरिद्रता की ओर संकेत है। व्यक्ति की आवश्यकताएँ समाज पूरी करे। जमीदार और कर्मचारी बुरे है—इन बातों का उद्घाटन है। नारी का जीवन पुरुष की दया पर निर्भर है। उसे आर्थिक स्वतंत्रता चाहिए वरना विद्रोह और अशान्ति होगी।

कथानक—

"क्यों बेटी! मधुवा आज कितने पैसे ले आया?"

"नौ आने बापू।"

"कुल नौ आने! और कुछ नहीं?"

"पांच सेर आटा भी दे गया है। कहता था, एक रुपये का इतना ही मिला।"

बूढ़ा रामनाथ एक ठंढी उसाम लेता हुआ बोला—इतनी महंगी तो उस अकाल में भी नहीं हुई थी—'५५ का अकाल, जिस पिशाच की अग्नि-क्रीड़ा में खेलती हुई तुझको मैंने पाया था। तब भी आठ सेर का अन्न बिकता था।

बंजो ने कुतूहल से कहा—"बापू। अकाल में तुमने मुझे पाया था! मुझे वह पूरी कथा सुनाओ।"

बूढ़ा वह सुनाने ही वाला था कि एकाएक धांय-धांय का शब्द सुनाई पड़ा। गंगातट बंदूक के धड़ाके से मुखरित हो गया।

ज्ञात हुआ कि धामपुर के जमींदार, इन्द्रदेव, शिकार को निकले है। उनके साथ एक अंग्रेज रमणी जिसका नाम

शैला था और चौबेजी (सुखदेव) थे। चौबेजी कटीली झाड़ी में फँस गए थे। बाद में बस्ती की कच्ची सीढ़ियों पर से गिर पड़े। रमणी चिल्ला उठी। बंजो सहायता के लिए पहुँची और तीनों को अपनी झोंपड़ी में लिवा लाई। चौबेजी रात भर वहीं रहे, शैला इन्द्रदेव के साथ छावनी लौट आई।

इन्द्रदेव के पिता को राजा की उपाधि मिली थी। बी० ए० पास करके इन्द्रदेव ने बैरिस्टरी के लिए विलायत-यात्रा की। धनी के लड़के थे। उन्हें पढ़ने-लिखने की उतनी आवश्यकता न थी, जितनी लन्दन का सामाजिक जीवन बिताने की। वहीं पूर्वी भाग में घूमते हुए उसके पास एक लम्बी-सी, पतली-दुबली लड़की ने याचना की। उस लड़की का नाम शैला था। उसका पिता जेल में था, मा मर गई थी, अनाथालय में जगह नहीं थी। इन्द्रदेव ने उसे अपने मेस में नौकर रख लिया। जब पिता की मृत्यु का समाचार मिला, तो इन्द्रदेव को शैला की सान्त्वना और स्नेहपूर्ण व्यवहार ने ढाढ़स बँधाई। इन्द्रदेव भारत लौट आए और उनके साथ शैला भी चली आई। शैला हिन्दी अच्छी तरह बोलने लगी थी। साड़ी पहनने का अभ्यास कर लिया था। देहाती किसानों के घर जाकर उनके साथ घरेलू बातें करने का उसे चस्का लग गया था। एक दिन छावनी के उत्तर नाले के किनारे ऊँचे चौतरे की हरी-हरी दूबों से भरी हुई भूमि पर कुर्सी का सिरा पकड़े तन्मयता से शैला नाले का गंगा से मिलना देख रही थी। इतने में एक सुन्दरी वहां आकर खड़ी हो गई। 'मेरा नाम मिस अनवरी है। मैं कुंअर साहब की मां को देखने आया करती हूँ।' इन्द्रदेव की मां श्यामदुलारी धार्मिक मनोवृत्ति की स्त्री थी, घर का सारा प्रबन्ध इन्द्रदेव की बहन माधुरी करती थी। श्यामदुलारी और माधुरी दोनों शैला का रहना पसन्द नहीं करतीं। 'क्या इस चुड़ैल से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं है?' अनवरी ने उनके षड्यंत्र में सहायक होने के लिए वहीं रहने का विचार किया।

शैला और अनवरी आज साथ ही घूमने निकलीं। शैला बूढ़े की झोंपड़ी के पास खड़ी हो गई। उसने मधुवा और बंजो को खेती-बाड़ी की बातें करते सुना। अन्त में मधुवा बोला—अच्छा, आज से मैं मधुबन और तुम तितली। दोनों की आंखें एक क्षण के लिए मिलीं—स्नेहपूर्ण आदान-प्रदान करने के लिए। शैला ने तितली को पांच रुपये का नोट देना चाहा। उसने नहीं लिया तो मधुबन को दे दिया। शैला और अनवरी लौट आईं। इन्द्रदेव का दरबार लगा था। उसके तहसीलदार ने बनजरिया पर बेदखली का कागज पेश किया, बूढ़ा रामनाथ अपनी सफाई में कह रहा था—"क्या अब जंगल परती में भी बैठने न दोगे? और वह तो न जाने

कब से कृष्णार्पण माफी चली आ रही है। क्या उसे भी छीनना चाहते हो।" इन्द्रदेव ने इस समय मामला टाल दिया। बाद में बाबा रामनाथ ने सारी कहानी सुनाई। यह बनजरिया सच-सच सिंहपुर के किसान देवनन्दन की थी जिसे बार्टली साहब ने बरबाद कर दिया था। बार्टली नाम के एक अंग्रेज की नील की कोठी थी। जेन उसकी बहन थी, तथा जेन के पति स्मिथ विलायत में रहते थे। अपनी बहन के अनुरोध करने पर भी बार्टली इंग्लैण्ड नहीं जाना चाहता था, क्योंकि भारत के किसानों में उसका काफी रुपया फँसा था। बार्टली के कारण (रुपये के तकाज़े में) देवनन्दन की समस्त भूमि नीलाम हो गई थी। दो सन्तानों का शरीरान्त हो गया। रह गई एक लड़की—बंजो। वह परदेश में भीख मांगने निकल पड़ा। उस समय अकाल था। कौन भीख देता? रामनाथ से उसकी भेंट हो गई। तितली को रामनाथ के हाथों में सौंप कर देवनन्दन चल बसा। यह सुनकर तितली चीत्कार करती हुई मूर्च्छित हो गई। शैला उसके पास पहुँच कर उसे प्रकृतिस्थ करने में लग गई। इन्द्रदेव आरामकुर्सी पर लेट गया और सुनने वाले धीरे-धीरे खिसकने लगे।

इस बीच में शैला ने श्यामदुलारी के हृदय में अपना स्थान बना लिया—अपने मधुर व्यवहार से; और माधुरी का गौरव फीका पड़ने लगा था। परस्पर ईर्ष्या बढ़ गई। इधर तितली और मधुबन का प्रेम बढ़ने लगा। मधुबन शेरकोट का कुलीन ज़मींदार था। शेरकोट मल्लाही टोले के समीप एक दुर्ग था। कभी शेरकोट के अच्छे दिन थे। मुकदमे में सब कुछ हार कर जब मधुबन के पिता मर गए, तो गांव उजड़ गया। शेरकोट खंडहर पड़ा था। मल्लाही टोला में अब केवल दस घर थे। मल्लाहों की जीविका तो गंगातट से ही थी; वे कहां जाते? उनके साथ दो-तीन कहारों के भी घर बच रहे थे। मधुबन की दरिद्रता में उसकी बड़ी विधवा बहन सहायक हुई। उसे मधुबन का हल चलाना पसन्द न था। वह मलिया और रामदीन से जो इन्द्रदेव की छावनी में नौकर थे, माधुरी, शैला आदि की बातें सुनती थी। कोई भी स्वार्थ न हो किन्तु अन्य लोगों के कलह से थोड़ी देर मनोविनोद कर लेने की मात्रा मनुष्य की साधारण मनोवृत्तियों में प्रायः मिलती है। राजकुमारी के कुतूहल की तृप्ति भी उससे क्यों न होती?

पूस की चांदनी खिली थी। शैला मधुबन और रामजस के साथ नील-कोठी देखने गई। रास्ते में मधुबन ने बताया कि तहसीलदार ने मेरा सत्यानाश किया। 'मैं किसी दिन इसकी नस तोड़ दूं तो मुझे चैन मिले।' शैला कोठी में पहुँची। उसके मन में बाल्य-काल की स्मृति जग उठी जब वह अपनी माता जेन से इस कोठी की बातें सुनती

थी ।—शैला रामनाथ से संस्कृत सीखने लगी । इन्द्रदेव शैला के बारे में बड़े चिन्तित थे । घर के लोग उसे वेश्या से अधिक नहीं समझते थे । इन्द्रदेव चाहते थे उनका और शैला का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाए । लेकिन शैला ने कहा कि अभी इस प्रश्न पर विचारने की आवश्यकता नहीं है । बातों-बातों में शैला ने कहा कि मेरा विचार था कि शेरकोट में बैंक खुलना चाहिए । लेकिन ज्ञात हुआ कि इसके कारण मधुबन बेचारा अपनी झोंपड़ी से भी निकाल दिया जायगा। अनवरी वहीं थी । बोली—"मधुबन ! हां, वही न, जो उस दिन रात को आपके साथ था, जब आप नील-कोठी से आ रही थीं ? उस पर तो आपको दया करनी ही चाहिए।" यह शरारत भरी बात कह कर अनवरी ने भेद-भरी दृष्टि से इन्द्रदेव की ओर देखा । इन्द्रदेव उठ खड़े हुए ।

एक दिन बूढ़े रामनाथ ने मधुबन की बहन राजकुमारी से मधुबन और तितली के विवाह की चर्चा की । राजकुमारी ने देखा, तितली अब वह चंचल लड़की नहीं रही—उस का रंग-रूप साधारण कृषक बालिका से कुछ अलग अपनी सत्ता बता रहा था । राजकुमारी का हृदय स्निग्ध हो गया था । सुखदेव चौबे राजकुमारी की ससुराल के समीप रहने वाला चिर-परिचित पड़ोसी था । राजकुमारी से हँसी-मजाक कर लेता था । धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन आ चला और राजकुमारी बनाव-सिंगार पर ध्यान देने लगी । मधुबन को सन्देह हुआ और वह नील-कोठी में चला गया । वह नहीं चाहता था कि अपने संदेह की परीक्षा करके कठोर सत्य का नग्न रूप देखे । गाँव में पंडित दीनानाथ की लड़की का ब्याह था । राजकुमारी ने खूब सज-धज के साथ वहां जाने की तैय्यारी की । शादी के वातावरण और हँसी-दिल्लगी से राजकुमारी के नस-नस में बिजली-सी दौड़ गई । बाहर मैना वेश्या गा रही थी, 'लगे नैन बालेपन से।' राजकुमारी विचलित हो उठी । वहां से रात ही में शेरकोट लौट जाने के विचार से वह चौबे के साथ निकल पड़ी । नील-कोठी में मधुबन और तितली का ब्याह हो गया। विवाह के समय वाट्सन साहब, इन्द्रदेव, शैला, अनवरी, चौबे आदि मौजूद थे । राजकुमारी सम्मिलित नहीं हुई। नील-कोठी में बैंक और अस्पताल खुल गया । उन्हीं दिनों माधुरी के पति श्यामलाल धामपुर आए हुए थे । उसके साथ कलकत्ते का पहलवान रामसिंह भी था। उसने गांव के सभी लोगों को कुश्ती के लिए चुनौती दी। मधुबन ने उसे पटक दिया । इधर मधुबन ने कुछ ऐसे काम किए कि उसकी बदनामी होने लगी। मैना वेश्या को हाथी-द्वारा कुचले जाने से बचा लिया तो घर में उठा लाया। सुखदेव चौबे को पीटा । इधर इन्द्रदेव वकालत की प्रैक्टिस करने बनारस चले

गये तो तहसीलदार का अत्याचार बढ़ गया। मधुबन मे शेरकोट और बनजरिया बकाया लगान में छीन ली गई। राजकुमारी तहसीलदार से मुकदमा लड़ने की गरज से महन्त जी के पास कुछ रुपया उधार लेने गई। महन्त वासना का शिकार होकर उसकी ओर बढ़ा। राजो चिल्लाई। मधुबन बाहर ही छिपा हुआ खड़ा था। क्रोध में चहार-दीवारी फांद कर भीतर घुस आया और महन्त का गला घोंट दिया। थैली और प्राण लेकर भागा और मैना के पास जा पहुँचा। सुबह वहा से निकल पड़ा और चुनार चला गया। मैना मैना के पास रह गया। उसे वहा रामदीन मिल गया। दोनों कलकत्ता पहुँचे और कोयला ढोने का काम शुरू किया। वह काम छोड़ दिया तो पाकेट-मारो के एक दल के सरदार, बीरू, ने उन्हे अपनी नौकरी मे रख लिया। मधुबन उनका रिक्शा चलाता था और रामदीन डेरे मे काम करता था। एक दिन मधुबन रिक्शा लिए बाजार मे जा रहा था कि मैना के साथ श्यामलाल सवार हो गए। श्यामलाल अनवरी को कलकत्ता ले भागा था। मैना और श्यामलाल नशे में चूर थे। श्यामलाल ने मधुबन को रिक्शा खीचने के लिए बुरी तरह कहा। मधुबन भड़क उठा। उसने श्यामलाल को एक लात दी और वह गों-गों करता लुढ़क गया। उसकी पसली चरमरा गई। मधुबन पकड़ा गया और उसे दस वर्ष सपरिश्रम कठोर कारावास-दण्ड मिला।

मधुबन जब महन्त की हत्या कर गाव से भागा था, तितली गर्भवती थी। इस अवधि मे तितली का शिशु मोहन बढ़ने लगा। तितली शैला के साथ ग्राम-पाठशाला, ग्राम-संगठन आदि कार्यों मे हाथ बंटाती थी। शैला का पिता स्मिथ नील-कोठी मे अपनी पुत्री से आ मिला। श्यामदुलारी ने शेरकोट की जमीन माधुरी के नाम कर दी। शैला को वह बहुत चाहने लगी थी। एक दिन उसने माधुरी से कहा कि यह तेरी भाभी है और शैला के सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया। शैला बहुत पहले हिन्दू धर्म मे दीक्षित हो गई थी। उसने बाबा रामनाथ से संस्कृत भी पढ़ी थी। बाद में शैला का विवाह इन्द्रदेव से हो ही गया और वह बनारस मे रहने लगी। यहीं तितली अपने बच्चे के साथ आ मिली। कई दिन पीछे तितली, मोहन और शैला ने बनजरिया को फिर से आबाद करने की योजना भी तैय्यार की। राजो और तितली में मेल हो गया था।—मधुबन सद्व्यवहार के कारण दो वर्ष पहले ही जेल से छूट गया। वह सीधा बीरू के डेरे पर गया। पर वह नहीं था। वह ननी गोपाल के साथ हरिहर क्षेत्र आया। मेले में उसकी मुलाकात तहसीलदार, मैना और महन्त से हो गई। तीनो एक हाथी के पैरो में कुचले

गए। मधुबन घर की ओर चल पड़ा। इधर धामपुर की हालत ही बदल गई थी। तितली का पुत्र मोहन १४ वर्ष का हो गया था। एक दिन उसे ज्वर आ गया। लड़के ने पूछा—"मां, मेरे पिता जी हैं ना?" "हां बेटा, मेरा सिन्दूर नहीं देखता।" तितली ने पुत्र को सान्त्वना दी, पर आप मन ही मन सोचने लगी, इतने दिन बीत गए, क्या मधुबन अब घर लौट कर नहीं आएगा? कब तक प्रतीक्षा करूँ? छाती में झँझरियां बन गई है।....अब तो गंगा माता की गोद ही है....। तितली उड़ जाए। उसने पागलों की तरह मोहन को प्यार किया। उसे चूम लिया। अचेत मोहन करवट बदल कर सो रहा। तितली ने किवाड़ खोला। आकाश का अन्तिम कुसुम दूर गंगा की गोद में चू पड़ा और सजग होकर सब पक्षी एक साथ कलरव कर उठे। तितली ने देखा, सामने एक चिरपरिचित मूर्त्ति! जीवन-युद्ध का थका हुआ सैनिक मधुबन विश्राम-शिविर के द्वार पर खड़ा था।

[दे० काशी[११]]

शैली का नमूना—

तितली एकान्त में बैठकर आज रोने लगी! मधुबन आवेंगे? यह कैसी दुराशा उसके मन में आज भीषण रूप से जाग उठी। पुरुषोचित साहस से उसने इन चौदह बरसों में संसार का सामना किया था। किसी से न झुकने की टेक, अविचल कर्त्तव्य-निष्ठा और अपने बल पर खड़े होकर इतनी सारी गृहस्थी उसने बना ली। पर क्या मधुबन लौट आवेंगे? आकर उसके संयम और उसकी साधना का पुरस्कार देंगे? एक स्नेहपूर्ण मिलन उसके फूटे भाग्य में है?

निष्ठुर विधाता! बचपन अकाल की गोद में! शैशव बिना दुलार का बीता! यौवन के आरम्भ में अपने बाल-सहचर 'मधुवा' का थोड़ा सा प्रणय-मधु जो मिला, वह क्या इतना अमर कर देने वाला है कि यंत्रणा में पीड़ित होकर वह अनन्तकाल तक प्रतीक्षा करती हुई जीती रहेगी?

उसे अपनी संसार-यात्रा की वास्तविकता में सन्देह होने लगा। वह क्यों इतनी धूमधाम से हलचल मचाकर संसार के नश्वर लोक में अपना अस्तित्व सिद्ध करने की चेष्टा करती रही? जियेगी, तो झेलेगा कौन? यह जीवन कितनी विषम घाटियों से होकर धीरे-धीरे अन्धकार की गुफा में प्रवेश कर रहा है। मैं निरवलम्ब होकर चलने का विफल प्रयत्न कर रही हूँ क्या?

वह रोने लगी थी। हां रोने में आज उसे सुख मिला था।

किन्तु वह रोने वाली स्त्री न थी। वह धीरे-धीरे शान्त होकर प्रकृतिस्थ होने लगी थी। सहसा दौड़ता हुआ मोहन आया। पीछे राजो थी। वह कह रही थी—देखा ना, रोटी और दूध दे रही हूँ। यह कहता है, आज तरकारी क्यों नहीं। अपने बाप की

तरह यह भी मुझको खाने के लिये तंग करता ही है।

मोहन तितली के पास आ गया था। तितली ने उसके सिर पर हाथ रखा, वह जल रहा था। उसने कहा—मां, मुझे भूख नहीं है।

अरे तुझको तो ज्वर हो रहा है! —तितली ने भयभीत स्वर मे कहा।

क्या? तब तो इसको आज खाने को नहीं देना चाहिये।

यह कहकर राजो चली गई, और मोहन मां की गोद मे भयभीत हरिणशावक की तरह दुबक गया।

तितली ने उसे कपड़ा ओढाकर अपने पास सुला लिया। वह भी चुपचाप पड़ा मां का मुह देख रहा था। दीप-शिखा के स्निग्ध आलोक मे उसकी पुतली सामना पड़ जाने पर, चमक उठती थी। तितली उसके शरीर को सहलाती रही, और मोहन उसके मुह को देखता ही रहा।

सो जा बेटा!—तितली ने कहा।

नीद नही आ रही है। —मोहन ने कहा। उसकी आंखो मे जिज्ञासा भरी थी।

क्या है रे?—तितली ने दुलार मे पूछा।

मा, मैने पेड़ के नीचे, आज सन्ध्या को एक विचित्र...।

क्या तू डर गया है? पागल कही का!

नही मा, मैं डरता नही। पर शेरकोट के पास वह कौन बैठा था। मेरे मन मे जैसे बड़ा.....

जैसे बडा, जैसे बडा! क्या बड़े खायेगा? तू भी कैसा लडका है। साफ-साफ क्यों नही कहता?—तितली का कलेजा धक्-धक् करने लगा।

मा, मै एक बात पूछूं?

पूछ भी—तितली ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा। उसका पसीना अपने अंचल मे पोछकर वह उसकी जिज्ञासा मे भयभीत हो रही थी।

मा!......... ..

कह भी! मुझे भी जीते जी मार न डाल! मेरे लाल! पूछ! तुझे डर किस बात का है? तेरी मा ने संसार मे कोई ऐसा काम नही किया है कि तुझे उसके लिये लज्जित होना पड़े।

मा, पिताजी!...

हा, बेटा, तेरे पिताजी जीवित है। मेरा सिन्दूर देखता नहीं?

फिर लोग क्यों ऐसा कहते हैं?

बेटा! कहने दे, मैं अभी जीवित हूँ। और मेरा सत्य अविचल होगा तो तेरे पिताजी भी आवेंगे।

तितली का स्वर स्पष्ट था। मोहन को आश्वासन मिला। उसके मन में जैसे उत्साह का नया उद्गम हो रहा था। उसने पूछा—मां, हमी लोगों का शेरकोट है न?

हा, बेटा शेरकोट तेरे पिताजी के आते ही तेरा हो जायेगा। कल मैं शैला के पास जाऊँगी। तू अब सो रह।

तितली को जीवन भर मे इतना मनोबल कभी एकत्र नहीं करना पड़ा था। मोहन का ज्वर कम हो चला था। उसे झपकी आने लगी थी।

तितली[२]—रामनाथ की पोषित कन्या, जिसके माता-पिता दुर्भिक्ष में मर गए थे। लम्बा छरहरा अंग, गोरी पतली उंगलियां, सहज उन्नत ललाट, कुछ खिंची हुई भौंहें और छोटा-सा पतले-पतले अधरों वाला मुख। मधुबन से उसका प्रेम विवाह में परिणत हुआ। मधुबन के पलायन के उपरान्त उसकी धर्मपरायणता और दृढ़ता, उसका स्वावलम्बन और स्वाभिमान का ठीक-ठीक परिचय मिला। इन्द्रदेव के शब्दों में "तितली वास्तव में महीयसी है, गरिमामयी है।" उसने व्यक्तिगत दुःख और चिन्ता को सामाजिक दायित्व में बाधक नही होने दिया। कन्या-पाठशाला द्वारा वह समाज-अभिशप्त लड़कियों का पालन-पोषण करती तो उसका विरोध किया गया, पर वह अपने कर्तव्य में डटी रही। इस व्यस्त जीवन में भी वह मधुबन को नहीं भूली। "संसार भर उनको चोर, हत्यारा और डाकू कहे किन्तु मैं जानती हूँ कि वे ऐसे नहीं हो सकते।. . .मेरे जीवन का एक-एक कोना उनके लिए, उस स्नेह के लिए संतुष्ट है।" इस प्रेमनिष्ठा का फल उसे मिला—मधुबन लौट आया। तितली पर्वत की तरह अटल, सागर की तरह गम्भीर और पृथ्वी की तरह सहिष्णु है। —**तितली**

तिब्बत—रेशमी कपड़े के लिए प्रसिद्ध। —**ध्रुवस्वामिनी, २**

[भारत के उत्तर में, किन्नर देश ; समुद्रतल से १४,५०० फुट ऊँचा पठार। राजधानी लासा।]

तिलक—सुलतान महमूद का अत्यन्त विश्वास पात्र हिन्दू-कर्मचारी। अपने बुद्धिबल से कट्टर यवनों के बीच में अपनी प्रतिष्ठा दृढ़ रखने के कारण सुलतान मसऊद के शासन-काल में भी आदृत था।. . .सुलतान महमूद की लूटों की गिनती करना, उस रक्त-रंजित धन की तालिका बनाना, हिन्दुस्तान के ही शोषण के लिए सुलतान को नई-नई तरकीबें बताना यही उसका काम था। वह महत्त्वाकाक्षा में पड़कर अपनी सद्वृत्तियां खो बैठा। उसमें देश-प्रेम की भावना रहते हुए दब गई थी। वह बलराज और फीरोजा के प्रति सहानुभूति-पूर्ण है। —(**दासी**)

[ऐतिहासिक पात्र, नाई का बेटा था, विजेता और प्रशासक हो गया था।]

तिष्यरक्षिता—कुनाल के सौन्दर्य पर मुग्ध। उसके प्रेम की भिखारिन। अशोक की मुद्रा चुरा ली। कुनाल द्वारा 'तिरस्कृत' होने का बदला लेना चाहा पर असफल रही। उसे अशोक की आज्ञा से जीवित समाधि दी गई। —(**अशोक**)

[अशोक की छोटी रानी जिससे महाराणी असन्धिमित्रा की मृत्यु के बाद अशोक ने विवाह किया। बड़ी चतुर, बुद्धिमती और सुन्दर पर वासना-हत महिला।]

तुकनगिरि—सिद्धों की रहस्य-सम्प्रदाय की परम्परा में तुकनगिरिऔर रसालगिरि आदि ही शुद्ध रहस्यवादी कवि लावनी

में आनंद और अद्भयता की धारा बहाते रहे। —(रहस्यवाद, पृ० ३९)

[मिर्जापुर-निवासी लावनी बाज; रसालगिरि इनके शिष्य थे। दे० रसाल-गिरि।]

तुम—आत्मा के स्वरूप की व्याख्या में कविता। 'परम प्रकाश हो, स्वयं ही पूर्णकाम हो,' 'खेद भयरहित, अभेद, अभिराम हो।' 'कारण तुम्हीं हो, अब कर्म हो रहे हो तुम्हीं,' रमणीय, रोम-रोम में रम रहे, सुमन और मकरन्द में, उषा और हिमालय में सर्वत्र तुम हो। तुम नित्य रूप बदलते रहते हो, बंधन में बंध कर उसे फिर तोड़ देते हो। दीन, दुखी, श्रमी, भूले-भटके सब के साथ सहानुभूति, सबकी सेवा करते चलो, यही आत्मा का आत्मा से सम्बन्ध है। —झरना

तुम कनक-किरण के अन्तराल में लुक-छिप कर चलते हो क्यों?—सुवासिनी द्वारा गाये हुए इस गीत में जीवन, परि-स्थिति और प्रेम का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यौवन के घन से रस-कण बरस रहे हैं और लाज से भरा सौन्दर्य मौन है। ओठों पर मुस्कान है, आंखों में यौवन का नशा है। मौन रहने से क्या ऐसा यौवन लुक-छिप कर रह सकता है?

लज्जा से भरे हुए यौवन का कितना सजीव चित्र है। यह गीत प्रसाद के उत्तम गीतों में से है। —चन्द्रगुप्त, १-२

तुम्हारा स्मरण—इन्दु, कला ६, खंड १, किरण १, पौष १९७१ में प्रकाशित लघु कविता। कवि की समस्त वेदनाएँ प्रिय के स्मरण मात्र से विस्मृत हो जाती हैं और उसे विश्वबोध होता है। विश्व में सर्वत्र वही दिखने लगता है। कवि उसी की प्रसन्नता में प्रसन्न है। वह उसे जितना दूर किया चाहता है उतना ही वह निकट होता है। —कानन-कुसुम

तुम्हारी आँखों का बचपन—गीत। व्यतीत जीवन का अल्हड़पन, कुलेल, वह हास, कहां है? तब तो सरस वसन्त था, दिगन्त मधुर किलकारियों से गूंजता था, सुकुमार जीवन रस में तिरता था। वह सरलता, वह आत्मीयता क्या आज भी है? आज भी है क्या मेरा धन? —लहर

तुम्हारी मोहनी छवि पर निछावर प्राण हैं मेरे—अखिल भूलोक बलिहारी मधुर मृदुहास पर तेरे।

शैलेन्द्र के प्रति श्यामा का प्रेमोद्गार—दो ही पंक्तियां। थियेटर की धुन है। —अजातशत्रु, २-४

तुरकावषेय—जनमेजय का ऐन्द्रमहाभिषेक कराने वाला। "इसका लकड़दादा कवष एक दासी का पुत्र था, इसीलिए ऋषियों ने भोजन के समय उसे अपनी पंक्ति से निकाल दिया था।"

—जनमेजय का नाग-यज्ञ

[भागवत में उल्लेख]

तुरुष्क पति = तुरुक सुलतान। दे० अलाउद्दीन।

तुर्क देश—दे० गान्धार। —महाराणा का महत्त्व

तुर्किस्तान—तुर्क अहमद की सेना में थे।
—(दासी)

तुर्की—हिजरत का आन्दोलन।
—(सलीम)

[एशिया के पश्चिमोत्तर में एक देश। तैमूर, बाबर और इनके वंशज मुगल इसी देश के थे।]

तुलसी—तुलसी साहब की 'जिन जाना तिन जाना नहीं' इत्यादि को देखकर तुरन्त कहना कि यह शाम (सेमेटिक) देश से आयी है, सत्य से दूर है।
—(**रहस्यवाद, पृ० ३५**)

[पूना के युवराज थे और नाम था श्यामराव। विरक्त होकर हाथरस, जिला अलीगढ़, में रहने लगे। इनका 'घट रामायण' प्रामाणिक ग्रन्थ है। समय १८२०-१८९९ वि०।]

तुलसीदास[१]—रामायण की विभूति तुलसी के दलों मे छिपी है।
—(**आरम्भिक पाठ्यकाव्य, पृ० ८०**)

महाकवि ने आदर्श, विवेक और अधिकारी-भेद के आधार पर युग-वाणी रामायण की रचना की।
—(**वही, पृ० ८१**)

इन्होंने कबीर के निर्गुण राम के विरुद्ध साकार, सक्रिय और समर्थ पौराणिक राम की अवतारणा की।
—(**वही, पृ० ८२, ८३**)

शुद्ध आदर्शवादी महाकवि तुलसीदास का रामायण काव्य न होकर धर्मग्रन्थ बन गया है। —(**वही, पृ० ८४**)

तुलसीदास[२]—सूरदास के स्वर में—दीनानाथ करी क्यों देरी ?—सच्ची विनय थी, वही जो तुलसीदास की विनय-पत्रिका में ओत-प्रोत है। —(**बेड़ी**)

तुलसीदास[३]—तुलसी ने सगुण समर्थ राम का वर्णन किया, पर उस समय हिन्दी में रहस्यवाद की इतनी प्रबलता थी कि तुलसीदास को भी रहस्यात्मक संकेत (जैसे 'अस मानस मानस चख चाही') रखना पडा। —(**रहस्यवाद, पृ० ३८**)

तुलसीदास[४]—दे० महाकवि तुलसीदास।

[गोस्वामी तुलसीदास का जन्म सं० १५५४ के लगभग सोरों अथवा, राजापुर में बताया जाता है। काशी, प्रयाग और अयोध्या में रहे। इनकी ख्याति रामभक्ति की व्याख्या में समन्वयवादी दृष्टिकोण से लिखे 'रामचरित मानस' के कारण अधिक है। इसके अतिरिक्त आपने 'विनय पत्रिका', 'कृष्णगीतावली', 'दोहावली', 'कवितावली', आदि अनेक ग्रंथ लिखे। मृत्यु काशी में, १६८० वि०।]

तू खोजता किसे, अरे आनन्दरूप है—साधु प्रेमानन्द का गीत जिस में संसार को सत्य, कर्मक्षेत्र, और स्वर्ग कहा है। सेवा और परोपकार से शान्ति की स्थापना होती है। ईश्वर क्या है, यही विश्व ; और विश्व से प्रेम करना ईश्वर से प्रेम करने का पर्य्याय है।
—**विशाख, १-४**

तृष्णा—बूढ़ा हो चला, पर मन बूढ़ा न हुआ ! बहुत दिनों तक तृष्णा को तृप्त करने पर भी तृप्ति नहीं होती।

तेरा प्रेम—इन्दु, कला ५, खंड २, किरण ४, अक्तूबर '१४ में प्रकाशित कविता। प्रेम को हलाहल और मृगमरीचिका कहा है।

तैत्तिरीय उपनिषद्—आत्मा आनन्दमय है। विवेक और विज्ञान में भी आनन्द का अधिक महत्त्व है। प्रेम और प्रमोद आनंद के दो पक्ष है।

—(**रहस्यवाद, पृ० २४-२५**)

वरुण के पुत्र भृगु के आनन्दसिद्धान्त का उपलब्धि के फलस्वरूप संतुष्टि की कथा वर्णित है। —(**रहस्यवाद, पृ० २४**)

[कृष्ण यजुर्वेद का उपनिषद्; गद्य-ग्रंथ जिसमें ब्रह्म के साकार रूप की व्याख्या की गई है। भृगु को ज्ञान पड़ा कि भोजन ब्रह्म है क्योंकि इसी से सब का जीवन है। फिर उन्होंने श्वास को, फिर बुद्धि को और अन्त में आनन्द को ब्रह्म माना।]

तैमूर—हुमायू तैमूर का वंशधर था।

—(**ममता**)

[बरलास वंश का तुर्की विजेता जो १३९८–९९ ई० में भारत पर चढ़ आया। दिल्ली नष्ट हो गई। हुमायू का बाप बाबर पिता की ओर से तैमूर की पांचवीं पीढ़ी में और माता की ओर से चंगेज खां की दसवीं पीढ़ी में था।]

त्याग—तामस त्याग से सात्त्विक ग्रहण उत्तम है। (चाणक्य) —**चन्द्रगुप्त, ३-२**

श्रेय और प्रेय के लिए मनुष्य को सब त्याग करना चाहिए। (चाणक्य)

—**चन्द्रगुप्त, ४-८**

जिस वस्तु को मनुष्य दे नहीं सकता, उसे ले लेने की स्पर्द्धा से बढ़कर दूसरा दंभ नहीं।

—त्याग का ही दूसरा नाम महत्त्व है। प्राणों का मोह त्याग करना वीरता का रहस्य है। (स्कन्दगुप्त)

—**स्कन्दगुप्त, २-१**

—क्षमा और उदारता वही सच्ची है जहां स्वार्थ की भी बलि हो। (विजया)

—**स्कन्दगुप्त, ४-१**

त्रिजटा—मुद्गल अपनी पत्नी के बारे में कहता है कि वह सीता की सखी, मन्दोदरी की नानी त्रिजटा है। —**स्कन्दगुप्त, ३**

[अशोक वाटिका में जानकी के साथ रहने वाली राक्षसी। इसके हृदय में सीता के प्रति विशेष अनुराग और पक्षपात था।]

त्रिपिटक—दे० साची। —(**आंधी**)

[बौद्धों का पालि-ग्रन्थ जिसमें बुद्ध की शिक्षाएँ संगृहीत है और जो विनय, सुत्त और अभिधम्म नाम के तीन भागों में विभक्त है। अशोक के पुत्र महेन्द्र इसको तीन पिटकों (पिटारों) में बांध कर लंका ले गये थे।]

त्रिपुर[1]—

यही त्रिपुर है देखा तुमने
तीन बिन्दु ज्योतिर्मय इतने...इत्यादि

—**कामायनी, रहस्य, पृ० २७२**

[इच्छा, ज्ञान, क्रिया, तथा स्वप्न, स्वाप, जागरण आदि त्रितय अवयवों को त्रिपुर कहा जाता है और इस त्रितय-पुरीया शक्ति को त्रिपुरा कहते हैं। दे० अगली टिप्पणी भी।]

त्रिपुर² (दाह)—दे० भरत।

[मयदानव ने स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वी लोकों में असुरों के लिए नगर बसाये, परन्तु असुर वहां अधर्माचरण करने लगे। शिव ने उन्हें नष्ट कर दिया। देवासुर शत्रुता का यहीं से आरम्भ होता है।]

त्रिपुरारि— —**प्रेमराज्य, उत्त०**

दे० शिव।

त्रिविक्रम—वेद का एक विद्यार्थी।

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ**

त्रिवेणी—कुम्भ का मेला।

—**कंकाल, १-१**

त्रिशङ्कु—रघुकुल तिलक। विशिष्ठ-पुत्रों द्वारा अभिशप्त होकर चाण्डालत्व को प्राप्त हुआ। विश्वामित्र की तपस्या के बल से सदेह स्वर्ग को चला था कि देवराज ने रोक दिया और वह विश्वामित्र के नवकल्पित एक नक्षत्र में रहने लगा। —**(ब्रह्मर्षि)**

[सूर्य्यवंशी राजा, हरिश्चन्द्र का पिता।]

थ

थानेसर—थानेसर के एक कोने मे एक साधारण सामन्त-वंश ने गुप्त सम्राटों से सम्बन्ध जोड़ा और उनको माननीय पद से हटाकर हर्षवर्धन उत्तरापथेश्वर बन गया था। मंगल और विजय भारतीय इतिहास का अध्ययन करते हुए गुप्तवंश की चर्चा कर रहे थे। —**कंकाल, १-६**

[दे० स्थाणीश्वर।]

द

दण्डि (दण्डी)—काव्य के प्राचीन आलोचक। दे० कला³। भामह के अनुयायी, जिन्होंने रीति की प्रतिष्ठा की।

—**(रस, पृ० ४२)**

दे० भामह, कालिदास।

[काव्यादर्श के रचयिता; कवि, गद्यकार और आलोचक; समय छठी शती।]

दधीचि—दे० बन्धुवर्मा।—**स्कन्दगुप्त, २**

'सुना है दधीचि का वह त्याग
हमारी जातीयता का विकास'। (गीत)

—**स्कन्दगुप्त, ५**

[स्कन्द, शिव आदि अनेक पुराणों में वर्णित ऋषि जिसने असुरों के संहार के लिए इन्द्र को अपनी हड्डियां अर्पित कर दीं जिनसे धनुष बनाया गया। इनका आश्रम सरस्वती तट पर था।]

दम्भ—इसका सिद्धान्त है—स्वर्ण के आश्रय में ही संस्कृति और धर्म बढ़ सकते हैं। उपाय जैसे भी हों, उनसे सोना इकट्ठा करो; फिर इसका सदुपयोग करके हम प्रायश्चित कर लेंगे। —**कामना**

दयानन्द—उन दिनों जब पं० रामनाथ काशी में पढ़ता था, काशी की पंडित-मंडली में स्वामी दयानन्द के आजाने से हलचल मची हुई थी। —**तितली**

[आर्य समाज के प्रवर्तक, वेदादि शास्त्रों के महापंडित, सुधारक, बाल-ब्रह्मचारी, तपस्वी ; जन्मभूमि गुजरात; समय १८२५–१८९४ ई०।]

दरिद्रता—देवी दरिद्रता सब पापों की जननी है, और लोभ उसकी सबसे बड़ी संतान है। —**कामना, २-७**

—दरिद्रता और लगातार दुःखों से मनुष्य अविश्वास करने लगता है। (अमरनाथ) —(**नीरा**)

—कंगाल के मन में प्रलोभनों के प्रति कितना विद्वेष है! क्योंकि वह उनसे सदैव छल करता है—ठुकराता है। (**कपिंजल**) —(**व्रतभंग**)

दर्शन—इन्दु, कला ६, खंड २, किरण २, अगस्त १९१५ में प्रकाशित लघु कविता। अतुकान्त। निर्मल जल पर सुधा-भरी चन्द्रिका हंस रही थी। मेरी नाव बिछल पड़ी। नीरव व्योम में वंशी की स्वरलहरी गूंज रही थी। 'नौका मेरी द्विगुणित गति से चल पड़ी।' किसी के मुख की छवि ने नाव को किनारे पर खींच लिया और उस मोहन-मुख का दर्शन होने लगा। —**झरना**

दलित कुमुदिनी—इन्दु, कला ४, खंड १, किरण ५, मई १९१३ में सर्वप्रथम प्रकाशित २० पंक्तियों की तुकान्त कविता। सुन्दर सरोवर में कुमुदिनी विकसित हो रही थी, चारों ओर उसका सौरभ बिखर रहा था। अकस्मात् किसी स्वार्थी मतवाले हाथी ने आकर उसे पददलित कर दिया और उसका सौन्दर्य नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। 'पड़ी कण्टका-कीर्ण मार्ग में, कालचक्र-गति न्यारी है।' —**कानन-कुसुम**

दशकुमार चरित—दे० कथासरित्सागर[१]।

[दण्डी-कृत संस्कृत उपन्यास जिसमें नरवाहनदत्त और उसके साथियों के आत्मचरित वर्णित हैं।]

दशपुर—दशपुर की समस्त सेना सीमापार जा चुकी है। —**स्कन्दगुप्त, १**

[मालवा की प्राचीन राजधानी। वर्तमान मदोसर।]

दशरथ—दे० राम। —**कंकाल**

[अयोध्या के प्राचीन सम्राट्, अज के पुत्र, रामचन्द्र के पिता।]

दशाश्वमेध—कहानी सुनाने वाला दशाश्वमेध की ओर जाता तो सूरदास का प्रौढ़ स्वर—दीनानाथ करी क्यों देरी? —उसके कानों में पड़ता। —(**बेड़ी**)

[काशी के ५० घाटों में से एक। कहते हैं ब्रह्मा ने यहां दस बार अश्वमेध-यज्ञ किया था।]

दाण्ड्यायन—एक तपस्वी, दार्शनिक; इन्होंने भविष्यवाणी की थी कि चन्द्रगुप्त भारत के सम्राट् होंगे। —**चन्द्रगुप्त, १-११**

[तक्षशिला में सिकन्दर ने जिन व्यक्तियों से भेंट की उनमें दंडमिस प्रमुख था। दंडमिस के अनेक शिष्य थे। उनमें से एक कालानास नाम के शिष्य को सिकन्दर अपने साथ ले गया था।]

दाता सुमति दीजिए—वासवी की छोटी-सी प्रार्थना। हे भगवन्, मनुष्य

को सद्‌बुद्धि दो। उसके हृदय में करुणा का संचार करके ज्ञान का बीज अंकुरित करो। —अजातशत्रु, २-६

दामिनी—कुलपति वेद की सतृष्ण पत्नी ; उल्का-सी चंचल रमणी जो विवेकशून्यता के कारण विषय-वासना की मृगतृष्णा में भटकती फिरती है। वह उत्तंक को कामोत्तेजित करना चाहती है। प्रेम का प्रतिदान न पाकर वह प्रतिशोध के लिए कटिबद्ध हो जाती है। वह तक्षक तक पहुँचती है। यहां उसका विवेक जाग्रत होता है। वह निर्भय होकर अश्वसेन को फटकार देती है और पति से अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगती है। वह गिरकर भी उभर आती है और अपनी दुर्बलताओं पर विजय पा लेती है। अन्त में उसी के प्रभाव से उत्तंक भी नागयज्ञ से विरत होता है।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ

दाम्पत्य जीवन—

निम्नलिखित का सफल :

इन्द्रदेव—शैला
कलावती—श्यामसुन्दर
जयमाला—बन्धुवर्मा
तितली—मधुबन
प्रेमा—नन्दराम
रामेश्वर—मालती
वपुष्टमा—जनमेजय
वासवी—बिम्बसार
शक्तिमती—प्रसेनजित
शीला—सोमश्रवा
सरमा—वासुकि

निम्नलिखित का असफल :

इन्दो—ब्रजराज
किशोरी—श्रीचन्द
छलना—बिम्बसार
झाड़ूवाला (एक घूंट में)
दामिनी—वेद
मनोरमा—मोहन
मनु—कामायनी
मागंधी—उदयन
माधुरी—श्यामलाल
मालती—चन्द्रदेव
रमाल—वनमाला
रामगुप्त—ध्रुवस्वामिनी
रामा—शर्वनाग
लतिका—बाथम

दासी—महमूद गज़नवी के समय की कहानी जिसका वातावरण ऐतिहासिक है। तिलक नाम का एक भारतीय हिन्दू सुल्तान महमूद का विश्वासपात्र होकर गजनी के दरबार में शाही सलाहकार बन गया था। महमूद के बेटे सुलतान मसऊद (जिसके राज्य में पंजाब भी सम्मिलित था) की सेना में बलराज नाम का हिन्दू और अहमद नाम का तुर्क दोनों साथी थे। अहमद लाहौर चला गया और धीरे-धीरे वह यहां का शासक बन गया। फीरोजा नाम की दासी उसकी प्रेमिका थी। पहले तो वह गजनी में ही रह गई, लेकिन बाद में अहमद निआल्तगीन ने उसे थैली भेज कर छुड़वा लिया और वह अहमद के पास चली आई। यहां उसका जीवन

कितना सुखमय था, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। बलराज को भी तिलक ने हिन्दुस्तान भेज दिया। वह बनारस में आया तो उसकी भेंट अपनी प्रेमिका इरावती से हो गई। वह तिलक की बहन थी। म्लेच्छों ने उसे धनदत्त के हाथ बेच दिया था और वह क्रीत दासी की तरह रहती थी। बलराज ने उसे अपनाना चाहा, लेकिन इरावती ने बताया कि वह कलंकिन है और साथ ही धनदत्त ने उस पर कड़ी शर्तें रखी हुई थीं, इसलिए वह कहीं जा नहीं सकती थी। बलराज बहुत हताश हुआ। इन्हीं दिनों अहमद कुछ तुर्क अश्वारोहियों के साथ काशी आया। बलराज से उसकी भेंट हो गई। बाजार में सेठ और तुर्कों के बीच में झगड़ा हो गया। इस रक्तपात में इरावती ही धनदत्त की जान बचा सकी। इरावती और बलराज को लेकर तुर्कों की यह टोली पंजाब की ओर लौट गई। परन्तु फीरोजा के प्रयत्न करने पर भी इरावती ने बलराज को उसके प्रेम का प्रतिदान नहीं दिया। एक दिन अहमद ने उसके साथ छल करना चाहा। उसी दिन फीरोजा इरावती को लेकर निकल खड़ी हुई। —चन्द्रभागा-तट के जाटों ने बलराज के नेतृत्व में गजनी-राज्य में विद्रोह किया। इरावती और फीरोजा दो दलों के बीच फँस गई। बलराज इस युद्ध में घायल हुआ, परन्तु उसका भाला अहमद की छाती के पार हो गया था। उसी समय गजनी से सेना लेकर राजा तिलक पहुँच गया। उसने अपनी बहन इरावती को पहचाना और उसको निस्सहाय भारत में छोड़कर चले जाने की क्षमा मांगी। बलराज जाटों का सरदार बना और इरावती रानी। चनाब का वह प्रान्त इरावती की करुणा से हरा-भरा हो गया; किन्तु फीरोजा की प्रसन्नता की वही समाधि बन गई —और वहीं वह झाड़ू देती, फूल चढ़ाती और दीप जलाती रही। उस समाधि की वह आजीवन दासी बनी रही।

यह है भाग्य का उतार-चढ़ाव। कहानी बहुत सुलझी हुई नहीं है। वास्तव में इसके अन्तर्गत दो कहानियां हैं—एक बलराज और इरावती के प्रेम की और दूसरी अहमद और फीरोजा के भाग्य की। कथावस्तु विच्छृंखल सी है।

[तिलक और निआल्तगीन सम्बन्धी राजनैतिक घटनाएँ ऐतिहासिक हैं।]

दिमित्र—दे० गांधार। —**इरावती**

[बाह्लीक (बेक्टरिया) का प्रसिद्ध यवन विजेता जिसने गान्धार, पंजाब और सिन्ध पर शासन किया—दूसरी शती ई० पू०।]

दिलीप—रघुवंश वह जहाज है— "अनरण्य दिलीप आदि ने जेहि यत्न अनेक सों रच्यो।" —(**अयोध्या का उद्धार**)

[पुराणों के अनुसार भगीरथ के (और कालिदास के अनुसार रघु के) पिता, जिन्होंने कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा करके आशीर्वाद रूप में पुत्र-लाभ

किया। दिलीप को आदर्श राजा माना गया है और उनकी पत्नी सुदक्षिणा को आदर्श रानी।]

दिल्ली[१]—मिरजा जमाल दिल्ली में प्रायः निवास करते थे। नये (विजय) ने जाना कि गाला का सम्बन्ध दिल्ली के राज-सिंहासन से है। —**कंकाल, ३-६**

दिल्ली[२]—शाह आलम सम्राट् था, पर मेंधिया उसके प्रधान रक्षक थे।

—**(गुलाम)**

दिल्ली[३]—देखती थी दिल्ली कैसी विभव-विलासिनी। —**(प्रलय की छाया)**

दिल्ली[४]—चौहान-कुल-भूषण पृथ्वीराज की राजधानी ; जयचंद सोचता था कि यवनों से मिल जाने पर मुझे फिर दिल्ली का राज्य मिल जायगा। यवनों ने इसे हस्तगत कर लिया। —**(प्रायश्चित्त)**

दिल्ली[५]— —**महाराणा का महत्त्व**

दिल्ली[६]— —**(शिल्प-सौन्दर्य)**

दिल्ली[७]—मनोरमा के मायके दिल्ली के निकट ही थे। —**(सहयोग)**

[हस्तिनापुर, कौरव-पाण्डवों की राजधानी थी ; बाद में क्रमशः गौतम-वंश, मयूर-वंश का राज्य रहा। राजा दिलु (दिलीप) ने नया नगर बसाया जिसका नाम दिल्ली पड़ा। तोमर वंश के राजपूतों ने इसका पुनरुद्धार किया। पृथ्वीराज चौहान अन्तिम हिन्दू राजा थे। अलाउद्दीन ने भी नया नगर बसाया था। तुगलकशाह ने तुगलकाबाद और मुहम्मद तुगलक ने आदिलाबाद की नींव रक्खी थी। अंग्रेजों ने नई दिल्ली के भवन बनवाए। दिल्ली सैकड़ों वर्षों से भारत की राजधानी रही है।]

दिवाकर मित्र—एक महात्मा जिसने राज्यश्री का उद्धार किया और हर्ष को सुमति प्रदान की। —**राज्यश्री, ३-२**
[इतिहास में बताया गया है कि वह स्वर्गीय ग्रहवर्मा का बाल-सहचर था।]

दीन दुखी न रहे कोई—नाग-कन्या इरावती की प्रार्थना। हे करुणा सिन्धु भगवन्, कोई दीन-दुःखी न रहे, सब सुखी हों, देश समृद्ध हो, जनता नीरोग हो, जगत् की कूटनीति समाप्त हो, आपस में सहयोग बढ़े ; राजा और प्रजा ढोंग छोड़कर समदर्शी हों। —**विशाख, ३-५**

दीनानाथ—डाक्टर, जिसे विजय के बीमार पड़ने पर मंगल बुला लाया और जिसने बताया कि इसे किसी आकस्मिक घटना से दुःख हुआ है। —**कंकाल, १-७**

दीप—चतुर्दशी। धूसर संध्या चली आ रही थी, अन्धकार बढ़ रहा था, "गिरि-संकट में जीवनसोता मन मारे चुप बैठा था," तब एक छोटा-सा दिया जला, अनुरक्त बीचियां सुनहरी प्रभा में नाच उठीं, सुप्त खग गान करने लगे, और दिया अपना प्रकाश अखिल विश्व पर डालने लगा। इस कविता में छायावादी प्रतीकों का प्रतिनिधित्व है। —**झरना**

दीर्घकारायण—सेनापति बंधुल का भांजा, बाद में कोशल का सेनापति। पहले तो अपने मामा के वध का बदला लेने की सोचता है, परन्तु मल्लिका से उपदिष्ट और प्रभावित होकर यह विचार छोड़

देता है। प्रसेनजित प्रायश्चित करता हुआ इसे सेनापति बना देता है। पर कारायण असन्तुष्ट रहता है। यह विरुद्धक को दूसरे युद्ध में गुप्त सेना द्वारा सहायता करने की सोचना है, पर ऐसा करता नहीं। वह वाजिरा के प्रेमी के रूप में भी प्रगट होता है, पर उसका प्रेम एकांगी और निराधार है—उसमें स्वार्थ और आकांक्षा भी है। उसके चरित्र की रेखाएं पक्की नहीं है। —अजातशत्रु
[इतिहास में बन्धुल को इसका चाचा कहा गया है। दीर्घकारायण की सहायता से विरुद्धक को पुन: अपना पद प्राप्त हुआ।]

दुःख के बाद सुख—

दुःख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात, . . .

इत्यादि —**कामायनी, श्रद्धा, पृ० ५३**

यही दुख सुख-विकास का सत्य

—**कामायनी, श्रद्धा, पृ० ५४**

जीवन की लम्बी यात्रा में
खोये भी हैं मिल जाते
जीवन है तो कभी मिलन है
कट जाती दुख की रातें।

—**कामायनी, निर्वेद, पृ० २१४**

दे० अगले शब्द भी।

दुःखवाद—दे० अधीर न हो चित्त।

—**आजात शत्रु, २-७**

(यह पृथ्वी) जहा लालसा क्रन्दन करती है। दु:खानुभूति हँसती है और नियति अपने मिट्टी के पुतलों के साथ अपना क्रूर मनोविनोद करती है। (श्री नाथ) —**आंधी**

इस करुणा-कलित हृदय में। इत्यादि

—**आंसू, पृ० ७**

जलधर की माला
घुमड़ रही जीवन-घाटी पर—
जलधर की माला।
क्षणिक सुखों पर सतत झूमती
शोकमयी ज्वाला।

—**एक घूंट, पृ० २४-२५**

दुःख की सब रातें जाड़े की रात से भी लम्बी हो जाती है।

—**कंकाल, पृ० ६०**

भगवान् दुःखियों से अत्यन्त स्नेह करते है। दु:ख भगवान् का सात्विक दान है—मंगलमय उपहार है। (कृष्णशरण)

—**कंकाल, पृ० १५६**

दे० 'करुणापुज' —**कानन कुसुम**
'निशीथमयी' — "
'दलित कुसुम'— "
'एकान्त मे' — "

लोग जब हँसने लगते है
तभी हम रोने लगते है
इत्यादि (कलिका)।

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ, २-३**

कल्प-कल्प की भान्ति दुःख को
क्षण भर का सुख भला लगा।
असिधारा पर धरा हुआ सुख,
उससे कैसा नाता है॥

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ, २-१**

संसार ही दु:खमय है। —**देवरथ**

खिली चमेली पर,
'अभिलाषा-मकरन्द सूख जावेगा,
मुरझा जावेगी।

जिस धरणी से उठी हुई थी
उस पर ही गिर जावेगी ॥'
—प्रेमपथिक, पृ० १–३

वैदिक वरुण से लेकर कबीर तक का इतिहास। —रहस्यवाद

प्राणी दुःखों में भगवान् के समीप होता है। (दिवाकर) —राज्यश्री, पृ० ४६

दुःखमय मानव-जीवन है। (राज्यश्री) —राज्यश्री, ३–५

सखी री! सुख किसको हैं कहते?
बीत रहा है जीवन सारा केवल
दुःख ही सहते।
करुणा, कान्त कल्पना है बस;
दया न पड़ी दिखाई। (चन्द्रलेखा)
—विशाख, १–१

अहा स्नेह, वात्सल्य, सौहार्द, करुणा और दया सब विलीन हो गए—केवल क्रूरता, प्रतिहिंसा का आतंक रह गया। इतना दुःखपूर्ण संसार क्यों बनाया मेरे देव! (इरावती) —विशाख ३–५

सब दुःख है, सब क्षणिक है, सब अनित्य है। —(स्वर्ग के खँडहर में,)

दे० दुःख-सुख ; और अगले शब्द भी। तुलना कीजिए आनन्दवाद, वरुण, इन्द्र।

दे० करुणावाद, निराशावाद।

दे० आनन्दवाद (एक घूंट) भी।

दुःख-सुख—संसार दुःख से भरा है। सुख के छींटे कहीं से परम पिता की दया से आ जाते हैं। —कंकाल, पृ० २२८

दुःखावसान—दुःख का अन्धकार, नटराज के अग्नि-ताण्डव से जल रहा है। देखो सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह की नित्य लीला से समस्त आकाश भर उठा है। आत्मशक्ति के विस्मृत विद्युत्कण चमक उठे। उठो, मंगलमय जागरण के लिए विषाद-निद्रा से उठो। (ब्रह्मचारी)। —इरावती, पृ० ५८

तुलना कीजिए 'कामायनी', आनन्द सर्ग। दे० नटराज।

दुखिया[१]—विधवा लड़की जो अपना और बूढ़े बाप का पेट पालने के लिए घास छीलती थी। इसने जमींदार कुमार मोहन सिंह की सहायता की, पर उनके कर्मचारी से डांट खाई और बदनामी भी सही। —(दुखिया)

दुखिया[२]—गरीब के जीवन की करुण कथा। राम गुलाम नाम का एक वृद्ध दीन व्यक्ति अपनी विधवा पुत्री दुखिया के कठोर श्रम से उपार्जित धन पर ही जी रहा था। दुखिया घास काट कर जमींदार के अस्तबल में पहुँचा देती है। एक दिन जमींदार का लड़का मोहनसिंह अपने पचकल्यान घोड़े पर चढ़ कर सैर करने निकला। सहसा घोड़ा बेकाबू हो गया और वह गिर पड़ा। दुखिया ने मोहनसिंह की सहायता की। इस घटना के कारण वह देर करके अस्तबल में पहुँची। दुष्ट नजीब खां, जो पशुशाला का निरीक्षक था, उसे डांटने लगा। निरपराध दुखिया रोती हुई घर लौटी।

कथानक की रूप-रेखा समुचित नहीं है। कहानी का कोई उद्देश्य नहीं जान पड़ता। काव्यात्मकता ने कथात्मकता

को दबा लिया है। भाषा साधारण है।
—प्रतिध्वनि

दुर्योधन—दुर्वृत्त, दुष्ट, अहंकारी कौरव जिसे बुद्धि का अजीर्ण है। —(सज्जन)

[धृतराष्ट्र का गान्धारी से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र। इसे बचपन से ही पांडवों और विशेषतः भीम के प्रति, बड़ी घृणा थी। अपने पिता का उत्तराधिकार पाने के लिए इसने पाण्डवों को वनवास आदि के अनेक कष्ट दिये। उन्हें लाक्ष के घर में जलाना चाहा। राजसूय यज्ञ में इसकी ईर्ष्या जगी तो इसने पाण्डवों को जुए पर बुलाया ; युधिष्ठिर हार गया तो द्रौपदी को अपमानित किया। उन्हें फिर निर्वासित किया और अन्त में महाभारत युद्ध हुआ जिसका फल सारे भारत और आने वाली पीढ़ियों को भोगना पड़ा।]

दुर्वासा—निरंजन मथुरा में नाव पर दुर्वासा के दर्शन को गया।
—कंकाल, ३-३

[अत्रि के पुत्र, क्रोधी ऋषि जो आवेश में शाप दे दिया करते थे। विष्णु भक्त राजा अंबरीष को शाप देकर मुह की खानी पड़ी। दुर्वासा का आश्रम भागलपुर में भी बताया जाता है।]

दुर्वृत्त— (पात्र)। —कामना

दुलरवा—गांव का एक लड़का जो बसन्त-पंचमी के त्योहार पर मँहगू के कहने से ढोल बजाने लगा। —तितली, ३-१

दुलारी—राजमाता पद्मा के पिता की जमींदारी में रहने वाली वेश्या, क की प्रसिद्ध गायिका। —(गु

दुलारे—श्रीनाथ का नौकर। —(आं

दुष्यन्त[१]—दे० इक्ष्वाकु। —(प्रेमरा

दुष्यन्त[२]— —(भर

दुष्यन्त[३]— —(वनमिल

[पुरुवंश के प्रसिद्ध राजा जो कालि के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक अमर हो गए। इन्होंने कण्व के आ में शकुन्तला से गन्धर्व विवाह किय इनके पुत्र भरत से भारत नाम पड़ा

दूर जब हो गया कहीं मन से
महारानी की शिकायत है कि न उसे नहीं चाहता। तन के निकट कर भी मन से दूर हो गया है। स् में मन, तन को छोड़, सैकड़ों यो की सैर कर आता है। —विशाख, ः

देखी नयनों ने एक झलक, वह छ की छटा निराली थी—चार पंक्ति का बन्दिनी चन्द्रलेखा का गीत जि उसने विशाख के प्रेम में बँध जाने स्मृति को जगाया है। निराली छवि झलक को इन आखों ने देखा, विक कमलों के मधु को पीकर मधुप हो गए थे, उनके यौवन की मादक पलकों में भर गई और उनका रूपसौ मुझे मोहित कर गया। —विशाख, १

देव[१]—पालि-प्राकृत के प्रोफेसर जि मंगल पढ़ता है। कल्पित पात्र। —कंक

देव[२]—देव, रसखान, घनआनन्द प्रे रहस्य के साहित्यकार थे—मीरा अ सूरदास के अनुयायी। इनका प्रे

मिलन की प्रतीक्षा में विरहोन्मुख ही रहा। दे० मीरा भी। —(रहस्यवाद, पृ० ३८)

[इटावा के सनाढय ब्राह्मण जिनके रचे ७२ ग्रन्थ बताए जाते हैं जिनमें 'जातिविलास', 'रसविलास' और 'प्रेमचन्द्रिका' प्रसिद्ध हैं। हिन्दी-साहित्य में इनका स्थान ऊँचा है। समय १७३०—१८२४ वि०।]

देवकी—कुमार गुप्त की बड़ी रानी, स्कंद की माता, धर्मपरायण, दयालु, कोमल-हृदय, निर्भीक—"चल रे रक्त के प्यासे कुत्ते, चल अपना काम कर!" घोर मे घोर विपत्ति मे भी वह, 'भगवान् की स्निग्ध करुणा का शीतल ध्यान' करती है। वह शत्रुओं के लिए क्षमाप्रार्थिनी होती है। इस देवोपम उदारता को देखकर धातुसेन ने उसे "आर्यनारी सती" कहा। उसे पति और पुत्र का सुख नहीं मिला। —स्कन्दगुप्त

देवकुमार[1]—चन्द्रदेव का मित्र। —(सुनहला सांप)

देवकुमार[2]—गांधार के अंतिम आर्य-नरपति भीमपाल का वंशधर, शाहीवंश का अंतिम चिह्न, साहसी राजकुमार। —(स्वर्ग के खँडहर में)

दे० देवपाल।

देवगुप्त[1]—सम्राट् बृहस्पतिमित्र का एक वृद्ध बलाधिकृत। —इरावती, १

देवगुप्त[2]—गुप्तवंशीय मालव-नरेश, कामुक और कुचक्री, आचरण-भ्रष्ट, कायर और 'निर्लज्ज प्रवंचक' (राज्यश्री)। ग्रहवर्मा की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर वह कन्नौज और राज्यश्री पर अधिकार कर लेना चाहता है और एक मालिन को अपनी प्रणयिनी बना लेता है। "सुरमा, तुम यौवन, स्वास्थ्य और सौन्दर्य की छलकती हुई प्याली हो।....मेरे जीवन की ध्रुवतारिका।" युद्ध के समय भी वह सुरा और सुन्दरी मे मग्न है। उसका प्रेम रूप और वासना से उद्भूत है। विपत्ति पड़ने पर वह सुरमा को निराश्रित छोड़ कर भाग जाता है और अन्त में राज्यवर्धन द्वारा मारा जाता है। —राज्यश्री

[देवगुप्त की पराजय ६०६ ई० में हुई।]

देवदत्त—नाटक का खल पात्र, कुटिल और चालाक। गौतम बुद्ध का प्रतिद्वन्द्वी भिक्षु जो 'संघभेद करके राष्ट्रभेद करना चाहता है।' गौतम को वह 'ढकोसले वाला ढोंगी' और 'कपटमुनि' समझता है जब कि वह स्वयं यही सब कुछ है। और उसके प्रभाव को मिटाने के लिए राजशक्ति का आश्रय लेता है। षड्यंत्र और वैर सिद्ध करने में वह पटु है। अजातशत्रु और छलना को वही पट्टी पढ़ाता है। वह ऊपर से विरक्त है, भीतर से बड़ा पद-लोलुप और पाखण्डी है। कूट-नीति से वह पहले तो मगध की स्थिति सम्हाल लेता है, पर छलना जब अपने पुत्र के पराजित होने पर सचेत होती है तो उसको बन्दी बना लेती है। वासवी के कहने पर उसे मुक्त किया जाता है पर वह सरोवर में डूब कर मर जाता है। देवदत्त का पापमय चरित्र गौतम

के पुण्यमय चरित्र को और भी उज्ज्वल कर देता है। —अजातशत्रु

[ऐतिहासिक पात्र। पहले गौतम के संघ में था। बाद में चाहता था कि संघ मे अहिंसा की ऐसी व्याख्या कराये जो जैन धर्म मे मिलती हो। उसने अनेक उपायों से बुद्ध की हत्या कराने की की चेष्टा की, पर सफल नहीं हुआ। एक बार वह इसी उद्देश्य से बुद्ध के पास जा रहा था कि जेतवन के एक जलाशय में पानी पीने उतरा पर दलदल में धंस गया।]

देवदास—लेखक। —**इरावती, पृ० ४३**

देवदासी—पत्र-शैली मे एक दुःखान्त प्रेमकथा। पत्र सात है जो अशोक ने अपने मित्र रमेश को लिखे हैं। अशोक दक्षिण में जाकर पुस्तकें बेचता और स्वच्छन्द रूप से विचरण करता था। गोपुरम् के प्रसिद्ध मन्दिर की देवदासी पद्मा उससे हिन्दी सीखने लगी। वहाँ के पण्डा, चिदम्बरम् ने अशोक को मन्दिर मे रहने की सुविधा दे रखी थी। रामास्वामी एक धनी और विलासी युवक था जो पद्मा से प्रेम करता था, परन्तु पद्मा उससे विरक्त हो रही थी एक दिन पद्मा अशोक की बांसुरी सुन रही थी कि रामास्वामी भी आ गया। कहने लगा, "पद्मा आज मुझे मालूम हुआ कि तुम उत्तरी दरिद्र पर मरती हो; चलो।" वह उसे घसीटने लगा कि अशोक ने उसे धक्का दिया और वह तीन सौ फीट नीचे चूर होता हुआ नदी के स्रोत में जा गिरा। वृद्ध पंडा ने अशोक को बचा लिया, परन्तु पद्मा का जीवन-स्रोत ही बदल गया। उस दिन से उसे गाते-नाचते किसी ने नहीं देखा। वह उदास रहने लगी। क्या वह रामास्वामी को चाहती थी? मनुष्य के मन को किसने ठीक-ठीक समझा है?

कहानी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है। मन्दिर और देवदासी के चित्र बहुत स्पष्ट है। कहानी का सुधारवादी उद्देश्य होते हुए भी इसकी रसमयता त्रिकोण प्रेम-कथा के कारण है। कहानी मनोविज्ञान से पुष्ट है। —**आकाशदीप**

देवनन्द—नन्दी ग्राम का दण्डनायक जिसे मालिनी के अपहृत धन का पता लगाने के लिए नियुक्त किया गया था।

—**स्कन्दगुप्त, ४**

देवनन्दन—तहसीलदार ने इन्द्रदेव को बताया कि बनजरिया की भूमि देवनन्दन के नाम थी। उसके मर जाने पर बनजरिया पड़ी रही और रामनाथ ने आसन आ जमाया।.....लावारिसी कानून के अनुसार वह जमीदार की है।

—**तितली, १-४**

देवनन्दन सिहपुर के प्रमुख किसान थे। —**तितली, १-७**

देवनिरंजन—पहले रंजन; साधु बनकर देवनिरंजन। निष्ठुर माता-पिता ने अन्य सन्तानों के जीवित रहने की आशा से इसको हरद्वार में गुरुद्वारे की भेंट कर दिया था, क्योंकि उसकी माता ने सन्तान होने के लिए ऐसी ही मनौती

की थी। वह सचमुच आदर्श ब्रह्मचारी बना। वृद्ध गुरुदेव ने उसकी योग्यता देख उसे १९ वर्ष की ही अवस्था में गद्दी का अधिकारी बनाया। अल्पकाल में वह महात्मा हो गया। किन्तु बाल सखी किशोरी को वर्षों के बाद देख उसकी मनोवृत्तिकामनासिंधुमें डूब गई। किशोरी के साथ उसके अवैध सम्बन्ध ने उसे पतित, दंभी और पाखंडी बना दिया। उसने विजय और यमुना को अपवित्र माना।

यमुना और विजय उसी की पाप-लीला का प्रतिफल हैं। उन्हें अपवित्र घोषित करने वाला निरंजन स्वयं पवित्र होने का दावा करता है। वह अपने को पहचानता है। अन्त में एकान्तवास के लिए वह किसी अज्ञात स्थान में चला गया। अब वह ठीक संन्यासी बना। —कंकाल

देवनिवास—सहानुभूतिपूर्ण युवक, जो समाज की उपेक्षा करके नीरा से विवाह करने को प्रस्तुत हो गया।—(नीरा)

देवपाल—क्षत्रिय, वीर और रक्षक। वह चंगेज खां से प्रतिशोध लेता है। शेख के धर्म में उसका विश्वास नहीं। उसके वचन और कर्म में दृढ़ता है। दे० देवकुमार; भीमपाल भी।

—(**स्वर्ग के खंडहर में**)

[सन् १२२० ई० के आस-पास विद्यमान]

देवबल—मालव गणतंत्र का एक पदाधिकारी। —चन्द्रगुप्त, २-७

देवबाला—१६ पंक्ति की कविता। कृत्रिमता चंचल है। सतरंगी इन्द्रधनुष, नई कोंपल, सुवासित जल, सुमन सौरभ, शिशिर-बिन्दु सब क्षण भर रहते हैं। पर यह देवबाला तो सरलता की मूर्त्ति है, 'शील निधि का यह सुघर मोती है', 'स्नेह नभ की यह नवल तारा है।' कृत्रिमते! इससे दूर रहो। —झरना

देवमन्दिर—इन्दु, कला ३, किरण १, आश्विन '६८ में प्रकाशित कविता। आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध में विचार करने के बाद कवि समस्त विश्व को अदृश्य शक्ति का अनन्त मंदिर मानता है। वह मंदिर इस पंचभौतिक शरीर में ही है।

देवरथ—११वीं-१२वीं शती के बौद्धों के भ्रष्ट धर्माचरण का चित्र। सुजाता बौद्ध मठ में भिक्षुणी थी। जब वह अस्वस्थ थी तब बड़े स्नेह से मठ के वैद्य आर्यमित्र ने उसकी परिचर्या तथा चिकित्सा की। जब वह स्वस्थ हो गई तो एक दिन आर्यमित्र ने अपनी प्रेम-भावना उस पर व्यक्त की। वह इसी उद्देश्य से बौद्ध-संघ में आया था। सुजाता ने संकेत किया कि वह सती नहीं रह गई, वह भैरवी है, संघ के स्थविर द्वारा भ्रष्ट। उसी समय संघ-स्थविर आ गया। उसने 'धर्म-द्रोह' का अभियोग लगाकर सुजाता को प्राण-दण्ड दिया। स्वीकार करते हुए वह बोली—"तो मरूँगी स्थविर! किन्तु तुम्हारा यह काल्पनिक आडम्बरपूर्ण धर्म भी मरेगा।" दूसरे दिन प्रभात में जब देवरथ-यात्रा हुई

तो सुजाता फांद पड़ी और एक क्षण में उसका शरीर देवरथ के भीषण चक्र से पिस उठा। तभी 'कालापहाड़' का आक्रमण हुआ और उसने सारे मंच को ध्वस्त कर दिया।

प्रौढ़ शैली, नाटकीय अन्त, सुन्दर कथोपकथन। कथानक नगण्य पर आकर्षक है। भाषा प्रांजल और साहित्यिक है।

—इन्द्रजाल

[तान्त्रिक साधनाओं में जिस अक्षतयोनि कुमारी कन्या को शक्ति के रूप में उपासना और साधना का माध्यम बनाया जाता था उसे 'योगिनी', 'महामुद्रा', 'भैरवी' की संज्ञा दी जाती थी। कालान्तर में वज्रयानियों, वामाचारियों और चार्वाकों ने मद्यपान, स्त्री-संग आदि का बीभत्स विधान खड़ा किया।]

देवराज[1] —(ब्रह्मर्षि)

देवराज[2] —(सज्जन, ५)

दे० इन्द्र।

देवव्रत—इस गृहयुद्ध में पूज्यपाद देवव्रत के सदृश महानुभाव क्यों सम्मिलित हुए? —**जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-१**

[=भीष्म पितामह।]

देवसेना—बन्धुवर्मा की बहिन (काल्पनिक चरित्र) जिसमें सहिष्णुता, त्याग, उदारता, सरसता, संगीतप्रियता, भावुकता, पावन प्रेमानुभूति, गंभीरता आदि गुणों का समावेश किया गया है। उसकी प्रणय-कहानी बड़ी मर्मस्पर्शी है। उसके चरित्र में साहस, कर्त्तव्यपालन और देश-प्रेम भरा है। आरम्भ ही में 'देश के मान का, स्त्रियों की प्रतिष्ठा का, बच्चों की रक्षा का विचार' उसे परेशान कर रहा है। उसकी भावुकता उसे कर्तव्य की ओर प्रवृत्त करती रहती है और अपने प्रिय के लिए अपनी कोमलतम कामनाओं की आहुति देने को प्रोत्साहित करती है। उसमें निर्लिप्त प्रेम और उत्साह भरा है। प्राण-संकट के समय भी वह 'प्रियतम, मेरे देवता! युवराज! तुम्हारी जय हो' यही मनाती है। स्कन्दगुप्त को वह 'इस जीवन का देवता' और 'उस जीवन का प्राप्य' समझती है। आत्मसंयम, शान्ति और सन्तोष की वह मूर्ति है। सेवा उसका कर्म है। अन्त में वह भीख मांगती है तो भी देश के लिए। —**स्कन्दगुप्त**

देवा = इन्द्रदेव।

देवीदत्त त्रिपाठी—इन्होंने संस्कृत में 'नरहरि-चम्पू' लिखा जिसकी भूमिका में हिन्दी के 'नृसिंह चम्पू' की संक्षिप्त आलोचना की। —**उर्वशी, भूमिका**

देहु चरण में प्रीति—इन्दु, कला ४, खंड २, किरण ३, सितम्बर '१३ में प्रकाशित। इस शीर्षक के अन्तर्गत ब्रजभाषा की चार कविताएँ। कवि का कथन है कि ईश्वर को करुणानिधान, पतितपावन जानकर लोग प्राप्त करना चाहते हैं। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है। पुण्य और पाप जाना नहीं जाता।

देश की दुर्दशा निहारोगे?—यह देवसेना की उस व्यथा का अंकन है जो देशवासियों की विलास-मात्रा की अधि-

कता को देखकर उसे हो रही है, जब कि उन्हें हाथ में करवाल लेना चाहिये।—तुम क्या से क्या हो रहे हो ? अपनी बिगड़ी आप सँवारो। अपनी दीनता पर विचार करो। तुम सो रहे हो, जागो और कुछ कर दिखाओ। —स्कन्दगुप्त, ५

देशभक्ति—दे० अरुण यह मधुमय देश हमारा।

देहली— —(तानसेन)

[दे० दिल्ली]

दो बूँदें—८–८ पंक्तियों के दो पद। सुधा की एक बूंद वह है जो चांद के रूप में शरद के निर्मल आकाश में आई और जिसे देखकर धरती और प्रकृति पुलकित हो गई। सुधा की एक बूंद मकरन्द के रूपमें उस नन्हें से फूल में है जिस पर मधुप गुञ्जार करता फिरता है। —झरना

द्रौपदी— —(मकरन्द बिन्दु)

[पाञ्चाल के राजा यज्ञसेन (द्रुपद) की पुत्री जो अर्जुन को स्वयंवर में मिली पर माता कुन्ती के कथन से पाँचों पाण्डवों की पत्नी बनी। पहले तो यह धैर्य से दुःशासन आदि की यातनायें सहती रही पर अन्त में इसने पाण्डवों को युद्ध के लिए उभाड़ा। इसकी गणना पतिव्रता नारियों में होती है।]

द्वेष की ज्वाला—मनुष्य की चिता जल जाती है, और बुझ भी जाती है, परन्तु उसकी छाती की जलन, द्वेष की ज्वाला, सम्भव है, उसके बाद भी धक्-धक् करती हुई जला करे।

—(प्रतिध्वनि)

द्वैत-सरोवर—सज्जन नाटक का घटना-स्थल ।

[द्वैतवन में, जहाँ पाण्डवों ने कुछ दिन वास किया था।]

ध

धन—वर्तमान जगत् का शासक, प्रत्येक प्रश्नों का समाधान करने वाला, विद्वान्। (सोमदेव) —कंकाल, पृ० २१२

धनञ्जय[१]— —(कुरुक्षेत्र)

धनञ्जय[२] = अर्जुन —(बभ्रुवाहन)

धनञ्जय[३]—पाटलिपुत्र के महाश्रेष्ठि, राधा के पिता। —(व्रतभंग)

धनदत्त[१]—कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) का श्रेष्ठि। स्थूलकाय किन्तु नाटा, प्रौढ़ वयस का व्यापार-कुशल व्यवसायी। उसका व्यवसाय है ऋण देना और रत्न बेचना। उसे अपनी युवती पुत्री की अपेक्षा लक्ष्मी से अधिक प्रेम है। वह डरपोक भी है और आन्ध्र की राजगणिका की चाटुकारी भी करता है। स्वस्तिक दल से घिर जाने पर उसके हाथ-पैर ढीले पड़ जाते हैं। —इरावती

धनदत्त[२]—सेठ —(दासी)

धनमित्र—महाश्रेष्ठि, जिसकी कन्या युवक को चाहती है। —(खँडहर की लिपि)

धनिया[१]—किशोरी की दासी।

—कंकाल, ३-२

धनिया[२]—निर्मल की मां की नौकरानी।

—(भिखारिन)

धन्वन्तरि—धन्वन्तरि के पास एक ऐसी पुड़िया थी कि बुढ़िया युवती हो जाय। (बसन्तक) —**अजातशत्रु १-६**

धर्म—हमारी जाति मे धर्म्म के प्रति इतनी उदासीनता का कारण है एक कल्पित ज्ञान, जो इस देश के प्रत्येक प्राणी के लिए सुलभ हो गया है। वस्तुत: उन्हें ज्ञानाभाव होता है और वे अपने साधारण नित्य कर्म मे वंचित होकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति करने में भी असमर्थ होते हैं। (वेदस्वरूप)

—**कंकाल, पृ० ४३**

बिना भित्ति के कोई घर नही टिकता और बिना नीव की कोई भित्ति नहीं, उसी प्रकार सद्विचार के बिना मनुष्य की स्थिति नहीं और धर्मसंस्कारों के बिना सद्विचार टिकाऊ नहीं होते। (ब्रह्मचारी) —**कंकाल, पृ० ४३**

धर्म्म मानवीय स्वभाव पर शासन करता है, न कर सके तो मनुष्य और पशु में भेद क्या रह जाय ? (मंगल)

—**कंकाल, पृ० ११०**

—जिस धर्म के आचरण के लिए पुष्कल स्वर्ण चाहिए, वह धर्म जन-साधारण की सम्पत्ति नही। (धातुसेन)

—**स्कन्दगुप्त, ४-५**

धर्मनीति—एक लघु कविता। जो विधि, जो धर्मनीति कुटिलता को समृद्ध करे, सन्तोष और संयम को धिक्कृत करे, सद्भाव को बन्धन में डाल दे, कुत्सित नीति को प्रेरित करे, भय का प्रसार करे, वह धर्म नही है, लुटेरा कर्म है। धर्म तो भीति का नाशक होता है। आज मानव दुःखी और अशान्त है, धर्म वह है जो उसे आनन्द दे। धर्म तो नम्रता, करुणा का नाम है ; (जिससे) दूर हों दुर्बलता के जाल, दीर्घ नि:श्वासों का हो अन्त।

—**कानन-कुसुम**

धर्मरक्षित—भेड़े चराने वाला बूढ़ा। मुसलमान आक्रमणकारियों से दया और धर्म की माग करता है, पर असहाय है।

—**(चक्रवर्ती का स्तम्भ)**

धर्मरक्षिता—कुणाल की सुशील पत्नी। प्रकृति और जीवों से प्यार करने वाली और पतिपरायणा त्यागमयी नारी।

—**(अशोक)**

धर्मराज—दे० युधिष्ठिर।

धर्मसिद्धि—भिक्षु : मगन और हर्ष के सत्कृत्यों से ईर्ष्यालु। —**राज्यश्री, ४-१**

धर्माधिकार—केवल काषाय धारण कर लेने ही से धर्म पर एकाधिकार नहीं हो जाता—यह तो चित्तशुद्धि से मिलता है। (आनन्द) —**अजातशत्रु, २-५**

धवलयश—वैशाली के वृद्ध कुलपुत्र। स्वर्ण के उपासक। शिलाखण्डों से स्वर्ण निकालने और उनकी पुत्री सालवती उसे बेचकर आवश्यकता की पूर्ति करती। —**(सालवती)**

धातुसेन—उपनाम कुमारदास ; ऐतिहासिक पात्र। सिंहल का राजकुमार, सम्राट् कुमारगुप्त का सहचर, उदार, विनोदशील, विवेकयुक्त और वाक्-पटु युवक जो भारतीय गौरव और संस्कृति की रक्षा में सक्रिय भाग लेता है। स्कन्द-

गुप्त की सहायता के लिए तत्पर रहता है। उसका गम्भीर धर्मज्ञान एवं पाण्डित्य ब्राह्मणों और बौद्धों के विद्वेष को दूर कर देता है। अनन्त देवी, हूण सेनापति आदि को बन्दी बनाकर वह अपनी वीरता का परिचय देता है। "भारत के कल्याण के लिए मेरा सर्वस्व अर्पित है।" देश के शत्रुओं के प्रति वह बराबर खड्गहस्त है। मातृगुप्त को कार्यक्षेत्र में उतारने का सारा श्रेय उसी को है।

—स्कन्दगुप्त

धामपुर—एक बड़ा ताल्लुका है। उसमें चौदह गाव हैं। गंगा के किनारे-किनारे उसका विस्तार चला गया है। इन्द्रदेव यहीं के युवक जमींदार थे। शैला की तत्परता से धामपुर का ग्राम-संघटन अच्छी तरह हो गया। इन्हीं कई बरसों में धामपुर एक छोटा-सा कृषि-प्रधान नगर बन गया। सड़कें साफ-सुथरी, नालों पर पुल, करघों की बहुतायत, फूलों के खेत, तरकारियों की क्यारियां, अच्छे फलों के बाग—वह गांव कृषि-प्रदर्शिनी बन रहा था। पाठशाला, बंक और चिकित्सालय तो थे ही, तितली की प्रेरणा से दो-एक रात्रि पाठशालाएं भी खुल गई थीं। धामपुर स्वर्ग बन गया था।

—तितली

धूल के खेल—४-४ पंक्तियों के छः पद। वे भी दिन थे। जीवन का उल्लास था, 'न था उद्देश्य, न था परिणाम'; 'खेल की नाव कहीं ले जाव', बड़ी स्वतंत्रता थी। तुमने प्रलोभन देकर अंक में लिया और बाद में सहसा तुम्हारी गोद से उतर आए। बस, वह उल्लास समाप्त हो गया। अब उस खेल में कहां आनन्द रह गया!

—झरना

ध्रुव— —(मकरन्द बिन्दु)

[स्वयांभुव मनु के पुत्र उत्तानपाद का भक्त तपस्वी बालक जो विष्णु के वर से उत्तर दिशा में अचल तारा के रूप में मेरु के ऊपर [प्रतिष्ठित है।]

ध्रुवभट्ट—वलभी के सामन्त जो प्रयाग में दानोत्सव के समय उपस्थित थे।

—राज्यश्री, ४-१

ध्रुवस्वामिनी[1]—(१९३३) प्रसाद जी का अन्तिम नाटक। चमत्कार-प्रधान ऐतिहासिक नाटक जिसमें तीन अंक हैं और प्रत्येक अंक में एक ही दृश्य है। इसी तरह कथानक के भी तीन ही खण्ड है। पहले अंक में फलभोक्ता का परिचय है, दूसरे में पराजित होने वाले पक्ष का परिचय है और तीसरे अंक में पीछे उठाए गए राजनीतिक और धार्मिक प्रश्नों का उत्तर और नाटक की फल-प्राप्ति होती है। प्रत्येक अंक का अंतिम भाग अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। नाटक की प्रधान समस्या है नारी का शोषण। इसका समाधान भी किया गया है। गौण रूप से राजा और प्रजा के सम्बन्धों पर भी प्रकाश डाला गया है। 'सूचना' शीर्षक लेख है जिसमें इस नाटक में वर्णित ध्रुवस्वामिनी के पुनर्लग्न के ऐतिहासिक और धर्मशास्त्रीय पक्ष की गवेषणा—पूरी व्याख्या की गई है।

दे० 'सूचना'। 'सूचना' में नाटक के मूलाधारों की भी विवेचना की गई है। प्रसाद के सभी नाटकों में 'ध्रुव-स्वामिनी' एक ऐसा नाटक है जो सरलता से रंगमंच पर खेला जाता है। यही एक नाटक है जिसमें प्रसाद जी ने प्रत्येक दृश्य की रंगमंचीय भूमिका उपस्थित की है। गीत चार हैं—दो पहले अंक में, दो दूसरे में।

नाटक के दो फल हैं जो ध्रुवस्वामिनी को प्राप्त होते हैं—राक्षस-विवाह से मुक्ति और महादेवी-पद की सच्ची संप्राप्ति। ध्रुवदेवी ही इसकी नायिका है। अन्य पात्रों में चन्द्रगुप्त, रामगुप्त, शकराज, कोमा और शिखरस्वामी प्रमुख हैं। इस नाटक में अन्य नाटकों की अपेक्षा पात्र-संख्या कम है। कथोप-कथन स्वाभाविक, सीधे, आवेशपूर्ण, तीखे, प्रायः छोटे और व्यावहारिक है। व्यर्थ के तर्क-वितर्क कहीं नहीं उठाए गए हैं। कहीं-कहीं बड़ी सुन्दर व्यंजनाएँ मिलती हैं। 'ध्रुवस्वामिनी' की सबसे बड़ी विशेषता है इसकी नवीन रचना-पद्धति। चरित्र-चित्रण, वस्तुविन्यास, कथोपकथन, संकेत-सूचना, आदि सभी का नया रूप उपस्थित किया गया है। नाटक का प्रधान रस वीर-रस है, शृंगार इसके सहायक रूप में दिखायी पड़ता है।

ऐतिहासिक भूमिका—प्रायः इति-हासकारों ने चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी माना है, लेकिन नवीन खोज से ज्ञात हुआ है कि समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त के बीच रामगुप्त पड़ता है। चन्द्रगुप्त ने अपने भाई रामगुप्त को मारकर उसकी पत्नी ध्रुवस्वामिनी से विवाह किया। इससे उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए—कुमारगुप्त और गोविंदगुप्त। कुमारगुप्त चन्द्रगुप्त के बाद सम्राट् बना। भण्डारकर जी का विचार है कि काच (राम) के नाम से सिक्का भी चला था। उनका यह मत है कि रामगुप्त गोमती की घाटी में अल्मोड़ा जिले के कार्त्तिकेयपुर के समीप मारा गया और के० पी० जायसवाल का मत है कि यह युद्ध ३७४–३८० ई० के बीच में कांगड़ा जिला के अलिवाल स्थान में हुआ था जहां बाद में प्रथम सिक्ख युद्ध हुआ। (ध्रुवस्वामिनी, सूचना)।

ऐतिहासिक कथावस्तु अधिक नहीं है। इसी से कथानक नाटकीय होने के साथ रससिक्त भी है। कोमा और शकराज का प्रेम-सम्बन्ध, मिहिरदेव का व्यक्तित्व प्रसाद जी की अपनी सूझ हैं। तीसरे अंक में रामगुप्त का चन्द्रगुप्त की हत्या करने का प्रयत्न और सामंत के हाथ से उसका वध प्रसाद की कल्पना की उपज है। कोमा की भाषा अत्यन्त सुन्दर और साहित्यिक है। (पढ़िए नाटक पृ० ४१, ४४, ५०, ५३, ५५)।

पुरुष पात्र—

रामगुप्त—समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र, मगध का महाराज

चन्द्रगुप्त—रामगुप्त का छोटा भाई

शिखरस्वामी—रामगुप्त का अमात्य
शकराज—शकों का अधिराज
खिंगल—शकराज का सलाहकार
मिहिरदेव—शकराज के आचार्य
गौण पुरुष-पात्र—
सामंतकुमार, पुरोहित, सामंतगण, कुबड़ा, हिजड़ा, बौना, सैनिक, प्रहरी
स्त्री पात्र—
ध्रुवस्वामिनी—महादेवी, पहले रामगुप्त और बाद में चन्द्रगुप्त की रानी।
कोमा—शकराज की प्रेमिका
मन्दाकिनी—ध्रुवस्वामिनी की सहेली
गौण स्त्री-पात्र—
परिचारिका, दासी, खड्गधारिणी आदि

कथावस्तु—(प्रथम अंक) समुद्रगुप्त की इच्छा के विरुद्ध षड्यंत्र द्वारा क्लीव रामगुप्त मगध की राजगद्दी पाता है और साथ ही साथ ध्रुवस्वामिनी का विवाह भी उसके साथ हो जाता है। यद्यपि ध्रुवस्वामिनी हृदय से चन्द्रगुप्त को ही प्रेम करती है। रामगुप्त मध्य-भारत के पहाड़ी प्रदेशों में विहार के लिए आता है। उसके साथ ध्रुवस्वामिनी भी आती है। ध्रुवस्वामिनी हृदय से अत्यन्त दुःखी है। शकों ने अवसर पाकर रामगुप्त को पहाड़ों की घाटियों में दोनों ओर से घेर लिया ; किन्तु रामगुप्त को मानों इन चीजों से कोई मतलब नहीं है। उसका मन सदैव ध्रुवदेवी और चन्द्रगुप्त को लेकर तर्क-कुतर्क करता रहता है। शक रामगुप्त को घेर कर उसके पास एक संधि-पत्र भेजते हैं। संधि के उपलक्ष में वे ध्रुवस्वामिनी और अन्य सामन्तों के लिए मगध-सामन्तों की स्त्रियों की मांग करते हैं। क्लीव रामगुप्त अपने अमात्य शिखरस्वामी की मंत्रणा से इस नीच और अपमान-कारक प्रस्ताव को भी मान लेने के लिए प्रस्तुत है। रामगुप्त को हिजड़ों, बौनों और कुबड़ों के ही खेल में आनन्द आता है। ध्रुवस्वामिनी बार-बार रामगुप्त से प्रार्थना करती है कि वह उसे इस प्रकार न छोड़े ; किन्तु क्लीव रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को उपहार की वस्तु कहकर शकराज के हवाले करने को प्रस्तुत होता है। ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त को डांट कर कहती है—"यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव, नहीं बचा सकते तो मुझे बेंच भी नहीं सकते हो।" "क्या तुम अपने प्राणों का पण नहीं लगा सकते?" लेकिन रामगुप्त को तो अपने प्राण प्यारे हैं। वह कहता है, "अपने लिए मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ—कदाचित् तुम यह नहीं जानती हो।" "तुम उपहार की वस्तु हो।" ध्रुवस्वामिनी आत्महत्या के लिए उद्यत होती है। उसी समय चन्द्रगुप्त आकर इस रक्तपात को रोकते हैं। ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त को भी रामगुप्त के नीच निश्चय की सूचना देती है। चन्द्रगुप्त को यह अपमान असह्य हो उठता है। तभी रामगुप्त का आश्रित एक हिजड़ा आकर उपहास में चन्द्रगुप्त

से कहता है कि यदि वह उसे सजा दे तो वह महादेवी से भी सुन्दर प्रतीत हो। चन्द्रगुप्त के मस्तिष्क में तत्काल एक दूसरी योजना घूमती है। ध्रुव-स्वामिनी और अन्य सामन्त स्त्रियों के स्थान पर चन्द्रगुप्त और सामन्तकुमार स्त्रियों का वेश धारण कर शकराज के शिविर में जायँ और इस अपमान-जनक प्रस्ताव का प्रतीकार कर लें। स्नेह-विह्वल ध्रुवदेवी, आवेश में आकर चन्द्रगुप्त का आलिंगन करके उसे ऐसा दुस्साहसिक कार्य करने से रोकती है। रामगुप्त इस प्रकार के आलिंगन का एक बिल्कुल दूसरा ही अर्थ लगाता है। दूसरे यदि चन्द्रगुप्त की बात मान ली जाती तो यद्यपि चन्द्रगुप्त से छुटकारा मिल सकता था पर ध्रुवस्वामिनी से छुटकारा मिलना संभव नहीं था। इसलिए शिखरस्वामी की मंत्रणा के अनुसार रामगुप्त आज्ञा देता है कि ध्रुवस्वामिनी भी शकराज के दुर्ग में जाय। अन्ततः ध्रुवस्वामिनी, चन्द्रगुप्त तथा कतिपय सामन्त-कुमारों के साथ, शकराज के दुर्ग की ओर प्रस्थान करती है।

(द्वितीय अंक) शकराज के दुर्ग के एक भाग में कोमा चिन्तित-मन बैठी है। शकराज अपनी राजनैतिक चालों में मस्त वहां आता है। उसे मानों इसका भान ही नहीं है कि कोमा उसे अपना हृदय दे चुकी है। इसी समय खिंगल वहां आकर रामगुप्त द्वारा संधि-प्रस्ताव को अक्षरशः मान लेने का शुभ समाचार देता है। शकराज तथा उसके सभी सामन्त इस समाचार को पाकर आनन्द विह्वल हो उठते हैं। किन्तु कोमा ध्रुवस्वामिनी का इस प्रकार अपमान करने का विरोध करती है। स्वयं आचार्य मिहिरदेव भी इसके विरुद्ध व्यवस्था देते है, किन्तु विजय से अंधे और पर-कलत्र-कामुक शकराज को कुछ नहीं सूझता; वह कोमा को दुर्ग से चले जाने को कहता है और स्वयं ध्रुवस्वामिनी के आगमन की प्रतीक्षा करता है। "आज देवपुत्रों की स्वर्गीय आत्माएँ प्रसन्न होंगी उनकी पराजयों का यह प्रतिशोध है।' मिहिरदेव भयावनी पूछ वाला ध्रुवतारा दिखा कर बतलाते हैं कि तुम्हारे दुर्ग में अमंगल होगा। ध्रुवस्वामिनी तथा स्त्री-वेश में चन्द्रगुप्त प्रवेश करते हैं दोनों छद्म-भावना से प्रेरित होकर स्वयं को ही ध्रुवस्वामिनी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। 'क्या चिन्ता यदि मैं दोनों को ही रानी समझ लू।' चन्द्रगुप्त प्रगट होकर—"मैं हूँ चन्द्रगुप्त, तुम्हारा काल!" एक संक्षिप्त युद्ध के पश्चात् चन्द्रगुप्त शकराज का वध करते हैं। उधर अन्य सामन्तकुमार दुर्ग के अन्य सामन्तों तथा सैनिकों का वध करते हैं। दुर्ग पर चन्द्रगुप्त का अधिकार हो जाता है।

(तृतीय अंक) दुर्ग-विजय का समाचार सुनकर रामगुप्त दुर्ग में आता है। ध्रुवस्वामिनी को मन्दाकिनी

भाभी कहकर पुकारती है। ध्रुवस्वामिनी के मुंह से यह सुनकर कि रामगुप्त क्लीव है और उसने अनुचित सन्देह करके उसे निर्वासित किया है, पुरोहित इस वैवाहिक सम्बन्ध को तोड़ने के लिए शास्त्र की आज्ञा ढूंढ़ने का प्रयत्न करते हैं। कोमा शकराज का शव ले जाने के लिए ध्रुवस्वामिनी की आज्ञा ले लेती है किन्तु नीच रामगुप्त के सैनिक कोमा और आचार्य की हत्या करते हैं। सभी सामन्तकुमार रामगुप्त की इस नीचता से विद्रोह करने को उद्यत होते हैं; परन्तु चन्द्रगुप्त तथा अन्य सभी सामन्त-कुमारों को रामगुप्त के सैनिक बन्दी बनाते है। उसी समय पुरोहित वहां आते है और रामगुप्त-ध्रुवस्वामिनी के विवाह का अनौचित्य दिखाने का प्रयत्न करते है। रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को भी बन्दिनी बनाने को उद्यत होता है। चन्द्रगुप्त यह सब नहीं सहन कर सकता। वह अपने को तथा अन्य सामन्तगणों को लौहशृंखला से मुक्त करता है। परिषद् के समक्ष रामगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुव-स्वामिनी तथा पुरोहित के वक्तव्य होते हैं। परिषद् चन्द्रगुप्त को राजा घोषित करती है और रामगुप्त-ध्रुव-स्वामिनी के विवाह को अवैध घोषित करती है। रामगुप्त चन्द्रगुप्त पर धोखे से आक्रमण करता है पर एक सामन्त उसकी रक्षा करते है।

शैली का नमूना—

ध्रुवस्वामिनी—देखती हूँ इस राष्ट्र-रक्षा रूपी यज्ञ में रानी की बलि होगी ही।

शिखरस्वामी —दूसरा कोई उपाय नहीं।

ध्रुवस्वामिनी—(क्रोध से पैर पटक कर) उपाय नहीं, तो न हो, निर्लज्ज अमात्य! फिर ऐसा प्रस्ताव मैं सुनना नही चाहती।

रामगुप्त—(चौंक कर) इस छोटी सी बात के लिए इतना बड़ा उपद्रव! (दासी की ओर देखकर) मेरा तो कंठ सूखने लगा। (वह मदिरा देती है।)

ध्रुवस्वामिनी—(दृढ़ता से) अच्छा तो अब मैं चाहती हूँ कि अमात्य अपने मंत्रणा-गृह में जायँ। मै केवल रानी ही नहीं किन्तु स्त्री भी हूँ ; मुझे अपने को पति कहने वाले पुरुष से कुछ कहना है, राजा से नहीं।

(शिखरस्वामी का दासियों के साथ प्रस्थान)

रामगुप्त—ठहरो जी, मैं भी चलता हूँ। (उठना चाहता है। ध्रुवस्वामिनी उसका हाथ पकड़कर रोक लेती है।) तुम मुझसे क्या कहना चाहती हो?

ध्रुवस्वामिनी—(ठहर कर) अकेले यहां भय लगता है क्या? बैठिये, सुनिये। मेरे पिता ने उपहार स्वरूप कन्यादान किया था। किन्तु गुप्त सम्राट् क्या अपनी पत्नी शत्रु को उपहार में देंगे? (घुटने के बल बैठ कर) देखिये मेरी ओर देखिये। मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी

समझने वाला पुरुष उसके लिए प्राणों का पण लगा सके ?

रामगुप्त—(उसे देखता हुआ) तुम सुन्दर हो, ओह, कितनी सुन्दर ; किन्तु सोने की कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय में डुबा नहीं सकता। तुम्हारी सुन्दरता, तुम्हारा नारीत्व अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिए मैं कितना आवश्यक हूँ कदाचित तुम यह नही जानती हो।

ध्रुवस्वामिनी—(उसके पैरों को पकड़ कर) मैं गुप्त कुल की वधू होकर इस राजपरिवार में आई हूँ। इसी बात पर.......।

रामगुप्त—(उसे रोक कर) वह सब मैं कुछ नही सुनना चाहता।

ध्रुवस्वामिनी—मेरी रक्षा करो। मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो। राजा, आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूँ। मैं स्वीकार करती हूँ, कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नहीं हुई, किन्तु यह मेरा अहकार चूर्ण हो गया है। मैं तुम्हारी होकर रहूँगी। राज्य और सम्पत्ति रहने पर राजा को—पुरुष को बहुत सी रानिया और स्त्रियां मिलती है ; परन्तु व्यक्ति का मान नष्ट होने पर फिर नही मिलता।

रामगुप्त—(घबराकर उसका हाथ हटाता हुआ) ओह, तुम्हारा यह घातक स्पर्श बहुत ही उत्तेजनापूर्ण है। मैं,—नहीं। तुम, मेरी रानी ? नही, नही। जाओ, तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्यों आपत्ति हो ?

ध्रुवस्वामिनी—(खड़ी होकर रोष से) निर्लज्ज ! मद्यप !! क्लीव !!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नही ? (ठहर कर) नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतलमणि नही हूँ। मुझ मे रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी (रसना से कृपाणी निकाल लेती है)

रामगुप्त—(भयभीत होकर पीछे हटता हुआ) तो क्या तुम मेरी हत्या करोगी ?

ध्रुवस्वामिनी—तुम्हारी हत्या ? नहीं, तुम जिओ। भेड़ की तरह क्षुद्र जीवन ! उसे न लूगी। मैं अपना ही जीवन समाप्त करूँगी।

रामगुप्त—किन्तु तुम्हारे मर जाने पर उस बर्बर शकराज के पास किसको भेजा जायगा ? नहीं, नही, ऐसा न करो। हत्या ! हत्या !! दौडो ! दौड़ो !! (भागता हुआ निकल जाता है। दूसरी ओर से वेग सहित चन्द्रगप्त का प्रवेश)

ध्रुवस्वामिनी[२]—'ध्रुवस्वामिनी ' नाटक की प्रधान पात्री। पिता ने इसका वाग्दान चन्द्रगुप्त से कर दिया, परन्तु रामगुप्त ने राज्य हस्तगत करने के साथ ही ध्रुवस्वामिनी से भी विवाह कर लिया। पर वह चन्द्रगुप्त को न भूल सकी। वह तो रामगुप्त की बंदी थी, विवश

थी। पति क्लीव है, बेचारी को यह चुप रह कर सह लेना है। 'मैंने तो कभी उनका मधुर सम्भाषण सुना ही नहीं।' 'मेरा नीड़ कहां? यह तो स्वर्णपिञ्जर है।' जब रामगुप्त उसे शकराज के पास भेंट रूप में जाने का आदेश देता है तो भयानक नारी की आत्मा तिलमिला उठती है। वह कटार निकाल लेती है। उसका हृदय उष्ण हो जाता है और उसमें आत्मसम्मान की ज्योति चमक उठती है (पृ०३१)। शकराज के मारे जाने पर उसका पुनर्विवाह चन्द्रगुप्त से होता है। ध्रुवस्वामिनी में कोमल भावना की कमी नहीं है। चन्द्रगुप्त के प्रति स्निग्धता और कोमा के प्रति उसकी सहानुभूति प्रगट है। वह रामगुप्त और शिखरस्वामी के सामने चन्द्रगुप्त का आलिंगन करके आत्मविभोर हो जाती है। कोमा को उसके पति का शव दिलवा देती है। वह नियतिवादी है, तो भी कर्म के प्रति उसकी उत्तेजना, हलचल और आकुलता बनी रहती है। हृदय में द्वन्द्व मचा रहता है। वह कहती है—"इस वक्ष में दो हृदय हैं क्या? जब अन्तरंग 'हां' कहना चाहता है तब ऊपरी मन 'ना' क्यों कहला देता है?" उसके हृदय में विद्रोह है—"पुरोहित, आपका कर्मकाण्ड और आप के शास्त्र, क्या सत्य हैं, जो सदैव रक्षणीया स्त्री की यह दुर्दशा हो रही है?" "धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारिता की यह पैशाचिक परीक्षा मुझ से बल-पूर्वक ली गई है।" ध्रुवस्वामिनी का चरित्र-विकास अबला से सबला बनने का क्रम है। विवशता से उभर कर वह भव्य रूप को ग्रहण करती है। ध्रुवस्वामिनी मे नारी-स्वभाव की कोमलता, सहिष्णुता और आत्म-सम्मान की भावना के साथ निर्भीकता, व्यवहार-कुशलता, साहस, बुद्धि-कौशल और विद्रोह भी है। उसका जीवन विपत्तियों और संघर्षों से जूझने की लम्बी कथा है। रामगुप्त के सम्बन्ध से ध्रुवस्वामिनी का बुद्धि-पक्ष और चन्द्रगुप्त के नाते से हृदय-पक्ष उभारा गया है।

—ध्रुवस्वामिनी

[राजशेखर ने इसे ध्रुवदेवी कहा है।]

ध्वनिकार—अभिव्यक्ति का निराला ढंग ही महाकवियों की वाणी का लक्षण है।
—(**यथार्थवाद और छायावाद पृ० ९०**)

शब्दार्थ की ध्वनि (वक्रता) वर्ण, पद, वाक्य और प्रबन्ध तक में दीप्त होती है। —(**वही, पृ० ९१**)

[=आनन्दवर्धन]

न

नगरहार—यहां पर हूण स्कन्धावार था। यहां पर गिरिव्रज का युद्ध हुआ था।
—स्कन्दगुप्त, ३

[वर्तमान जलालाबाद (अफगानिस्तान) के निकट प्राचीन नगर था।]

न छेड़ना उस अतीत स्मृति से खिंचे हुए बीन तार कोकिल—'स्कन्दगुप्त' का प्रथम गीत जो कुमारगुप्त की सभा में नर्तकियों द्वारा गाया गया। इस में मगध के गत वैभव की स्मृति की टीस है जब वहां आनन्द भैरवी सुनाई पड़ती थी, जब वहां मघा की फुहार थी और जब वहां पर माधवी निशा थी। लेकिन अब सब सूना हो गया। वह बसन्ती बहार नहीं रह गई। —स्कन्दगुप्त, १

नजीब खां—दे० दुखिया[१]।

नटराज[१]—जिसकी दुःख-ज्वाला में मनुष्य व्याकुल हो जाता है, उस विश्व-चिता में मंगलमय नटराज नृत्य का अनुकरण, आनन्द की भावना, महाकाल की उपासना का बाह्य स्वरूप है। और साथ ही कला की, सौन्दर्य की अभिवृद्धि है, जिसमें हम वाह्य में, विश्व में, सौन्दर्य-भावना को सजीव रख सके हैं। (ब्रह्मचारी) —इरावती, पृ० २२

दे० दुखावसान भी।

नटराज[२]— —कामायनी, दर्शन

[= शिव]

नटेश— —कामायनी, दर्शन

नत्थू—बाबू श्यामलाल और रामसिंह के साथ आया हुआ साधारण पहलवान। —तितली, ३-१

नदी नीर से भरी—रानी की सखियों का समवेत गान। मानस में प्रणय की बाढ़ है, स्नेह की नाव हलके डाडों से चलाई जा रही है, देखिए लगती है किस कूल पर, बस्ती है या उजाड़। —विशाख, ३-१

नन्द—मगध-सम्राट्, महापद्म की जारज संतान। नन्द क्रूर, व्यभिचारी, उद्धत, दुर्बुद्धि, क्रोधी, स्वेच्छाचारी, मद्यप और विलासी राजा है। वह अपने पिता की हत्या करके राजसिंहासन पर बैठता है। वह चणक और चाणक्य का ब्रह्मत्व छिनवा लेता है और भरी सभा में चाणक्य का अपमान करता है। वह मौर्य सेनापति, उसकी पत्नी, राक्षस आदि को अन्धकूप में डालने की आज्ञा देता है। इसी से उसकी विवेक-शून्यता प्रमाणित होती है। शकटार को बन्दीगृह में डलवा देता है और उसके सात पुत्रों को अन्धकूप में फिकवा देता है। नाटक के दूसरे दृश्य में ही ऐसा लगता है कि उसे केवल विलास ही करना है, राज्यकर्म नहीं। विलास-मुद्रा में ही वह राक्षस को अमात्य घोषित कर देता है! जब अन्याय का घड़ा भर जाता है तो प्रजा स्वयं बदला लेना चाहती है। शकटार उसकी हत्या कर देता है। —चन्द्रगुप्त

बुद्ध के समकालीन अजातशत्रु के बाद उदयाश्व, नन्दिवर्द्धन और महानन्द नाम के तीन राजा मगध के सिंहासन पर बैठे। शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न, महानन्द के पुत्र, महापद्म ने नन्दवंश की नींव डाली। इसके बाद सुमाल्य आदि ८ नंदों ने शासन किया। मुद्राराक्षस के टीकाकार ढुंढि ने अन्तिम नन्द का नाम धननन्द लिखा है। इन का राज्यकाल १०० वर्ष रहा। —अजातशत्रु, कथा-प्रसंग

बहुत से इतिहासकारों ने अन्तिम नन्द-

राज का नाम योगनन्द लिखा है। बौद्धों ने महापद्म का नाम कालाशोक भी लिखा है। —चन्द्रगुप्त, भूमिका

नन्ददास—दे० मीरा।

[हिन्दी के प्रसिद्ध कृष्ण-कवि। सूरदास के गुरुभाई और समकालीन। अनेक ग्रंथों के रचयिता—इनमें 'रास-पञ्चाध्यायी,' 'भ्रमरगीत', 'अनेकार्थ-मञ्जरी,' 'नाममाला' प्रसिद्ध हैं।]

नन्दन—पाटलिपुत्र के धनकुबेर कलश का बेटा। पहले विलासी था, बाद में उसके चरित्र में मोड़ आया जो वास्तव में राधा के प्रभाव के कारण था। —(**व्रत-भंग**)

नन्दन भांट—ठाकुर जीवनसिंह के घराने का आश्रित भाट। रोहिणी उसकी लड़की थी। —(**ग्रामगीत**)

नन्दरानी—मुकुन्दलाल की ४० वर्षीय पत्नी; निराशापूर्ण। उसका भविष्य अंधकारमय था। सन्तान कोई नहीं हुई। पति निश्चिन्त भाग्यवादी था। इन्द्रदेव इन्हें भाभी कहता था।

—**तितली, ३-७, ४-६**

नन्दराम—पठानों के कबीले में रहने वाला ब्राह्मण युवक; पूरे साढ़े छः फुट का बलिष्ठ वीर। उसके मस्तक में केसर का टीका न लगा रहे, तो कुलाह और सलवार में वह सोलहों आने पठान ही जँचता था। छोटी-छोटी भूरी मूंछें, हाथ में कोड़ा, मुख पर आकांक्षापूर्ण हँसी। गोली चलाने में निपुण। वह अच्छा घुड़सवार था। वज़ीरियों से कई बार लड़ा। घोड़ों का व्यापार करने दूर-दूर जाता था। सलीम की धोखेबाजी और नीचता के बावजूद इसने अतिथि के प्रति अपने कबाइली धर्म का पूरा-पूरा निर्वाह करने की चेष्टा की। —(**सलीम**)

नन्दलाल—नलिनी का प्रेमी। संध्या की अपनी वियुक्ता प्रेमिका की स्मृति में प्रणय-गीत गाता फिरता था। अन्त में उसी के साथ नदी में बह गया।

—(**उस पार का योगी**)

नन्दीग्राम—काश्मीर में।—**स्कन्दगुप्त, ३**

नन्दू[1]—घीसू इनका नित्य दर्शन करने-वाला, इनकी बीन सुनने वाला भक्त था। नन्दू बाबू भी उसे बराबर मानते थे। उन्हीं की एक कोठरी में घीसू पड़ा रहता था। —(**घीसू**)

नन्दू[2]—बनजारा है और वैसा ही उसका चरित्र है। —(**बनजारा**)

नन्दो (चाची)—पाली गांव की एक धनी विधवा, जिसके एक लड़की थी। उसको पुत्र की बड़ी लालसा थी। एक धूर्त महात्मा ने उसकी लड़की (घंटी) को लड़के (मंगल) से बदल दिया।

—**कंकाल, २-४**

न धरो कहकर इसको 'अपना'—भिक्षुकों ने इस गीत में संकेत किया है कि सांसारिक सम्पत्ति सदा नहीं रहती। यह तो बरसाती नाला है, अभी भरा अभी खाली हो गया। धन का तो यही लाभ है कि दान दिया जाए और दीन-दुखियों की सहायता की जाए। यही भगवान् की अर्चना है। इस गीत में बिम्बसार की

तृष्णाकुलता पर व्यंग्य भी हो गया है।
—अजातशत्रु, १-४

नन्दी गोपाल—कलकत्ते में बीरू के साथी। —तितली, खंड ४

नन्हकू सिंह—वह पचास वर्ष से ऊपर था। तब भी युवकों से अधिक बलिष्ठ और दृढ़ था। चमडे पर झुर्रियां नहीं पडी थीं। उसकी चढ़ी मूछें बिच्छू के डंक की तरह, उसका रंग सावला, साप की तरह चिकना और चमकीला था। उसकी नागपुरी धोती का लाल रेशमी किनारा दूर से भी ध्यान आकर्षित करता। कमर में बनारसी सेल्हे का फेटा, जिसमें सीप की मूठ का बिछुआ खुसा रहता था। उसके घुघराले बालो पर सुनहले पल्ले के साफे का छोर उसकी चौड़ी पीठ पर फैला रहता। ऊचे कधे पर टिका हुआ चौडी धार का गंडासा, यह थी उसकी धज! चिर कुमार! अपनी एक प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए सैकड़ो असत्य और अपराध करता फिरा। सत्रह गोली खाकर भी नन्हकू जीवित रहने का दम रखता है। उसका प्रेम, उसका साहस, उसका त्याग, और उसका देश-प्रेम उच्च चारित्रिक स्तर का परिचायक है। पर था वह गुंडा! —(गुण्डा)

नन्हू—एक अनाथ बालक जिसे चूड़ीवाली ने चना और गुड़ की दुकान खोलने में सहायता दी। जिन पथिको के पास पैसे न होते उनका मूल्य वह स्वयं देकर नन्हू की दुकान मे घाटा न होने देती। नन्हू ने ही विलासिनी को पथिक के रूप में विजयकृष्ण के आने की सूचना दी थी। —(चूड़ीवाली)

नमस्कार—इन्दु, कला ४, खंड २, किरण २, जुलाई १९१३ में प्रकाशित छः पंक्तियों की कविता। भगवान् का मन्दिर सब के लिए उन्मुक्त है। उस मन्दिर के आराम प्रकृति-कानन हैं, दीप इन्दु, सूर्य आदि हैं। उस मंदिर के निरुपम, निरामय नाथ को मेरा नमस्कार हो। —कानन-कुसुम

नर—आरंभिक युग में।—(चित्र मंदिर)

नरक—संसार मे छल, प्रवञ्चना और हत्याओं को देखकर कभी-कभी मान ही लेना पडता है कि यह जगत् ही नरक है। कृतघ्नता और पाखण्ड का साम्राज्य यही है। छीना-झपटी, नोच-खसोट ; मुंह मे से आधी रोटी छीन कर भागनेवाले विकट जीव यही तो है। श्मशान के कुत्तो से भी बढ़कर मनुष्यों की पतित दशा है। (विजया)—स्कन्दगुप्त, २-१

नरगिस—अकबर और सुलतान बेगम से आख-मिचौनी खेलने वाली लड़कियों मे, नूरी की साथिन। —(नूरी)

नरदत्त—मालव का सैनिक ; देवगुप्त के कुकृत्य से असन्तुष्ट। बन्दीगृह में राज्यश्री की देख-भाल मे नियुक्त।
—राज्यश्री, २-७

नरदेव—कश्मीर का राजा। 'विशाख' नाटक की भूमिका में इसका राज्यकाल ईसा की पहली शताब्दी के आस-पास निर्धारित किया गया है। सर्वप्रथम वह

न्यायशील और प्रजावत्सल बताया गया है, लेकिन बाद में क्रोध, आवेश और विलास के कारण उसका विवेक और न्यायबुद्धि हवा हो जाती है और उसमें कुटिलता और क्रूरता आने लगती है। उसकी विचार-बुद्धि दुर्बल है। कामुकता के वश में वह राक्षस हो जाता है। प्रेमानन्द और चन्द्रलेखा की साधुता के कारण उसके प्राण बचते हैं और इससे उसका चरित्र-परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन घात-प्रतिघात और परिस्थितियों की प्रेरणा से स्वाभाविक ढंग पर हुआ है। —**विशाख**

[ऐतिहासिक पात्र।]

नरपति जयचर्या—स्वर-शास्त्र का एक प्राचीन ग्रन्थ जिसमें लिखा ह कि सौन्दर्य (रूप) से हृदय में त्रैलोक्य का उन्मीलन होता है। —(**रहस्यवाद, पृ० ३३**)

नरेन्द्रगुप्त—गौड का राजा। विश्वासघाती, स्वार्थी, विलासी, व्यवहार-कुशल, कुचक्री और क्षुद्र। —**राज्यश्री, २-३, ३-१**

[चीनी यात्री ह्यून च्वाँग ने इसका नाम शशाँक बताया है। हर्षचरित में इसका नाम नरेन्द्रगुप्त लिखा है। अभी तक यह प्रमाणित नहीं है कि नरेन्द्रगुप्त और शशाँक एक ही हैं। इसने अपनी पुत्री का विवाह राज्यवर्धन से करने की इच्छा के बहाने राज्यवर्धन से एकान्त में भेंट की और उसका वध किया (हर्षचरित)। गौड़ देश की राजधानी रंगामाटी मुर्शिदाबाद से १२ मील दक्षिण में थी।]

नर्मदा—रामनाथ देवनन्दन की भूमि की कुर्की के बाद तीर्थों, नगरों और पहाड़ों में घूमता फिरा। नर्मदा के तट से घूमकर वह उज्जैन गया। —**तितली, १-७**

[मध्य प्रदेश की एक नदी जो अमर कंटक से निकलकर खंभात (**बम्बई**) की खाड़ी में जा गिरती है। दक्षिण और उत्तर भारत की सीमा-रेखा है।]

नल कूबर—खेल में हिजड़ा कहता है कि मैं नलकूबर की वधू हूँ। मुझ स्त्री से क्या युद्ध करोगे? —**ध्रुवस्वामिनी, १**

[कुबेर का पुत्र। महाभारत और भागवत में इसे कुबेर का पुत्र कहा गया है।]

नलिनी—नन्दलाल की बाल-सहचरी और प्रेमिका, जो वियोग में जोगी बनकर नदी के उस पार नन्दलाल का प्रणय-संगीत सुना करती है। अंत में भावुकता मे नदी में छलांग लगाकर आत्मसमर्पण कर दिया। —(**उस पार का योगी**)

नवल[१]—किशोर का पुत्र। अघोरी की पंचवटी और वृक्ष की अद्भुत जड़ों से आकृष्ट हुआ। —(**अघोरी का मोह**)

नवल[२]—विमल का साहित्यिक बन्धु जो साहित्य को एक नशा मानता है जिससे स्तुत्य अतीत की घोषणा और वर्तमान की करुणा का गान मिलता है। (यह स्वयं प्रसाद तो नही है?—सं०)

—(**पत्थर की पुकार**)

नव बसन्त—इन्दु, कला ३, किरण ३, मार्गशीर्ष '६८ मे प्रकाशित और बाद में 'कानन कुसुम' में संगृहीत एक भाव-चित्र

है जिसमें धुंधली सी अविकसित कहानी का रूप मिलता है। पूर्णिमा की रात्रि में इंदु की किरणें सुधा बरसा रही थीं। यमुना-जल तारों से प्रतिबिम्बित हो रहा था। कूल पर का कुसुम-कानन कितना रमणीय था। घूमता-फिरता मारुत एक मनोहर कुंज में पहुँचा। वहां एक सुन्दरी बैठी थी। धृष्ट मारुत ने उसका अञ्चल उड़ा दिया। ज्योंही इसे हटाने के लिए उसने उधर मुख फेरा, उसको मनाने के लिए एक मधुकर आ गया। कामिनी अन्य-मनस्क होकर टहलती रही। उसे मुख-मूल प्रिय-वदन का स्मरण हो आया और श्रांत नाविक ने तुरंत यथेप्सित कूल पा लिया। तुरन्त नील नीरज नेत्र का मनोज्ञ विकास हो गया। मधुर अंग-परि-मल से मारुत विलास करने लगा। बाला सहकार-मंजरी-सी खिल उठी। सामने एक युवक 'प्रियतमे' कहता हुआ आया। मधुर प्रेम जतलाकर पाणि-पल्लव स्पर्श किया। नूपुर बज उठे। प्रकृति और वसन्त का समागम हो गया। मलय श्वास चलने लगा।

दृश्य सुन्दर हो गए,
मन में अपूर्व विकास था।
आन्तरिक औ बाह्य
सब में नव वसन्त विलास था॥

—कानन-कुसुम

नवाब—टांगे वाला जिसने घंटी को मथरा में भगा ले जाने की चेष्टा की और जिसे विजय ने मार डाला। —कंकाल

नवीन—नवीन बाबू ४० मील की स्पीड से मोटर अपने हाथ से दौड़ा रहे थे। बालक कुचला गया। —(बेड़ी)

नवीना—कौशाम्बी की छोटी रानी मागन्धी की दासी। अपनी स्वामिनी के षड्यंत्र में सहायक। वीणा में सांप का बच्चा डालकर वही उदयन के पास ले जाती है। बाद में मागंधी के भाग जाने पर वह इस भेद को खोल भी देती है।

—अजातशत्रु, १-५, १-९

नहीं डरते—३० मात्राओं के वीर छन्द में चतुर्दशपदी। तुम हम से रूठ गए, क्या! हमने तुम्हें चाहा था, लेकिन हम तुम्हारे विनोद की सामग्री ही बनकर रह गए। तुम्हें यह उपालम्भ देने का अवसर मिल गया है। तुम्हें अपने रूप-यौवन का गर्व है। हम जानते हैं कि प्रेम में धोखा होना ही है। पर हमने प्रेम किया, नहीं डरते। —कानन-कुसुम

नागदत्त—मालव गणतंत्र का एक पदा-धिकारी —चन्द्रगुप्त, २-७

नागेश्वरनाथ—अयोध्या में मन्दिर जिसके पास ही श्रीचंद का डेरा था।

—कंकाल, ४-१

नाटकों का आरम्भ—निबन्ध जिसमें इतिहास-तत्त्व अधिक है। नाटक का बीज वैदिक सम्वादों में मिलता है। रामायण, महाभारत, नाट्यशास्त्र, पतञ्जलि के महाभाष्य, कालिदास की कृतियों में नाटकों का उल्लेख मिलता है। कदाचित् पहले नृत्य की उपयोगिता नहीं थी; गीत और अभिनय की योजना पीछे से हुई। नृत्य देव-संबन्ध में इसके बाद जोड़ा गया।

छाया-नाटक इसके उपरान्त प्रचलित हुए। सूत्रधार का अवतरण सबसे पहले रंगपूजा और मंगलपाठ के लिए होता था। कथा या वस्तु की सूचना देने का काम स्थापक करता था। पीछे ये दोनों काम सूत्रधार करने लगा। अभिनवगुप्त ने राग-काव्य का उल्लेख किया है। यही रागकाव्य आजकल की भाषा में गीति-नाट्य कहा जाता है।

—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध

नाटकों में रस का प्रयोग—निबन्ध। पश्चिम ने कला को अनुकरण ही माना है, सत्य नही। किन्तु भारत में रस-सिद्धान्त के द्वारा साहित्य में दार्शनिक सत्य की प्रतिष्ठा हुई। जैसे शिव के भीतर से विश्वात्मा की अभिव्यक्ति होती है, उसी तरह नाटकों से रस की। यह देवतार्चन है। आधुनिक रंगमञ्च का एक दल कहता है कि नट को आस्वाद अनुभूति की आवश्यकता नही। परन्तु रस-विवेचना में कवि, नट और सामाजिकों में अभेद भाव से एक रस होता है। यह साधारणीकरण त्रिवृत है। कुछ लोग प्राचीन रस-सिद्धान्त से अधिक महत्त्व देने लगे हैं चरित्र-चित्रण को। उनमें भी अग्रसर हुआ है दूसरा दल, जो मनुष्यों के विभिन्न मानसिक आकारों के प्रति कुतूहलपूर्ण है, अथ च व्यक्ति-वैचित्र्य पर विश्वास रखने वाला है। भारतीय दृष्टिकोण रस के लिए चरित्र और व्यक्ति-वैचित्र्य को रस का साधन मानता है, साध्य नहीं। पश्चिम का सिद्धान्त दया और सहानुभूति उत्पन्न करके भी दुःख को अधिक प्रतिष्ठित करता है, निराशा को अधिक आश्रय देता है। भारतीय रसवाद में मिलन, अभेद सुख की सृष्टि मुख्य है। रस में लोक-मंगल की कल्पना प्रच्छन्न रूप से अन्तर्निहित है। इस अभिन्नता में व्यक्ति की विभिन्नता छूट जाती है। रसवाद की यही पूर्णता है।

—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध

नाट्यशास्त्र—भरत-प्रणीत। दे० भरत।

[नृत्य, संगीत, नाटक, रसालंकार पर अत्यन्त प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ जिसमें ३६ अध्याय हैं।]

नाथपुत्र—दे० मस्करी गोशाल।

नाथ, स्नेह लता सींच दो, शान्ति जलद वर्षा कर दो—माणवक और आस्तीक की प्रार्थना। हे नाथ, शान्ति की वर्षा करके स्नेह का सञ्चार करो; हिंसा की धूल बैठ जाए, जीवन-क्यारी हरी-भरी हो, विश्व में समता की स्थापना हो और तुम्हारी करुणा से यह संसार सुखमय हो।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-६

नादिरशाह—विजय ने बाथम को नादिरशाह का चित्र बनाकर दिया।

—कंकाल, २-३

[फ़ारस का एक नृशंस शासक जिसने अफ़गानिस्तान में लूटमार करने के बाद सन् १७३८ ई० में पंजाब पर चढ़ाई की और दिल्ली में जनसंहार किया।]

नारद[१]—कलहप्रिय, ब्रह्मा के पुत्र, स्कन्द और गणेश को बातों-बातों में लड़ा दिया।

इन बातों में उन्हें सुख मिलता है। उनका कहना है—"येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्।" —(पंचायत)

नारद[१]—जिसने विश्वामित्र और वशिष्ठ के बैर की कथा सुनाकर महाराज त्रिशंकु को विश्वामित्र के पास जाने के लिए उत्तेजित किया। —(**ब्रह्मर्षि**)

[एक प्रसिद्ध देवर्षि जिन्हें ब्रह्मा का मानस पुत्र माना जाता है। वे वीणा बजाते हुए और हरिकीर्तन करते हुए एक लोक से दूसरे लोक में घूमा करते हैं। इनका दूसरा नाम 'कलहप्रिय' भी है।]

नारी—नारी! तुम केवल लज्जा हो...

—**कामायनी, लज्जा, पृ० १०६**

नारी माया ममता का बल,
वह शक्तिमयी छाया शीतल।

—**कामायनी, दर्शन, पृ० २३८**

आरंभिक युग की। —**चित्रमन्दिर**

मैं तो गृहस्थ नारी की मंगलमयी कृति का भक्त हूँ। वह इस साधारण संन्यास से भी दुष्कर और दम्भविहीन उपासना है। (मुकुन्दलाल) —**तितली, ३-७**

दे० आर्थिक स्वातन्त्र्य भी।

दे० स्त्री, भारतीय नारी।

दे० 'नारी-पतन' आदि अगले शब्द भी।

नारी-पतन—सब काल में अहल्या-सी स्त्रियों के होने की सम्भावना है, क्योंकि कुमति तो बची है, वह जब चाहे किसी को अहल्या बना सकती है। उसके लिए उपाय है—भगवान् का नामस्मरण। (वैरागी की कथा में)

—**कंकाल, पृ० २४७-४८**

नारी-रूप—दे० रूप-वर्णन।

नारी-हृदय—नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्गम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है। (वासवी) —**अजातशत्रु, ३-१**

—एक दुर्भेद्य नारी-हृदय में विश्व-प्रहेलिका का रहस्य-बीज है। (भटार्क)

—**स्कन्दगुप्त, १-४**

नारोपा—सिद्ध। सहज आनन्द की भावना वाले। —**रहस्यवाद, पृ० ३६**

[८४ सिद्धों में एक—अपभ्रंश में इन्होंने सहजयानी काव्य रचा।]

नास्तिकता—दे० आस्तिकता।

निआलतगीन=अहमद निआलतगीन।

निकल मत बाहर दुर्बल आह—सुवासिनी की आन्तरिक विकलता को शान्त करने और प्रेम-संकेत का प्रत्युत्तर देने के लिए राक्षस द्वारा 'अभिनय सहित' गाया हुआ गीत। वेदने! बाहर न निकल। कहीं दुनिया वाले हँसेंगे। तड़प कर सो जा शारदीय मेघ में चपला की तरह। प्रेम की मीठी पीर का आस्वादन करती हुई चली चल। जैसे तारे रात का विरह-शृंगार है, इसी तरह मेरे अश्रु। पपीहा और कोकिल को देख। हृदय में रह, पर उसे झकझोर नहीं। हृदय की धड़कनों को जगा नहीं। —**चन्द्रगुप्त, १-२**

निज अलकों के अन्धकार में तुम कैसे छिप जाओगे—गीत। कवि अपने प्रियतम के साथ आंख-मिचौनी खेलते है। प्रिय! तुम अपने चरणों को दबा-दबाकर रखते हो, इन से अरुणिमा

निकल पड़ेगी। उससे प्राची अपना भाल सजा सकती है।

तुम कोमल किरन-उँगलियों से
ढँक दोगे यह दृग खुला हुआ।
फिर कह दोगे : पहचानो तो
मैं हूँ कौन बताओ तो॥

इसके बाद फिर चुप हो जाओगे। पर मेरे क्षितिज! मेरे मानस-जलधि का चुम्बन करो! मुझे बाहु लता मे जकड़ो। उदार बनो 'तुम हो कौन और मैं क्या हूँ? इस में क्या है धरा!' —लहर

निढू—संदर्भ-पात्र। —तितली ३-५

निधरक तूने ठुकराया तब मेरी टूटी मृदु प्याली को—गीत। तुमने मेरा प्यार ठुकरा दिया। काश कि इसे तुम्हारे चरणों की लाली मिल जाती! वर्षा की बूंदें क्या हैं, मेरे जीवन-रस के बचे-खुचे कण हैं जो अम्बर में आंसू बनकर छा गए थे। मेरी हूक और कसक सूखी डाली को भी झंकृत कर देती है। मेरे अधरों की प्यास नहीं बुझने दी। उसके चरणचुम्बन की आकांक्षा बनी रही तथा होंठों पर फिर लाली नहीं आई। हे निर्दयी! भूले प्यार की सोच मत कर। —लहर

नियति—नियतिवाद भारतीय दर्शन का एक प्रमुख स्वर है। साहित्य में ही नहीं, नियतिवाद प्रसाद के जीवन का दर्शन भी है। प्रसाद ने इसका सन्निवेश अपने नाटकों, उपन्यासों और अनेक कहानियों में किया है। अनेक नाटकों की कथावस्तु का संचालन इस सिद्धान्त से होता है। कंकाल, तितली और इरावती में अनेक घटनाओं के उतार-चढ़ाव में नियति का हाथ है। 'अजातशत्रु' में जीवक और मागंधी नियति की, जीवक अदृष्ट की, बिम्बसार अदृष्ट के लेख की तथा प्रकृति की बात करता है। 'करुणालय' में रोहित और शुनःशेफ दोनों भाग्यवादी हैं। 'कामना' में विलास अदृष्ट शक्ति को मानता है। 'जनमेजय का नाग-यज्ञ' में जरत्कारु, जनमेजय, व्यास, उत्तंक, सरमा, माणवक, वेद आदि अनेक पात्र नियति, अदृष्ट शक्ति, भाग्य-लिपि, ब्रह्मचक्र (व्यास), अथवा प्रकृति की सत्ता को स्वीकार करते हैं। 'चन्द्रगुप्त मौर्य्य' में अलका, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, शकटार और सिंहरण प्रकृति, दैव, ईश्वर और नियति के खेल देख कर चकित हैं। ध्रुवस्वामिनी को अपनी विपत्तियों में नियति, भाग्य अथवा भाग्य-विधाता का ही आश्रय है। 'राज्य-श्री' में शांतिदेव, देवगुप्त, मधुकर और कमला भाग्य, दैव और दुर्दैव के आगे नतमस्तक हैं। 'विशाख' का नायक भाग्य को और नायिका दैव को मानती है। 'स्कन्दगुप्त' मे अनन्तदेवी नियति की, विजया अदृष्ट की, चक्रपालित अदृष्टलिपि की, खिंगल भाग्य की, प्रपंचबुद्धि ललाट-लिपि की, कमला और मातृगुप्त दुर्दैव की बात कहते हैं। दे० आगे के शब्द और नियति के पर्य्याय भी। उपन्यासों में अधिकतर कथाएँ और अन्तर्कथाएँ नियति से परिचालित होती हैं। दे० कंकाल, तितली, इरावती की कथा।

—अदृष्ट तो मेरा सहारा है। नियति की डोरी पकड़ कर मैं निर्भय कर्म्म-कूप में कूद सकता हूँ। क्योंकि मुझे विश्वास है कि जो होना है वह तो होगा ही, फिर कायर क्यों बनूं—कर्म से क्यों विरक्त रहूँ। (जीवक) —अजातशत्रु, १-४

वाह री नियति ! (मागन्धी)

—अजातशत्रु, ३-७

—मनुष्य में कर्म करने की स्वतंत्रता नहीं। उसके लिए जो कुछ होना है वह होकर ही रहेगा। वह अपनी ही गति से गन्तव्य स्थान तक पहुँच जायगा। (आनन्द) —एक घूंट

—(यह पृथ्वी) जहां लालसा क्रंदन करती है। दुःखानुभूति हँसती है और नियति मिट्टी के पुतलों के साथ अपना क्रूर मनोविनोद करती है। (श्रीनाथ) —(आंधी)

—नियति भयानक वेग से चलती रही है। आंधी की तरह उस में असंख्य प्राणी तृणतूलिका के समान इधर-उधर बिखर रहे हैं। (श्रीनाथ) —(आंधी)

—निर्मोह काल के काले पट पर कुछ अस्फुट लेना। —आंसू, ४५

—संकेत नियति का पाकर
तम से जीवन उलझाएँ।

—आंसू, ६०

—नचती है नियति नटी-सी
कन्दुक-क्रीड़ा सी करती ।
—इस व्यथित विश्व आँगन में
अपना अतृप्त मन भरती ।

—आंसू, ५१

—अभी तो नहीं जा रहा हूँ। आगे जाने नियति ! लाखों योनियों में भ्रमण कराते-कराते जैसे यहां तक ले आई है, वैसे और भी जहां जाना होगा .....

—इरावती, पृ० ७३

—कब क्या होगा कोई नहीं जानता। (धनदत्त) —इरावती, पृ० ८७

—नियम ही नियति हो जाते हैं, असफलता की ग्लानि उत्पन्न करते हैं। (कामना) —कामना, २-१

—इस नियति नटी के अति भीषण
अभिनय की छाया नाच रही ।

—कामायनी, इड़ा, १५८

—कातरता से भरी निराशा
देख नियति पथ बनी वहीं ।

—कामायनी, चिन्ता, पृ० १६

—उस एकान्त नियति शासन से
चले विवश धीरे-धीरे ।

—कामायनी, आशा, पृ० ३४

—मनु और श्रद्धा का मेल भी नियति का खेल है। —वही, वासना

—मनु सारस्वत प्रदेश में 'नियति-चक्र' (पृ० १६३), 'नियति प्रेरणा' (पृ० १६५), 'नियति विकर्षणमयी' (पृ० २००)।

—प्रजापति मनु मूच्छित पड़ा था। यह भी नियति का खेल था।

—कामायनी संघर्ष

—नियति सम्राटों से भी प्रबल है। (शकटार) —चन्द्रगुप्त, ३-९

—नियति कुछ अदृष्ट का सृजन कर रही है। (शकटार) —चन्द्रगुप्त, ४-५

—सिंहरण और चाणक्य भी नियति की कठोरता को मानते हैं। 'नियति सुन्दरी के भवों में बल पड़ने लगे हैं।' (चाणक्य) —**चन्द्रगुप्त**

—नियति अखंडनीय कर्मलिपि है।
—**जनमेजय का नाग-यज्ञ**

—अदृष्ट की लिपि ही सब कुछ कराती है। (जरत्कारु)—**जनमेजय का नाग-यज्ञ**

—दंभ और अहंकार से पूर्ण मनुष्य अदृष्ट शक्ति के क्रीड़ा-कन्दुक हैं। अंध नियति कर्तृत्व मद से मत्त मनुष्यों की कर्मशक्ति को अनुचरी बनाकर अपना कार्य कराती है। (वेदव्यास)
—**जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-१**

—मनुष्य क्या है? प्रकृति का अनुचर और नियति का दास या उसकी क्रीड़ा का उपकरण। (जनमेजय)
—**जनमेजय का नाग-यज्ञ, २-१**

—परमात्मशक्ति सदा उत्थान का पतन और पतन का उत्थान किया करती है। इसी का नाम है दम्भ का दमन। स्वयं प्रकृति की नियामिका शक्ति कृत्रिम स्वार्थ-बुद्धि में रुकावट उत्पन्न करती है। ऐसे कार्य कोई जान-बूझकर नहीं करता, और न उनका प्रत्यक्ष में कोई बड़ा कारण दिखायी पड़ता है। उलटफेर को शान्त और विचारशील महापुरुष ही समझते हैं, पर उसे रोकना उनके वश की भी बात नहीं है, क्योंकि उसमें विश्व भर के हित का रहस्य है। (व्यास)
—**जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-१**

—नियति दुस्तर समुद्र को पार कराती है, चिरकाल के अतीत को वर्तमान से क्षण भर में जोड़ देती है, और अपरिचित मानवता-सिन्धु में से उसी एक के साथ परिचय करा देती है, जिससे जीवन की अग्रगामिनी धारा अपना पथ निर्दिष्ट करती है। (शैला) —**तितली, २-१**

—जो आज गुलाम है, वही कल सुलतान हो सकता है। (फीरोजा) —**(वासी)**

—यही विधाता का निष्ठुर विधान है। इससे छुटकारा नहीं। जीवन नियति के कठोर आदेश पर चलेगा ही। (ध्रुव-स्वामिनी) —**ध्रुवस्वामिनी, पृ० ३३**

—विधाता की स्याही का एक बूंद गिर-कर भाग्यलिपि पर कालिमा चढ़ा देता है। (चन्द्रगुप्त) —**ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६९**

—कौन उठा सकता है धुंधला
पट भविष्य का जीवन में।
—**प्रेमपथिक**

—नियति ने किशोर और चमेली ऐसे सम्पन्न व्यक्तियों को विरागी बनाया।
—**प्रेमपथिक**

—किस ने ऐसे सुकुमार फूलों को कष्ट देने के लिए निर्दयता की सृष्टि की? आह री नियति! (शराबी) —**(मधुआ)**

—शान्ति भिक्षु नियति का सहारा लेकर चलता है। राज्यश्री नियति का खिलौना मात्र है। —**राज्यश्री**

—मनुष्य की अदृष्टलिपि वैसी ही है जैसी अग्निरेखाओं से कृष्ण मेघ में बिजली की वर्णमाला—एकक्षण में प्रज्वलित, दूसरे क्षण में विलीन होने वाली। भविष्यत्

ा अनुचर तुच्छ मनुष्य केवल अतीत का
वामी है। (स्कन्दगुप्त) —**स्कन्दगुप्त**

—अपनी नियति का पथ मैं अपने पैरों
लूंगी। (अनन्तदेवी) —**स्कन्दगुप्त, १-४**

—रहस्यमयी प्रज्वलित कठोर शक्ति।
—**स्कन्दगुप्त**

नियति के पर्याय—अदृष्ट, अदृष्ट का
लेख, अदृष्ट लिपि, दे० अदृश्य लिपि,
अदृष्ट शक्ति आदि। दे० अनिच्छा, दैव,
प्रकृति, ब्रह्मचक्र, भाग्य, भाग्यलिपि, ललाट
लिपि और विधाता।

यतिवाद—दे० नियति।

यम—इस नियमपूर्ण संसार में अनियंत्रित
जीवन व्यतीत करना क्या भर्त्सना नहीं
है? नियम अवश्य है। ऐसे नील नभ
में अनन्त उल्का-पिंड, उनका क्रम से
उदय और अस्त होना, दिन के बाद
नीरव निशीथ, पक्ष-पक्ष पर ज्योति-
ष्मती राका और कुहू, ऋतुओं का चक्र,
और निस्सन्देह शैशव के बाद उद्दाम
यौवन, तब क्षोभ से भरी हुई जरा—ये
सब क्या नियम नहीं हैं? (विलास)
—**कामना, २-१**

रञ्जन—दे० देवनिरञ्जन।

रञ्जन सिंह—नन्हकू सिंह के पिता,
एक प्रतिष्ठित जमींदार। —(**गुण्डा**)

राशा—दे० आशा विकल हुई है मेरी।
दे० मधुर माधवी संध्या में।

राशा में आशा—

नक्षत्र नहीं है कुहू निशा में,
बीच नदी में बेड़ा है।...

"हाँ, पार लगेगा घबड़ाओ मत,"
किसने यह स्वर छेड़ा है?
(सुश्रवा) —**विशाख, १-१**

निराशावाद—संसार भर में विद्रोह, संघर्ष,
हत्या, अभियोग, षड्यंत्र और प्रतारणा
है। (बिम्बसार) —**अजातशत्रु, २-६**
दे० अन्धेर।

निर्जन गोधूली प्रान्तर में खोलेपर्ण कुटी का द्वार—१२ पंक्तियों का श्यामा
का गीत। इसमें उसने अपनी ही स्थिति
को स्पष्ट किया है। निर्जन प्रान्त में
एक पर्णकुटी है, द्वार खुले हैं, दीप जल
रहा है, कोई किसी की प्रतीक्षा कर रहा
है, 'अलस अकम्पित आंखों से'। आहें
निकल रही हैं, आंसू बह रहे हैं, हृदय
में द्वन्द्व है कि वे आएँगे या नहीं आएँगे।
वह प्रेम-व्यथा को शान्त करने की सोचती
है, प्रियतम के हृदय में स्थान चाहती
है, परन्तु उसे ऐसा लगता है कि जिसकी
प्रतीक्षा है वह सब प्यार ही भूल गया
है। बेचारी के लिए आंसू-हार ही परिचय
देने को रह गये हैं, और सामने है
अन्धकार। —**अजातशत्रु, २-८**

निर्मल—भावुक युवक। —(**भिखारिन**)

निवेदन—८ पंक्तियों की लघु कविता।
तेरे प्रेम-हलाहल से मर कर भी विरह-
सुधा से जीते है। यह हृदय-मृग, प्रेम-
पिपासा में पड़कर, मरीचिका-आशा में
भटक चुका है। मेरे मरुमय जीवन को,
हे सुधा-स्रोत, हरा-भरा कर दो। मुझे
उपालम्भ तो देना है, पर—

केवल एक तुम्हारा चुम्बन इस मुख को चुप कर देगा। —झरना

निशीथ-नदी—२८ पंक्तियों की अतुकान्त कविता। कवि नदी की शीतल लहरों से चित्त को शान्त करना चाहता है। आकाश से निर्निमेष नीरव तारे अभिनय कर रहे हैं; दिशाएँ, धरा, तरुराजि, पवन सब शान्त हैं। तारों का कुछ-कुछ प्रकाश है। नदी की वालू और कूल पर की तरु-राजि सब स्वच्छ हैं। नदी 'चली जा रही है अपनी ही सीधी धुन में।' उसे किसी से न मोह है न द्वेष। वह उत्पल खंड से टकराती नहीं, पर्ण-कुटीरों को बहाती नहीं, 'गर्जन भी है नहीं, कहीं उत्पात नहीं है।' इसका कल-नाद शांतिगीत-सा है। मनुष्य का भी 'कब यह जीवन-स्रोत मधुर ऐसा ही होगा।' —कानन-कुसुम

निषध पर्वत=सुलेमान पहाड़।

—चन्द्रगुप्त, १-५, ४-१४

[वर्तमान पाकिस्तान और अफ़गा-निस्तान के बीच का पहाड़। पुराणों में एक निषध पर्वत का उल्लेख है जो उत्तर में मेरु का एक भाग है।]

नीच प्रकृति—

कंटक नहिं पददलित होत मारग में जौ लौं।
मुख की तीछनता को त्यागत हैं नहिं तौ लौं।
नीच प्रकृति जन मानत नाहिन है बातन से।
ये पूजा के योग सदा लातन से॥

—(सज्जन, दृश्य ४)

नीरद—३२ पंक्तियों की कविता। समीर के वाहन पर बैठकर मेघ आया है। कितना अद्भुत विस्तार है इसके रूप का। मेघ वास्तव में जीवनदाता है। इसमें कृषक-जन को हर्षित करने की शक्ति है। प्रकृति प्रसन्न हो उठती है। चातक भी नाच उठते हैं। लेकिन प्रेमीगण को तरसाता है। पथिक और विरही जन का भी कुछ विचार नहीं करता, गरजता ही जाता है। —(पराग)

नीरव प्रेम—इन्दु, कला २, किरण ७, माघ '६७ में प्रकाशित ५२ पंक्तियों की कविता। प्रमाद मूक प्रेम में विश्वास रखते हैं। प्रेम कमल-कोष में बन्द मक-रन्द की तरह होता है। अधरों के प्रथम भाषण की तरह वह मन, प्राणों में गूंजता रहता है। इच्छा होते हुए भी भाव प्रकट नहीं हो पाते।

गगन सों बिन अन्त गँभीर हौ।
जलधि सों तुम नीरव नीर हौ॥
सुमन देखि खिले खिल जात हौ।
अलिन में तुरतै मिल जात हौ॥
कलिन खोलहत हौ रस रीति सों।
पर न गूंजत हौ नव नीति सों॥

—(पराग)

नीरा[1]—विचार-प्रधान कहानी। जना-कीर्ण कलकत्ता से दूर घने अंधकार में जाते समय देवनिवास की साइकिल सहसा नीरा के पिता, वृद्ध कुली, से टकरा गई। यह कुली मौरिशस में रह चुका था। कुली-जीवन और गृहस्थी के द्वन्द्वों ने उसे अनीश्वरवादी बना दिया था और साथ ही तार्किक भी। देवनिवास अपने मित्र पत्रकार अमरनाथ के साथ

उसकी दीन झोपड़ी में गया। वहां उसके साथ महानुभूति का व्यवहार किया। देवनिवास ने यह भी पूछा कि क्या तुमने कभी अपने अपराधों पर भी विचार किया, या केवल ईश्वर को दोषी मान लिया। देवनिवास उसके पास कई दिनों बाद फिर गया। बुड्ढे ने अपनी सारी दुःख-कथा सुनाई। वह आखिरी सांस लेने लगा। उसकी आस्तिकता जाग उठी थी। बूढ़े ने याचना-भरी दृष्टि से देवनिवास की ओर देखा और फिर नीरा की ओर। नीरा ने कहा—बाबा मेरी चिन्ता न करो, भगवान् मेरी रक्षा करेंगे। देवनिवास ने कहा—मैं नीरा से व्याह करने को प्रस्तुत हूँ। बूढ़े को सन्तोष हुआ। आखिरी हिचकी के साथ उसने अपने दोनों हाथ देव निवास और नीरा पर फैला कर रखते हुए कहा—हे मेरे भगवान्।

कथोपकथन बहुत मँजा हुआ है। कहानी में बूढ़े की विचार-ग्रन्थियों का बौद्धिक स्पष्टीकरण सफलतापूर्वक उपस्थित किया गया है। —(आंधी)

नीरा[२]—(नदी) —(नीरा)
[बंगाल में]

नीरा[३]—'नीरा एक गोरी-सी सुन्दरी पतली-दुबली करुणा की छाया थी।' दरिद्रता के कारण स्त्रियोचित लालसाओं से उदासीन थी। उसे ईश्वर में अटल विश्वास था। —(नीरा)

नीलधर—बूटी का भावी पति। बूटी के नाते कहानी में उल्लेख मात्र। —(परिवर्तन)

नीला[१]—उत्पला भिक्षुणी की श्रमणेरी। —इरावती, १

नीला[२]—मगध राजकुमारी कल्याणी की सखी। —चन्द्रगुप्त, १-४

नीला[३]—इन्द्रनील की पुतली, फूलों से सजी हुई, भिल्लिनी युवती। उसके सहज कुञ्चित केश से वन्य कुरुवक की कलियां कूद-कूद कर जल-लहरियों से क्रीड़ा कर रही थीं। यद्यपि रंग कंचन के समान नहीं, फिर भी गठन सांचे में ढला हुआ था। आकर्ण विस्तृत नेत्र नहीं, तो भी उनमें एक स्वाभाविक राग था। यह कि उसमें सौन्दर्य नहीं, कोई साहस से नहीं कह सकता था। इसे घनश्याम ने अपने आलिंगन में लेना चाहा था। —(पाप की पराजय)

नूरी[१]—प्रसाद की दुःखान्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की कहानी। नूरी काश्मीर की एक सुन्दर रमणी थी। सुलतान यूसुफ खां ने उसका घर-बार छीन लिया। नूरी भाग निकली और फतहपुर सीकरी में सम्राज्ञी सुलताना की सेविका आ बनी। उसके नृत्य पर सब मुग्ध थे। अकबर इन दिनों काश्मीर को हड़पने की सोच रहा था। नूरी का प्रेमी शाहजादा याकूब खां (यूसुफ खां का पुत्र) उसे यहां आ मिला, अकबर की हत्या करने में सहायता पाने। नूरी प्रेम और कर्तव्य दोनों की रक्षा करना चाहती थी। दोनों प्रेमी बन्दी हुए। याकूब खां को छोड़ दिया गया; परन्तु नूरी को बुर्ज के तहखाने में कैद कर दिया

गया। अठारह वर्ष बाद जब अकबर का राज्यकाल समाप्त होने को था तब शाहजादा सलीम ने बन्दियों को मुक्त कर दिया। मुक्त होने पर नूरी को काश्मीर के शाहजादे की स्मृति बेचैन करने लगी। इस समय वह भिखमंगा था—राजपाट छिन जाने के बाद। दोनों मिले, पर अब क्या था। याकूब दम तोड़ रहा था और नूरी की आंखों से टप-टप आंसू गिर रहे थे।

कहानी में नाटकीय प्रभाव है।

—इन्द्रजाल

नूरी[२]—श्रीनगर (काश्मीर) के पास इसका घर था। सुलतान के कोप से भाग कर मुगल रनिवास में शरणागत हुई। सीकरी के महलों में उसके कोमल चरणों की नृत्यकला प्रसिद्ध थी। काश्मीर की इस कलिका का आमोद-मकरन्द अपनी सीमा में मचल रहा था। १८ वर्ष बाद, जब शाहजादा सलीम की आज्ञा से तहखाने से निकली तो संत सलीम की समाधि पर सेवाकार्य में लग गई। उदास और दयनीय मुख पर निरीहता की शांति थी। नूरी में विचित्र परिवर्तन था। उसका हृदय अपनी विवश पराधीनता भोगते-भोगते शीतल और भगवान् की करुणा का अवलंबी बन गया था। उसका प्रेमी मिला, पर अब प्रेम करने का दिन तो नहीं रहा। नूरी ने मोह का जाल छिन्न कर दिया था; तो भी उस दयनीय मनुष्य की सेवा को वह प्रस्तुत हुई। आह! निर्ममहृदय नूरी ने विलम्ब कर दिया।

—(नूरी)

नेरा—श्याम किन्तु उज्ज्वल मुख, सुडौल गढ़न। **—(सुनहला सांप)**

नैसर्गिक जीवन—सम्हलो। लौट चलो उस नैसर्गिक जीवन की ओर, क्यों कृत्रिमता के पीछे दौड़ लगा रहे हो! (विवेक) **—कामना, ३-१**

प

पञ्चदशी—प्रसिद्ध वेदान्त ग्रन्थ जिसमें आया है—'अयमात्मा परमानन्दः परं प्रेमास्पदं यतः' जो God is love का पर्य्याय है, अनुकरण तो नहीं।

—काव्य और कला, पृ० ४

[इसके रचयिता मध्व उपनाम आनन्दतीर्थ ने सात उपनिषदों, गीता, ब्रह्मसूत्र आदि ग्रन्थों की टीकाएं भी लिखीं। समय ११९७–१२७६ ई०]

पञ्चनद[१]—दे० गान्धार। पंचनद प्रदेश मगध साम्राज्य से अलग हो गया। बाद में यवनों के हाथ में पड़ गया।

—इरावती, पृ० ३०

पञ्चनद[२]—राज्यवर्धन हूणों से युद्ध करने पञ्चनद गए हुए थे। तभी तो देवगुप्त को कन्नौज में काण्ड करने का अवसर मिल गया। **—राज्यश्री, १-६**

पंचनद गुल्म में विकटघोष और उसके साथी दस्यु सम्मिलित हो गए।

—राज्यश्री, २-२

दे० कामरूप भी।

पञ्चनद[1]—

वीर भूमि पञ्चनद वीरता से रिक्त नहीं।
यवनों के हाथों से स्वतंत्रता छीन कर,
खेलता था यौवन-विलासी मत्त पंचनद—
प्रणय-विहीन एक वासना की छाया में।

—(**शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण**)

पञ्चनद[2]—पंचनद पर फिर हूणों ने अधिकार कर लिया। —**स्कन्दगुप्त, ४**

[पाँच नदियों—जेहलम, चनाब, रावी, व्यास, सतलज—वाला देश। सिंधु नदी इसकी पश्चिमोत्तरी सीमा पर है। आर्य, ईरानी, यूनानी, कुशान, यूची, शक, हूण, गुर्जर, तातारी, तुर्क, मुगल, सब के आक्रमण पहले इस प्रदेश पर हुए।]

दे० पंजाब भी।

पञ्चनद-नरेश—पौरव पर्वतेश्वर पंचनद-नरेश थे। दे० पर्वतेश्वर। —**चन्द्रगुप्त**

पञ्चायत—इन्दु, कला २, किरण १, श्रावण '६७ में प्रकाशित। 'चित्राधार' द्वितीय संस्करण में संगृहीत पौराणिक कथा। इसमें इस प्रश्न का उत्तर है कि स्कन्द और गणेश दोनों में कौन बड़ा है। मन्दाकिनी के तट पर रमणीक भवन में स्कन्द और गणेश टहल रहे हैं। तभी नारद जी आ जाते हैं। विवाद बढ़ते देख वे कहते हैं कि पंचायत निर्णय करेगी। नारद ने शंकर से जाकर कहा। शंकर ने देखा कि गणेश जननी को बहुत प्रिय है, अतएव कलह उत्पन्न होने की सम्भावना है; तो शंकर ने नारद से कहा कि अपने पिता को पंच बनाओ। ब्रह्मा के कहने पर सब देवगण शंकर के सामने एकत्र हुए। ब्रह्मा ने कहा कि संसार की परिक्रमा सब से पहले करने वाला बड़ा माना जायगा। स्कन्द मयूर पर चल पड़े। गणेश ने केवल माता-पिता की परिक्रमा कर ली। ब्रह्मा ने निर्णय दिया—"गणेश ने विश्वरूप जगज्जनक और जननी ही की परिक्रमा कर ली है। सो भी तुम्हारे पहले ही।" स्कन्द लज्जित होकर चुप रहे।

यह कथा 'ब्रह्मर्षि' में अधिक सुन्दर है। परिहास की भी अच्छी झलक है। मानव-स्वभाव पर भी कुछ विचार हैं।

पञ्जाब[1]—पंजाब में स्त्रियों की कमी है, इसलिए और प्रान्तों से स्त्रियां वहां भेजी जाती हैं जो अच्छे दामों पर बिकती हैं।—पंजाब से श्रीचन्द, चंदा और लाली काशी आए।—किशोरी को क्षमा करके श्रीचन्द काशी में रहने लगा और व्यवसाय के लिए पंजाब नहीं गया।

—**कंकाल १-२, ३-३**

पञ्जाब[2]—गजनी का एक प्रान्त था। महमूद के आक्रमणों का अन्त हो चुका था। मसऊद सिंहासन पर था। पंजाब गजनी के सेनापति नियाल्तगीन के शासन में था। बलराज और तिलक पंजाब के रहने वाले थे। —(**दासी**)

पञ्जाब[3]—वन्य प्रकृति का वर्णन। वहां की पोशाक। —(**भीख में**)

दे० पञ्चनद भी।

[प्रसाद का पंजाब १९४७ ई० के बँटवारे से पहले का संयुक्त पंजाब है।]

पटना— —(सन्देह)

[शोण और गंगा के संगम पर बसे पाटली नाम के गाँव में अजातशत्रु ने छठी शताब्दी ई० पू० में दुर्ग बनवाया। उसके पौत्र उदयाश्व ने दुर्ग के नीचे एक नगर बसाया जो कुसुमपुर, पुष्पपुर, और पाटलिपुत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। नंदवंश, मौर्यवंश, शुंगवंश, कण्ववंश, गुप्तवंश के राजाओं की राजधानी रहा। पाटलिपुत्र ७५० ई० के लगभग गंगा में बह गया था। ह्यून साँग के समय में यह नगर बुरी दशा में था। १००० वर्ष बाद शेरशाह सूरी ने पटना को अपनी राजधानी बनाया।]

पटल—अशोक की राजधानी

—(अशोक)

[=पाटलिपुत्र, पटना]

पण्डितराज जगन्नाथ—शब्द मात्र ही काव्य है, शब्द और अर्थ दोनों नहीं।

—(रस, पृ० ४२)

ब्रह्म रस है, ब्रह्म आनन्द है।

—(रस, पृ० ४७)

[प्रसिद्ध आलंकारिक और कवि; रसगंगाधर, भामिनीविलास आदि ग्रन्थों के रचयिता, जो १६२०–१६६० ई० तक दिल्ली-दरबार में रहते रहे।]

पतंजलि—भाष्यकार पतञ्जलि ने कंस-वध और बलि-बन्ध नामक नाटकों का उल्लेख किया है।

—(नाटकों का आरंभ, पृ० ५६)

[वैयाकरण तथा दार्शनिक; महाभाष्य और 'पातञ्जलयोगशास्त्र' के रचयिता, समय १८० ई० पू०।]

पतित पावन—इन्दु, कला ५, खंड १, किरण १, जनवरी १९१४ में प्रकाशित कविता। इसमें ईश्वर की महान् करुणा की ओर संकेत किया गया है, वह पतित-पावन सब जीवों का जीवन है। जो कोई उसके पदपाद में पतित होता है, वह भी पूत हो जाता है। कोई कितना ही पतित क्यों न हो, संसार के गर्त में पड़ा हो, वह भगवान् की शरण में आकर पावन हो जाता है। 'पतित ही के बचाने के लिए वह दौड़ आता है।'

—कानन-कुसुम

पति-पत्नी—संसार में स्त्रियों के लिए पति ही सब कुछ है। (मल्लिका)

—अजातशत्रु, १-५

पत्थर की पुकार—इसमें भी कथातत्त्व नगण्य है, इसलिए इसे गद्यकाव्य कहना ठीक होगा। नवल और विमल दोनों मित्र साहित्य-चर्चा करते हुए अलग हुए, तो विमल नगर के एक सूने मुहल्ले में एक दरिद्र शिल्पी की दीन कुटी के पास एक काले शिलाखंड पर बैठ गया। उसे लगा कि दूसरा पत्थर कुछ कह रहा है—"मैं अपने सुखद शैल में संलग्न था। मैं शिल्पी के पास चला आया था, इस आकांक्षा से कि मैं एक सुन्दर मूर्त्ति में परिणत हो जाऊँगा। परन्तु अब द्वार पर ठीकरे की तरह तिरस्कृत, उपेक्षित पड़ा हूँ।" पत्थर की पुकार सुनकर विमल ने रूखे स्वर में शिल्पी से प्रस्तर

के प्रति किए गए अत्याचार का कारण पूछा। शिल्पी जो धनाभाव के कारण रुग्णावस्था में अशक्त हो रहा था, बोला—तुम अमीर लोग पत्थर का रोना, जो काल्पनिक है सुन सकते हो ; दुःखी हृदय का नीरव-क्रन्दन जो वास्तविक है, क्या नहीं सुन सकते ?

यह कहानी प्रसाद साहित्य की प्रतिनिधि कहानियों में से एक है। पत्थर की पुकार क्या है—मानवता और करुणा की पुकार है। —प्रतिध्वनि

पथिक—दे० 'करुणा-पुञ्ज'।

दे० पैरों के नीचे जलधर हों। दे० बढ़े चलो।

पद-दलित किया है जिसने भूमंडल को—जनमेजय के याज्ञिक अश्व के रक्षक सैनिकों का गान। यह विश्व को चौंकाने वाला, भूमण्डल को पददलित करने वाला विजयी अश्व है, जिसे देख शत्रु भाग जाते हैं। यह लाल झंडा मलय पवन से मिल कर विजय-गीत गाता है। जनमेजय की जय हो ! जय आर्यभूमि की , आर्य-जाति की जय हो।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-३

पदमावत—मा ने गाला के सामने जायसी की पदमावत में वर्णित स्त्रियों का आदर्श रखा। 'स्त्रियों' को प्रेम करने से पहले यह सोच लेना चाहिए—मैं पदमावत हूँ कि नहीं। —कंकाल, ३-६

[दे० जायसी; इसमें पद्मावती और रत्नसेन की प्रेमकथा के बहाने अलौकिक प्रेम की विशद व्याख्या की गई है। भाषा ठेठ अवधी है।]

पद्मिनी—गाला ने मंगल से कहा—"पद्मिनी के समान जल मरना स्त्रियां ही जानती हैं, और पुरुष केवल उसी जली हुई राख को उठाकर अलाउद्दीन के सदृश बिखेर देना ही तो जानते हैं।

—कंकाल, ४-२

दे० पद्मिनी

पद्मा—है वह देवदासी, पर अशोक उसे देवबाला कहता है। स्वर्ण मल्लिका की माला उसके जूड़े से लगी रहती है। प्रायः वह कुसुमाभरण-भूषिता रहती है। वास्तव में वह रामास्वामी से प्रेम करती है और उसके मर जाने पर नाचना गाना बन्द कर देती है। —(देवदासी)

पद्मावती—मगध की राजकुमारी, उदयन की दूसरी रानी ; स्नेहमयी भगिनी और पतिव्रता नारी। अजात उसका सौतेला भाई है, फिर भी उसके हित की इसे बड़ी चिन्ता रहती है। 'कुणीक मेरा भाई है, मेरे सुखों की आशा है।' वह अपने माता-पिता की आदर्श सन्तान है—वासवी की तरह सहनशील, पति-परायण और करुणा की प्रचारक। उसका पति मागंधी की चाल में आकर उसका वध करना चाहता है पर अन्ततः सती के तेज के सामने झुकता है। पद्मावती बुद्ध की शिक्षा को मानती है। उसका आदर्श है कि 'मानवी सृष्टि करुणा के लिए है', 'राजा होने से मनुष्य होना अच्छा है।' सौजन्य और विनययुक्त

आत्म-समर्पण आदि बौद्धगुणों से सम्पन्न है। —अजातशत्रु, १-१, १-९, ३-९

बौद्धों ने इसका नाम श्यामवती लिखा है। किन्तु भास ने 'वासवदत्ता' में इसके भाई का नाम दर्शक (अर्थात् अजातशत्रु) लिखा है। कथासरित्सागर के अनुसार उसके पिता का नाम प्रद्योत था जो ठीक नहीं। —अजातशत्रु, कथाप्रसंग

पद्मिनी—सती के पवित्र आत्मगौरव की पुण्य गाथा गूंज उठी भारत के कोने-कोने जिस दिन; उन्नत हुआ था भाल महिला महत्त्व का।

कमला ने पद्मिनी की स्पर्द्धा करनी चाही। लेकिन उसका-सा दिव्य हृदय कहां था? —(प्रलय की छाया)

दे० पदमिनी भी।

[पद्मिनी के जौहर की घटना १३०१ ई० की है और कमला देवी की १२९७ ई० की! प्रसाद जी भूल कर गए!]

पन्ना—राजा चेतसिंह की माता। पुत्र उत्पन्न करने का सौभाग्य भी मिला, फिर भी असवर्णता का सामाजिक दोष उसके हृदय को व्यथित किया करता। उसे अपने व्याह को आरंभिक चर्चा का स्मरण हो आया। नन्हकूसिंह की वीरता की बातें सुन कर बड़ी आह्लादित हुई और उसके त्याग और बलिदान पर लज्जित थी; क्योंकि इसी के कारण वह 'डाकू' हो गया था।....संगीत पन्ना के जीवन का आवश्यक अंग था। सात्विक भावपूर्ण भजन में उसका मन लगता था। —(गुण्डा)

परख—पवित्रता की माप है मलिनता, सुख का आलोचक है दुःख, पुण्य की कसौटी है पाप। (देवसेना)

—स्कन्दगुप्त, २-१

परमार्थ—प्रेम की सत्ता को संसार में जगाना मेरा कर्त्तव्य है। (प्रेमानन्द)

—विशाख, १-४

मना आनन्द मत, कोई दुखी है।
सुखी संसार है तो तू सुखी है॥

—वही

परसिपोलिस—सिकन्दर की ग्रीस में राजधानी। वार्ता में उल्लेख।

—चन्द्रगुप्त, २-२

पराग—'चित्राधार' के पराग-खंड में २२ रचनाएँ है। सामान्य विषयों पर विचारों और भावों की अविच्छिन्न धारा कुछ दूर तक चली चलती है। इनमें शारदीय शोभा, रसाल-मंजरी, रसाल, वर्षा में नदीकूल, उद्यान-लता, प्रभात-कुसुम, शारदीय महापूजन, नीरद, शरद्-पूर्णिमा, संध्या तारा, चन्द्रोदय और इन्द्रधनुष प्रकृति-संबंधी कविताएँ है। अष्टमूर्ति, विनय और विभो प्रार्थनाएँ है। 'भारतेन्दु प्रकाश' महाकवि हरिश्चन्द्र के प्रति श्रद्धांजलि है। 'कल्पना-सुख' और 'मानस' अन्तर्मुखी रचनाएँ हैं। 'विदाई', 'नीरव-प्रेम', 'विस्मृत प्रेम' और 'विसर्जन' शृंगारी कविताएँ हैं। इन २२ कविताओं में 'रसाल-मंजरी' और 'विदाई' उच्च कोटि की हैं। इनके अतिरिक्त चार और कविताएँ 'पराग' के अन्तर्गत थीं,

जो 'चित्राधार' में नहीं हैं—'भ्रमर', 'नमस्कार', 'भूल' और 'प्रियतम'।

पराधीन—दे० राष्ट्रभावना।

परार्थ—दूसरे की रक्षा में, पाप का विरोध और परोपकार करने में प्राण तक दे देने का साहस किस भाग्यवान् को होता है? (विवेक) **—कामना, ३-७**

परिचय[१]—उषा का अरुण मे जो राग है, भ्रमर का जो मकरन्द में स्नेह है, मलयानिल का परिमल मे जो सम्बन्ध है,

वही परिचय था, वही सम्बन्ध
प्रेम का, मेरा तेरा छन्द।

—झरना

परिचय[२]—'विशाख' नाटक की भूमिका (पृष्ठ-संख्या ४) जिसमें राजतरंगिणी मे वर्णित इतिहास का कुछ परिचय है और साथ ही अशोक, कनिष्क, रणादित्य और इस नाटक के प्रधान पात्र नरदेव का समय निश्चित किया गया है। **—विशाख**

परिवर्तन[१]—मनोवैज्ञानिक कहानी। चन्द्रदेव विश्वविद्यालय का स्नातक होकर कहीं नौकरी नही करना चाहता था। वह छोटी-सी दुकान से अपना गुजर-बसर करता था। उसकी पत्नी मालती इससे सन्तुष्ट न थी। वह बीमार पड़ी। तब चन्द्रदेव उसे पहाड़ पर ले गया। वहाँ बूटी नाम की एक परिचारिका रोगिणी की सेवा में रखी गई। उसका अकृत्रिम स्वभाव और विवाह के बाद आदर्श गृहस्थी की कल्पना को देख-सुन कर इन दोनों का जीवन ही बदल गया। चन्द्रदेव का कोरा आदर्शवाद जाता रहा। मालती ने चन्द्रदेव को आशा, उत्साह और स्नेह से अपनाया और स्वस्थ, सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट तथा हँस-मुख गृहिणी बनने का निश्चय किया।

कहानी मे शिक्षित वर्ग के विडम्बनापूर्ण गृहस्थ जीवनपर व्यंग्य और भावी गृहस्थों के लिए शिक्षा है। **—इन्द्रजाल**

परिवर्तन[२]—प्रत्येक परिवर्तन सौन्दर्य सदर्भ का पृष्ठ है। (चाणक्य)

—चन्द्रगुप्त, ३-६

—जब संस्कार और अनुकरण की आवश्यकता समाज मे मान ली गई है, तब हम परिस्थिति के अनुसार मानसिक परिवर्तन के लिए क्यों हिचके? मेरा ऐसा विश्वास है कि प्रसन्नता में परिस्थिति को स्वीकार करके जीवन-यात्रा सरल बनाई जा सकती है। **—तितली, ४-३**

—जो आज गुलाम है, वही कल सुलतान हो सकता है। (फीरोजा) **—(दासी)**

—परिवर्तन ही सृष्टि है, जीवन है। स्थिर होना मृत्यु है, निश्चेष्ट शांति मरण है। प्रकृति क्रियाशील है। (धातुसेन) **—स्कन्दगुप्त, १-३**

परिस्थिति—मनुष्य परिस्थितियों का अंध-भक्त है। (देवपाल)

—(स्वर्ग के खंडहर में)

परीक्षित—'प्राक्कथन' मे महाभारत के आधार पर प्रसाद ने लिखा है कि महाभारत युद्ध के बाद उन्मत्त परीक्षित ने शृंगी ऋषि ब्राह्मण का अपमान किया। और तक्षक ने काश्यप आदि से मिलकर

उसकी हत्या कर दी। काश्यप यदि चाहते तो परीक्षित को तक्षक न मार सकता। परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने बदला लिया। —जनमेजय का नाग-यज्ञ

[परीक्षित अभिमन्यु के पुत्र और अर्जुन के पौत्र थे। इनके राजत्वकाल में कलियुग का आरंभ हुआ।]

पर्णदत्त—मगध का महानायक, गुप्त साम्राज्य का स्वामिभक्त, धीर, वीर, और कर्त्तव्यपरायण महाबलाधिकृत। देश के कल्याण के लिए वह स्कन्दगुप्त को सचेत करता हैं। नाटककार ने पर्णदत्त की वीरता युद्धव्यापार द्वारा नहीं दिखाई, स्कन्दगुप्त आदि की उक्तियों में उसकी वीरता का प्रमाण मिलता है। नगरहार के युद्ध के बाद विपत्ति में उसके धैर्य और साहस की परीक्षा होती है। 'जिसके लोहे से आग बरसती थी, वह जंगल की लकड़ियां बटोर कर आग सुलगाता है।' पीड़ितों की सेवा के लिए वह भिक्षावृत्ति ग्रहण करता है। ऐसी स्थिति में देशवासियों की विलासिता और स्वार्थान्धता देखकर उसे क्षोभ होता है। उसकी पुकार को स्कन्दगुप्त ने सुना। पर्णदत्त पवित्र क्षात्र धर्म का पालन करता हुआ हूणों से अन्तिम युद्ध में सम्राट् को बचाने में अपने प्राणों का उत्सर्ग करता है। वह सच्चा योद्धा और त्यागी देशभक्त है। —स्कन्दगुप्त

[सम्राट् का विश्वसनीय सहयोगी, सौराष्ट्र का गोप्ता। दे० जूनागढ़ का शिलालेख—फ्लीट।]

पर्वतेश्वर—पंजाब का राजा, ग्रीक इतिहासकारों ने इसे पोरस कहा है। दर्पयुक्त, वीर पर कामुक और अदूरदर्शी; ग्रीक विजेताओं के साथ घनघोर युद्ध में घायल होने पर भी वह भारतीय संस्कृति का संरक्षक, वीर और साहसी बना रहता है। परन्तु इसके बाद वह विलास की गम्भीर कालिमा में खो जाता है। उसमें न नीति रहती है न विवेक। सिकन्दर के साथ युद्ध में उसने वीरता और आत्म-सम्मान का परिचय दिया। सन्धि के अनुसार उसे मालवों के विरुद्ध सिकन्दर की सहायता करनी है, इधर अलका से प्रेम के कारण असमंजस भी है। वह अलका से कहता है—"मैं समझता हूँ कि एक हजार अश्वारोहियों को साथ लेकर वहां पहुँच जाऊँ, फिर कोई बहाना ढूंढ़ निकालूंगा।" यह उसके चरित्र के पतन की सीढ़ी है। बाद में जब अलका उसके हाथ से निकल जाती है तो वह आत्महत्या करने के लिए तत्पर हो जाता है—यह पतन की दूसरी श्रेणी है। अब वह कल्याणी की ओर आकर्षित होता है और उससे छेड़छाड़ करता है, वही उसकी हत्या कर देती है। प्रसादजी ने ऐसे वीर, राष्ट्रभक्त को सौन्दर्य-लिप्सु और उद्धत, कामी, पतित, विलासी बनाकर बहुत न्याय नहीं किया है। —चन्द्रगुप्त

[सिकन्दर के समय में झेलम और चनाब नदियों के बीच के प्रदेश के शासक, देशभक्त राजा पुरु। कुछ लोगों ने

पोरस और पर्वतेश्वर को भिन्न व्यक्ति माना है।]

पल्लव—एक प्रदेश जहां के योद्धाओं ने वशिष्ठ की रक्षा करते हुए विश्वामित्र को ससैन्य भगा दिया। —(**ब्रह्मर्षि**)

[भारत के दक्षिण में।]

पशु और मनुष्य—इन्द्रियपरायण पशु के दृष्टिकोण से मनुष्य की सब सुविधाओं के विचार नहीं किए जा सकते, क्योंकि फिर तो पशु और मनुष्य में साधनभेद रह जाता है। (मंगल) —**कंकाल, पृ० १११**

पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त—हिन्दुओं और मुसलमानों की पारस्परिक सद्भावना के लिए आदर्श था। —(**सलोम**)

[पंजाब से पठानी इलाके को अलग करके १९११ में यह नाम रखा गया। इसके अन्तर्गत पेशावर, कोहाट, बन्नू, डेरा इस्माइल खां के जिले थे। अब यह पश्चिमी पाकिस्तान के अन्तर्गत है—यह नाम नहीं रह गया।]

पाईं बाग—१२ पंक्तियों की कविता। वृक्षों के पत्ते सूख कर गिर गए, अब वे कोमल किसलय और सुरभित पवन की अभिलाषा में हैं। अतल सिन्धु में डुबकी लगाने में अथवा अपना गला कटाने में किसी का अवश्य उद्देश्य होता है। मेरी आशा थी कि तुम गले लगोगे और यह उजड़ी क्यारी विकसेगी।

'अपना पाईंबाग बना लो प्रिय !

इस मन को आकर।

—**झरना**

पाखण्ड—पुण्य का सैकड़ों मन का धातु-निर्मित घण्टा बजाकर जो लोग अपनी ओर संसार का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं, वे यह नहीं जानते कि बहुत समीप अपने हृदय तक वह भीषण शब्द नहीं पहुँचता। (निरंजन)—**कंकाल, पृ० ३०६**

पांचाल[1]—कृष्ण-कथा सुनाते हुए कृष्ण-शरण ने वर्णित किया कि पांचाल में कृष्णा का स्वयम्वर था। कृष्णा के बल पर पाण्डव उसमें अपना बल-विक्रम लेकर प्रकट हुए। —**कंकाल, २-७**

पांचाल[2]—दे० कठ।

[गंगा-यमुना के दोआब और यमुना-पार कोशाम्बी का पूर्वी मध्य देश एवं वर्तमान रुहेलखंड। उत्तर-पाँचाल की राजधानी अहिच्छत्र और दक्षिण की कम्पिल्य थी।]

पाटलिपुत्र[1]—अशोक की राजधानी। —(**अशोक**)

पाटलिपुत्र[2]—मौर्यकाल के अन्तिम दिनों में हलचल, षड्यन्त्र और अभिसन्धि का केन्द्र। संघों के वादविवाद उनके निमन्त्रणों की धूम पाटलिपुत्र की व्यावहारिक मर्यादा थी। यहां के रत्न प्रसिद्ध थे। —**इरावती, पृ० ९६**

पाटलिपुत्र[3]—दे० काव्यमीमांसा।

पाटलिपुत्र[4]—मगध में कुसुमपुर का एक भाग। —**चन्द्रगुप्त, १-३**

पाटलिपुत्र[5]—दे० नन्दन। गंगा और शोण के संगम पर स्थित प्राचीन नगरी। त्रिकाण्डशेष और हेमचन्द्र-अभिधान में पाटलिपुत्र के दो और नाम पाए जाते हैं—कुसुमपुर और पुष्पपुर। बौद्ध

लोग कहते हैं कि अजातशत्रु के मंत्री वर्षकार ने पाटलिपुत्र ग्राम में एक दुर्ग बनवाया जो बुद्ध के आशीर्वाद से एक महान् नगर हो गया। मौर्यकाल में इसकी प्रतिष्ठा और बढ़ी। गुप्तकाल के अन्त तक यह प्रतिष्ठा बनी रही।

—**चन्द्रगुप्त, भूमिका**

अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि नाटकों और 'इरावती' उपन्यास के अतिरिक्त कुछ कहानियों की घटनाओं का सम्बन्ध इस स्थान से है।

पाटलिपुत्र[१]— —**स्कन्दगुप्त**

[दे० पटना]

पाणिनि—चाणक्य और कात्यायन की वार्ता में उल्लेख। कहते हैं कि अब पाणिनि से काम न चलेगा। इस समय दण्डनीति की आवश्यकता है। लेकिन कात्यायन इस 'शालातुरीय वैयाकरण' के प्रयोगों की परीक्षा में लगा है। —**चन्द्रगुप्त, १-७**

मगध-निवासी उपवर्ष के दो शिष्य थे—पाणिनि और वररुचि। पाणिनि विद्याभ्यास के लिए तक्षशिला चला गया और वररुचि जो राक्षस का मित्र था राजा नन्द का मंत्री हो गया।

—**चन्द्रगुप्त, भूमिका**

[प्रसिद्ध व्याकरण 'अष्टाध्यायी' के रचयिता। समय ४थी शती ई० पूर्व।]

पाप—सर्वत्र यदि पापों का भीषण दण्ड तत्काल ही मिल जाया करता, तो यह सृष्टि पाप करना छोड़ देती। (देव-निवास) —**(नीरा)**

—पाप और वासना का मेल बड़ा कोमल अथच कठोर एवं भयानक होता है और तब पाप का मुह कितना सुन्दर होता है! सुन्दर ही नहीं, आकर्षक भी, वह भी कितना प्रलोभनपूर्ण और कितना शक्तिशाली।....वह एक मृदु मुस्कान से सुदृढ़ विवेक की अवहेलना करता है। —**(पाप की पराजय)**

दे० अगले शब्द भी।

पाप की पराजय—शिकारी जीवन की एक कहानी। यह एक सांकेतिक कहानी है। मनुष्य में दो प्रकार की वृत्तियां हैं—पाशविक वृत्तियां जो उसे निरन्तर कठोरता का आह्वान देती हैं, और स्वाभाविक कोमल वृत्तियां जो उसे ऊपर उठाती हैं। युवक घनश्याम, जिसे जंगली जीवन का बड़ा अभिमान है, शिकार करता हुआ रम्य पार्वतीय प्रदेश में पहुँचा। वहां उसका ध्यान एक नील की पुतली भिल्लिनी युवती ने जो वनदेवी सी प्रतीत होती थी आकृष्ट किया। घनश्याम सोचने लगा—"क्या सौन्दर्य उपासना ही की वस्तु है, उपभोग की नहीं?" यौवन ने काम से मित्रता कर के उसे अभिभूत कर लिया। वह नीला का आलिंगन करना ही चाहता था, कि वन की रानी आ गई। इस पवित्र मूर्त्ति के सामने घनश्याम के पाप की पराजय हुई। कुछ दिन बाद उसकी पत्नी मर गई। हृदय में करुणा का जन्म हुआ। वह उसी वन में गया तो केतकी की (वन) रानी बड़ी हीन अवस्था में थी। वह

बोली कि प्रदेश में भीषण दुर्भिक्ष फैला है। भूखे पेटों के लिए मैंने अपना सर्वस्व बेच दिया है, अब अपने को बेचना चाहती हूँ, क्या मेरा रूप बिकने योग्य नहीं है? क्या तुम क्रय करोगे? घनश्याम पश्चात्ताप से भर गया। पुण्य उदय हुआ। उसने दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सेवा शुरू कर दी।

कहानी आदर्शोन्मुख है। कथानक सफल, चरित्र-चित्रण सुन्दर, कथोपकथन स्वाभाविक और उद्देश्य महत्त्वपूर्ण और शिक्षाप्रद है। **—प्रतिध्वनि**

पापासक्ति—मनुष्य जब एक बार पाप के नागपाश में फंसता है, तब वह उसी में और भी लिपट जाता है। उसी के गाढ़े आलिंगन, भयानक परिरम्भ में सुखी होने लगता है। पापों की शृंखला बन जाती है। उसी के नए-नए रूपों पर आसक्त होना पड़ता है। (दामिनी)

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, २-४

पारथ = अर्जुन। **—(बभ्रुवाहन)**

पारस्य देश—मूल्यवान मदिरा प्रसिद्ध थी। **—स्कन्दगुप्त, ४**

[फारस; ईरान का पश्चिमी भाग।]

पार्थ—दे० अर्जुन।

पार्श्वनाथ गिरि—कलिंग के राजा खारवेल ने इस पर अधिकार कर लिया तो मगध में युद्ध और आक्रमण की तैयारी होने लगी। **—इरावती, पृ० २९, ३१, ४७**

[वर्तमान हजारीबाग के निकट, दक्षिणपूर्वी बिहार में।]

पालना बनें प्रलय की लहरें—नेपथ्य-गीत। प्रलय की लहरों में, विपदा में, ज्वाला की आंधी में भगवान् की दया हो, उसी का विश्वास रहे। **—स्कन्दगुप्त, २**

पावस—इन्दु, कला २, किरण २, भाद्रपद '६७ में प्रकाशित कविता। आरम्भ में कदम्ब पर चढ़ी हुई मालती की शोभा वर्णित की गई है। वसुन्धरा तृण, सुमन, गुल्मादि से सुशोभित है। हरित धरा पर वर्षा का आसन-सा बिछ गया है। गिरिशृंगों पर शिखी मेघों के साथ सुशोभित हैं। कोकिल की कुहू-कुहू सुन्दर वाणी को भी लज्जित कर देती है। नदी कूलों में दबी चली जा रही है। सुरभित पवन सब को मदमत्त कर रही है।

पावस-प्रभात—२० अतुकान्त पंक्तियां। श्रावण की राका रजनी में अभी बादल थे, अभी टुकड़े भटकते फिरते हैं, मलयानिल अस्तव्यस्त घूमता फिरता है, कातर अलग पपीहा की ध्वनि किसी की खोज में निकली है, तारे टमटमा रहे हैं, चन्द्रमा ढल चला, 'रजनी के रञ्जक उपकरण बिखर गये', और उषा घूंघट खोले 'लगी टहलने प्राची प्रांगण में तभी।' **—झरना**

पाशुपत = शिव। **—(प्रेमराज्य, पृ० १०)**

पिङ्गलक—मगध का एक अश्वारोही। **—इरावती, ३**

पिता—पिता परम गुरु होता है; आदेश भी उसका पालन करना हितकर धर्म है। (रोहित) **—करुणालय, पृ० ६**

पिप्पली कानन—मगध का एक भाग

जहां के मौर्य्य आर्य-क्रियाओं का लोप हो जाने के कारण वृषल कहलाये।
—**चन्द्रगुप्त, १-९**

पिप्पली-कानन बस्ती जिले में नैपाल की सीमा पर है। इसे अब पिपरहिया घाट कहते हैं। चन्द्रगुप्त के पिता यहीं के राजा थे, बाद में नन्द के सेनापति हुए। —**चन्द्रगुप्त, भूमिका**

पी ! कहाँ ?—कविता। हे प्राणधन, तुम हो कहां, आ मिलो हो जहां, दीन चातक के लिए प्राणघातक मत बनो।

जलमयी हो रही यह धरा
कण्ठ फिर भी न होता हरा
प्यास में जल रहा।

उधर से पपीहा बोल उठा—"पी कहां, पी कहां ?" —**झरना**

पीलीभीत—यमुना भीतर (किशोरी के घर में) पीलीभीत के चावल बीन रही थी। —**कंकाल, २,१**

[उत्तरप्रदेश में बरेली से संलग्न तराई का अंचल।]

पी ले प्रेम का प्याला ! भर ले जीवन-पात्र में यह अमृतमय हाला—विनोद, लीला आदि के नृत्य के साथ विलास का गीत। प्रेम की हाला ही मन को मतवाला करती है। प्रकृति में मधुप फूलों का सानन्द रसपान करते हैं। तारा-मंडली के लिए चन्द्रमा का चषक भरा है। तुम भी पी लो। —**कामना, १-६**

पुरगुप्त—कुमारगुप्त का छोटा पुत्र, अनन्तदेवी से। "निर्वीर्य, निरीह, बालक" (अनन्तदेवी), "क्षुद्र, विलास-जर्जर" (विजया)। आरम्भ में सजग, व्यक्तित्व-पूर्ण, बाद में मां की महत्त्वाकांक्षा का अस्त्र मात्र। वह भ्रातृ-द्रोही, देशद्रोही और प्रवंचक है। —**स्कन्दगुप्त**

[पुरगुप्त के राज्यकाल से गुप्तवंश का ह्रास आरम्भ होता है।]

पुरस्कार—यह प्रसाद जी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से है। इसमें प्रेम और कर्त्तव्य के द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण हुआ है। आर्द्रा नक्षत्र था ; कोशल में कृषि का उत्सव मनाया जा रहा था। वीर सिंह-मित्र की कन्या, मधूलिका का खेत महाराज के हल चलाने के लिए चुना गया था। उत्सव के अन्त में मधूलिका को पुरस्कार दिया गया लेकिन उसने पितामहों की भूमि बेचने से इन्कार किया। उसने महाराज का प्रतिदान नहीं लिया। मगध का राजकुमार अरुण उत्सव के बाद मधूलिका के पास पहुंचा और अपने हृदय का सारा परिणय उसके चरणों पर उँड़ेल दिया ; परन्तु मधूलिका ने उसे एक कृषक-बालिका का अपमान ही समझा। दिन, सप्ताह, मास, वर्ष बीतने लगे। बीच-बीच में मधूलिका उस बीते हुए क्षण को लौटा लेने के लिए विकल हो उठती। एक दिन अचानक अरुण आ ही तो गया। मधूलिका ने स्वागत किया। अरुण ने पूछा—तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो ? युवती का वक्षस्थल फूल उठा। अरुण ने अपनी राजनीतिक योजना उसके सामने रखी तो वह असमंजस

में पड़ गई, लेकिन दूसरे ही क्षण उसने कहा—जो कहोगे वह करूँगी। उसने महाराज से दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की जंगली भूमि मांग ली, और अरुण ने अपने सैनिकों के साथ डेरा जमा लिया। एक दिन आया, पूरी तैयारी करके अरुण के सैनिक दुर्ग की ओर बढ़े, इधर मधूलिका विक्षिप्त सी नगर की ओर चल पड़ी। सेनापति से उसने सारे षड्यंत्र का भंडा फोड़ दिया। अरुण पकड़ा गया। महाराज सिंहमित्र की कन्या पर बड़े प्रसन्न हुए। अरुण को मृत्यु-दण्ड सुनाया गया। राजा ने पूछा—"सिंहमित्र की कन्या, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माग।" मधूलिका ने बन्दी अरुण की ओर देखा। राजा ने फिर पूछा। 'तो मुझे भी प्राण-दण्ड मिले' कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।

कथावस्तु सुगठित है। मधूलिका का अन्तर्द्वन्द्व बड़ी कुशलता से अंकित किया गया है। अंत नाटकीय है। कहानी का वातावरण सुन्दर है। भाषा सरस है।

—**आंधी**

पुरारि = शिव —(**विभो**)

पुरुरवा—'उर्वशी-चम्पू' के नायक, चन्द्रवंश के प्रथम राजा, इला और बुध के पुत्र, वीरभोग्या वसुन्धरा के चक्रवर्ती सम्राट्। —**उर्वशी चम्पू**

[पुरुरवा को उर्वशी से सात सन्तानें हुई थी, राजधानी प्रयाग (प्रतिष्ठान)।]

पुरुष—पुरुष का हृदय बड़ा सशंक होता है। (उदयन) —**अजातशत्रु, १-५**

पुरोहित—धर्मशास्त्र की सहायता से उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाना इसका काम है। शकराज की मृत्यु के बाद शान्तिकर्म के लिए 'स्वस्त्ययन' करने वह आता है, यहीं उसे ध्रुवस्वामिनी की खीझ सुननी पड़ती है। वह निर्भीकता से अपना मत प्रगट करता है कि ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त का विवाह धर्म के नियमों से विहीन है। "और भी (रामगुप्त को देखकर) यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं, पर गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मों से क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।... धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है।"

—**ध्रुवस्वामिनी**

पुलकेशिन—दक्षिणापथ के चालुक्य-नरेश। वीर, उत्साही और उदार।

—**राज्यश्री, ३-३**

[पुलकेशिन द्वितीय। हर्ष को पराजित किया। नर्मदा नदी दोनों के राज्यों के बीच सीमा मान ली गई। (अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, वी० ए० स्मिथ, ४था संस्करण, पृ० ३५२–४।)]

पुष्यमित्र—मौर्य-साम्राज्य का महादण्ड-नायक, पराक्रमी, कूटनीतिज्ञ और कर्मनिष्ठ, महत्त्वाकांक्षा से परिचालित। अपने पुत्र अग्निमित्र के प्रति उसका स्नेह उसके कठोर जीवन का एकमात्र कोमल

अंश है। परन्तु पुत्र की उच्छृंखलता उसे सहनीय नहीं है। उमके चरित्र में उपन्यासकार ने कर्त्तव्य और स्नेह का द्वन्द्व दिखाया है। **—इरावती**

[इसने अंतिम मौर्य्य सम्राट् बृहद्रथ को मारकर १८५ ई० पू० में मगध में शुंगवंश की स्थापना की।]

पूंजीपति—जिनके कान मोतियों के कुण्डल से बाहर लदे हैं और प्रशंसा एवं संगीत की झनकारों से भीतर भी भरे हैं, वे ही क्रन्दन नहीं सुनना चाहते। (विमला) **—राज्यश्री, २-४**

—धनवानों के हाथ में माप एक ही है। वे विद्या, सौन्दर्य, बल, पवित्रता और तो क्या हृदय भी उसी में मापते हैं। वह माप है उनका ऐश्वर्य।

पूरन कस्सप—दे० मस्करी गोशाल।

पूषा—सविता वा पूषा सब घूम रहे उसके शासन में **—कामायनी, आशा**

पृथ्वीराज—हिन्दू साम्राज्य के सूर्य्य। "राय पिथौरा भी एक ही देवसूरत और बहादुर शख्स था।" (सरदार शफकत) **—(प्रायश्चित्त)**

[पृथ्वीराज चौहान (राजपूत) दिल्ली के अंतिम हिन्दू शासक थे। ११९२ ई० में इन्होंने मुहम्मद गोरी को पराजित करके छोड़ दिया, पर अगले वर्ष गोरी ने इन्हें हराकर कैद कर लिया और मरवा डाला।]

पृथ्वीसेन—मंत्री कुमारामात्य। उसकी आत्महत्या ने उसे शहीदों की श्रेणी में ला दिया। **—स्कन्दगुप्त**

[वह पहले कुमारगुप्त का मंत्री था, बाद में महाबलाधिकृत नियुक्त हुआ।]

पेशावर—पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त की राजधानी, व्यापार और शिल्प का केन्द्र। **—(सलीम)**

[अब पश्चिमी पाकिस्तान में।]

पेशोला—

आज भी पेशोला के—
तरल जल-मण्डलों में।

—(पेशोला की प्रतिध्वनि)

[पीछोला झील, २॥ × १॥ मील। महाराणा लाखा के समय में बनी। पूर्वी किनारे की पहाड़ी पर उदयपुर बसा है। भीतर टापुओं में राजभवन बने हैं।]

पेशोला की प्रतिध्वनि—अतुकान्त आख्यानात्मक कविता।

'यह प्रदेश पश्चिम के व्योम
में है आज निरलंब सा।'
कालिमा बिखरती है,
संध्या के कलंक-सी
दुन्दुभि-मृदंग-तूर्य शान्त,
स्तब्ध, मौन है।

एक पुकार उठ रही है—"कौन लेगा भार यह, कौन विचलेगा नहीं, अरावली शृंग-सा समुन्नत सिर किसका? कौन थामता है पतवार ऐसे अंधड़ में?" वही शब्द गूंजता फिरता है। महाराणा प्रताप की इस भूमि में आज वीरता नहीं रह गई। वही है मेवाड़, परन्तु आज प्रतिध्वनि कहां? **—लहर**

पैगम्बर—हज़रत मुहम्मद, इस्लाम-धर्म के संस्थापक। —(चक्रवर्ती का स्तम्भ)

पैरों के नीचे जलधर हों बिजली से उनका खेल चले—१६ पंक्तियों का गीत। सामन्तकुमारों के आगे-आगे मन्दाकिनी गाती चलती है। चाहे कितना बीहड़ रास्ता हो, गिरिपथ का अथक पथिक सब कुछ झेलता हुआ ऊँचे बढ़ता चलता है—ज्योतित होता हुआ, बाधाओं को ठुकराता हुआ, काँटों पर मुसक्याता हुआ। उसके,

'भैरव रव से हो व्याप्त दिशा,
हो काँप रही भय चकित निशा।'

यह विचलित नहीं होता। वह अपने साहस पर निर्भर रहता है, विश्राम और शान्ति की परवा न करके आगे बढ़ता है। —ध्रुवस्वामिनी, १

पौण्ड्रवर्धन—नगर, जैन-केन्द्र। वहाँ कोई बुद्ध-मूर्ति जैनियों ने तोड़ दी थी। —(अशोक)

[बंगाल से पश्चिम और मगध के दक्षिण-पूर्व का प्रदेश, पश्चिमी बिहार।]

पौरुष—मानव अपनी इच्छा-शक्ति से और पौरुष से ही कुछ होता है। जन्म-सिद्ध तो कोई भी अधिकार दूसरों के समर्थन का सहारा चाहता है। (रानी शक्तिमती) —अजातशत्रु, १-८

प्यारे, निर्मोही होकर मत हमको भूलना रे—चार पंक्तियों का छोटा-सा गीत जिसे नर्तकियाँ उदयन के सामने गाती हैं—प्रिय निर्मम होकर हमें भुला न देना। अपनी दया से हमारे हृदय को हरा-भरा बनाए रखना। प्रेम का कँटीला फूल इस हृदय में फूलने देना।

इस गीत में एक बहाने से मागंधी की मनोकामना व्यक्त हुई है। —अजातशत्रु, १-५

प्यास—३० पंक्तियों की कविता। हृदय की दारुण ज्वाला से प्यास बढ़ चली। रस भरी आँखों को देख मेरी आँखें प्यासी हो गई। उसने राग-रञ्जित पेय का प्याला दिया, तो चित्त स्थिर हुआ। मैंने पूछा—"क्या इसमें नशीली आँखों का-सा नशा है?" वे बोले—"हाँ, गुलाबी हल्का सा।" गुलाब की कली का चटकना और प्राची में उषा का उदय देखकर मैं व्याकुल हो उठा और मैंने हृदय की बात खोल दी—

चाहता पीना मैं प्रियतम,
नशा जिसका उतरे ही नहीं।
लेकिन जीवन-धन चुप रहे,
बस मुसक्या दिये।

—झरना

प्रकाश—तारा का उत्तराधिकारी, उसके भाई का पुत्र। —(प्रतिध्वनि)

प्रकाश देवी—मंगल और तारा के हरद्वार में आर्यसमाजी साथी। —कंकाल, १-३

प्रकृति-चित्रण—प्रसाद के प्रकृति-सम्बन्धी चित्र अनेक तरह के हैं—१. आरंभिक कविताओं में छोटे-छोटे विषय, एक-एक दृश्य के वर्णन, झांकी मात्र—दे० चित्राधार की ब्रजभाषा की कविताएँ; २. कहानियों के आरम्भ में, अन्त में, अथवा

उपन्यासों में यत्र-तत्र दृश्यों का एक-दो वाक्यों में वर्णन—इनका संकलन कष्ट-साध्य ही नहीं, अनावश्यक और महत्त्व-हीन भी है। इनका उद्देश्य है वातावरण की सृष्टि। नमूने यहां दे दिए हैं। ३. प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण जो प्रायः स्थानों आदि के वर्णन में मिलता है; ४. किसी प्राकृतिक पदार्थ को आलंबन मान कर वर्णन—प्रायः कविताओं में। ५. भावमयी प्रकृति का वर्णन अथवा प्रकृति का कवित्वपूर्ण चित्रण; ६. छायावादी प्रकृति-वर्णन; ७. रहस्यवादी चित्रण। यही प्रसाद जी के चित्रों के विभिन्न प्रकार हैं, यही उनके प्रकृति-वर्णन का विकास-क्रम है।

दे० चला है मन्थर गति से पवन
रसीला नन्दन कानन का
—**अजातशत्रु**

दे० चल वसन्त बाला —**अजातशत्रु**

दे० अलका की किस विकल विरहिणी (छायावादी) —**अजातशत्रु**

सन्ध्या —**अजातशत्रु, ३-९**

समुद्र का प्रात —(**अनबोला**)

वनस्थली —(**अपराधी**)

सान्ध्यकाल —(**आकाशदीप**)

उषा —(**वही**)

'आकाशदीप' संग्रह में प्रकृति के, मानव भावनाओं से सापेक्ष और वातावरण के रूप में निरपेक्ष, दोनों प्रकार के चित्र हैं, जैसे बिसाती और प्रतिध्वनि, रमला आदि कहानियों में।

भैरवी—दे० आंखों से अलख जगाने को

संध्या —(**इन्द्रजाल**)

चाँदनी रात —**इरावती, १,३**

नदी —**वही, ५**

लघु लोल लहर—दे० उठ उठ री लघु लघु लोल लहर

सान्ध्य शोभा —**उर्वशी, १**

शान्त सन्ध्या —**उर्वशी, २**

उषा —**उर्वशी, ३**

प्रभात —**उर्वशी, ६**

दे० चित्राधार के अन्तर्गत भी

सान्ध्य काल —(**उस पार का योगी**)

निस्तब्ध रजनी, शीत पवन, शारदीय आकाश, उषा, इत्यादि —**कंकाल**

शीत की रात —**कंकाल, १-१**

चन्द्रग्रहण —**कंकाल, १-१**

रात —**कंकाल, १-२**

उषा —**कंकाल, १-३, १-७**

प्रभात —**कंकाल, १-७**

चाँदनी —**कंकाल, २-२**

नक्षत्र —**कंकाल, २-८**

नैश अंधकार —**कंकाल, ४-६**

संध्या में नदी-विहार —**करुणालय**

महाक्रीड़ा (ऊषा), प्रथम प्रभात, नव बसन्त (पूर्णिमा), भक्ति-योग (सन्ध्या), रजनीगंधा, जलविहारिणी (चाँदनी रात), सरोज, प्रथम प्रभात, जलदावाहन, कोकिल, दलित कुमुदिनी, निशीथ नदी, याचना (प्रलय), खंजन (उषा), गंगासागर, मकरंदबिंदु, चित्रकूट (रात) आदि कविताएँ।
—**कानन-कुसुम**

समुद्रतट पर उषा —**कामना, पृ० १**

समुद्री घाट —कामना, पृ० ५
कैलास,
मरकत की वेदी पर ज्यों रक्खा हीरे का पानी.....इत्यादि।
—कामायनी, आनन्द
अचल हिमालय का शोभनतम इत्यादि।
—कामायनी, आशा, पृ० २९
नव नील कुञ्ज हैं झीम रहे
कुसुमों की कथा न बन्द हुई। इत्यादि।
—कामायनी, काम, पृ० ६५
हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर.... ।
—कामायनी, चिन्ता, पृ० ३
सरिता का एकान्त कूल
—कामायनी, दर्शन, पृ० ३४६-३४७
ऊर्ध्व देश उस नील तमस मे
स्तब्ध हो रही अचल हिमानी, इत्यादि।
—कामायनी, रहस्य, पृ० २५७
नीचे जलधर दौड़ रहे थे, इत्यादि।
—कामायनी, रहस्य, पृ० २५८
(दीन प्रकृति)
गिर रहा निस्तेज गोलक
जलधि में असहाय, इत्यादि
(स्तब्ध प्रकृति)
उजले उजले तारक झलमल
उषा —कामायनी, श्रद्धा, पृ० ४७
कुसुमित गात: दे०—कोमल कुसुमो की मधुर रात
सन्ध्या —(गुण्डा)
सूखा उद्यान —(गुलाम)
कृष्णाष्टमी की चाँदनी —(चन्दा)
नदी —(चन्दा[1])
रजनी —चन्द्रगुप्त, पृ० १९८-१९९
भारत की शोभा —चंद्रगुप्त, ३-२
प्रभात —वही, ४-५
प्रभात —(चित्रमन्दिर)
सन्ध्या —(चित्रमंदिर)
सन्ध्या —(चित्रवाले पत्थर)
जलधारा —(वही)
चाँदनी रात —(वही)
व्यापक प्रकृति —चित्राधार (उर्वशी), पृ० १
प्रमोद भरी प्रकृति —चित्राधार (उर्वशी), पृ० ९
पर्वतीय पावस —चित्राधार (उर्वशी), पृ० ११
सध्या —वही (बभ्रुवाहन), खंड १,३
उषा —वही, खंड २,३,४
नीलाम्बर मे चन्द्रमा —चित्राधार (बभ्रुवाहन), पृ० २१
रात्रि का दृश्य —चित्राधार (बभ्रुवाहन), पृ० २३
चाँदनी रात —चित्राधार (बभ्रुवाहन), पृ० २४
प्राकृतिक शोभा —चित्राधार (बभ्रुवाहन), पृ० २८-२९
उद्यान —चित्राधार (बभ्रुवाहन), पृ० ३८-३९
चाँदनी रात में नगरी —चित्राधार (अयोध्या का उद्धार), पृ० ४५-४६
हिमालय —चित्राधार (वनमिलन), पृ० ५५
आश्रम —चित्राधार (वनमिलन), पृ० ५५-५६

छोटे-छोटे वर्णन—३-४, ८-१० पंक्तियों मे, जैसे वर्षा की सन्ध्या।
—छाया, पृ० ३०

प्रभात से पहले यमुना-तट
—छाया, पृ० ५९

वसन्त में कानन —छाया, पृ० ९७
पहली वर्षा —छाया, पृ० ११९

सूर्य्यातप, चाँदनी रात, वसन्त की राका। 'छाया' की अधिकतर कहानियों का आरंभ प्रकृति चित्रण से होता है।

प्रभात —(शरणागत)
कार्तिक की चाँदनी —(सन्देह)
समुद्र —(समुद्र-संतरण)
सन्ध्या —(सलीम)
सूर्य की किरण —(सलीम)
चन्द्रिका —(सालवती)
श्लिष्ट वर्णन —(स्वर्ग के खण्डहर में)
सागर-संगम
—(हे सागर संगम अरुण नील)
दे० अपलक जगती हो एक रात।
—अरी वरुणा की शान्त कछार।
—अली ने क्यों भला अवहेला की।
—उठती है लहर हरी हरी।
—उषा, ऊषा।
—ग्रीष्म का मध्याह्न।
—घने घन बीच।
—छाने लगी जगत में सुषमा निराली।
—जलद-आवाहन।
—जलविहारिणी।
—दलित कुमुदिनी।
—द्वैत सरोवर।
—नदी नीर से भरी।
—नव वसन्त।
—निर्जन गोधूली प्रान्तर में।
—निशीथ नदी।
—पावस।
—मधुप कब एक कली का है।
—मधु पान कर चुपके।
—मधुर माधवी सन्ध्या में।
—मधुर माधव ऋतु की रजनी।
—रजनी।
—रजनीगंधा।
—वसन्तविनोद।
—वसन्तोत्सव।
—श्रीकृष्ण जयन्ती (पृष्ठभूमि)।
—हिमालय, हिमगिरि।

मलिना, चित्रकूट, वीर बालक की पृष्ठभूमि में प्रकृति।

दे० छायावाद भी
दे० परिशिष्ट में 'ऋतु'
दे० परिशिष्ट में 'पेड़ पौधे' और 'पशु-पक्षी' भी।

प्रकृति-सौन्दर्य—निबन्ध। प्रथम बार, इन्दु, कला १, किरण १, श्रावण '६६ में प्रकाशित। इसमें सागर और पर्वत के अतिरिक्त षट् ऋतुओं पर एक-एक अनुच्छेद है। लेखक का कहना है कि प्रकृति 'ईश्वरीय रचना का एक अद्भुत समूह' है। वह अद्भुत रस की जन्मदात्री है। प्रकृति के पल-पल परिवर्तित स्वरूप में ही उसका समस्त सौन्दर्य निहित है। द्वीप, महाद्वीप, प्राय-द्वीप, समुद्र, नदी, पर्वत, नगर अथवा सम्पूर्ण जल-थल में सर्वत्र सौन्दर्य-छटा है। वसन्त, ग्रीष्म, पावस, शरद्, शिशिर, हेमन्त सभी में प्रकृति की सुषमा है। 'यह सब क्या है, हे देवि, यह सब तुम्हारी ही आश्चर्यजनक लीला है, इससे तुम्हारे अनन्त वर्ण-रञ्जित मनोहर रूप को देखकर कौन आश्चर्य-चकित नहीं हो जाता।'

यह विद्यार्थियों के निबन्ध-सा है—थोड़ा अधिक सुव्यवस्थित। निबन्ध-कार प्रकृति देवी को सम्बोधित करते

है। इसकी शैली भावात्मक, कवितामय और शब्दाडम्बर-युक्त है। जैसे—"हिम-पूरित तराइयों में, तथा हिमावृत चोटियों पर अद्भुत रंग के नील, पीत, ललित कुसुम सहित लताओं का, शीतल वायु के झोंके से दोलायमान होना, पुनः प्रातः सूर्य की किरणों का छायाभास पड़ने से हिमावृत चोटियों का इन्द्रधनुष-सा रंग जाना कैसा सुन्दर जनाई पड़ता है।" —**चित्राधार**

प्रख्यातकीर्ति—लंकाराज-कुल का श्रमण, महाबोधी-विहार-स्थविर। सात्-चरित्र। —**स्कन्दगुप्त**

प्रगतिवाद—विश्व भर में छोटे-से बड़ा होना, यही प्रत्यक्ष नियम है। (रानी शक्तिमती) —**अजातशत्रु, १-८**

दे० समाजवाद भी।

प्रजापति—अतिचारी था स्वयं प्रजापति। आह प्रजापति यह न हुआ है कभी न होगा। —**कामायनी, स्वप्न, संघर्ष**

प्रज्ञासारथि—बौद्ध युवक जो चन्दा के किनारे पाठशाला चलाते थे। उनका विश्वास था कि चन्दा का तट किसी दिन तथागत के पवित्र चरण-चिह्नों से अंकित हुआ था, वे आज भी उन्हें खोजते थे। बड़े शान्त प्रकृति के जीव थे। उनका श्यामल शरीर, कुंचित केश, तीक्ष्ण दृष्टि, सिंहली विशेषता से पूर्ण विनय, मधुर वाणी और कुछ-कुछ मोटे अधरों में चौबीस घंटे बसने वाली हंसी आकर्षण से भरी थी। बच्चों से प्यार करते थे। गृहस्थ बनने का उनमें बड़ा उल्लास था, इसीलिए श्रीनाथ को पाठशाला का स्थायी अवैतनिक अध्यक्ष बनाकर वे सिंहल लौट गए। —**(आंधी)**

प्रणय—प्रणय का जीवन अपने छोटे-छोटे क्षणों में भी बहुत दीर्घजीवी होता है। —**सालवती**

—वह प्रणय विषाक्त छुरी है, जिसमें कपट है। (मीना)

—**(स्वर्ग के खँडहर में)**

दे० प्रेम भी।

प्रणय-चिह्न—भावात्मक शैली की रोमांटिक प्रेम-कथा। लूनी नदी के उस पार रामनगर के जमींदार की एक सुन्दर कन्या थी। उसका प्रेमी इधर खजूरों के कुंज में रहता था। उसने सेवक नाम के एक व्यक्ति द्वारा प्रेमिका को कहला भेजा कि मैं किसी अज्ञात विदेश में जा रहा हूँ जहाँ से लौटने की आशा नहीं है। सेवक उसको प्रणयिनी को नौका में बिठा कर ले आया। पुरस्कार में उसे रत्नों की अँगूठी मिल गई। युगल प्रेमी मिले। प्रियतम ने कहा—"प्रिये! अनन्त पथ का पाथेय कोई प्रणय-चिह्न दो।" दोनों सेवक के पास आए। सेवक अँगूठी तो न लौटा सका, पर दोनों को नाव में बिठा कर ले चला।

कहानी का संकेत स्पष्ट नहीं है। प्रेम की प्रबलता और सात्विकता, संसार का कल्याणकारी आकर्षण, और परिस्थितियों में असन्तोष की भावना स्पष्ट है। प्रकृति-चित्रण भी सुन्दर है। —**आकाशदीप**

प्रताप[1]—आर्यनाथ--

हृदय थका है नहीं, विपुल बल पूर्ण है।
करुणामिश्रित वीर भाव उस वदन पर
अनुपम महिमा-मण्डित शोभित हो रहा।
हर्ष भरा है अपने ही कर्त्तव्य का।
देशभक्त, जननी का सच्चा-पुत्र है।
जन्मभूमि के लिए, प्रजासुख के लिए,
इतना आत्मोत्सर्ग भला किसने किया।
सचमुच ऐसा वीर उदार कहाँ मिले,
कुलमानी, दृढ़, वीर, महान् 'प्रताप' है।
सच्चा साधक है सपूत निज देश का
मुक्त पवन में पला हुआ वह वीर है।
—महाराणा का महत्त्व

प्रताप[२]—दे० मेवाड़ भी।
—(पेशोला की प्रतिध्वनि)

[उदयसिंह की मृत्यु पर सन् १५७१ में राणा बने। १५९७ में मृत्यु—ये २६ वर्ष मुगलों से लड़ते रहे।]

प्रतिध्वनि[१]—प्रथम संस्करण सं० १९८३ (१९२६ ई०)। इसमें १५ कहानियां हैं जो १९२४ और १९२६ ई० के बीच में लिखी गईं। प्रायः कहानियां छोटी हैं जिन में कथातत्त्व बहुत कम है। इन्हें कहानी न कहकर गद्यकाव्य कहा जा सकता है। कहानियों में लाक्षणिकता और काल्पनिकता की प्रधानता है। कहानीकार का मन्तव्य अस्पष्ट रह जाता है और पाठक पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। कहानियों के शीर्षक हैं—प्रसाद, गूदड़माईं, गुदड़ी के लाल, अघोरी का मोह, पाप की पराजय, सहयोग, पत्थर की पुकार, उस पार का जोगी, करुणा की विजय, खँडहर की लिपि, चक्रवर्ती का रहस्य, कलावती की शिक्षा, दुखिया, प्रतिमा, प्रलय। प्रायः कहानियां भावप्रधान हैं। इनमें अघोरी का मोह, पाप की पराजय, तथा प्रतिमा मनोवैज्ञानिक हैं; खँडहर की लिपि तथा चक्रवर्ती का स्तम्भ ऐतिहासिक तो नहीं हैं, पर वातावरण ऐतिहासिक बनाने की चेष्टा की गई है। इस संग्रह की सर्वोत्तम कहानी 'प्रलय' है जो प्रसाद जी की प्रथम दार्शनिक रहस्यवादी कहानी है। 'करुणा की विजय' और 'दुखिया' यथार्थवादी कहानियां हैं। 'कलावती की शिक्षा' और 'सहयोग' में समाज की कटु आलोचना की गई है। 'प्रतिध्वनि' के गद्यगीतों में 'गीताञ्जलि' का प्रभाव स्पष्ट है।

भाषा-शैली और वर्णन के नमूने—

मधुप अभी किसलय शैय्या पर, मकरन्द-मदिरा पान किए सो रहे थे। सुन्दरी के मुख-मण्डल पर प्रस्वेद-विन्दु के समान फूलों के ओस अभी सूखने न पाए थे। अरुण की स्वर्ण-किरणों ने उन्हें गरमी न पहुँचाई थी। फूल कुछ खिल चुके थे। परन्तु थे अर्ध-विकसित। ऐसे सौरभपूर्ण सुमन सबेरे ही जाकर उपवन से चुन लिए थे। पर्ण-पुट का उन्हें पवित्र वेष्ठन देकर अञ्चल में छिपाए हुए सरला देव-मन्दिर पहुँची।" (**प्रसाद**)

दीर्घ निश्वासों का क्रीड़ा-स्थल, गर्म-गर्म आंसुओं का फूटा हुआ पात्र! कराल काल की सारंगी, एक बुढ़िया

जीर्ण कंकाल, जिस में अभिमान की लय में करुणा की रागिनी बजा करती है। (गुदड़ी में लाल)

सामने संध्या-धूमरित जल की एक चादर बिछी है। उसके बाद बालू की बेला है, उसमें अठखेलियाँ करके लहरों ने सीढ़ी बना दी है। कौतुक यह है कि उस पर हरी-हरी दूब जम गई है। उस बालू की सीढ़ी की ऊपरी तह पर जाने कब से एक शिला पड़ी है। कई वर्षाओं ने उसे अपने पेट में पचाना चाहा, पर वह कठोर शिला गल न सकी, फिर भी निकल ही आती है। नन्दलाल उसे अपने शैशव से ही देखता था। (उस पार का योगी)

जब वसन्त की पहली लहर अपना पीला रंग सीमा के खेतों पर चढ़ा लाई, काली कोयल ने उसे बरजना आरम्भ किया और भौंरे गुनगुना कर कानाफूसी करने लगे, उसी समय एक समाधि के पास लगे हुए गुलाब ने मुँह खोलने का उपक्रम किया। किन्तु किसी युवक के चंचल हाथ ने उसका हौसला ही तोड़ दिया। (खंडहर की लिपि)

कमलों का कमनीय विलास झील की शोभा को द्विगुणित कर रहा है। उसके आमोद के साथ वीणा की झनकार झील के स्पर्श के शीतल और सुरभित पवन में भर रही थी। सुदूर प्रतीची में एक सहस्रदल स्वर्ण कमल अपनी शेष स्वर्ण किरण की मृणाल पर व्योमनिधि में खिल रहा है। वह लज्जित होना चाहता है। वीणा के तारों पर उसकी अंतिम आभा की चमक पड़ रही है। (खंडहर की लिपि)

प्रभंजन का प्रबल आक्रमण आरंभ हुआ। महार्णव की आकाशमापक स्तम्भ-लहरियाँ भग्न होकर भीषण गर्जन करने लगी। कन्दरा के उद्यान का अक्षयवट हहरा उठा। प्रकाण्ड शाल-वृक्ष तृण की तरह उस भयंकर फूत्कार से शून्य में उड़ने लगे। दौड़ते हुए वारिद-वृन्द के समान विशाल शैल-शृंग आवर्त में पड़ कर चक्र-भ्रमण करने लगे। उद्-गीर्ण ज्वालामुखियों के लावे जल-राशि को जलाने लगे। मेघाच्छादित, निस्तेज, धूम्र, चन्द्रबिम्ब के समान सूर्यमण्डल महाकापालिक के पिये हुए पान-पात्र की तरह लुढ़कने लगा। भयंकर कंप और घोर वृष्टि में ज्वालामुखी बिजली के समान विलीन होने लगे। (प्रलय)

भयानक शीत, दूसरे क्षण असह्य ताप, वायु के प्रचण्ड झोंकों में एक के बाद दूसरे की अद्भुत परम्परा, घोर गर्जन, ऊपर कुहासा और वृष्टि, नीचे महार्णव के रूप में अनन्त द्रवराशि, पवन उच्चाटों गतियों से समग्र पंच-महाभूतों को आलोड़ित कर उन्हें तरल परमाणुओं के रूप में परिवर्तित करने के लिए तुला हुआ है। अनन्त परमाणु-मय शून्य में एक वट-वृक्ष केवल एक नुकीले शृंग के सहारे स्थित है। (प्रलय)

दार्शनिक चिन्तन—लहरें क्यों उठती और विलीन होती हैं? बुदबुद और

ऻराशि का क्या सम्बन्ध है ? मानव-वन बुदबुद है कि तरंग ? बुदबुद है · विलीन होकर क्यों प्रकट होता है ? लेन अंश फेन कुछ जलविन्दु से मिल र बुदबुद का अस्तित्व क्यो बना देता ? क्या वासना और शरीर का यही बन्ध है ? वासना की शक्ति कहां-ां किस रूप में अपनी इच्छा चरितार्थ ती हुई, जीवन को अमृत-गरल का म बनाती हुई अनन्त तक दौड़ ावेगी ? (**अघोरी का मोह**)

ध्वनि[२]—साधारण कोटि की सामा-क कहानी। तारा जिस दिन विधवा उस दिन भी उसकी ईर्ष्यालु ननद ा ने व्यंग्य के स्वर में रुदन करते हुए ।—"अरे मैय्या रे ! किसका पाप । खा गया !" तारा सम्पन्न थी, ः अकिंचन। एक दिन रामा अपनी वर्ष की पुत्री श्यामा को अविवाहित ःकर चल बसी। श्यामा गंगा के ारे एक छोटी सी बगीची मे कुटिया । कर रहती थी। एक दिन गंगा-न से लौटती हुई तारा ने उसकी ची से कुछ करौंदियां तोड़ लीं। ा किसी ने कहा, "और तोड़ लो ो, कल ही तो यह नीलाम होगा।" । ने सोचा कि रामा की कन्या व्यंग्य रही है। दांत चबाती हुई चली गई। ः दिन नीलाम में उसने वह सारी या खरीद ली। श्यामा बेघर होकर ी हो गई। तारा भी बहुत दिन नहीं उसका उत्तराधिकारी हुआ उसके भाई का पुत्र प्रकाश। वह था विलासी और प्रमादी ; क्षयरोग में ग्रस्त हो गया। एक दिन पगली उसकी बगिया में आ गई। प्रकाश को उसका रूप देखकर अपनी रुग्णता पर बड़ा क्रोध आया। पगली ने उसी बगिया में से तीन आम वृंतों सहित तोड़ लिए थे। प्रकाश के क्षय-जर्जर वक्ष पर खींच कर मारते हुए बोली—"एक....दो...तीन।" प्रकाश तकिए पर चित लेट कर हिच-कियां लेने लगा। पगली हँसते हुए गिन रही थी—एक...दो...तीन। उसकी प्रतिध्वनि अमराई में गूज उठी।

—आकाशदीप

प्रतिभा—दे० आत्मबल।

प्रतिमा—छोटी-सी मनोवैज्ञानिक कहानी। कुजनाथ कुजविहारी (श्रीकृष्ण) की प्रतिमा का उपासक था। उसकी पत्नी सरला के प्राण भयानक शिकारी (मृत्यु) ने ले लिए, पर कुंजबिहारी ने कोई सहायता न की। धीरे-धीरे उसे लगने लगा कि मूर्त्ति में न वह सौन्दर्य रह गया है, न वह ललित भाव। उसकी साली रजनी शिव की उपासिका थी। उसने एक दिन जब प्रतिमा पर बेले का फूल और विल्वदल चढ़ाया तो वह खिसक कर गिर पड़ा—रजनी ने कामना के पूर्ण होने का संकेत पाया। कुंजनाथ से उसकी भेंट हुई। पहले तो वह दरिद्र-कन्या मानकर घृणा करता था, पर उसकी उपासना-भक्ति से प्रभावित हुआ। वह रजनी के साथ उसके देवता के दर्शन

करने गया। नदी के किनारे भग्न-मन्दिर में अनलंकृत मूर्त्ति को देखकर उसको भक्ति का उद्रेक हुआ। क्षण-भर में आश्चर्य से कुंजनाथ ने देखा कि स्वर्गीया सरला रजनी के रूप में खड़ी है और कुंजबिहारी शिव-प्रतिमा के रूप में।

देव-प्रतिमा मनुष्य के प्रेम, श्रद्धा और विश्वास का प्रतीक होकर ही पूज्य है और जहां भक्ति है, वहां मानव-मानव में स्नेह और अनुराग है—यही इस कहानी का संकेत है। यह भी ध्यान रहे कि प्रसाद शिव के उपासक थे।

—**प्रतिध्वनि**

प्रतिरोध की प्रतिक्रिया—प्रतिरोध से बड़ी शक्तियां रुकती नहीं, प्रत्युत उनका वेग और भी भयानक हो जाता है। (नरदेव) —**विशाख, ३-१**

प्रतिष्ठा—प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए जो लड़ कर मर नहीं गया वह कायर नहीं तो और क्या है? (अल्का) —**चन्द्रगुप्त, १-८**

दे० आत्मसम्मान भी।

प्रतिष्ठान[१]—प्रयाग में संगम। प्रतिष्ठान के खंडहर में और गंगा-तट की सिकता-भूमि में अनेक शिविर और फूस के झोंपड़े खड़े हैं—माघ मेले के। —**कंकाल, १-१**

प्रतिष्ठान[२]—निराश बलराज काशी से उस पथ पर चलने लगा जो प्रतिष्ठान को जाता है। —**(दासी)**

प्रतिष्ठान[३]—प्रतिष्ठान और चरणाद्रि के दुर्गपतियों को धन-विद्रोह करने के लिए हूणों ने भेजा था, पर शर्वनाग ने इस रहस्य का उद्घाटन किया। —**स्कन्दगुप्त, ३**

प्रतिष्ठान (पुर)[४]—चन्द्रवंशियों का प्रधान राजकेन्द्र, अब झूंसी (इलाहाबाद) के टूटे-फूटे रूप में विद्यमान है। सम्राट् पुरुरवा की राजधानी। —**उर्वशी चम्पू**

[गंगा-यमुना के संगम पर प्रयाग के पार बसा प्राचीन नगर—अब गांव। गंगा पर प्रतिष्ठित होने से प्रतिष्ठान नाम पड़ा।]

प्रतिहिंसा—इस रही-सही "प्रतिहिंसा" को भी भारतवासियों के लिए ईश्वर की दया समझ। जिस दिन इसका लोप होगा, उस दिन से तो इनके भाग्य में दासत्व करना ही लिखा है।...जिस दिन से कोई जाति अपने आत्मगौरव का अपने शत्रु से बदला लेना भूल जाती है, उसी दिन उसका मरण होता है। सब, जब अपने व्यक्तिगत सम्मान की रक्षा करते हैं तब उस समष्टि रूपी जाति या समाज की रक्षा स्वयं हो जाती है, और नहीं तो अपमान सहते-सहते उसकी आदत ही वैसी पड़ जाती है। फिर शक्ति का उपयोग नहीं होता, और शक्ति का उपयोग न होने से वह भी धीरे-धीरे उत्सन्न हो जाती है। —**चित्राधार (प्रायश्चित्त), पृ० ७८,७९**

—प्रतिहिंसा नाशक वृत्ति है। (प्रेमानन्द) —**विशाख, ३-५**

प्रतीक—प्रसाद जी ने आरम्भ ही से प्रतीकों की विविध योजना की है। वास्तव में उन्हें रूपक से प्रतीक की सूझ हुई है। इन प्रतीकों की सूचियां तैयार करने की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि

छायावादी-रहस्यवादी कृतियों के ठीक-ठीक अर्थ को ऐसे कोष के बिना समझना असम्भव है। प्रसाद-साहित्य में कुछ प्रतीक तो ऐसे हैं जो उनकी प्रायः कविताओं में सामान्य रूप से मिलते हैं; जैसे—

अरुण किरण = प्रेम ;
आकाश = अदृष्ट ;
उषा = सुख ;
कमल, कलिका, कली, जूही, सरोजिनी = प्रेमिका ;
किरण = आशा ;
कुंद = श्वेत, सुन्दर ;
क्षितिज = अविगत प्रियतम ;
ग्रीष्म = रोष ;
छिन्नपात्र = निराश प्रेम ;
जलधर वृंद = कुवासनाएँ ;
जलजाल = भ्रम ;
जुगनू = बुद्धि ;
झंझा = भावों का संघर्ष, क्षोभ ;
तट = लीनता ;
तम = निराशा, अज्ञान ;
तरी = जीवन;
तारे = लौकिक भाव ;
तुहिन-कण = आंसू ;
दीपक = आत्मा ;
नक्षत्र = आंसू ;
नलिनी = प्रेमिका ;
नवनीत की पुतली = आत्मा ;
निर्झर = आत्मा ;
नीरदमाला = अश्रुधारा ;
पक्षि = साधक ;
पतझर = दुःख, विषाद ;
पतवार = साहस ;
पथिक = साधक, प्रेमी ;
पुतली = प्रिया ;
प्रभात = आनन्द, उल्लास ;
बर्फ का महल = कल्पना ;
बिजली = वेदना ;
भ्रमर = प्रेमी ;
मकरन्द = आंसू, इच्छा, प्रेम ;
मणि = आत्मा ;
मधु = सुख, सुख-स्मृति ; प्रेम-रस ;
मधुकर, मधुप = प्रेमी ;
मलयानिल = सूचना ;
मल्लिका = प्रेमिका ;
माझी = पथ-प्रदर्शक ;
मुकुल = प्रिया ;
मुरली = मधुर भावना ;
मोती = आंसू ;
यूथी = प्रेमिका ;
रश्मि = ज्ञान, सुख ;
वर्षा = करुणा ;
वसन्त = आनन्द, चेतना ;
विहग = साधक ;
वीणा के तार = हृदय के भाव ;
शलभ = सांसारिक मोह ;
शिशिर = जड़ता ;
संगीत = भाव ;
समुद्र = आत्मा ;
सरोवर = परमात्मा ;
सागर = परमात्मा, ब्रह्म ; संसार ;
सूर्य = तेज, प्रेमोद्रेक ;
सौरभ = इच्छा ;

हिमशैल बालिका = जीव ;
हिमालय = आदर्श ; स्रोत।

इन शब्दों की सहायता से दूसरे शब्दों के प्रतीकार्थों को सहज में समझा जा सकता है। इसीलिए शब्द-सूची को पूर्ण बनाने की चेष्टा ही नहीं की गई। यह बात उल्लेखनीय है कि प्रसाद जी की आरम्भिक रचनाओं में भी इस तरह के प्रतीकात्मक संकेत है—देखिए चित्राधार पृ० २७, ३५-३६, ५६-५७, १७७, १८४ इत्यादि।

प्रतीकों के कुछ स्थल—

अजातशत्रु—अलका की किस विकल विरहिणी ;
—अली ने क्यों भला अवहेला की ;
—निर्जन गोधूली प्रान्तर में ;

आंसू—झंझा झकोर गर्जन थी, बिजली थी गर्जनमाला ;
—कल्पना रही, सपना थी, मुरली बजती निर्जन मे,
—पिंगल किरणों की मधुलेखा ;

प्रेम-पथिक—मेघखंड उस स्वच्छ सुधामय विधु को एक लगा ढकने— मेघखंड = फलदान ; विधु = बाल-प्रेम।
—चाँद छिप गया पूरा एक मेघ के अंतर में।

झरना—खोलो द्वार, विषाद, प्रथम प्रभात, चिह्न, दीप आदि कविताएँ।

लहर—अन्तरिक्ष में अभी सो रही ;
—आँखों से अलख जगाने को ;
—उस दिन जब जीवन के पथ में ;
—निज अलकों के अन्धकार मे ;
—हे सागर संगम !

इत्यादि गीत।

'कामना' नाटक पूरा प्रतीकात्मक है।

छायावादी तथा रहस्यवादी गीतों में प्रतीक-योजना है—दे० छायावाद, रहस्यवाद। निम्नलिखित कहानियों में प्रतीक हैं—'आकाशदीप' में आकाशदीप ; 'आंधी' में आंधी ; 'ग्रामगीत' मे रोहिणी नक्षत्र ; 'अमिट स्मृति' में होली ; 'ज्योतिष्मती' में ज्योतिष्मती (ब्रह्म) ; 'पुरस्कार' में कपोती और छिन्न माधवी लता ; 'बिसाती' में बुलबुल ; 'प्रतिध्वनि' की प्रायः सभी कहानियां।

प्रत्याशा—इन्दु, कला ६, खंड १, किरण २, फरवरी '१५ में प्रकाशित। ३४ पंक्तियों की अनुकान्त कविता। 'मन्द पवन बह रहा अँधेरी रात है'। 'आज अकेले निर्जन गृह म क्लान्त हो'—'स्थित हूँ, प्रत्याशा में मैं तो प्राणधन।' मेरी उत्कंठा कपट नहीं। देखो तो, तारे गिन-गिन रात बिता रहा हूँ। आओ। मेरी परीक्षा न करो। 'हृदय हमारा नहीं हिलाने योग्य है,' 'मत छलकाओ इसे, प्रेम-परिपूर्ण है।' —झरना

प्रथम कविता—अभी तक निम्नलिखित छंद को प्रसाद जी की प्रथम कविता माना जाता रहा है—

सावन आए वियोगिन को तन,
आली अनंग लगे अति सावन
लावन हीय लगी अबला
तड़पै जब बिज्जु छटा छबि छावन।

छावन कैसे कहूँ मैं विदेश
लगे जुगनू हिय आग लगावन।
गायन लागे मयूर 'कलाधर',
झांपि कै मेघ लगे बरसावन।

प्रकाशित 'भारतेन्दु' (जुलाई १९०६)।

यह सवय्या वास्तव में प्रसाद की कवि लेखनी का प्रथम प्रसाद माना जाना चाहिए—

हारे सुरेस रमेस धनेस,
गनेसहु सेस न पावत पारे।
पारे हैं कोटिक पात की पुंज,
'कलाधर' ताहि छिनों बिच तारे।
तारेन की गिनती सम नाहिं,
सुवेतें तरे प्रभु पापी बिचारे।
चारे चले न विरंचहिं के,
जो दयालु ह्वै संकर नेक निहारे।
—१८९८ ई०।

अपने गुरु 'रसमयसिद्ध' को दिखाई थी। अभी तक अप्रकाशित।

प्रथम प्रभात[१]—इन्दु, मई '१३ तथा 'कानन-कुसुम' में एक-साथ प्रकाशित। यह कविता २१ मात्रा वाले अतुकान्त अरिल्ल छंद में है। इसमें कवि का झुकाव प्रकृति के शृंगार की ओर है। यह आधुनिक हिन्दी की प्रथम रहस्यवादी कविता है। आत्माभिव्यक्ति, स्वानुभूति, कलात्मकता और रससिक्ति की दृष्टि से यह कविता प्रसाद के परवर्ती काव्य का बीज रूप है—

बाह्य एवं आन्तरिक प्रकृति का एकीकरण—

मनोवृत्तियां खग-कुल-सी थीं सो रही,
अन्तःकरण नवीन मनोहर नीड़ में।
नील गगन-सा शान्त हृदय था हो रहा,
बाह्य आन्तरिक प्रकृति सभी सोती रही।

यह प्रथम प्रभात कवि के जीवन का था,
जब उल्लास था, हर्षोन्माद था—
मनोवेग मधुकर-सा फिर तो गूंज कर,
मधुर-मधुर स्वर्गीय गान गाने लगा।
वर्षा होने लगी कुसुम-मकरन्द की,
प्राण-पपीहा बोल उठा आनन्द में।

* * *

अहा अचानक किस मलयानिल ने तभी
आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया मुझे।

यहां मलयानिल प्रेम का प्रतीक है।
—कानन-कुसुम

प्रथम प्रभात[२]—२० पंक्तियों की कविता। जब हृदय शून्य था, मनोवृत्तियां सो रही थीं, और मन निस्पन्द था, तब अचानक सुरभित मलयानिल ने गुदगुदा कर चौंका दिया, मनोवेग गूंज उठा, प्राण पपीहा आनन्द में बोल उठा, 'मन पवित्र, उत्साह पूर्ण-सा हो गया', 'शून्य हृदय नवल राग-रंजित हुआ', 'मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था।' प्रथम प्रभात कैसे आता है? सौन्दर्य (फूल) के सौरभ से युक्त प्रेम (मलयानिल) के स्पर्श करते ही सर्वत्र गुदगुदी होने लगती है और हृदय में नया अनुराग उत्पन्न होता है। —झरना

प्रथम यौवन मदिरा से मत्त, प्रेम करने की थी परवाह—इसमें अलका ने सिंहरण के प्रति अपने प्रेम की पूर्व स्मृति और भविष्य में विश्वास प्रगट किया है। यौवन के प्रभात में प्रेम से मैंने मत्त होकर तुम्हें बिना पहचाने अपना अमोल हृदय बेच डाला। अपनापन खोकर मैंने तुम्हें चाहा। इसके बदले में तुम से वेदना मिली। हे बेपरवाह! तुम्हारे आने के लिए मैंने हृत्पथ की धूल को आंसुओं का छिड़काव करके बिठा दिया है। **—चन्द्रगुप्त, २-६**

प्रपञ्चबुद्धि—बौद्ध कापालिक, 'योगाचार संघ' का प्रधान श्रमण। "क्रूर कठोर नरपिशाच"। (भटार्क) **—स्कन्दगुप्त**

प्रबोधिनी—जागरण, अंक १, ११ फरवरी '३२ में प्रकाशित गद्यकाव्य जिसमें देशवासियों को जागरण का संदेश दिया गया है। इसमें राष्ट्रीयता भरी है।

प्रभाकर वर्धन—स्थाणीश्वर के राजा, राज्य-वर्धन और हर्ष के पिता, जिनके निधन की सूचना देवगुप्त को दूत ने आकर दी। **—राज्यश्री, १-६**

[थानेसर-राज्य के संस्थापक आदित्य-वर्धन के पुत्र, विजेता; मृत्यु ६०६ ई०।]

प्रभात—दे० शारदीय शोभा।

प्रभात कुसुम—शुचि सौरभ और मकरन्द से सने, असीम आनन्द में भरे, इतने मनोहर, हे प्राभातिक फूल, तुम्हारा रूप कितना शुभ है, तुम्हारी प्रतिमा कितनी अनुपम है।

पड़्यो तुम पैं कछु कौन प्रकाश।
इतो तुम माँहि लखात विकाश॥

सूर्य की किरण पाकर तुम इतने इतराने लगे। **—पराग**

प्रभास—प्रभास के विप्लव के बाद अर्जुन के साथ आते हुए नागराज वासुकि को सरमा ने आत्मसमर्पण किया था।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, १-१

[=सोमनाथ (गुजरात), प्राचीन तीर्थ।]

प्रभो—२४ पंक्तियों की ईश्वर-स्तुति। विमल इन्दु की किरणें तेरे ही प्रकाश का पता देती हैं। जिसे तेरी दया का प्रसाद देखना हो, वह सागर की ओर देखे—तरंग मालाएँ तेरी ही प्रशंसा के गान गा रही हैं। चांदनी में तेरी मुस्कुराहट देखी जा सकती है। तेरे हँसने की धुन में नदियां कल-कल करती बही जा रही है। तुम प्रकृति रूपी कमलिनी को प्रकाशित एवं प्रफुल्लित करने वाले सूर्य हो।

अनादि तेरी अनन्त माया,
जगत् की लीला दिखा रही है।
असीम उपवन के तुम हो माली,
धरा बराबर जता रही है।

—कानन-कुसुम

प्रमदा[1]—पात्र। **—कामना**

प्रमदा[2]—रानी वपुष्टमा की परिचारिका, नृत्य और गान भी करती है।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, २-३

प्रमाद—प्रमाद में मनुष्य कठोर सत्य का भी अनुभव नहीं करता।

प्रयाग[१]—प्रयाग के एक व्यापारी से पत्र पाकर सेठ मनोहरदास और उसके साथी बनारस से प्रयाग गए, लौटती बार वह घटना हुई जिसकी स्मृति अमिट हो गई। —(**अमिट स्मृति**)

प्रयाग[२]—कुम्भ का मेला; माघ की अमावस्या को प्रयाग के बांध (गंगा तट) पर धर्म लूटने की धूम थी। बहुत से लोग कुचल गए, कितनों के हाथ टूटे, कितनों का सर फूटा और कितने ही पसलियों की हड्डियां गँवा कर अधोमुख होकर त्रिवेणी को प्रणाम करने लगे। एक नीरव अवसाद सर्वत्र अपनी कालिमा बिखेर रहा था। किशोरी और देवनिरंजन की भेंट।

—कंकाल, १-१

प्रयाग[३]—अशोक यहा का रहनेवाला है। —(**देवदासी**)

प्रयाग[४]—विश्वविद्यालय।

—(**परिवर्त्तन**)

प्रयाग[५]—गंगा के तट पर प्रयाग में हर्ष और राज्यश्री ने कामरूप, वलभी और पंचनद के सामन्तों तथा सुएनच्वांग की उपस्थिति में राजा से रंक होने का अभ्यास करते हुए दानोत्सव किया।

—राज्यश्री, ४-२, -३

[प्रयाग का महादान-महोत्सव (महा-मोक्ष-परिषद्) हर्ष के इतिहास काल में महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक पांच वर्ष के उपरान्त यह महोत्सव मनाया जाता था। स्वर्ण, रत्न, वस्त्रादि का दान होता था। पहले दिन बुद्ध, दूसरे दिन आदित्य-देव और तीसरे दिन ईश्वरदेव (शिव ?) की पूजा होती थी। गंगा-यमुना और गुप्त-वाहिनी सरस्वती के संगम पर बसा हुआ प्राचीन नगर, तीर्थराज; ब्रह्मा ने यहां अनेक याग किए थे। इसलिए प्रयाग नाम है। रामायण, महाभारत और इतिहास के अनेक युगों में इसका उल्लेख हुआ है। भारद्वाज आश्रम के अतिरिक्त सम्राट् अकबर का बनवाया हुआ एक किला यहां पर है। किले में अशोक की लाठ और अक्षयवट है।]

प्रलय[१]—हाहाकार हुआ क्रन्दन
कठिन कुलिश होते थे चूर, इत्यादि।

—कामायनी, चिंता, पृ० १३-१४

धँसती धरा, धधकती ज्वाला
ज्वालामुखियों के निश्वास, इत्यादि।

—कामायनी, चिंता, पृ० १४-१५

प्रलय[२]—'प्रतिध्वनि' संग्रह की अंतिम कहानी। हिमावृत चोटियों पर बैठे युवक और युवती ने प्रलय के चिह्न उपस्थित होते हुए देखे—आलोड़ित जलराशि, कुहासा, शीतलता। युवक बिल्कुल निश्चिन्त और प्रकृतिस्थ था, मानो वही समस्त सृष्टि-चक्र का संचालक था। उसकी युवती पत्नी घबड़ाई हुई थी और मोह, आध्यात्मिकता आदि विषयों पर प्रश्न करती रही। प्रलय-दृश्य बढ़ चला। प्रबल वायु और मेघ-वर्षा तथा प्रचण्ड दिनकर के आतप से पृथ्वी जली और जलमग्न हो गई। केवल एक वट-वृक्ष एक नुकीले शृंग के सहारे बच रहा। उसकी एक डाल पर वही युवक और युवती रह गये। युवती ने युवक को पूर्ण आत्म-

समर्पण किया और प्रलय में दोनों का मिलन हुआ। प्रलय ही का नाम है सृष्टि—अखंड शांति, आलोक, आनन्द।

इस कहानी में प्रसाद की उस कल्पना, कला और दार्शनिकता के दर्शन होते हैं जो आगे चलकर 'कामायनी' में विकसित हुई है। कहानी प्रतीकात्मक है; युवक और युवती के रूप में ब्रह्म और माया अथवा शिव और शक्ति का चित्रण किया गया है। शिव (पुरुष) और शक्ति (प्रकृति) के मिलन में ही आनन्द-सिद्धि है। कथा-विधान की दृष्टि से अपूर्ण होते हुए भी कहानी सुन्दर है। कथोपकथन अच्छे हैं।

—प्रतिध्वनि

प्रलय की छाया—हंस, जनवरी १९३१ में प्रकाशित, बाद में 'लहर' में संगृहीत २२ पृष्ठों का उत्कृष्ट कथा-काव्य। इसमें ऐतिहासिक घटना के आधार पर नारी का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। गुर्जर की रानी कमला के अन्तर् में क्षण-क्षण से उठने वाले भावों को चित्रित किया गया है।— मैं अपने यौवन, अपने सौन्दर्य से पागल हो उठी थी। मेरे जीवन को प्रकृति की विभूति सज्जित कर रही थी। नीली अलकें लहरों के समान मुझे चूमती थीं। यौवन-मादकता का भार लेकर मैं दो डग भी चल नहीं पाती थी। समस्त गुजरात का कौमार्य मुझ में ही घनीभूत हो गया था। मैंने देखा, विश्व का वैभव मेरे चरणों में लोट रहा है। सृष्टि की समस्त स्निग्धता मुझे छू लेने के लिए व्याकुल थी। अनायास नियति बदली। सुलतान अलाउद्दीन का आक्रमण हुआ। एक बार फिर सती पद्मिनी के आत्म-गौरव की गाथाएँ गूज उठीं। मैंने सोचा—

पद्मिनी जली थी स्वयं
किन्तु मैं जलाऊँगी
वह दावानल ज्वाला
जिसमें सुलतान जले।

पर पद्मिनी की सी हृदय की महानता मुझ में कहां थी?—सुलतान का क्रोध गुजरात के हरे-भरे कानन को दावानल बन कर जलाने लगा। देश में हाहाकार मच गया। मैं भी अपने वीर पति के साथ देश की आपत्ति में कूद पड़ी। एक दिन मेरे पति युद्ध करते हुए दूर निकल गए और मैं बन्दी हुई। उस आपदा में—

कभी सोचती थी प्रतिशोध लेना पति का
कभी निज रूप सुन्दरता की अनुभूति
क्षण भर चाहती जगाना मैं
सुलतान ही के उस निर्मम हृदय में
नारी मैं....

कितनी अबला थी और प्रमदा थी रूप की। तभी मणि-मेखला में लगी कृपाणी चमक उठी, पर आह आत्म-हत्या भी न कर सकी। सोचा—जीवन सौभाग्य है, जीवन अलभ्य है। एक दिन किसी के पद-शब्द से कांप उठी। वह तो मेरा पुराना अनुचर मानिक था। गुर्जरेश (कर्णदेव) ने सन्देश भेजा कि तू अपने प्राणों का अंत कर ले। मानिक को सुलतान के कोप

से मैंने बचा लिया, नहीं तो वह मारा जाता। मेरी लालसाएँ, सारी वासनाएँ जाग उठीं।

बिखरे प्रलोभनों को मानती-सी सत्य मैं शासन की कामना में झूमी मतवाली हो।

मैंने अलाउद्दीन को स्वीकार किया। मेरे रूप की विजय-दुन्दुभी बजने लगी। अन्त में वही मानिक काफूर खुसरू नाम से दास बना और अवसर पाकर उसने अलाउद्दीन का अन्त कर दिया। मैं पश्चाताप से सिहर उठी—

नारी यह रूप तेरा जीवित अभिशाप है। जिसमें पवित्रता की छाया भी पड़ी नहीं कलुषित सौन्दर्य का नक्षत्र ज्योतिहीन होकर कालिमा की धारा में डूब गया।

इस कविता में, नारी के हृदय में रूप और यौवन को लेकर उठने वाली आकांक्षा तथा समय-समय पर परिवर्तित होने वाली भावनाओं का सुन्दर चित्र है, और चित्र के अनुकूल सुन्दर प्रतीकों की योजना है। —लहर

[राजा करणसिंह और उसकी कन्या देवलदेवी दक्षिण को भाग गए और कमलादेवी को दिल्ली रणिवास में भेज दिया गया। यह १२९७ ई० की घटना है। दे० काफूर भी। यह बात कि माणिक ने अलाउद्दीन को मार डाला इतिहास-सम्मत नहीं है।]

प्रवृत्ति मार्ग—दुःखियों की सहायता करना, सुखी लोगों को देखकर प्रसन्न होना, सबकी मंगल-कामना करना, यह साकार उपासना के प्रवृत्ति-मार्ग के ही साध्य हैं। (निरंजन) —कंकाल, पृ० ६८-६९

प्रशान्त महासागर[१]—

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, पृ० ७०

प्रशान्त महासागर[१] — (ब्रह्मर्षि)

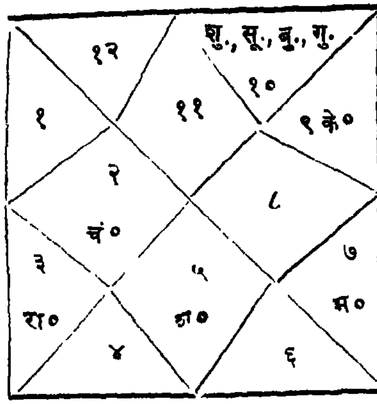
प्रशान्त महासागर[१]—(सीलोन में)

—मदन-मृणालिनी

प्रसाद[१]—घटना न होने के कारण इसे कहानी न कह कर गद्यगीत ही कहना चाहिए, जिसमें भावात्मकता और कल्पना की प्रधानता है। सरला देवमंदिर में देवता की पूजा के लिए प्रातःकाल फूल लेकर गई। देखा कि वहां मल्लिका की माला, पारिजात के हार, मालती की मालिका, और भी अनेक प्रकार के सौरभित सुमन देव-प्रतिमा के पदतल में विकीर्ण हैं। सरला को अपने तुच्छ फूलों के समर्पण में बड़ा संकोच हुआ। दूर से ही उसने पुष्प-गुच्छ फेंक दिया और वह गिरा देवता के ठीक चरणों पर। पुजारी ने उसे उठा कर रख लिया। सरला भक्ति-पूर्ण मुद्रा में पूजा के अन्त तक रुकी रही। शयन-आरती समाप्त हुई। सरला ने देखा कि उसके फूल भगवान् के अंग पर सुशोभित हैं। पुजारी ने प्रसाद-रूप में देवता की एकावली सरला के नत गले में डाल दी। सरला की श्रद्धा-भक्ति पर प्रतिमा प्रसन्न होकर हँस रही थी।

देवता हमारे हृदय की अपेक्षा करते हैं, विलासिता की नहीं, यही इस कहानी का निष्कर्ष है। प्रारम्भ और अन्त सुन्दर

हैं। भाषा मधुर और उद्देश्य मार्मिक है। —प्रतिध्वनि



प्रसाद[२]—जन्म—माघ शुक्ला १०, सं० १९४६, सराय गोवर्द्धन मुहल्ला, काशी। पितामह बाबू शिवरत्न साहु (कान्यकुब्ज वैश्य) —उन्होंने सुर्ती गोली का आविष्कार किया था और सुंघनी साहु के नाम से विख्यात थे। बड़े दानी दीन-बन्धु थे। पिता बाबू देवी प्रसाद गुणियों का आदर करते थे। दूर-दूर तक के लोग उन्हें महादेव कहकर सम्मान करते थे। काशी में यह सम्मान केवल काशीराज और सुघनी साहु को ही प्राप्त था। प्रमाद जी के पिता का देहान्त सं० १९४८ में, उनकी माता का सं० १९६१ मे, और बडे भाई का सं० १९६३ में हो गया। सब बोझ इन्ही पर आ पडा। उनकी शिक्षा सातवे दर्जे तक ही हो पाई। घर पर संस्कृत, उपनिषद और अंग्रेजी पढते रहे। यात्राएँ बहुत कम कीं—११ वर्ष की अवस्था में वे अपनी माता के साथ धाराक्षेत्र, ओंकारेश्वर, पुष्कर, उज्जैन, जयपुर, व्रज, अयोध्या आदि तीर्थों पर गए। बाद में एक बार कलकत्ता, पुरी और लखनऊ गए और दो बार प्रयाग।

उनकी एक के बाद दूसरी पत्नी भी मर गई। तीसरी पत्नी से पुत्र हुआ। वे कई बरस ऋण-ग्रस्त रहे। उनका अधिकतर समय साहित्यिक चर्चा में कटता था। व्यवसाय मे थोड़ा समय अवश्य लगाते थे। प्रायः घर पर बैठे रहते, यहीं मित्र और भक्त आ जाते थे। प्रेमचन्द ने इनकी पुराण-इतिहास-प्रियता को पसन्द नही किया, लेकिन जब 'कंकाल' लिखा गया तो उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ और वे प्रसाद जी के मित्र बन गए। प्रसाद जी तरह-तरह के भोजन बनाने में भी कुशल थे। बाग-बगीचे का भी शौक था। शतरंज को छोड़ कर कोई और खेल नहीं खेलते थे। व्यायाम अवश्य करते थे। उनका खान-पान सात्विक था। वे बडे अध्ययनशील थे। कवि-सम्मेलनों से दूर भागते थे। पत्र-व्यवहार में भी संकोची थे। वे धार्मिक और आस्तिक शिव-भक्त थे। उनका व्यक्तित्व आकर्षक था—मझोला कद, गौर वर्ण, गोल मुंह, दांत सब एक पंक्ति में, कुरता-धोती, चश्मा और डंडा। १५ नवम्बर १९३७ ई० (प्रबोधिनी एकादशी सं० १९९४) को क्षयरोग से उनका देहान्त हुआ।

प्रसाद-साहित्य को समझने के लिए

यह जानना आवश्यक है कि १. वे शैव थे ; २. जीवन की विभीषिकाओं का उन्होंने तीखा अनुभव किया था, जिससे उनका जीवन बड़ा संघर्षमय रहा ; ३. वे बड़े चरित्रवान् और संयमी वीर महानुभाव थे ; ४. उनके जीवन के मूल में वैभव, विलास और ऐश्वर्य रहा है ; ५. वे कवि पहले थे, इसलिए उनके साहित्य में क्षमा, भावुकता, करुणा, कोमलता और शीतलता का होना स्वाभाविक है ; ६. वे न कट्टर थे न पलायन-वादी। प्रसाद को हिन्दी का रवीन्द्र या तुर्गनेव कहा गया है। काव्य के क्षेत्र में इनकी तुलना अंग्रेजी स्वच्छन्दता-वादी कवि शैले से की जाती है।

प्रसाद का आत्मजीवन—प्रसाद ने अनेक कृतियों मे व्याज से आत्मजीवन की व्याख्या की है। प्रसाद के दार्शनिक पात्र उनके दार्शनिक रूप की प्रतिच्छाया हैं, जैसे बिम्बसार, व्यास और प्रेमानन्द; और अनेक प्रेमी पात्रों में वे स्वयं प्रच्छन्न हैं। इनके अतिरिक्त तुलना कीजिए—घनश्याम, 'पाप की पराजय' में। मदन, 'मदन-मृणालिनी' मे।

मातृगुप्त, 'स्कन्दगुप्त' में :—

"अमृत के सरोवर में स्वर्ण कमल खिल रहा था, भ्रमर वंशी बजा रहा था, सौरभ और पराग की चहल-पहल थी। सबेरे सूर्य्य की किरणें उसे चूमने को लौटती थीं, संध्या में शीतल चांदनी उसे अपनी चादर से ढक देती थी। उस मधुर सौन्दर्य, उस अतीन्द्रिय जगत् की साकार कल्पना की ओर मैंने हाथ बढ़ाया था—वही स्वप्न टूट गया।" इत्यादि। दे० मातृगुप्त के कथन, कविता के बारे में और देश के बारे में।

मोहनलाल, 'ग्राम' कहानी में। प्रसाद के पारिवारिक जीवन की विडम्बना उसी के माध्यम से प्रकट हुई है। विजय कृष्ण, 'चूड़ीवाली' में। विमल, 'पत्थर की पुकार' में। श्रीनाथ, 'आंधी' में :—

(अब सिर पर काम आ पड़ा) मेरे स्वतंत्र जीवन में मां के मर जाने के बाद यह दूसरी उलझन थी। निश्चिन्त जीवन की कल्पना का अनुभव मैंने इतने दिनों तक कर लिया था। मैंने देखा कि मेरे निराश जीवन में उल्लास का छींटा भी नहीं। यह ज्ञान मेरे हृदय को और भी स्पर्श करने लगा। मै जितना ही विचरता था, उतना ही मुझे निश्चिन्तता और निराशा का अभेद दिखलाई पड़ता था। मेरे आलसी जीवन में सक्रियता की प्रति-ध्वनि होने लगी। तो भी काम न करने का स्वभाव मेरे विचारों के बीच में जैसे व्यंग्य से मुस्करा देता था।

किसी विषय पर गम्भीरता का अभिनय कर के थोड़ी देर तक सफल वाद-विवाद चला देना और फिर विश्वास करना ; इतना ही तो मेरा अभ्यास था। काम करना, किसी दायित्व को सिर पर लेना , असम्भव !

वह तो मेरा परिचित है। मित्र मान लेने में मेरे मन को एक तरह की

अड़चन है। इसलिए मैं प्रायः अपने कहे जाने वाले मित्रों को भी जब अपने मन में सम्बोधन करता हूँ, परिचित ही कह कर! सो भी जब इतना माने बिना काम नहीं चलता। मित्र मान लेने पर मनुष्य उससे शिवि के समान त्याग, बोधिसत्व के सदृश सर्वस्व-समर्पण की जो आशा करता है और उसकी शक्ति की सीमा को तो प्रायः अतिरंजित देखता है, वैसी स्थिति में अपने को डालना मुझे पसन्द नहीं। क्योंकि जीवन का हिसाब-किताब उस काल्पनिक गणित के आधार पर रखने का मेरा अभ्यास नहीं, जिसके द्वारा मनुष्य सब के ऊपर अपना पावना ही निकाल लिया करता है।

अकेले जीवन के नियमित व्यय के लिए साधारण पूंजी का व्याज मेरे लिए पर्याप्त है।

जिससे गढ़न का अनुमान होता है, मेरे एकान्त जीवन को बिताने की सामग्री में इस तरह का जड़ सौन्दर्य-बोध भी एक स्थान रखता है। मेरा हृदय सजीव प्रेम से कभी आप्लुत नहीं हुआ था। मैं इस मूक सौन्दर्य से ही कभी-कभी अपना मनोविनोद कर लिया करता।

'आत्म-कथा', 'आंसू', 'करुणा-पुंज', 'प्रथम प्रभात', 'प्रेम पथिक', और 'हृदय वेदना' आदि कृतियों में भी प्रसाद ने अपनी ही गाथा वर्णित की है।

प्रसाद की प्रतिभा तथा कृतित्व—प्रसाद की प्रतिभा की विशेषताएँ हैं सौन्दर्य, माधुर्य, गाम्भीर्य, करुणा, विलक्षणता और मोहकता। भावों की गंभीरता, विचारों की प्रौढ़ता, अभिव्यक्ति की नवीनता, सौन्दर्य की सृष्टि, अन्तर्जगत् का सूक्ष्म चित्रण, अतीत का मोह, वर्तमान की चिन्ता और भविष्य की आशा, अनुभूतिमय कल्पना और कल्पना-मय अनुभूति प्रसाद की कृतियों में ओतप्रोत हैं। मानवता के लिए वे विशेष-तया चिंतित हैं।—

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त,
विकल बिखरे हैं हो निरुपाय
समन्वय उनका करे समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाय।

यही सदिच्छा, यही उद्देश्य लेकर उन्होंने साहित्य की सृष्टि की है। वे हिन्दी के माध्यम से भारत के सांस्कृतिक कवि और साहित्यकार हैं। वेद, शास्त्र, उपनिषद्, पुराण आदि के ज्ञान को ही नहीं, संस्कृत-साहित्य की पूरी परम्परा को लेकर उन्होंने अपने साहित्य के विभिन्न रूपों को समृद्ध किया और बड़ी कठिन साधना से हिन्दी की रूखी-सूखी हड्डियों में प्राण संचार किया :—

सब का निचोड़ लेकर तुम,
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात-हिमकण सा,
आँसू इस विश्व सदन में।
(आंसू)

निराला के शब्दों में—

किया मूक को मुखर,
लिया कुछ, दिया अधिकतर

पिया गरल पर किया जाति-
साहित्य को अमर।

हिन्दी के किसी रचनाकार ने विविध रूपों में इतनी मौलिक रचनाएँ नहीं दीं जितनी इस सरस्वती-पुत्र ने। प्रसाद का साहित्य लगभग ३५०० मुद्रित पृष्ठों में उपलब्ध है, जिनका ब्योरा आगे दिया गया है। अधिकतर वे प्रयोग ही करते रहे। वे प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी हैं। हिन्दी में सर्वप्रथम चतुर्दशपादियों का प्रचलन उन्होंने ही किया। प्रसाद ने हिन्दी को सबसे पहली आधुनिक ढंग की मौलिक कहानी दी। 'ग्राम' हिन्दी की प्रथम कहानी है। प्रसाद ने सर्वत्र मात्रिक छन्दों को अतुकान्त रूप दिया। 'प्रेम-पथिक' हिन्दी की प्रथम अतुकान्त कविता है। उनके साहित्य की और विशेषताएँ ये हैं—

१. बड़े-बड़े जीवन-प्रश्नों पर विचार करना, व्यक्ति, समाज और संस्कृति की जटिल समस्याओं की विवेचना करना, देश और जाति के युग-युग के छाया-आलोकों का उद्घाटन करना, हृदय, मन और बुद्धि के गहरे और बहुमुखी घात-प्रतिघातों को चित्रित करते हुए अपनी कला द्वारा सजीवता प्रदान करना ; २. सौन्दर्य की शाश्वत एवं सात्त्विक व्याख्या ; ३. नैतिकता की रक्षा; कहानियों में अतीत और वर्तमान दोनों, एवं उपन्यासों में वस्तुवादी, वर्तमान की चिन्ता और भविष्य-निर्माण का संकेत है ; ४. अतीत प्रेम—ऐतिहासिक तथा व्यक्तिगत ; नाटकों में अतीत-प्रियता ; ५. काव्यत्व की सर्वत्र व्यापकता ; ६. राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक चेतना ; ७. मनोवैज्ञानिक शिल्प ; ८. जीवन के सभी क्षेत्रों का चित्रण ; ९. कथा, काव्य आदि में नाटकीयता ; १०. प्रसाद का व्यक्तित्व सब कृतियों में है ; ११. मानवता के प्रति आस्था ; १२. कुलीनता की प्रतिष्ठा।

प्रसाद का 'झरना' हिन्दी में छायावाद का प्रथम संग्रह है। आधुनिक हिन्दी में प्रसाद ने रहस्यवाद का प्रवर्त्तन किया। प्रसाद ने भारतीय इतिहास का जितना काल-विस्तार और भारत भूमि का जितना क्षेत्र-विस्तार अपनी कृतियों में चित्रित किया है इतना किसी भी भारतीय भाषा के साहित्यकार ने नहीं किया। दे० इतिहास भी। उनकी विधायक कल्पना अद्भुत थी। हिन्दी-कविता की नई धारा के वे प्रवर्त्तक हैं। साहित्यिक गीतों के वे जन्मदाता हैं। उन्होंने महाकाव्य, खंड-काव्य, गीतिकाव्य, काव्य-कथा, कथा-निबंध, चतुर्दशियां, तुकान्त, अतुकान्त, प्राचीन ढंग के मुक्तक—सब तरह का काव्य लिखा। गद्यकार के रूप में प्रसाद का स्थान उच्च है। गद्य का इतना भावप्रधान और व्यापक प्रयोग बहुत कम ने किया है।

प्रसाद-साहित्य (कृतियाँ)—

१९०९—उर्वशी-चम्पू, सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य (ऐतिहासिक अनुशीलन);

१९१०—प्रेमराज्य (कविता);

१९११—सज्जन (एकांकी);

१९१२—कल्याणी-परिणय (एकांकी), कानन-कुसुम (काव्य), छाया (कहानी-संग्रह), करुणालय (गीतिकाव्य);

१९१३—प्रेमपथिक (काव्य);

१९१४—प्रायश्चित्त (एकांकी), महाराणा का महत्त्व (काव्य);

१९१५—राज्यश्री (नाटक);

१९१९—चित्राधार ;

१९२१—विशाख (प्रथम पुस्तकाकार प्रकाशित नाटक);

१९२२—अजातशत्रु (नाटक);

१९२३-२४—कामना (नाटक);

१९२५-२६—आसू (काव्य), जनमेजय का नाग-यज्ञ (नाटक), प्रतिध्वनि (कहानी संग्रह);

१९२७—झरना (काव्य);

१९२८—स्कन्दगुप्त (नाटक), चित्राधार (जिसमें १९१२ तक की गद्य-पद्य कृतियां हैं);

१९२९—एक घूट (एकांकी), आकाशदीप (कहानी-संग्रह);

१९३०—कंकाल (उपन्यास);

१९३१—चन्द्रगुप्त मौर्य्य, (नाटक), आन्धी (कहानी-संग्रह);

१९३३—ध्रुवस्वामिनी (नाटक),

१९३४—तितली (उपन्यास);

१९३५—लहर (काव्य); निबन्ध;

१९३६—इन्द्रजाल (कहानी-संग्रह), कामायनी (महाकाव्य), निबंध, इरावती (उपन्यास); और 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' मृत्यु के बाद प्रकाशित हुए।

१९२१ तक की कृतियों में वे परिवर्तन, परिवर्धन करते रहे।

प्रसाद का जीवन दशाश्वमेध और घर-दूकान के बीच में बीता था, अतः उनकी अनुभूति विस्तृत नहीं, गहरी बहुत है। बाह्य द्वन्द्वों की अपेक्षा व्यक्तिगत अन्तर्संघर्षों, संवेदनाओं का समावेश अधिक है। प्रसाद के साहित्य में अदृष्ट, भाग्यवाद, कर्म-अकर्म और नियति की व्याख्या हुई है। आरंभिक कृतियों में असन्तुलन और क्षोभ है, बाद में कर्म-प्रधान आनन्द की परिणति होती है। वे 'इन्द्र' के नाम से एक पौराणिक नाटक लिखने वाले थे, ऐसा द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थ में प्रकाशित उनके एक लेख से विदित होता है।

प्रसाद का कथा-साहित्य—दे० प्रसाद की कहानियां, प्रसाद के उपन्यास, आख्यानक कविताएँ।

प्रसाद की कहानियाँ—प्रसादजी ने ७२ कहानियां लिखीं। अधिकांश कहानियों में घटना बहुत न्यून है। उनकी अधिकतर कहानियां भावात्मक हैं। ऐतिहासिक कहानियों की अपेक्षा उनकी यथार्थवादी कहानियों को अधिक पसन्द किया जाता है। इसी लिए प्रेमचन्द ने 'मधुआ' को उनकी उत्कृष्ट कहानी कहा है। अधिकांश कहानियां वातावरण प्रधान हैं। प्रसाद की कहानियों का क्षेत्र अपरिमित है।

१८ ऐतिहासिक कहानियां—अशोक,

आकाशदीप, गुण्डा, गुलाम, चित्तौर उद्धार, चक्रवर्ती का स्तम्भ, जहांनारा, तानसेन, दासी, देवरथ, नूरी, पुरस्कार, ममता, व्रतभंग, शरणागत, सालवती, सिकन्दर की शपथ, स्वर्ग के खँडहर में। इनमें से कुछ ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित है और कुछ में पृष्ठभूमि मात्र ऐतिहासिक है। ये बौद्धकाल, मुसलिम काल और गदरकाल से संबंधित हैं। तानसेन, नूरी और पुरस्कार प्रेम-संबंधी हैं।

१ प्रागैतिहासिक—चित्रमंदिर।

२ पौराणिक—पंचायत, ब्रह्मर्षि।

१५ प्रेमकथाएँ—आंधी, इन्द्रजाल, ग्रामगीत, चन्दा, चित्रवाले पत्थर, चूड़ीवाली, देवदासी, प्रणय-चिह्न, बिसाती, मदन मृणालिनी, रसिया बालम, रूप की छाया, समुद्र संतरण, सुनहला सांप, हिमालय का पथिक।

९ भावात्मक कहानियां—अघोरी का मोह, करुणा की विजय, कलावती की शिक्षा, दुखिया, पाप और पराजय, प्रतिध्वनि, प्रतिमा, बनजारा, भिखारिन।

२ समस्यामूलक—नीरा, पत्थर की पुकार।

४ मनोवैज्ञानिक—गुदड़ी के लाल, गूदड़ साईं, परिवर्त्तन, मधुआ।

८ यथार्थोन्मुख—ग्राम, घीसू, छोटा जादूगर, बेड़ी, भीख में, विराम चिह्न, संदेह, सलीम।

३ रहस्यवादी—उस पार का योगी, रमला, प्रसाद।

३ प्रतीकात्मक—कला, ज्योतिष्मती, प्रलय।

७ विविध—अनबोला, अपराधी, अमिट स्मृति, खंडहर की लिपि, वैरागी, विजया, सहयोग।

श्रेष्ठ कहानियां, (१) ऐतिहासिक—आकाशदीप, गुंडा, चित्र-मंदिर, चित्र-वाले पत्थर, दासी, नूरी, पुरस्कार, सालवती, स्वर्ग के खँडहर में; (२) अन्य—आंधी, इन्द्रजाल, घीसू, चूड़ीवाली, छोटा जादूगर, नीरा, बिसाती, बेड़ी, भीख में, मधुआ, विराम चिह्न, समुद्र-सन्तरण, सलीम।

उनके प्रायः स्त्री-पात्र उज्ज्वल हैं, जैसे—इरावती, चन्दा, चम्पा, मंगला, मधूलिका, लैला, सालवती आदि। पुरुषों में शराबी ('मधुआ' में), नन्हकूसिंह (गुंडा) और घीसू मन पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। प्रायः कहानियों का अन्त अकस्मात् और अप्रत्याशित रूप से हो जाता है।

क्रमिक विकास—पहले-पहल प्रसाद जी ने दो पौराणिक कथाएँ लिखीं—'ब्रह्मर्षि' और 'पंचायत'। बाद में पौराणिक कथा नहीं लिखी। प्रसाद जी की कहानियों के पांच संग्रह प्राप्त हैं:—(१) 'छाया' की कहानियां (१९१०–१४)—इनमें कथानक तो है, पर कथोपकथन तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अपरिपक्व हैं। कला के दर्शन नहीं होते। कथावस्तु शिथिल है, अनुच्छेदों की कोई योजना नहीं है। कथानक की गति में

बाधा रहती है। जीवन का चित्रण नहीं है। भाषा में लाक्षणिकता नहीं। अधिकांश कहानियों का प्रारम्भ प्रकृति वर्णन से होता है। (२) 'प्रतिध्वनि' की कहानियां (१९२५–२६)—इनमें प्रायः कथानक है ही नहीं। कहानियां छोटी, भावनापूर्ण और काव्यमय है। कवि ने कहानीकार को दबा लिया है। भाषा-शैली पुष्ट है। एक भी कहानी ऐतिहासिक नहीं है। यथार्थवादी, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कहानियां अवश्य हैं, पर उनमें भी 'वस्तु' और 'चरित्र-चित्रण' उपेक्षित है। वे 'छाया' की कहानियों से भिन्न है। (३) 'आकाशदीप' की कहानियां (१९२६–१९२९) —ये 'प्रतिध्वनि' की कहानियों का विकसित और परिमार्जित रूप है। काव्य, कल्पना और कोमलता के साथ इनमें चरित्र-चित्रण, कथानक और भाषा का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। कवि और कहानीकार में सहयोग है। कुछ-एक कहानियां 'प्रतिध्वनि' संग्रह की शैली की भी है जिनमें भावुकता और रहस्यात्मकता अधिक है। ऐसी दार्शनिकता के कारण कहानी शिथिल हो जाती है। (४) 'आंधी' की कहानियां (१९२९–३३)—इन कहानियों से प्रसाद मानवता की ओर उन्मुख हुए हैं। अब वे एकांतिक नहीं रह गए। भाषा अधिक मंज गई है। इस संग्रह में 'आकाशदीप' की कहानियों की सी उलझनें नहीं हैं। अलबत्ता कवित्व कुछ-एक कहानियों में भरा है। (५) 'इन्द्रजाल' की कहानियां (१९३३–१९३६)—यदि प्रसाद की २० सर्वोत्तम कहानियों का चुनाव किया जाये तो ५० प्रति शत इसी संग्रह की कहानियां होंगी।

'आंधी' और 'इन्द्रजाल' की प्रायः कहानियां चरित्र-प्रधान है।

संक्षेप में प्रसाद जी की कहानियों की विशेषताएँ ये है:—

(क) प्रसाद हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ अतीत-प्रेमी कहानीकार हैं, उनकी कहानियों में ऐतिहासिक वातावरण बड़ी सफलता के साथ अंकित हुआ है।

(ख) प्रसाद का कवि कहानियों में कवित्वपूर्ण भावना और प्रभावपूर्ण सौन्दर्य भरने में बहुत सफल हुआ है। कथा-रस और काव्य-रस को एक साथ मिलाने वाली प्रसाद की शैली अपूर्व है।

(ग) प्रसाद के नाटककार ने नाटकीय परिस्थितियों और सुन्दर कथोपकथन की योजना में योग दिया है।

(घ) प्रसाद प्रमुखतः रोमांटिक कहानीकार हैं। उनकी कहानियों का मुख्य विषय प्रेम है। सुखान्त प्रेम-कथाएँ अधिक प्रभावसंपन्न नहीं हैं। दुःखान्त कहानियां बहुत मार्मिक हैं। अधिकतर कहानियों में प्रेम असफल रहता है।

(ङ) उनकी जो यथार्थोन्मुख कहानियां है, वे हिन्दी कहानी के विकास में प्रमुख स्थान रखती है।

(च) प्रायः कहानियों में उन्होंने

अभिजात कुलों के जीवन का चित्रण किया है। उनकी मनोवृत्ति भी उनके अनुकूल हैं। इन कहानियों में वैभव और विलास का सूक्ष्म चित्रण हुआ है।

(छ) उनकी कहानियों का विषय समाज न होकर व्यक्ति रहा है, इसलिए कहानी में किसी एक मनोवृत्ति, किसी एक भावना का चित्रण उपस्थित किया गया है। प्रायः कहानियां भावात्मक हैं जिनमें भाषा और कल्पना की रंगीनी रहती है।

(ज) इसी कारण से प्रसाद की कहानियों की भाषा चित्रमय और कोमल, कान्त संस्कृत-निष्ठ साहित्यिक हिन्दी है।

(झ) वर्णन—दृश्य-वर्णन, रूप-वर्णन, भाव-वर्णन—इन कहानियों का विशिष्ट गुण है।

(ञ) नाटकों की तरह कहानियां प्रसादान्त हैं।

(ट) समय और स्थान की अन्विति का ध्यान न करके केवल प्रभाव की एकता का सफल निर्वाह किया गया है।

(ठ) प्रसाद की अनेक कहानियां भावुकता और रहस्यवादिता के कारण अस्पष्ट हैं।

(ड) कहानियों का अन्त निराला है—भावपूर्ण, ध्वन्यात्मक।

प्रसाद के उपन्यास—प्रसाद के तीन उपन्यास हैं—कंकाल (१९२९), तितली (१९३३) और इरावती (अपरिसमाप्त)। तीनों में विभिन्न कोटि की सामग्री है। उपन्यास प्रसाद की सामान्य साहित्य-धारा से भिन्न हैं। उनका पहला उपन्यास भी प्रौढ़ है। 'कंकाल' में नागरिक सभ्यता की पोल और 'तितली' में ग्रामीण जीवन और तत्सम्बन्धी सुधारों पर प्रकाश डाला गया है। 'कंकाल' यथार्थवादी है तो 'तितली' आदर्श की ओर उन्मुख है। 'कंकाल' में व्यंग्य और कटुता है, 'तितली' में कोमलता और सहानुभूति है। 'तितली' का कथा-विधान भी सुलझा हुआ है। 'किसे नायक माना जाय' यह प्रश्न दोनों में उठता है—'कंकाल' में नायकत्व अधिक अस्पष्ट है। दोनों उपन्यासों में दार्शनिक विचारों को रखने का अवसर निकाल लिया गया है—'कंकाल' में गोस्वामीजी के मुख से और 'तितली' में बाबा रामनाथ के मुख से। दोनों में प्रसाद का इतिहास-प्रेम प्रगट है—'कंकाल' में गाला मुगल-वंश की है, मंगल वर्द्धन-वंश का ; 'तितली' में ईस्ट इंडिया कम्पनी का काल चित्रित हो गया है। दोनों उपन्यासों में नाटकीय तत्त्वों का समावेश हुआ है और रूपवर्णन तथा भाव-चित्रण में कवित्व का। सामयिक समाज से सम्बद्ध होने पर भी ये उपन्यास युग-युग और देश-देश का प्रतिनिधित्व करते रहेंगे क्योंकि इनमें व्यक्ति और समाज, एवं स्त्री और पुरुष की ऐसी समस्याएँ उठाई गई हैं और ऐसा समाधान उपस्थित किया गया है जो प्रत्येक देश और काल का है। 'इरावती' ऐतिहासिक पृष्ठ-

भूमि को लिए हुए रोमांस है। नाटकों में प्रसाद जी को अपनी ओर से कहने का कुछ कम ही अवसर मिल सका। कहानियों की सीमा में भी वे खुलकर चरित्रवर्णन अथवा दृश्यवर्णन नहीं कर सके। उपन्यासों में उन्होंने अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्र दिये है। प्रकृति, ग्राम, नगर, आदि के यथार्थ वर्णन इन उपन्यासों में अपने पूरे वातावरण के साथ आये हैं। जीवन की स्थितियों के दृश्य भी हृदयग्राही है। भाषा भी वातावरण के अनुकूल है। फिर भी ये उपन्याम सब के पढ़ने की वस्तु नही है। ये तो कला-कृतियां है, इनको समझने की अर्हता सुसंस्कृत, भावुक और प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों को है।

प्रसाद का काव्य—प्रसाद मुख्यतः कवि थे—नाटक, कहानी, उपन्यास सब में उनका कवित्व झलकता है। प्रसाद के काव्य की सामान्य विशेषताएँ ये है—(१) प्रकृति, (२) प्रेम का सुन्दर, सात्विक, निश्छल रूप, (३) प्रेम का आध्यात्मिक पक्ष और उसमें रहस्य-भावना का समावेश , (४) आन्तरिक भावों का मर्मस्पर्शी चित्रण, (५) व्यक्तिगत दुःख का वर्णन करते हुए, सम्पूर्ण लोक की पीडा, (६) मानव-कल्याण की चिन्ता, (७) राष्ट्रीयता, (८) भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रति मोह और नई चेतना, (९) मुक्तक और प्रबन्ध दोनों, (१०) नवीन अभिव्यंजना-शैली, (११) छन्द, भाषा, भाव की विविधता, (१२) प्रसाद-साहित्य परिमाण में अधिक न होकर भी भाव, कला और प्रयोग की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह हिन्दी की बहुमूल्य निधि है।

आरम्भिक कविताएँ— (१९०६ से लगभग १९१५ ई० तक)—प्रसाद की प्रारम्भिक कविताएँ व्रजभाषा में हैं। इनमें उनका प्रकृति प्रेम, भाव और भाषा का सौन्दर्य स्पष्ट है। पं० नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में प्रसाद का प्रकृति-प्रेम एक विशिष्ट प्रकार से व्यक्त हुआ है।..."उसमें उनका प्रेम रमणीयता से है प्रकृति से नहीं। वे सुन्दरता में रमणीयता देखते हैं, सर्वत्र नहीं। इस रमणीयता के सम्बन्ध में उनकी भावना रति की भी है और जिज्ञासा की भी। रति उनका हृदय-पक्ष है और जिज्ञासा उनका मस्तिष्क पक्ष।" 'चित्राधार' द्वितीय संस्करण में उनका सारा व्रजभाषा-काव्य संगृहीत नहीं है। कुछ अतिरिक्त फुटकर छंद पत्र-पत्रिकाओं में प्राप्त हुए हैं। 'कानन-कुसुम' में प्रसाद की खड़ी बोली की प्रारम्भिक कविताएँ है। प्रायः कविताएँ साधारण कोटि की हैं। उनमें कुछ तो इतिवृत्तात्मक हैं और कुछ में नई राह की खोज में कवि के प्रयोग है। दे० कानन-कुसुम। करुणालय, महाराणा का महत्त्व और प्रेम-पथिक भी इसी काल की रचनाएँ हैं।

प्रौढ़ काव्य—'झरना' की कृतियों में प्रौढ़ता का विकास होता है। 'कानन-

कुसुम' की 'तुम्हारा स्मरण', 'भाव-सागर' आदि कुछ कविताएँ कवित्व के विकास का परिचय देती हैं। 'कानन-कुसुम' की बहुत-सी कविताएँ रहस्यवादी हैं। 'झरना' की अनेक कविताओं में भी रहस्य की झलक मिल जाती है। पर वस्तुतः प्रसाद मानव हृदय के कवि हैं। 'अव्यवस्थित' उनकी पहली हृदय-वादी रचना है। अब कवि में दृढ़ता और विश्वास भर गया है। वे विश्वसौन्दर्य के कवि हो गए हैं। 'आंसू' उनके हृदय की प्यास का तीव्र प्रमाण है। यह उनकी अत्यन्त प्रौढ़ कृति है। इसमें उनकी दार्शनिकता, उनका तत्त्वबोध, उनका प्रगतिवाद, उनकी मानवता, उनका सौन्दर्यप्रेम और शिव तथा सत्य—सब व्यक्त हुआ है।

इस अन्तिम काल (१९२९–३७ ई०) की अन्य विशेषताएँ ये हैं :—प्रेम की रहस्यात्मकता, पीड़ा की प्रधानता, जीवन के यथार्थ रूप का चित्रण, मनोवैज्ञानिक चित्रण, आनन्दवाद की ओर प्रवृत्ति। विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना, राज्यश्री, स्कन्दगुप्त और चन्द्रगुप्त नाटक के अधिकतर गीत भी इसी काल में लिखे गए हैं। इन गीतों में भावना की प्रधानता है। प्रसाद जी की अंतिम दो काव्य-कृतियां 'लहर' और 'कामायनी' हैं। 'आंसू' का परिवर्द्धित अंश उनकी नई प्रवृत्ति—चिन्तनशीलता—का संकेत करता है। 'लहर' के अनेक गीतों में कवि की सौन्दर्य-प्रियता, चिन्तना और प्रौढ़ कल्पना के दर्शन होते हैं। कुछ कविताओं का स्वर प्रगतिवादी है। 'कामायनी' प्रसाद की अंतिम और सर्वश्रेष्ठ रचना है।

गीत—दे० झरना, लहर, आंसू, कामायनी और नाटकों के गीत। केवल नाटकों के गीत १०० से कम न होंगे। वर्गीकरण—*शृंगारिक गीत*—अजातशत्रु में 'अली ने क्यों भला अवहेला की', 'चला है मन्थर गति से पवन', 'बहुत छिपाया उफन पड़ा अब', 'मीड़ मत खिंचे बीन के तार', 'हमारा जीवन का उल्लास'; एक घूंट में 'मधुर मिलन कुंज में'; कामना में 'छटा कैसी सलोनी निराली है', 'छिपाओगी कैसे', 'पी ले प्रेम का प्याला', 'पृथ्वी की श्यामल पुलकों में', 'सघन घन वल्लरियों के नीचे'; चन्द्रगुप्त में 'आज इस यौवन के माधवी कुंज में', 'कैसी कड़ी रूप की ज्वाला', 'तुम कनक किरण के अन्तराल में', 'निकल मत बाहर दुर्बल आह', 'प्रथम यौवन मदिरा से मत्त', 'मधुप कब एक कली का है', 'सखे वह प्रेममयी रजनी', 'सुधा सीकर से नहला दो'; जनमेजय का नागयज्ञ में 'अनिल भी रहा लगाये घात', 'बरस पड़े अश्रुजल', 'मधुर माधव ऋतु की रजनी'; झरना में 'खोलो द्वार', 'कौन, प्रकृति के करुण काव्य सा', 'शून्य हृदय में प्रेम जलद-माला', 'बिखरा हुआ प्रेम', 'किसी पर मरना'; ध्रुवस्वामिनी में 'अस्ताचल पर युवती सन्ध्या', 'यौवन तेरी

चंचल छाया'; राज्यश्री में 'आशा विकल हुई है मेरी', 'सम्हाले कोई कैसे प्यार'; लहर में 'अरे कहीं देखा है तुमने', 'आह रे वह अधीर यौवन', 'काली आंखों का अन्धकार', 'निज अलकों के अंधकार में', 'निधरक तूने ठुकराया तब', 'मधुर माधवी सन्ध्या में', 'मेरी आंखों की पुतली में', 'ले चल मुझे भुलावा देकर', 'वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे', इत्यादि; विशाख में 'आज मधु पी ले यौवन वसन्त आया', 'देखी नयनों ने एक झलक', 'मधुपान कर चुके मधुप', 'मेरे मन को चुराकर कहा ले चले', 'जरुणालय चित्त शान्त था'; स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य में 'अगरु धूम की श्यामल लहरियां', 'आह वेदना मिली विदाई', 'घने प्रेम तरु तले', 'न छेड़ उस अतीत स्मृति के', 'भरा नयनों में मन में रूप', 'भावनिधि में लहरियां उठती तभी', 'शून्य गगन में खोजता', 'संसृति के वे सुन्दरतम क्षण'; इत्यादि इत्यादि।

दे० आंसू, कामायनी, प्रेम भी।

आध्यात्मिक गीत—अजातशत्रु में 'चंचल चन्द्र सूर्य है चंचल', 'न धरो कहकर इसको अपना'; कामना में 'खेल लो नाथ विश्व का खेल'; जनमेजय का नागयज्ञ में 'जय हो उसकी जिसने अपना', 'जीने का अधिकार तुझे क्या', 'नाथ! स्नेह की लता सींच दो'; विशाख में 'तू खोजता किसे', 'मान लूं क्यों न उसे भगवान', 'सखी री सुख किसको कहते हैं', 'हृदय के कोने कोने से'; स्कन्दगुप्त में 'पालना बनें प्रलय की लहरें', 'सब जीवन बीता जाता है'; लहर में 'कितने दिन जीवन जलनिधि में'; इत्यादि इत्यादि।

राष्ट्रीय गीत—चन्द्रगुप्त में 'हिमाद्रि तुंग शृंग से', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा'; जनमेजय का नागयज्ञ में 'पददलित किया है जिसने भूमंडल', 'क्या सुना नहीं कुछ'; स्कन्दगुप्त में 'देश की दुर्दशा निहारोगे', 'मांझी साहस है खे लोगे', 'हिमालय के आंगन में'।

प्रकृति-संबंधी गीत—दे० प्रकृति।

चतुर्दशपदियाँ—१. सरोज, १९१२—इतिवृत्तात्मक है, सानेट की कोटि में नहीं आ सकती; २. मोहन, १९१४—तुक-प्रणाली उर्दू की है, सानेट की कोटि में नहीं आ सकती; ३. करुणालय में रोहिताश्व की प्रार्थना—अन्तिम दो पंक्तियां तुकान्त, शेक्सपियर की शैली, भावमय, प्रभावोत्पादक सानेट, अरिल्ल छन्द; ४. मेरी कचाई, १९१४—किसी ग्रन्थ में नहीं है, 'इंदु' में प्रकाशित; अरिल्ल छन्द; ५. हमारा हृदय, १९१५—अरिल्ल छन्द; ६. प्रत्याशा, १९१५—अरिल्ल छन्द; ७. अर्चना, १९१५—अरिल्ल छन्द; ८. स्वभाव, १९१५—अरिल्ल छन्द; ९. वसन्त राका, १९१५—किसी ग्रन्थ में संकलित नहीं, 'इंदु' में प्रकाशित; अरिल्ल छन्द; १०. दर्शन, १९१५—अरिल्ल छन्द; ११. सुखभरी नीद, १९१६—अरिल्ल छन्द;

१२.स्वप्नलोक, १९१६—अरिल्ल छन्द; १३. रमणी-हृदय, १९१४—तीन रोला, अन्त में उल्लाला; १४. महाकवि तुलसीदास, १९२३ (१९१७ ?)—तीन रोला-अन्त में उल्लाला; १५. नमस्कार, १९१३-१४—तीन रोला, अन्त में उल्लाला; वीर छंद (लावनी या ताटंक) में; १६. खोलो द्वार; १७. प्रियतम; १८. नहीं डरते; १९. पाईं बाग; २०. गान; २१. दीप; २२. चल वसन्त बाला अंचल से; २३. अलका की किस विकल विरहिणी; २४. संसृति के वे सुन्दरतम क्षण; २५. अगरु धूम की श्याम लहरियां; २६. निज अलकों के अंधकार में; २७. स्वर्ण-संसार, उर्दू के गजल सी (चांद, नवम्बर '३३ में प्रकाशित।)

आख्यानक कविताएँ—प्रसाद की काव्य-कथाएँ निम्नलिखित हैं—प्रेमपथिक, चित्रकूट, भरत, शिल्प सौन्दर्य, कुरुक्षेत्र, वीर बालक, श्रीकृष्ण जयन्ती, अशोक की चिन्ता, शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण, पेशोला की प्रतिध्वनि, प्रलय की छाया।

गद्यगीत—प्रसाद के गीत नाटकों, उपन्यासों और कहानियों में बिखरे पड़े हैं—पढ़िये पत्थर की पुकार, स्वर्ग के खँडहर में, बनजारा, दासी, सलीम, नूरी आदि कहानियों में क्रमशः पत्थर, बुलबुल, जीवन, बनजारे, प्रेमिका, पथिक और विरह के गीत। प्रसाद का अंतिम गद्यगीत है "हँसी" जो 'प्रभा' के हास्यरसांक, अप्रैल १९३१ में प्रकाशित हुआ था।

प्रसाद के चम्पू—दे० उर्वशी, चित्रांगदा, बभ्रुवाहन।

प्रसाद की भूमिकाएँ—उर्वशी चम्पू, विशाख, अजातशत्रु, राज्यश्री, स्कन्दगुप्त, जनमेजय का नागयज्ञ और ध्रुवस्वामिनी के अतिरिक्त प्रेमपथिक और कामायनी में छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की भूमिकाएँ हैं। सब से छोटी भूमिका 'प्रेमपथिक' में ५ पंक्तियों की और सब से बड़ी भूमिका 'चन्द्रगुप्त' में ५१ पृष्ठों की है। दे० चन्द्रगुप्त मौर्य्य, परिचय, प्राक्कथन, कथाप्रसंग और चम्पू।

प्रसाद के निबन्ध—इन्दु में प्रकाशित ९ निबन्ध—प्रकृति सौन्दर्य, भक्ति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, चम्पू, कवि और कविता, कविता रसास्वाद, मौर्य्यों का राज्य-परिवर्त्तन, सरोज, हिन्दी कविता का विकास—रचना-काल १९०९-१२ तक। इनमें तीन साहित्यिक निबंध हैं। न तो निबन्धों की शैली आकर्षक है, न भाव उज्ज्वल है; और न ही भाषा प्रवाहपूर्ण वा स्वाभाविक है। 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में प्रसाद के देहावसान के पश्चात् आठ निबन्ध संकलित हुए—काव्य और कला, रहस्यवाद, रस, नाटकों में रस का प्रयोग, नाटकों का आरंभ, रंगमंच, आरंभिक पाठ्यकाव्य, यथार्थवाद और छायावाद—रचनाकाल १९३५-३७। विशाख की भूमिका में भी कई साहित्यिक प्रश्नों पर विचार किया गया है।

ऐतिहासिक निबन्ध—सम्राट् चन्द्र-

गुप्त मौर्य, प्राचीन आर्यावर्त और उसका प्रथम सम्राट् इन्द्र, विशाखदत्त, स्कन्द-गुप्त विक्रमादित्य, मातृगुप्त (कालि-दास ?), जनमेजय का नागयज्ञ, राम-गुप्त और ध्रुवस्वामिनी, जलप्लावन (कामायनी)—इनमें दूसरे शीर्षक को छोड़ कर अन्य सब की सामग्री भूमिकाओं के रूप में है। प्रथम को छोड़ शेष का रचनाकाल १९३० ई० के बाद।

आरंभिक निबन्ध साधारण कोटि के हैं, 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' प्रौढ़ हैं। इनके बीच की कड़ी नहीं है। प्राय: निबन्ध प्रसाद के गम्भीर अध्ययन और निजी प्रयोग का निष्कर्ष हैं। समीक्षात्मक निबन्धों में वे वैज्ञानिक के रूप में सामने आते हैं। वे विषय का ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक विवे-चन करके सिद्धान्त निकालते हैं। किसी सिद्धान्त को पहले से ही निश्चित करके उसका प्रमाण ढूंढ़ने नहीं बैठते। प्रसाद के साहित्य को समझने के लिए इन निबन्धों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इन में अनेक साहित्यिक समस्याओं का समाधान भी किया गया है। इन निबन्धों की शैली में विभिन्नता, भाषा में प्रौढ़ता, विचारों में गम्भीरता और भावों मे पाण्डित्य है। इनसे प्रसाद के गहन चिन्तन, अध्यवसाय, मन्थन, मनन और विवेचन का पता चलता है। निबन्धों में प्रसाद के आचार्यत्व के दर्शन होते है।

प्रसाद का इतिहास-दर्शन—दे० इतिहास।

प्रसाद का जीवन-दर्शन—दे० अनुक्रम-णिका में सूक्तियां और कथन, प्रसाद की विचार-धारा। दे० जीवन इत्यादि भी।

प्रसाद की सूक्तियां—जीवन, मानवता, प्रेम, कर्म, भाग्य, भक्ति, दर्शन, ज्ञान, राजनीति, मानव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, धर्म (वैदिक, शैव, बौद्ध), नारी, पुरुष, कला, सौन्दर्य आदि पर उनके क्या विचार है, इसके लिए दे० अनुक्रमणिका।

प्रसाद के नाटक—१३ नाटकों में ८ ऐति-हासिक, ३ पौराणिक, २ भावनात्मक। सज्जन (१९१० ई०), कल्याणी परि-णय (१९१२), करुणालय ('१२), प्रायश्चित्त (१९१३), राज्यश्री (१९१४), सात वर्ष का अन्तराल देकर, विशाख (१९२१), अजातशत्रु (१९२२), कामना (१९२४), जन-मेजय का नागयज्ञ (१९२६), स्कन्द-गुप्त (१९२८), एक घूंट (१९३०), चन्द्रगुप्त (१९२८, १९३१), ध्रुव-स्वामिनी (१९३३ ई०), इरावती के आधार पर 'अग्निमित्र' (अपूर्ण)।

दृश्यों की संख्या—'विशाख' १६, 'कामना' २२, 'राज्यश्री' २३, 'जन-मेजय का नागयज्ञ' २३, 'अजातशत्रु' २८, 'स्कन्दगुप्त' ४२, 'चन्द्रगुप्त' ४६।

क्रमिक विकास—'सज्जन' में—एक अंक, नान्दी, प्रस्तावना, विदूषक, स्वगत, भरतवाक्य, गद्य की भाषा खड़ी बोली हिन्दी, पद्य की ब्रजभाषा, सुखमय अंत, पद्यमय संवाद। 'प्रायश्चित्त' में—एक अंक, पाश्चात्य विधान, दु:खमय अन्त, न नान्दी न प्रस्तावना, न पद्यमय

वार्त्तालाप, न संगीत, न भरतवाक्य, दिल्ली दरबार की भाषा उर्दू, वातावरण की सृष्टि, थोड़ी बहुत विचार-धारा अवश्य है। दोनों में भाषा अशुद्ध है, कवित्व कुछ नहीं। अतीत प्रेम दोनों में है। '*कल्याणी-परिणय*' में—एक अंक, प्रस्तावना नहीं, नान्दी है, अंत में मंगल-गान, अनेक स्वगत, कुछ-कुछ चरित्र-चित्रण—चाणक्य, सिल्यूकस, कार्नेलिया और चन्द्रगुप्त का गीत सुन्दर है; तीन गीत बाद में 'चन्द्रगुप्त' नाटक में ले लिए गए हैं। '*करुणालय*'—गीति-नाट्य; न नान्दी, न प्रस्तावना, न भरत-वाक्य; रोहित, विश्वामित्र, अजीगर्त, हरिश्चन्द्र के चरित्र विशद हैं; दार्शनिक मत भी आए हैं। '*राज्यश्री*'—ऐतिहासिक नाटक, प्रस्तावना नहीं, नान्दी है, अन्त में भरत-वाक्य, पद्यमय संवाद (बाद में इन्हें गद्य में परिवर्तित कर दिया गया), अंकों का विभाजन सुन्दर है, बाद में तीन की जगह ४ अंक कर दिए गए और संगठन बिगड़ गया। हर्ष का चरित्र बढ़ जाने से मुख्य पात्र (राज्यश्री) पर ध्यान केन्द्रित नहीं रह सका। सुरमा मालिन का चरित्र जोड़ कर नाटकीयता लाई गई है। अधिकतर पात्रों को व्यक्तित्व नहीं मिल पाया। हास्य का रूप विशद है। '*विशाख*'—पौराणिक होते हुए भी प्रमुखतः प्रेम-कथा, कथावस्तु सरल, सम्भाषण छोटे। भाषा अजातशत्रु से सरल, पद्य का थोड़ा प्रयोग, छोटी-छोटी कविताएँ (१५), पर दो-तीन ही गीत अच्छे हैं; नृत्य की योजना; स्वगत, आप ही आप और अलग तीनों का प्रयोग; हास्य शिष्ट है; नान्दी और प्रस्तावना नहीं है, पर भरतवाक्य है। थियेटरी प्रभाव से प्रसाद अभी तक मुक्त नहीं हो पाए। 'समुद्रगुप्त'—ऐतिहासिक नाटक, पहला दृश्य महत्त्व-पूर्ण, वस्तु संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करती है; पांच अंक हैं। भाषा और कला की दृष्टि से प्रसाद जी का यह सर्वश्रेष्ठ नाटक है। 'चन्द्र-गुप्त'—ऐतिहासिक नाटक, सब से लम्बा नाटक, ४ अंक जिनमें अंतिम अत्यन्त लम्बा है। 'ध्रुवस्वामिनी'—ऐतिहासिक होते हुए भी समस्या-मूलक, सभी नाटकों से निराला। स्वगत भाषण नहीं हैं। पात्र-सूची नहीं दी है। पहले अंक का निर्देश १४ पंक्तियों का है। बीच-बीच में—चौंककर, प्रसन्नता से, चारों ओर देखकर, क्रोध से कड़क कर, दांतों से जीभ दबाकर आदि संकेत हैं। 'अजातशत्रु'—३ अंकों का ऐति-हासिक नाटक, कथावस्तु जटिल, इतिहास अधिक, विरोधी चरित्र अधिक, सब पात्रों का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व, सम्भाषण एक-दो स्थलों पर लम्बे-लम्बे; भाषा काव्यपूर्ण, संस्कृतनिष्ठ, कहीं-कहीं दुर्बोध और दुरूह; दार्शनिक गम्भीर वातावरण, गीत लम्बे भी, थियेट्रिकल पद्य केवल तीन-चार, गीतों में गम्भीरता, सौन्दर्य और छायावाद;

गद्यगीत, दार्शनिकता अधिक, हास्य निर्बल, स्वगत का प्रयोग, पर कम; समय, स्थान और व्यापार की अन्विति नहीं, प्रभाव की अन्विति है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में—गीत कुछ हल्के हैं, गद्य-गीत; अन्वितियों का ध्यान रखा गया है। 'कामना'—रूपक; भाषा एवं भाव अधिक कवित्वमय हैं, गीत कोमल है।

भाव-धारा की दृष्टि से पहले करुणा-वाद, दुःखवाद—'अजातशत्रु' तक। फिर करुणावाद और आर्य आनन्दवाद का समन्वय, जैसे 'जनमेजय का नाग-यज्ञ' में। अन्त में 'एक घूंट' में आनन्द-वाद और सामंजस्य।

ऐतिहासिक आधार—'कामना' और 'एक घूट' को छोड़ कर प्रसाद ने सभी नाटक इतिहास के आधार पर लिखे हैं। इतिहास के आदर्श लेकर ही उन्होंने वर्तमान स्थिति को बनाने का प्रयत्न किया—(दे० विशाख, प्रथम संस्करण की भूमिका)। इन नाटकों में महाभारत-काल से लेकर हर्ष के राज्यकाल तक की प्रमुख घटनाओं को लिया गया है। इतिहास के अनेक विकीर्ण प्रसंगों को एक सूत्र में बाधने में प्रसाद ने अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने नाटक की कथावस्तु तथा पात्रों का योग-निर्वाह करते हुए कई बातें अपनी कल्पना-बुद्धि से ला दी हैं। ऐसा प्रायः वही किया गया है जहां इतिहास मूक है। इतिहासानुमोदित तथ्यों को प्रायः अन्यथा नहीं किया। प्रायः नाटक राजनीतिक हैं। पुरुष-पात्र तो मिल जाते हैं पर अधिकतर स्त्री-पात्र काल्पनिक हैं। इसीलिए प्रसाद की प्रतिभा इनके चरित्र-चित्रण में उभरी है। काल्प-निक पात्रों के नाम स्पष्टतः कल्पित लगते हैं—जैसे विकटघोष, महापिंगल। अनेक नई परिस्थितियों की रचना भी की गई है। इनका उद्देश्य है—वैदिक काल, मौर्य्य-काल, गुप्तकाल, पुराणकाल, राजपूत-काल का दिग्दर्शन। 'राज्यश्री' में इतिहास अधिक है। 'अजातशत्रु' में समन्वय है इतिहास और कल्पना का। पर 'अजात-शत्रु' और 'चन्द्रगुप्त' में वे प्रत्येक ज्ञात सत्य को लिख देने को उत्सुक रहे हैं। उनकी नाटकीय कला इतिहास-भार से आक्रान्त है। 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' में इतिहास के सूत्र अधिक नही हैं। इसी से ये कदाचित् प्रसाद के सब से सुन्दर नाटक हैं। बहुत कम साहित्यकार हैं जो ऐतिहासिक तत्त्वों की रक्षा करते हुए साहित्यिक सौन्दर्य की सृष्टि कर सके हैं। घटनाए और चरित्र अधिक हैं। इससे साहित्यिकता की क्षति हो गई है। दे० इतिहास भी। प्रसाद ने देश-काल की स्थिति को विशद रूप में रखा है और समय-समय की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अवस्थाओं का इतिहास-सम्मत चित्रण किया है।

विशेषताएँ—सामान्यतया प्रसाद के नाटकों की विशेषताएँ ये हैं—१. इतिहास की रक्षा; २. सांस्कृतिक चेतना; ३.

राष्ट्रीयता (यदि हम नाटकों में से ऐतिहासिक तत्त्व हटा दें तो उन में सामयिक राष्ट्रीय आन्दोलन का चित्र रह जाता है)। "सब से पहले हम जागे थे, संसार को हमने ही जगाया था, लोक-लोक में आलोक फैलाया, संसृति का अन्धकार नष्ट किया और मंगल और शांति की शंख-ध्वनि की। .. दया, ज्ञान और धर्मदान की हमारी बड़ी लम्बी परम्परा रही है।" (मातृगुप्त) भारत की सांस्कृतिक श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए प्रसाद ने कोई कोरकसर नहीं छोडी। देशप्रेम की भावना संकुचित है—अपने देश की श्रेष्ठता, भले ही दूसरे देश का अपमान हो ; 'चन्द्रगुप्त' में यूनानियों की यही अवस्था चित्रित की गई है। कथानक ऐसे चुने हैं कि युग की समस्याओं पर प्रकाश पड़े। ४. ये नाटक अभिनेय नहीं हैं क्योंकि इनका आकार लम्बा है, गाने लम्बे और अधिक हैं, स्वगतों का निर्वाह रंगमंच पर सम्भव नहीं है। काव्य-तत्त्व अधिक है और दृश्यों का विभाजन दोषपूर्ण है। ये गोष्ठी-नाटक हैं। इनका जन-संस्करण तो हो सकता है, पर तब ये प्रसाद के नाटक न रहेंगे। ५. इनमें पारसी थियेटरों का पद्यमय संवाद, बंगला नाटकों के से लम्बे कथोपकथन, भारतेन्दु-परम्परा की दृश्य विभाजन-पद्धति, अँग्रेजी नाटकों का-सा संघर्ष और मृत्यु आदि के दृश्यों का अविचार, प्राचीन भारतीय परम्परा का वस्तु-विन्यास और रस-निर्वाह मिलता है। इन्हीं के प्रभाव को ग्रहण करते हुए प्रसाद ने नवीन मार्ग प्रशस्त किया। आरंभ के नाटकों में संस्कृत-शिल्प-विधि प्रधान है। धीरे-धीरे पुरानी रूढ़ियों को छोड़ दिया गया। शिल्प-विधि में प्रयोग अधिक करने के कारण, नाटककार अंकों और दृश्यों का सिद्धान्त एक नहीं कर पाये। 'चन्द्रगुप्त' में 'दृश्य' शब्द नहीं, केवल संख्या दी गई है। 'ध्रुवस्वामिनी' में एक अंक के अन्तर्गत एक ही दृश्य है। 'स्कन्दगुप्त' में दृश्य तो हैं पर न उनका शीर्षक है न संख्या। कुछ दृश्य अनावश्यक हैं, जैसे 'चन्द्रगुप्त' में १ (३, ७), २ (५, ७, १०); 'स्कन्दगुप्त' में १ (मातृगुप्त, कुमारदास), ४ (धातुसेन, प्रख्यातकीर्ति)। दृश्यों की संख्या—'राज्यश्री' में ७—७—५—४; 'विशाख' में ५—५—५; 'जनमेजय' में ७—८—८; 'अजातशत्रु' में ९—१०—९; 'स्कन्दगुप्त' में ७—६—६—७—६ 'चन्द्रगुप्त' में ११—११—९—१६ (नवीन संस्करण में १४)। कुछ दृश्य लघु हैं, कुछ लम्बे। ६. कलात्मक प्रयोग कई हैं। ७. दृश्यों का आरम्भ और अन्त विशेषतया कलात्मक है। ८. प्रेम का उज्ज्वल संयत रूप। ९. पात्रों की विविधता, सजीवता और ओजस्विता। प्रसाद ने अधिमानव, मानव और अधःमानव तीनों प्रकार के चरित्र लिये हैं। वास्तव प्रेरणा और सृष्टि अधिमानवों द्वारा

होती है, जैसे, 'करुणालय' में वरुण, विशाख में प्रेमानन्द, 'अजातशत्रु' में गौतम, 'चन्द्रगुप्त' में दाण्ड्यायन, 'ध्रुवस्वामिनी' में मिहिरदेव और 'राज्यश्री' में प्रभाकरमित्र। 'अजातशत्रु' को छोड़ प्रसाद के नायक वीर, गम्भीर, दृढ़व्रत, त्यागी और सहिष्णु है। उनके प्रतिनायकों में भी चारित्रिक विशेषताएँ है। पुरुष पात्रो में तत्त्ववेत्ता, आचार्य, वीर सैनिक, राजपुत्र, कूटनीतिज्ञ विशेषत: आकर्षक हैं। धार्मिक नेताओं और भिक्षुओं के चरित्र ऐतिहासिक होने के साथ सुन्दर भी है। महापुरुष दो प्रकार के हैं—दार्शनिक, चिन्तक तथा परोपकारी महात्मा। प्रपंच बुद्धि, काश्यप, देवदत्त जैसे असद्वृत्ति साधु भी है। स्त्री-चरित्र अत्यन्त सुन्दर और ओजस्वी हैं। स्त्रियों में एक ओर महिमामयी, त्यागशील, उदार, साध्वी देवियां है, जैसे—कमला, देवसेना, मालविका, मल्लिका, कोमा, मणिमाला आदि; तो दूसरी ओर उग्र, चंडी, विलासिनी और वासनामयी नारियां भी हैं, जैसे—छलना, सरमा, श्यामा, अनन्तदेवी, सुवासिनी, कल्याणी, सुरमा, दामिनी आदि। प्रेमिकाओं का चरित्र विशेषत: आकर्षक बन पाया है। नायिकाओं के चरित्रों में प्राय: एक-से गुण भरे गए हैं। नारी की प्रतिष्ठा की रक्षा की गई है। उनमें प्राय: हृदय की प्रधानता, भाव-प्रवणता, त्याग, सेवा, अनुकम्पा, आत्मसम्मान आदि गुण हैं। चरित्रचित्रण में मनोवैज्ञानिक उलझनें नहीं हैं। १०. प्राय: नाटककार यथार्थ को लेकर आदर्श की ओर उन्मुख हुए हैं। ११. प्रसाद के प्राय: नाटकों में करुण रस व्याप्त है। उनका अन्त शान्ति और वैराग्य के साथ होता है। १२. प्रसादजी को वर्तमान की भी चिन्ता बराबर रही है। प्राचीनता के आलोक में वे वर्तमान की समस्याओं का समाधान पाने की चेष्टा करते रहे। इतिहास के उन-उन युगों को लिया गया है जिनमें हलचल रही ताकि अपने समय की हलचल को भी प्रतिबिम्बित किया जा सके। प्रांतीयता और साम्प्रदायिकता के दुष्परिणामों पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। 'आक्रमणकारी ब्राह्मण और बौद्ध का भेद न रखेंगे।' (अलका—'चन्द्रगुप्त')। 'मालव और मागध को भूल कर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे तभी वह आत्मसम्मान मिलेगा।' 'मेरा देश मालव ही नहीं तक्षशिला भी है, समस्त आर्यावर्त है'। १३. प्रसाद मूलत: कवि है। उनका दृष्टिकोण काव्यात्मक, स्वच्छन्दतावादी, रोमांटिक है। विरुद्धक, उदयन, बिम्बसार, मातृगुप्त के प्रसंग काव्यात्मक हैं। कथानक, विषय, चरित्र, रस सब में नाटककार का कवि सामने रहता है। प्रसाद प्रेम, विलास, यौवन और आनन्द के गायक है। कई गीतों में साहित्यिकता और रहस्यात्मकता अधिक हो गई है। कुछ गीत नाटकीय कथा से अलग-अलग लगते है; परन्तु अधिकांश परिस्थिति, भावना और पात्र की मन:

स्थिति के अनुकूल हैं, रस के उद्रेक में सहायक हैं। 'स्कन्दगुप्त' के गीत सब से सुन्दर हैं। 'तुम कनककिरण के अन्तराल में' चन्द्रगुप्त का सब से सुन्दर गीत है। कहीं-कहीं गीत लम्बे हैं जिनसे कथा-प्रवाह में शिथिलता आ गई है। १३. दार्शनिक गम्भीरता के कारण प्रसाद के नाटकों में हास्य का अभाव-सा है। १४. रसों में प्रधानता वीर रस को दी गई है, जैसे—चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी में। सहयोगी रसों में प्राय: शृंगार है, जैसे अजातशत्रु-वाजिरा, चन्द्रलेखा-विशाख, मणिमाला-जनमेजय, विजया-स्कन्दगुप्त, कार्नेलिया-चन्द्रगुप्त, अलका-सिंहरण आदि के प्रेम-वर्णन में। १५. कथोपकथन प्राय: स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है। परन्तु जहां साधारण पात्र भी पंडितों की भाषा में बोलते हैं वहां अस्वाभाविकता आ गई है। कहीं-कही विस्तार अधिक हो गया है, जैसे विवादों में—पुरोहित और ध्रुवस्वामिनी का विवाह पर, दीर्घकारायण और शक्तिमती का स्त्री-धर्म पर, 'चन्द्रगुप्त' में युद्ध-परिषद्, 'जनमेजय' में प्रथम दृश्य, 'राज्यश्री' का अंतिम अंक। कहीं-कहीं भावुकता के कारण कथन कवित्वपूर्ण हो गए हैं। भाषा है तो सर्वत्र खड़ी बोली, परन्तु भावानुकूल उसका स्तर बदलता रहता है। उसमें हृदय के सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद आदि अनेक भावों को व्यक्त करने की क्षमता है—प्रसेनजित का वात्सल्य, देवसेना की सघन पीड़ा, अलका का देशाभिमान, चाणक्य का रोष, छलना का व्यंग्य, बिम्बसार का दर्शन, पर्वतेश्वर का ओज, विरुद्धक और देवसेना की प्रेमाभिव्यक्ति भावानुकूल शब्दों में हुई है। प्रसाद की सूक्तियां हमारे साहित्य के अनमोल मोती हैं। निम्नलिखित नाटकों में स्वगत हैं—चन्द्रगुप्त (६), स्कन्दगुप्त (७), अजातशत्रु (८), ध्रुवस्वामिनी (३), विशाख (२)। १६. प्राय: नाटकों का वातावरण तो दु:खमय होता है, पर आदर्शवादिता के कारण नाटककार को उनका अन्त सुखमय कर देना पड़ता है। १७. बहुत-से नाटकों की सामग्री वस्तुत: उपन्यास के उपयुक्त है ; क्योंकि प्रत्येक नाटक का काल-विस्तार इतना है कि अन्विति की रक्षा नहीं हो पाई। पात्रों की संख्या भी प्राय: अधिक है। १८. प्रसाद देश, काल और घटना की एकता की परवाह न करके प्रभाव की एकता लाने में पूर्ण समर्थ हैं।

प्रसाद की शैली—विशेषताएँ—कल्पना का विलास; लाक्षणिक प्रयोग—शब्दों के नवीन सार्थक प्रयोग—वाग्भंगिमा, नये रूपक, नये उपमान, नई प्रतीक-योजना ; स्वानुभूतिपूर्ण अभिव्यक्ति ; भावों की सूक्ष्म अभिव्यंजना ; नाटकीयता, काव्यात्मकता ; अनेक छन्दों का प्रयोग ; छन्दों में गजल, चतुर्दशपदी, गीति, त्रिपदी (बंगला), पयार (बंगला), अरिल्ल, ताटंक, अतुकान्त, भिन्न तुकांत, चौपाई के रूप; गीतात्मकता ; नाटकों,

कहानियों और कविताओं मे विविध-रूपता—विषय, पृष्ठभूमि, शिल्प, उद्देश्य सब की अनेकरूपता ; भाषा का स्तर पात्र के अनुसार न रख कर उसके चरित्र, भाव अथवा विषय के अनुरूप ; भाषा में प्रायः व्याकरण-गत दोष—लंज वाक्य, क्रियापदों और पर-सर्गों का लोप, अपूर्ण कथन, अशुद्ध लिंग प्रयोग, कारक-लोप, हम-मैं का अभेद इत्यादि ; आरंभिक कृतियों को छोड, भाषा का संस्कृतनिष्ठ शुद्ध साहित्यिक रूप ; रूपक अलंकार का काव्यात्मक प्रयोग ; कहीं-कही भाषा बोझिल, दुरूह और अस्पष्ट। दे० यथास्थान नमूने।

प्रसाद की भाषा-शैली की सब से बड़ी विशेषता है शब्दचयन, वाक्य-योजना के साथ माधुर्य और प्रवाह, व्यंजकता आदि का क्रमिक विकास जो 'छाया' की कहानियों से लेकर 'इन्द्रजाल' की कहानियों तक, 'कानन-कुसुम' की कविताओं से लेकर प्रसाद के प्रौढ़ गीति-काव्य तक, 'राज्यश्री' प्रथम संस्करण से लेकर 'ध्रुवस्वामिनी' तक स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। प्रसाद ने प्राचीन शब्दों का जीर्णोद्धार करने, और नये शब्दो की गढ़न में क्या योग दिया है इस पर कार्य करने की आवश्यकता है।

प्रसेनजित—कोशल का राजा, विरुद्धक का पिता, अदूरदर्शी, क्रोधी एवं दम्भी और असहनशील। उसकी बहिन वासवी मगध-सम्राट् की बड़ी रानी है। उसकी सहायता में वह दो बार काशी के युद्ध में भाग लेता है। वह ईर्ष्यालु और शंकित प्रकृति का राजा है। 'सेनापति बंधुल की जय' से चौंक जाता है, और ऐसे वीर सैनिक का वध कराके अपनी शक्ति को निर्बल कर लेता है। बाद में पश्चात्ताप करता है और मल्लिका देवी से क्षमा मांगता है। उसे कुलीनता का भी अभिमान है। अपने पुत्र विरुद्धक की 'अशिष्टता' से इतना चिढ़ जाता है कि उसे युवराज-पद से वंचित कर देता है और उसकी माता (महामाया) का राजमहिषी का-सा सम्मान न करने की आज्ञा देता है। वह बन्धुल के प्रति किए गए पाप को स्वीकार करता है। मल्लिका देवी और बुद्ध के कहने पर पुनः उन्हें स्वीकार कर लेता है। उसमें पिता का मृदुल हृदय है। —**अजातशत्रु**

मज्झिमनिकाय में लिखा है कि काशी और कोशल का राजा प्रसेनजित बिम्बसार और बुद्ध का घनिष्ठ मित्र था। प्रसेनजित के एक दूसरे नाम 'अग्नि-दत्त' का भी पता लगता है। कलिंगदत्त से भी इसका सम्बन्ध था। 'अवदान-कल्पलता' में प्रसेन और विरुद्धक सम्बन्धिनी घटना का वर्णन है।

—**अजातशत्रु, कथाप्रसंग**

प्रह्लाद— (—**मकरन्द-बिन्दु**)

[विष्णु का अनन्य भक्त , हिरण्य-कशिपु का पुत्र। पिता को विष्णु से द्वेष था, उसने प्रह्लाद को मार डालने के अनेक उपाय किए। उसकी बुआ उसे गोद में लेकर आग में बैठ गई;

वह जल गई, प्रह्लाद बच गया। अन्त में विष्णु ने नृसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपु को मार डाला।]

प्राक्कथन[१]—'जनमेजय का नाग-यज्ञ' की भूमिका (पृष्ठसंख्या ४)। अश्वमेध यज्ञ और नाटक की आधारभूत घटनाओं का उल्लेख करके महाभारत और हरिवंश का प्रमाण उपस्थित किया गया है। नाटक में अश्वमेध यज्ञ, ऐन्द्रमहाभिषेक, नागों के साथ काश्यप ब्राह्मण का षड्यंत्र, उत्तंक द्वारा जनमेजय की उत्तेजना, यादवों की कुकुर जाति का नाग-सम्बन्ध, इत्यादि अनेक बातों का जो वर्णन है उनका प्रमाण महाभारत, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, हरिवंश, अर्थशास्त्र आदि से दिया गया है। **—जनमेजय का नाग-यज्ञ**

प्राक्कथन[२]—'राज्यश्री' नाटक की भूमिका जिसमें स्थाणीश्वर, मालव और गौड़ का तत्कालीन परिचय देकर हर्षवर्धन और राज्यश्री के ऐतिहासिक आधार पर प्रकाश डाला गया।

प्राचीन संस्कृति—प्राचीन आर्य वीर संस्कृति को लौटाने के लिए प्राचीन कर्मों को फिर से आरंभ करना होगा, जिन्हें विवेक के अतिवाद के कारण मानवता के लिए हमने हानिकर समझ लिया था। (ब्रह्मचारी) **—इरावती, पृ० २१**

प्राचीन आर्यावर्त और उसका प्रथम सम्राट्—ऐतिहासिक निबन्ध जो पहले नागरी प्रचारिणी पत्रिका सन् १९३० में प्रकाशित हुआ फिर बाद में कोशोत्सव स्मारक संग्रह में सम्मिलित किया गया। इसमें प्रमाण देकर आर्यों के आदि देश, मेरु तथा सप्तसिन्धु की स्थापना करके महावीर इन्द्र की असुर-उपासकों पर विजयों का वर्णन किया गया है। पृष्ठसंख्या ४०।

प्राभातिक कुसुम—इन्दु, कला २, किरण ४, कार्त्तिक '६७ में प्रकाशित, बाद में 'चित्राधार' में संगृहीत—दे० प्रभात-कुसुम।

प्रायश्चित्त—छः दृश्यों का रूपक। इन्दु, कला ५, खंड १, किरण १, जनवरी '१४ मे प्रकाशित, 'चित्राधार' द्वितीय संस्करण में संकलित। कगार नदी के कनारे दो विद्याधरियां चौहान-कुल-भूषण पृथ्वीराज के सर्वस्वान्त और चाण्डाल जयचन्द के सम्बन्ध में बातचीत कर रही थी कि प्यास से तड़पता हुआ जयचन्द दिखाई दिया। प्रतीकार एवं द्वेष-बुद्धि से प्रेरित जयचन्द पाशविक प्रसन्नता से नाचने लगता है। वह पृथ्वीराज की जलती चिता पर उसकी राख को पैरों तले कुचलना चाहता है। कई बार आकाशवाणी होती है। कोई कहता है—पृथ्वीराज की खोपड़ी एक पिशाच के हाथ में दे और संयोगिता की तू ले। दोनों को लड़ाकर देख कि कौन फूटती है। शून्य अन्तरिक्ष में जयचन्द को अपनी पुत्री संयोगिता की झांकती हुई मूर्त्ति दिखाई देती है। उसे पश्चात्ताप होता है और अर्धविक्षिप्त अवस्था में वह रणभूमि से

लौटता है। उसी समय मुहम्मद गोरी उस पर चढ़ाई करता है। जयचन्द इस विश्वासघाती की करनी से बड़ा दु:खी होता है। सोचा था कि पृथ्वीराज के विरुद्ध सहायता करने पर पुरस्कार मिलेगा; किन्तु अब तो प्राण संकट में हैं। जयचन्द अपने पुत्र और मंत्री पर सब कुछ छोड़ गंगा में कूद कर प्राण दे देता है।

सम्भवत: 'प्रायश्चित्त' हिन्दी का पहला मौलिक दु:खान्त नाटक है। इसका नाट्य-विधान संस्कृत-परम्परा से अलग है—इसमें न नान्दी है, न प्रस्तावना, न पद्यमय वार्तालाप, न संगीत। छोटे से एकांकी में चरित्र-विकास दिखाने का अवकाश नहीं है, घटना-क्रम ही प्रमुख है। आरंभिक दृश्य अनावश्यक लगता है। मुसलमान पात्रों द्वारा उर्दू-फारसी शब्दों का प्रयोग कराया गया है। 'प्रायश्चित्त' में थोड़ा-बहुत जीवन-दर्शन मिल जाता है।

प्रार्थना—(मल्लिका) हे प्रभु ! मुझे बल दो—इत्यादि। **—अजातशत्रु, पृ० ८२**

दे० दाता सुमति दीजिये—

—अजातशत्रु, पृ० ८९

नियमित रूप से परमात्मा की कृपा का लाभ उठाने के लिए प्रार्थना करनी आवश्यक है। मानव स्वभाव दुर्बलताओं का संकलन है, सत्कर्म-विशेष हो पाते नहीं। क्योंकि नित्य क्रियाओं द्वारा उनका अभ्यास नहीं, दूसरी ओर ज्ञान की कमी से ईश्वर निष्ठा भी नहीं।.. प्रार्थना का नियमित रूप से करना, ईश्वर में विश्वास करना...यह स्वावलम्बपूर्ण है; यह दृढ़ विश्वास दिलाता है कि हम सत्कर्म करेंगे तो परमात्मा की कृपा अवश्य होगी। (ब्रह्मचारी)

—कंकाल, पृ० ४४-४५

पढ़िये **—कंकाल, पृ० ३१६**

—करुणालय, पृ० १९–२०

जय जय विश्व के आधार

—करुणालय, पृ० २५-२६

—(गुदड़ी में लाल)

आज अपने अरुण-यौवन, अपनी मत्त सुषमा, और सहज रूप को देख लो ; "देखकर जिसे एक ही बार, हो गए हम भी हैं अनुरक्त।" हमारे अन्तर की यह पुकार है कि जन्म-जन्मान्तर में तुम्हारा यह सौन्दर्य देखकर जीवन-मुक्त हों। **—झरना**

पढ़िये **—विशाख, पृ० ५९**

—विशाख, पृ० ६६

—विशाख, पृ० ८८

—विशाख, पृ० ९२-९३

उतारोगे अब कब भू-भार

—स्कन्दगुप्त, पृ० ३९

हमारे निर्बलों के बल कहाँ हो

—स्कन्दगुप्त, पृ० ४०

—स्कन्दगुप्त पृ० १३८

हमारे सुप्त जीवन को जगा दो
हमें सब भीति–बन्धन से छुड़ा दो

—स्कन्दगुप्त, पृ० १३९

प्रियतम—इन्दु, कला ५, खंड २, किरण ३, सितम्बर '१४ में प्रकाशित। ३०

मात्राओं के वीर-छन्द में चतुर्दशी। 'क्यों जीवन-धन! ऐसा ही है न्याय तुम्हारा क्या सर्वत्र'। हमने तो तुम्हें अपना सब कुछ सौंप दिया, तुम हमारा एकमात्र सहारा हो, पर तुम से प्रेम नहीं मिला, करुणा मिली, वह भी क्षण भर। हम तुम्हारी 'स्मृति लिए हुए अन्तर में, जीवन में कर देंगे निःशेष', 'कुछ भी मत दो, अपना ही जो मुझे बना लो, यही करो', 'पुतली बनकर रहें चमकते', प्रियतम! हम दृग में तेरे।

—झरना

प्रियदर्शन—

—चित्राधार, बभ्रुवाहन, पृ० २४

प्रियम्वदा— —(वनमिलन)

['अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटक में शकुन्तला की प्रिय सखी।]

प्रेम—प्रसाद ने प्रेम के सभी अंगों, क्षेत्रों और अवस्थाओं का वर्णन किया है—सफल प्रेम, असफल प्रेम, रोमांटिक प्रेम, गार्हस्थ प्रेम, सात्विक प्रेम, वासना-पूर्ण प्रेम, बाल्यकाल से बढ़ता हुआ प्रेम, आकस्मिक भेंट से उत्पन्न प्रेम, इत्यादि; दाम्पत्य प्रेम, पिता-पुत्र का प्रेम, भाई-बहिन का प्रेम, देश-प्रेम, भगवत्प्रेम, प्रकृति-प्रेम, आदि; प्रेम में त्याग, पूर्वस्मृति, उन्माद, संयोग, वियोग, आशा, निराशा, उपालम्भ इत्यादि।

असफल प्रेम—कल्याणी-चन्द्रगुप्त; कामना-विलास; कोमा-शकराज; घंटी-विजय; चम्पा-बुद्धगुप्त; तारा (यमुना); दामिनी; देवसेना-स्कन्दगुप्त; पद्मा-रामास्वामी; पद्मादेवी-नन्हकू; मंगला-मुरली; मदन-मृणालिनी; मालिनी-मातृगुप्त; मीना-गुल; मोनी-नन्दू, रोहिणी-जीवनसिंह; लैला-रामेश्वर; विजया; विरुद्धक; शीरीं-बिसाती; श्यामा-शैलेन्द्र; सरला-शैलनाथ; सुजाता-आर्यमित्र; सुवासिनी-चाणक्य।

वासनामूलक प्रेम—कामिनी-राजकुमार, गुल-बहार; घनश्याम का नीला के प्रति; घंटी का विजय के प्रति; तिष्य-रक्षिता का कुणाल के प्रति; नन्द का सुवासिनी के प्रति; नरदेव का चन्द्र-लेखा के प्रति; पर्वतेश्वर का अलका और कल्याणी के प्रति; बाथम का घंटी के प्रति; मनु का इड़ा के प्रति; यमुना का मंगल के प्रति; रमला-साजन; राज-कुमारी-सुखदेव चौबे; रामनिहाल; रामू का चन्दा के प्रति; लालसा का विनोद और विलास के प्रति; विकटघोष का राज्यश्री के प्रति; विजया का स्कन्द, चक्रपालित और भटार्क के प्रति; विरुद्धक का मल्लिका के प्रति; शाह आलम का गुलाम के प्रति; सलीम का प्रेमा के प्रति; सुरमा का देवगुप्त, शान्तिदेव (विकटघोष) के प्रति। दे० 'प्रलय की छाया'।

सफल प्रेम—इरावती-बलराज; कार्ने-लिया—चन्द्रगुप्त; कामना—सन्तोष; किन्नरी—पथिक (बलिदान करके); कुसुम कुमारी—बलवन्त सिंह (बलि-दान में); गाला—मंगल; चन्दा—हीरा (बलिदान में); चन्द्रलेखा—

विशाख ; चित्रांगदा—अर्जुन ; तानसेन—सौसन ; तितली—मधुबन ; धीवरकुमारी—सुदर्शन ; ध्रुवस्वामिनी—चन्द्रगुप्त ; नलिनी—नन्दलाल (बलिदान से) ; नेरा—रामू ; फीरोजा—अहमद ; बेला—गोली ; मणिमाला—जनमेजय ; मधूलिका—अरुण ; लीला—विनोद ; वाजिरा—अजातशत्रु ; विलासिनी—विजयकृष्ण। दे० 'प्रणयचिह्न'।

एकांगी प्रेम—अनवरी, अशोक, कामिनी देवी, मालविका (चन्द्रगुप्त के प्रति), रोहिणी, विरुद्धक, श्यामा (शैलेन्द्र के प्रति), श्रीनाथ, सरला (रूप की छाया),सलीम।

प्रथम दर्शन में—कुछ प्रेमियों में प्रेम का प्रादुर्भाव प्रथम दर्शन से होता है—अलका—सिंहरण ; उर्वशी–पुरुरवा ; कार्नेलिया—चन्द्रगुप्त ; कामना—विलास ; चन्द्रलेखा—विशाख ; चित्रांगदा—अर्जुन ; मणिमाला—जनमेजय (शत्रु-कन्या) , मनु—श्रद्धा ; वाजिरा-अजातशत्रु (शत्रु-कन्या) ; विजया—स्कन्दगुप्त।

बाल-प्रेम—बहुत से प्रेमियों का प्रेम बाल-काल से बढ़ता चला आता है। इरावती—अग्निमित्र ; कल्याणी—चन्द्रगुप्त ; कामना—संतोष ; किशोरी—निरंजन ; तितली—मधुवन ; देवसेना—स्कन्दगुप्त ; सुवासिनी—चाणक्य (परिचय तक) ; दे० इन्द्रजाल, देवरथ, प्रेमपथिक, बिसाती, मदन-मृणालिनी, स्वर्ग के खँडहर में।

प्रेम का लक्षण—प्रसादजी का मन्तव्य है कि प्रेम में त्याग—आत्मोत्सर्ग—की महत्ता है। ऐसे प्रेम की अवहेलना नहीं हो सकती। —प्रेम चुपके से जीवन में प्रवेश करता है।—प्रेम में स्वच्छता, स्वच्छन्दता और गाम्भीर्य होना चाहिए तभी प्रेम विकासोन्मुख होता है।—गार्हस्थ्य प्रेम आदर्श है।—विरह प्रेम का आवश्यक तत्त्व है।—प्रेम जीवन की तरह अनन्त है। —नारी नित्य यौवन-छवि से दीप्त, स्वस्थ सौन्दर्य से ओत-प्रोत, विश्व की करुण कामना-मूर्त्ति है।

प्रेम इस पृथ्वी का नहीं रह जाता। "मैं एक अतीन्द्रिय जगत् की नक्षत्र-मालिनी निशा को प्रकाशित करने वाले शरच्चन्द्र की कल्पना करता हुआ भावना की सीमा को लांघ जाऊँ।" (उदयन)
—अजातशत्रु

"जीवन के प्रभात का वह मनोहर स्वप्न विश्व भर की मदिरा बन कर मेरे उन्माद की सहकारिणी कोमल कल्पनाओं का भंडार हो गया।" "वह कैसा इन्द्रजाल था—प्रभात का वह मनोहर स्वप्न था।" (विरुद्धक) —अजातशत्रु

अली ने क्यों भला अवहेला की।
—अजातशत्रु, पृ० ४२

निर्मोही से —अजातशत्रु, पृ० ४३

आयो हिये में —अजातशत्रु, पृ० ४५

तुम्हारी छवि —अजातशत्रु, पृ० ४५

हमारा प्रेमनिधि सुन्दर सरल है।
अमृतमय है, नहीं इसमें गरल है॥
(पद्मावती) —अजातशत्रु, १-९

प्रेम का उफान, दे० बहुत छिपाया, उफन पड़ा अब —**अजातशत्रु, पृ० ७३**

प्रेम-प्रतीक्षा, दे० निर्जन गोधूली प्रान्तर में। —**अजातशत्रु, पृ० ९६**

प्रेम-विस्मृति, दे० अमृत हो गया विष भी। —**अजातशत्रु, पृ० ९८**

सौन्दर्य का आकर्षण, दे० हमारा जीवन का उल्लास। —**अजातशत्रु, पृ० ११४**

अतीत का प्रणय जगा, दे० अलका की किस विकल विरहिणी।

—**अजातशत्रु, पृ० ११८**

कैसे थे वे दिन मिलन के —**आंसू**

मादक थी मोहमयी थी मन बहलाने की क्रीड़ा। —**आंसू, पृ० १२**

नियमबद्ध प्रेम-व्यापार का बड़ा ही स्वार्थपूर्ण विकृत रूप होगा। जीवन का लक्ष्य भ्रष्ट हो जायगा। (आनन्द)

—**एक घूंट, पृ० १५**

प्यार करने के लिए हृदय का साम्य चाहिए, अन्तर् की समता चाहिए। (वनमाला)। —**एक घूंट, पृ० २६**

जो दुःखी है, उसे प्रेम की आवश्यकता है। मैं दुःख का अस्तित्व नही मानता, क्योंकि मेरे पास प्रेम अमूल्य चिन्तामणि है। (आनन्द) —**एक घूंट, पृ० ३८**

उच्छृंखल प्रेम को बांधना ही आदर्श है। —**एक घूंट का संकेत**

(निर्मोही प्रेम)

पिया के हिया मे परी हैं गाँठ,
मैं कौन जतन से खोलूं। (घण्टी)

—**कंकाल, पृ० १२०**

पुत्र का स्नेह बड़ा पागल स्नेह है। स्त्रियां ही स्नेह की विचारक हैं। पति के प्रेम और पुत्र के स्नेह में क्या अन्तर है, यह उनको ही विदित है। (सरला)

—**कंकाल, पृ० १४२-४३**

हृदय में एक आंधी रहती है, एक हलचल लहराया करती है, जिसके प्रत्येक धक्के में—'बढ़ो! बढ़ो' की घोषणा रहती है। वह पागलपन संसार को तुच्छ लघुकण समझकर उसकी ओर उपेक्षा से हँसने का उत्साह देता है। संसार का कर्त्तव्य, धर्म का शासन, केले के पत्ते की तरह धज्जी-धज्जी उड़ जाता है। वही तो प्रणय है। नीति की सत्ता ढोंग मालूम पड़ती है और विश्वास होता है कि समस्त सदाचार उसी की साधना है... हां वही सिद्धि है, सही सत्य है। (मंगल)

—**कंकाल, पृ० २५८**

करुण स्मृति, दे० सघन वन-वल्लरियों के नीचे। —**कामना, १-३**

प्रेम की प्यासी, दे० घिरे सघन घन नींद न आई। (कामना) —**कामना, १-४**

पी ले प्रेम का प्याला —**कामना, १-६**

वर्षा में यौवनोन्माद —**कामना, २-३**

नैनों के तीर, दे० किसे नहीं चुभ जायें। —**कामना, २-६**

छिपाओगे कैसे आंखें कहेंगी

—**कामना, २-८**

अकेले तुम कैसे असहाय
यजन कर सकते? तुच्छ विचार!
तपस्वी आकर्षण से हीन
कर सके नहीं आत्म-विस्तार।

—**कामायनी, श्रद्धा, पृ० ५६**

कामायनी में सात्विक प्रेम श्रद्धा के चरित्र में, तामस मनु के और राजस इड़ा के जीवन में दिखाया गया है।

उज्ज्वल वरदान कला का
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।

—कामायनी

नित्य यौवन-छवि से हो दीप्त
विश्व की करुण-कामना मूर्त्ति,
स्पर्श के आकर्षण में पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।

—कामायनी, श्रद्धा, पृ० ४७

विनिमय प्राणों का यह कितना
भय-संकुल व्यापार अरे।
देना हो जितना दे दे तू;
लेना, कोई यह न करे॥

—कामायनी

इस अर्पण में कुछ और नहीं
केवल उत्सर्ग झलकता है।

—कामायनी पृ० १०५

लौकिक प्रेम से ही अलौकिक प्रेम की गति है। यह सान्त प्रेम अनन्त की ओर विकसित होता है।

श्रद्धे! बस तू ले चल!
उन चरणों तक दे निज सम्बल।

प्रेम-पथ अथवा आध्यात्मिक पथ में नारी संबल है, बाधा नहीं।

प्रेम एक समर्पण है, दान है, बिना किसी प्रतिदान की आशा के।

मैं दे दूं और न फिर कुछ लूं
इतना ही सरल झलकता है। (श्रद्धा)

—कामायनी, लज्जा, पृ० १०५

प्रेम के तीर —चित्राधार, (उर्वशी), पृ० ५-६

प्यासे नयन —चित्राधार, (उर्वशी), पृ० ८

हियो यह भयो नदी बरसाती।
—चित्राधार (उर्वशी), पृ० ११-१२

अनुराग —चित्राधार, (उर्वशी), पृ० १४

प्रेम-पथ —चित्राधार, (उर्वशी) पृ० १५

प्रेम का परिणाम —चित्राधार, (उर्वशी), पृ० १९

प्रेम-सुधा —चित्राधार, (बभ्रुवाहन), पृ० २५

निष्ठुर प्रेमी —चित्राधार, (बभ्रुवाहन), पृ० ३५-३६

नीरव प्रेम —चित्राधार, (नीरव प्रेम, पराग) पृ० १६५-६७

विस्मृत प्रेम —चित्राधार, (विस्मृत प्रेम, पराग) पृ० १६८-६९

विस्मृति —चित्राधार, (विसर्जन, पराग) पृ० १७०

चांद और रजनी —चित्राधार, (मकरन्द-बिन्दु) पृ० १७१

प्रेम का फल —चित्राधार, (मकरन्द-बिन्दु), पृ० १७२

नाहिं तरसाओ —चित्राधार, (मकरन्द-बिन्दु) पृ० १७४-७५

प्रेम-रस बरसाओ —चित्राधार, (मकरन्द बिन्दु) पृ० १७४-७५

कण्ठ सों लगाओ —चित्राधार, (मकरन्द बिन्दु), पृ० १७४-७५

वह प्यारी क्यों? —चित्राधार, (मकरन्द बिन्दु), पृ० १७६

प्रेम-प्रतीति —चित्राधार, (मकरन्द बिन्दु), पृ० १८१

प्रेम-रंग —चित्राधार, (मकरन्द बिन्दु), पृ० १८२

प्रेम-परिणाम —चित्राधार, (मकरन्द बिन्दु), पृ० १८३

हरजाई अंखियां —चित्राधार, (मकरन्द बिन्दु), पृ० १८३

मनमधुप —चित्राधार, (मकरन्द बिन्दु), पृ० १८४

स्मृति-सुख —चित्राधार, (मकरन्द बिन्दु), पृ० १८९

प्रेम-प्रतीक्षा —झरना (प्रत्याशा)

प्रेम-प्रतीक —झरना (स्वप्नलोक)

मेरी नाव किनारे लगी (दर्शन-सुख) —झरना (दर्शन)

तुम्हारा रूप —झरना (मिलन)

" " —झरना (प्रार्थना)

हृदय सुवर्ण —झरना (रत्न)

" " —झरना (कसौटी)

प्रेम प्रतीक्षा —झरना (अतिथि)

" " —झरना (सुधा में गरल)

प्रेम या पीड़ा —झरना (उपेक्षा करना)

प्रेम का स्वरूप —झरना (बिन्दु[1])

तुम जीते हम हारे—झरना (बिन्दु[3])

प्रेम का फल —झरना (बिन्दु[4])

आओ —झरना (बिन्दु[5])

प्रेम-सम्बन्ध —झरना (परिचय)

प्रियतम, रूखे मत बनो —झरना (बालू की बेला)

बनो न इतने निर्दय —झरना (अर्चना)

विकल प्रेम —झरना (बिखरा हुआ प्रेम)

कब आओगे —झरना (कब ?)

प्रेम तो जीवन-मरण समस्या हो गई। —झरना (स्वभाव)

निराशा —झरना (असन्तोष)

याद तो किया करो —झरना (अनुनय)

अन्यायी प्रियतम—झरना (प्रियतम)

व्याकुल मन —झरना (कहो)

आओ —झरना (निवेदन)

प्रेम-नशा —झरना (प्यास)

पी कहां —झरना (पी कहां)

गले लगो —झरना (पाईबाग)

दे० भूल[1]

यह सत्य है कि सब ऐसे भाग्यशाली नहीं होते कि उन्हें कोई प्यार करे, पर यह तो हो सकता है कि वे स्वयं किसी को प्यार करें, किसी के दुःख-सुख में हाथ बँटा कर अपना जन्म सार्थक कर लें। (सुखदेव) —तितली, २-५

प्रेम चतुर मनुष्य के लिए नहीं, वह तो शिशु से सरल हृदयों की वस्तु है। (इन्द्रदेव) —तितली, २-८

मनुष्य अपने त्याग से जब प्रेम को आभारी बनाता है तब उसका रिक्त कोश बरसे हुए बादलों पर पश्चिम के

मुर्ग के रत्नालोक के समान चमक उठता है। —तितली, ३-७

मानव-हृदय की मौलिक भावना है स्नेह। कभी-कभी स्वार्थ की ठोकर से पशुत्व की, विरोध की प्रधानता हो जाती है।...प्रेम. मित्रता की भूखी मानवता! बार बार अपने को ठगाकर भी वह उसी के लिए झगड़ती है। झगड़ती है, इसलिए प्रेम करती है। —तितली, ४-३

मेरे दुःखी होने पर जो मेरे साथ रोने आता है, उसे मैं अपना मित्र नहीं जान सकती। मैं तो देखूंगी, वह मेरे दुःख को कितना कम करता है। मुझे दुःख सहने के लिए छोड़ जाता है, केवल अपने अभिमान और आकांक्षा की सृष्टि के लिए, मेरे दुःख में हाथ बटाने का जिसका साहस नहीं, जो मेरी परिस्थिति में साथी नहीं बन सकता। जो पहले अमीर बनना चाहता है, फिर अपने प्रेम का दान करना चाहता है, वह मुझसे हृदय मांगे, इससे बढ़कर धृष्टता और क्या होगी! (इरावती) —(दासी)

प्रेम जब सामने से आए हुए तीव्र आलोक की तरह आंखों में प्रकाश-पुञ्ज उँडेल देता है, तब सामने की सब वस्तुएँ और भी अस्पष्ट हो जाती हैं।....प्रेम करने की एक ऋतु होती है। उसमें चूकना, उसमें सोच-समझ कर चलना दोनों बराबर है। (कोमा)

—ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४२

इस भीषण संसार में एक प्रेम करने वाले हृदय को धोखा देना सब से बड़ी हानि है।....दो प्यार करने वाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास है। (मिहिरदेव)

—ध्रुवस्वामिनी, पृ० ५२

सब के हृदय में एक बार प्रेम की दीवाली जलती है।...(वह महोत्सव).. जिसमें हृदय ...हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है, उदार बनता है और सर्वस्व दान करने का उत्साह रखता है। (कोमा)

—ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६६

कैसी छवि ने बाल अरुण की प्रकट हो
शून्य हृदय को नवल राग-रंजित किया
...मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था।

—(प्रथम प्रभात)

हम दोनों थे भिन्न देह से
तो भी मिल कर बजते थे—
ज्यों उँगली के छू जाने से
सस्वर तार विपञ्ची के।

—प्रेमपथिक, पृ० ११

रूखा शीशा जो टूटे तो
सब कोई सुन पाता है
कुचला जाना हृदय-कुसुम का
किसे सुनाई पड़ता है।

—प्रेमपथिक, पृ० १३

पथिक! प्रेम की राह अनोखी
भूल-भूल कर चलना है
घनी छांह है जो ऊपर
तो नीचे काँटे बिछे हुए,
प्रेम-यज्ञ में स्वार्थ कामना
आदि हवन करना होगा

...प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमें
कहीं कपट की छाया हो
...क्योंकि यही प्रभु का स्वरूप है
जहाँ कि सबको समता है।
इस पथ का उद्देश्य नहीं है
श्रांत भवन में टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर
जिसके आगे राह नहीं।
....प्रेम उदार अनन्त अहो!
...प्रेम जगत का चालक है,
इसके आकर्षण में खिंच के
मिट्टी वा जलपिण्ड सभी
दिन रात किया करते फेरा।
इसकी गर्मी मरु, धरणी, गिरि,
सिन्धु, सभी निज अन्तर में
रखते हैं आनन्द-सहित,
है इसका अमित प्रभाव महा।
...इसका है सिद्धान्त—मिटा
देना अस्तित्व सभी अपना
प्रियतम-मय यह विश्व निरखना
फिर उसको है विरह कहाँ
फिर तो वही रहा मन में,
नयनों में, प्रत्युत जगभर मे
कहाँ रहा तब द्वेष किसी से
क्योंकि विश्व ही प्रियतम है।

—प्रेमपथिक, पृ० १६-१७

प्रणय महान है, प्रेम उदार है, प्रेमियों को भी वह उदार और महान् बनाता है। प्रेम का मुख्य अर्थ है, 'आत्म-त्याग'। (मदन) —(मदन मृणालिनी, पृ० १७८)

प्रणय का भी वेग कैसा प्रबल है! यह किसी महासागर की प्रचण्ड आंधी से कम प्रबलता नहीं रखता। इसके झोंके में मनुष्य की जीवन-नौका असीम तरंगों से घिर कर प्राय: कूल को नहीं पाती, अलौकिक आलोकमय अन्धकार में प्रणयी अपनी प्रणय-तरी पर आरोहण कर उसी आनन्द के महासागर में घूमना पसन्द करता है, कूल की ओर जाने की इच्छा भी नहीं करता।

—(मदन-मृणालिनी, पृ० १८६)

मिल गए प्रियतम हमारे मिल गए।
...आज इस हृदयाब्धि में, बस क्या कहूँ,
तुंग तरल तरंग कैसी उठ रही।

—(मिलन)

दे० हिये में चुभ गई

मिले दो हृदय, अमल अछूते, दो शरीर इक प्रान। (सखियां) —विशाख, २-१

दे० मेरे मन को चुरा के कहां ले चले। (सरला) —विशाख, २-३

दे० अकेली छोड़कर जाने न दूंगी। (चन्द्रलेखा) —विशाख, २-४

दे० नदी नीर से भरी...मेरी स्नेह की तरी। —विशाख, पृ० ६९

प्रेम की छाया और रस, दे० घने प्रेम-तरु तले। —स्कन्दगुप्त, पृ० ५४

हृदय की मचल। (देवसेना)

—स्कन्दगुप्त, पृ० १४९

प्रेम की उलझन, दे० अगरु-धूम की श्याम लहरियां। —स्कन्दगुप्त, पृ० १५५

निराशा, दे० आह! वेदना मिली विदाई। —स्कन्दगुप्त, पृ० १६५-१६६

प्रेम की खुमारी—दे० भरा नैनों में मन मे रूप (देवसेना)—मैं पागल प्रेम-

विभोर। —स्कन्दगुप्त, पृ० ४५-४६
अन्तर् की करुणा

—स्कन्दगुप्त, पृ० ८८

दे०—अरे कहीं देखा है तुमने मुझे प्यार करने वाले को।

(यौवन का प्रेम-प्रलाप)—आज इस यौवन के माधवी कुंज में।

दे०—काली आँखों का अन्धकार
—कैसी कड़ी रूप की ज्वाला
—चिर तृषित कंठ से तप्त-विधुर
—जग की सजल कालिमा
—जब प्रीति नहीं मन में कुछ भी।

उपालम्भ —(नहीं डरते)
—(निधरक तूने ठुकराया तब)

प्रेम-स्मृति और निर्वाह
—(प्रथम यौवन-मदिरा से मत्त)

अपना बना लो —(प्रियतम)

काम-विपंची
—(बज रही बंसी आठों याम की)

प्रेम की व्याकुलता
—(बिखरी किरन अलक व्याकुल हो)

हृदय नहिं मेरा शून्य रहे
—(मकरन्द बिन्दु)

मिले प्रिय, इन चरणो की धूल
—(मकरन्द बिन्दु)

निर्मोही से —(मर्मकथा)

प्रेम-याचना —(मिल जाओ गले)
" " —(मेरी आंखों की पुतली में)

प्रेम चंचल, सुकुमार
—(सम्हाले कोई कैसे प्यार)

प्रेम की पीड़ा का मूल—(हृदय-वेदना)

दे० छायावाद, दाम्पत्य प्रेम, प्रणय, रहस्यवाद, शृंगार, प्रसाद के गीत (शृंगारिक)।

प्रेमपथ—इस शीर्षक से इन्दु, कला ५, खंड २, किरण ५, नवम्बर '१४ में 'प्रेम-पथिक' के खड़ी बोली रूप का एक अंश प्रकाशित हुआ। —प्रेमपथिक[२]

प्रेमपथिक[१]—इन्दु, कला १, किरण २, भाद्रपद १९६६ में प्रकाशित। इसमें प्रेम के पथिक की कहानी है।

छांड़ि के अभिराम अति
सुखधाम चारु आराम।
पथिक इक कीन्ह्यो गमन,
सुप्रवास को अभिराम॥

सीमा पर पहुँचा तो आंखों में आंसू भर आए। ग्राम-देवता को प्रणाम कर वह आगे बढ़ा। कुछ दूर चलने पर वह अंशुमाली का प्रखर कर-ताप नहीं सहन कर सका और वह एक वट की शीतल छाया में बैठ गया। तभी चातक बोल उठा—'पी कहां! पी कहां!' पथिक ने कहा—"विहग तुम धन्य हो जो अपनी प्रेयमी के साथ स्वच्छन्द क्रीड़ा कर रहे हो। फिर यह 'पी कहां' किसलिए? तुम्हारा यह 'पी कहां' सुनकर बेचारे वियोगियों को हूक-सी लगती है।" पथिक फिर आगे बढ़ा। उसे एक जलपूर्ण विमल सरसी मिली। पथिक निर्मल-जल पानकर सोपान पर बैठ गया और पवनांदोलित जल-लहरियों की क्रीड़ा देखने लगा। पथिक फिर आगे बढ़ा। चलते-चलते वह एक मरुभूमि में पहुँचा। उसके कपोलों पर अविरल

अश्रु-धारा बहने लगी। दीर्घ निःश्वास ले, वह मन ही मन सोचने लगा—

हो रस मेघ न द्रवत वारि क्यों मीत।
आशा-लता निरखि हम होत सभीत॥

तत्काल एक पुरुष वहां प्रकट हुआ। उसने कहा—

अहो पथिक यह सोई उपवन कुंज।
जामें भूलि धरे नहिं पग अलि-पुंज॥

* * *

यहि उपवन में रहे वायु कहुँ नाहिं।
या मारुत के लगे कली मुरझाहिं॥

* * *

लखि सुकुमार तुम्हें हम शिक्षा देत।
फिरहु पथिक यह मग अति दुःख निकेत॥

पथिक ने पूछा —तुम कौन हो जो यह सीख दे रहे हो? वह बोला—"मैं प्रेम हूँ।" सुनते ही प्रेम-पथिक उसके चरणों पर गिर पड़ा और बिलख-कर बोला—

इतने दिवस कियो मोहिं अति हैरान।
आज लख्यो शुभ शिक्षा देन महान॥

* * *

तेहिं न आवत दया सु हिया कठोर।
बिरह तपावत अंगहिं निसि अरु भोर॥

* * *

तेरे तीरथ में करि मज्जन आस।
भए तृप्त नहीं कबहूँ बुझी न प्यास॥

तब प्रेम ने हँसकर कहा—

हिए राखि कछु धीरज, सहि कछु पीर।
आशा और निराशा नैनन नीर॥

* * *

पथिक धीर धरि चलिए पथ अति दूर।
ह्वै कटिबद्ध सदा सनेह में चूर॥

इस पर पथिक पुकार उठा—"मैं अपनी दशा देखकर सबको सावधान कर रहा हूँ कि कोई प्रेम न करे। प्रेम-सिन्धु अथाह है। कोई उसे तैर कर पार नहीं जा सकता।"

प्रसाद जी की व्रजभाषा की रचनाओं में इसे सर्वश्रेष्ठ माना गया है। प्रेम को सार्वभौमिक स्तर पर लाकर प्रस्तुत किया गया है। प्रेम को शृंगारिक पक्ष से दूर रखा गया है। आगे चल कर स्वयं कवि ने इसका खड़ी बोली रूपान्तर किया।

प्रेमपथिक[२]—व्रजभाषा में लिखे 'प्रेम-पथिक' के ८ वर्ष बाद उसी का परि-वर्तित, परिवर्धित अतुकान्त खड़ी बोली हिन्दी का रूप जिसका कुछ अंश 'इन्दु' में 'चमेली' और 'प्रेमपथिक' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। प्रथम संस्करण १९७० वि०। 'साहित्य सुमन माला' का पुष्प ४ स्वयं प्रसाद जी ने प्रकाशित किया।

सन्ध्या को हेमाभ तपन की
किरणें जिसको छूती हैं
रंजित करती हैं देखो
जिस नई चमेली को मुद से
कौन जानता है कि उसे
तम में जाकर छिपना होगा।

यही कथावस्तु है इस सात्विक प्रेम-गाथा की। सरिता की रम्य तटी में,

प्रकृति के नाना सौन्दर्यों से घिरी हुई, एक कुटी थी। 'एक तापसी व्यतीत यौवना, पीत वदना, बैठी थी कि एक पथिक आ गया जिसने पूछे जाने पर अपना परिचय दिया—"मेरे पिता के एक मित्र थे, जिनकी एक प्रेम पुत्तली कन्या थी। हम दोनों इकट्ठे खेला करते थे। 'खिली चांदनी में खिलते थे एक डाल में युगल कुसुम।' मेरे पिता ने मरते-मरते मुझे अपने मित्र को सौंप दिया। अब हम दोनों का यह सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हो गया। 'खेल खेलकर खुली हृदय की कली मधुर मकरन्द हुआ।' जीवन का नया-नया उल्लास था। एक दिन मैंने देखा कि चमेली का फलदान जा रहा है। वह दिन भी आया कि 'शहनाई बजती थी मंगल-पाठ हो रहा था घर में।' मेरे जीवन की सर्वस्व किसी और को सौंपी जा रही थी। मैं भग्न हृदय घर से निकल पड़ा—'विदा हुआ आनन्द नगर से, जन्मभूमि से, जननी से।' 'गिरि, कानन, जनपद, सरिताएँ कितनी पड़ीं मार्ग के बीच।' पपीहे का 'पी कहां' सुन कर मैं भी पुकार उठा 'मेरा प्रिय कहां।' जीवन निराश था। मेरा काम था आंसू बहाना और विरह वह्नि में जलना। एक दिन एक नदी के किनारे शैल-शिला पर बैठा था, चन्द्रमा को देखकर 'अहा चमेली का सुन्दर मुख हृदय-गगन में उदित हुआ।' बीती बातें याद कर के तन्द्रा आने लगी। उस समय 'देवदूत सा चन्द्र-बिम्ब से एक व्यक्ति उज्ज्वल निकला।' और कहने लगा—

'पथिक, प्रेम की राह अनोखी
भूल-भूल कर चलना है
सोच समझ कर जो चलता है
वह पूरा व्यापारी है।'
'इस पथ का उद्देश्य नहीं है
श्रान्त भवन में टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर
जिसके आगे राह नही।'
'प्रेम जगत का चालक है....'
'इसका है सिद्धान्त मिटा देना
अस्तित्व अहा अपना
प्रियतममय यह विश्व निरखना
फिर उसको है विरह कहाँ।'

वह व्यक्ति अन्तर्धान हो गया। मुझ में एक नया उत्साह भर गया।" तापसी ने पूछा, "क्यों, किशोर, क्या अब तक तुमको उस मिट्टी की पुत्तली का ध्यान बना है? क्या अभागिनी याद तुम्हें अब रहती है?" किशोर ने पहचाना कि यह तापसी तो चमेली है। उसने अपनी गाथा सुनाई, कैसे उसने दासी की तरह ससुराल में काम-काज किया, पति मर गए तो नरपिशाचों की कुदृष्टि पड़ने लगी और एक वृद्ध द्वारा प्रेरित होकर वह वन-वासिनी हुई। चारों दृग आंसुओं के चौधारे बहाने लगे। पथिक ने विश्व-प्रेम की व्याख्या करते हुए चमेली को सान्त्वना दी। 'उस सुन्दरतम का सौन्दर्य विश्व भर में छाया है।' 'एक कामना रखो हृदय

में, सब उत्सर्ग करो उस पर।''चलो मिलें सौन्दर्य प्रेमनिधि में।' तब चमेली ने कहा—जहां अखण्ड शान्ति रहती है वहीं सदा स्वच्छन्द रहें।

कविता में बाह्य सौन्दर्य का वर्णन तो है, पर अन्तः सौन्दर्य की विजय दिखाई गई है।

प्रेम-राज्य—प्रबन्ध-काव्य : १३ पृष्ठों में और रोला एवं छप्पय छन्दों में एक साधारण रचना है जो दो परिच्छेदों में बँटी हुई है। कुछ अंश इन्दु, कार्तिक '६६ में, और पूरा उसी वर्ष पुस्तक रूप में प्रकाशित।—पूर्वार्द्ध मे विजय-नगर के राजा सूर्यकेतु और अहमदाबाद के बहमनी वंश के मुसलमान सुलतान के बीच हुए सुप्रसिद्ध टालीकोट के युद्ध (सन् १५६५ ई०) का वर्णन है। राजा युद्ध मे जाने से पहले अपनी एक मात्र सन्तान, ५ वर्ष के कुमार चन्द्र-केतु, को एक भील सरदार को सौंप गए थे जो कुमार को लेकर हिमालय की तराई में चला गया था। सूर्यकेतु के लोभी मंत्री ने विश्वासघात किया और वह शत्रु से जा मिला। "मारि म्लेच्छतम, करि अनूप बहु वीर काम को। सूर्य-केतु तब गए, सुखद निज अस्तधाम को।" भारतभूमि धन्य है जहां इक्ष्वाकु, भरत आदि बलवान नृपति हुए हैं। अन्त में मंत्री को कुछ लाभ नहीं हुआ और वह भी घर आया तो पत्नी ने बड़ी डांट दी और वह उत्तराखंड को चल दिया। उत्तरार्द्ध में कुमार चन्द्रकेतु एवं मंत्री की लड़की ललिता के प्रेम और परिणय रूपी 'प्रेम-राज्य' की कहानी है।

वह किशोर नव चन्द्र
केतु ललिताहु किशोरी
तन्मय लखत परस्पर
इकटक अद्भुत जोरी
लखे नवल यह प्रेम
राज्य अति ह्वै आनन्दित
चमकि उठ्यो नवचारु
चन्द्र तारागण वंदित॥

चन्द्रकेतु राजा बने और ललिता रानी। तपस्वी वेश में वह मंत्री भी वहीं भीलों के बीच में आ गया और पुत्री तथा चन्द्रकेतु को आशीर्वाद दिया। इस उत्तरार्द्ध में प्रायः १६ पंक्तियों में शिव के विश्वंभर रूप का वर्णन है। भारत-गौरव सबंधी एक लम्बा गीत भी इस प्रबन्ध में है। यह वीरता और प्रणय की कहानी भाव-सृष्टि में सफल है। एक खंड इन्दु, किरण ४, कार्तिक '६६ में प्रकाशित, बाद में 'चित्रा-धार' में संगृहीत।

—**चित्राधार**

प्रेमलता—सरला कुमारी, मुकुल की दूर के सम्बन्ध की बहन। गाती भी है। यह भी कुतूहल से भरी है और इसके मन मे प्रेम और जिज्ञासा रहती है। आनन्द की बातों पर मोहित हो जाती है और अन्त में आनन्द को अपने प्रेम में बांध लेती है। वह अपने चुनाव मे समझ-बूझ से काम लेती है। —**एक घूंट**

प्रेम-स्मृति—प्रेम में स्मृति का ही सुख है।

एक टीस उठती है, वही तो प्रेम का प्राण है। (सुवासिनी) —चन्द्रगुप्त, ४-१०

दे० 'देख नयनों ने एक झलक'

प्रेमा (प्रेम कुमारी)—नन्दराम की पत्नी, अमीर खां की मुह-बोली बहिन जिसकी रक्षा में अमीर ने सलीम को मार डालना चाहा। पठान कबीले के सौहार्द और भाई-चारे का केन्द्र बनी हुई थी। अपने सतीत्व की रक्षा में रणचंडी थी, तो भी नारी-सुलभ दया, विशालता और क्षमाशीलता उसमें भरी थी। —(सलीम)

प्रेमानन्द—कल्पित महात्मा पात्र, विचारशील, परोपकारी, सत्यनिष्ठ और निर्भीक संन्यासी, विशाख के गुरु, शाश्वत संघ के अनुयायी। प्रेम की सत्ता को संसार में जगाना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। सत्कर्म, कर्त्तव्य-पालन और पुण्य का उपदेश देते है। उनका कहना है—क्रोध से न्याय नहीं होता, पाप को पाप से नहीं दबाना चाहिए। जब तक सुख भोग कर चित्त उनसे नहीं उपराम होता, मनुष्य पूर्ण वैराग्य नहीं पाता। सत्कर्म हृदय को निर्मल बनाता है और हृदय में उच्च वृत्तियां स्थान पाने लगती हैं। क्षमा सर्वोत्तम दंड है। सत्य को सामने रखो, आत्मबल पर भरोसा रखो, न्याय की मांग करो। नाटक के प्रायः सभी पात्र उनकी स्निग्ध वाणी से सत्पथ पर चलने लगते हैं। वे साक्षात् प्रेम-मूर्त्ति है। उनकी कोई निजी आकांक्षा नहीं। विश्वमैत्री और आदर्श मानवता की स्थापना चाहते हुए वे सब की भलाई में रत रहते हैं और निष्काम भाव से न्यायपथ का अनुसरण करते हैं। —विशाख

प्रेमोपालम्भ—दे० विनोद-बिन्दु।

प्रेम और सौन्दर्य—दे० तुम कनक-किरण के अन्तराल में।

प्लेटो[१]—प्लेटो के अनुसार काव्य वर्णनात्मक और अभिनयात्मक दोनों ही है।

—(आरंभिक पाठ्य काव्य, पृ० ७७)

प्लेटो[२]—वनलता कहती है—प्लेटो—अफलातून ने कहा है कि मनुष्य-जीवन के लिए संगीत और व्यायाम दोनों ही आवश्यक है। हृदय में संगीत और शरीर मे व्यायाम नवजीवन की धारा बहाता है। —एक घूंट

प्लेटो[३]—ग्रीस का दार्शनिक जिसने कविता का संगीत के अन्तर्गत वर्णन किया है।

—काव्य और कला, पृ० ६

प्लेटो संगीत और व्यायाम को मुख्य उपादेय विद्या की तरह ग्रहण करता है।

—काव्य और कला, पृ० ७

प्लेटो[४]—मैने भारत में हरक्यूलिस, एचिलिस की आत्माओं को भी देखा और देखा डिमास्थनीज को। सम्भवतः प्लेटो और अरस्तू भी होंगे। (सिकन्दर)

—चन्द्रगुप्त, ३-३

प्लेटो[५]—प्लेटो ने अभिनेता में चरित्रहीनता आदि दोष नित्य माने हैं। इनके रहते सत्य का ग्रहण नहीं हो पाता।

—(नाटकों में रस का प्रयोग, पृ० ५०)

[सिकन्दर के राजगुरु अरस्तू का गुरु, ग्रीस का प्रसिद्ध कवि, दार्शनिक और आचार्य; समय ४३०–३५३ ई० पू०।]

फ

फतहपुर सिकरी—सिकरी के निकट गाला रहती थी, वहीं विजय भी (नये नाम से) रहने लगा। सिकरी में मंगल ने आकर जंगली बालकों की एक पाठशाला खोल दी। गाला भी इसमें काम करने लगी थी। —**कंकाल, ३-६**

[दे० अकबर[१]—आगरा से २४ मील है।]

फतह सिंह— —**(वीर बालक)**

[गुरु गोविन्द सिंह के बेटे, दे० जोरावर सिंह।]

फल्गु—नदी। —**(रमणी-हृदय)**

फिलिपस—सिकन्दर का क्षत्रप। चन्द्रगुप्त द्वारा मारा गया। —**चन्द्रगुप्त**

—सिकन्दर के लौट जाने के बाद फिलिपस ने षड्यंत्र कर के पोरस (पुरु, पर्वतेश्वर) को मरवा डाला। इससे उसके विरुद्ध विद्रोह खड़ा हुआ। —**चन्द्रगुप्त, भूमिका**

[ग्रीक योद्धा और प्रशासक, मृत्यु ३२५ ई० पू०।]

फीरोज़ा—अहमद की प्रेमिका ; कल्पित पात्र। वह युवती से अधिक बालिका थी। अल्हड़पन, चंचलता और हँसी से बनी हुई वह तुर्क बाला सब हृदयों के स्नेह के समीप थी। उसके हृदय में सहानुभूति और करुणा है। वह गजनी में कैद किए गए गुलामों में थी। आशावादी है और जीवन से सन्तुष्ट रहती है। 'सुख जीने में है, बलराज।' वास्तव में वह एक आदर्श रमणी है। इरावती के प्रति बड़ा स्नेह है। —**(दासी)**

फूल जब हँसते हैं अभिराम—सम्राज्ञी वपुष्टमा की नई परिचारिका कलिका का दूसरा गीत। जब एक हँसता है तो दूसरा रोता है और जब एक रोता है तो दूसरे को हँसी आती है। वसंत में जब फूल खिलते हैं और मकरन्द भर जाता है, लोग हँसते हैं, पर हम दुःखी हैं। जब प्रातः खेत लहलहाते हैं और कृषक हँसते हैं, तो उसी समय ओसकण रो उठते हैं और बिखर जाते है। हे नाथ, मेरा सब कुछ तुम्हें समर्पित है। अब लोग रोएँ, पर मेरे लिए तो सुख है। —**जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-२**

फ्रांस—यहां की चूड़ियाँ। —**(चूड़ीवाली)**

ब

बङ्ग = बंगाल। —**(मदनमृणालिनी)**

बङ्गाल—उत्तरी भारत की वह सड़क जो बंगाल से काबुल तक पहुँचती है, सदैव पथिकों से भरी रहती थी। तब रेलगाड़ियां न थीं। लोग रथों और इक्कों पर लम्बी-लम्बी यात्राएँ करते थे। सड़क पर कहीं-कहीं बीच में दो-चार कोस की निर्जनता मिलती, अन्यथा प्याऊ, बनियों की दूकाने, पड़ाव और सरायों से भरी हुई इस सड़क पर बड़ी चहल-पहल रहती।

—**(अमिट स्मृति)**

[१९४७ में दो भागों में विभक्त हो गया। प्रसाद के समय में इस प्रान्त की जनसंख्या ४॥ करोड़ थी। कलकत्ता राजधानी थी और है भी।]

बच्चे—बच्चों का हृदय कोमल थाला है चाहे इसमें कँटीली झाड़ी लगा दो, चाहे फूलों के पौधे। (पद्मावती)

—अजातशत्रु, १-१

बच्चे बच्चों से खेलें—चार पंक्तियों का पद्य। वासवी छलना को समझाती हुई कहती है कि तू गृह-विद्रोह की आग क्यों जलाती है। आदर्श घर वह है जहां बच्चे बच्चों से प्रेम-पूर्वक खेलें, गृहलक्ष्मी प्रसन्न रहे, बन्धुजनों का सत्कार हो, सेवक आज्ञा में रहें, पति को सन्तोष मिले। —अजातशत्रु, १-१

बज रही बंशी आठों याम की—मालविका ने अपने मोहन (चन्द्रगुप्त) के प्रति अपना प्रेमोन्माद चित्रित किया है। यह वंशी काम की वंशी है। उसकी रूपसुधा दृग-प्यालों में भरी है। उसीकी बोली कानों में गूंजती रहती है। —चन्द्रगुप्त, ४-४

बजा दो वेणु मनमोहन, बजा दो—गीत। हम में स्वातंत्र्य का मंत्र फूंक दो, हमारा भय मिटा दो, हमारे जीवन को आनन्दमय कर दो। (स्कन्द)

—स्कन्दगुप्त, ४

बंजो—ब्राह्मण रामनाथ की पोषिता पुत्री। दे० तितली। —तितली, १

बटेसर—बटेसर के मेले में बदन गूजर सौदागर बन कर जाता और लूट-मार करता था। —कंकाल, ३-५

[यमुना के दाहिने किनारे आगरा से ४१ मील प्राचीन गांव जहां महादेव के मंदिर पर कार्तिक में मेला लगता है।]

बढ़े चलो—

चलो सदा चलना ही तुमको श्रेय है।
खड़े रहो मत, कर्म-मार्ग विस्तीर्ण है।
चलने वाला पीछे को ही छोड़ता
सारी बाधा और आपदा-वृन्द को।
चलो चलो, हो मत घबराना तनिक भी
धूल नहीं यह पैरों में है लग रही
समझो, यही विभूति लिपटती है तुम्हें।
बढ़ो-बढ़ो, हां रुको नहीं इस भूमि में
इच्छित फल की चाह दिलाती है बल तुम्हें,
.. चलो पवन की तरह रुकावट है कहाँ
..सुनो ग्रीष्म के पथिक,न ठहरो फिर यहाँ,
चलो बढ़ो, वह रम्य भवन अति दूर है।

—करुणालय, पृ० ८-९

बदन गूजर—फतहपुर सिकरी के पास के पहाड़ी जंगल में दस्युओं का मुखिया, गाला का सत्तर बरस का बूढ़ा पिता। जब मुगलों का ह्रास हुआ, तो इसने डाका मार कर मिरजा जमाल को लूटा और मार डाला और उसकी लड़की को घर में डाल लिया। क्रूरता उसकी घनी दाढ़ी और मूछों के तिरछेपन से टपकती थी। —कंकाल, खंड ३

अंत में वह पुलिस की गोली से मारा गया। गाला ने बदन का शवदाह किया। —कंकाल, ४-६

बनजरिया—शेरकोट के पास बंजर भूमि।

—तितली

बनजारा—नन्दू बनजारा था। सरगुजा

के वन में रहने वाली युवती मोनी से वह कभी-कभी प्याज-मेवा खरीद लिया करता था। एक बार बनजारों पर डाका पड़ा ; नन्दू गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। मोनी ने उसकी सेवा की। एक कोल चौकीदार कुछ दिनों से मोनी को अपने फँदे में फँसाना चाहता था, परन्तु मोनी ने उसकी चालों को असफल बना दिया। बहुत दिनों बाद नन्दू उधर आया तो देखा कि झोपडी उजाड़-सी हो रही है। उसे पता लगा कि मोनी के वर्ग तथा परिवार के लोगों ने डाका डालना छोड़ दिया है। अब वह प्याज-मेवा नहीं बेचते, वे इन्हीं चीजों को खाकर जीते हैं। नन्दू ने विचार किया कि वह भी लादना छोड़ देगा। वह हताश था। वह अपने बैल की खाली पीठ पर हाथ धरे चुपचाप अपने पथ पर चलने लगा।

कथानक नगण्य, लक्ष्य अस्पष्ट और अन्त प्रभावशून्य है। चरित्र-चित्रण कुछ सफल है। —**आकाशदीप**

बनदेवी— —**ब्रु वाहन, १**

बनाकर आँख की पुतली तुम्हें बस— तुम्हारे साथ में खेला करूँगी ॥ (चन्द्रलेखा, विशाख से)—**विशाख, २-४**

बनारस[१]—मनोहरदास बनारस के रहने वाले थे। बड़ी सड़क (जो कलकत्ता से काबुल तक गई है) पर कई पड़ाव थे, इनमें बनारस विख्यात था। —**(अमिट स्मृति)**

बनारस[२]—किशोरी के वास के कारण 'कंकाल' का मुख्य घटना-स्थल। देव-निरंजन, श्रीचन्द, विजय सब का सम्बन्ध इस स्थान से है। किशोरी, यमुना, आदि वृन्दावन में कुछ दिन रहकर बनारस लौट आए। —**कंकाल, २-२**

बनारस[३]—मंगल हरद्वार से भागकर बनारस चला आया। —**कंकाल**

बनारस[४]—चौबे जिस थियेटर में दरबान थे वह कम्पनी बनारस में खेल कर रही थी। राजा काशी ने चौबे को दरबारी बना दिया। इन्द्रदेव ने यहां बैरिस्टरी कर ली। अनवरी भी बनारस में है। मधुबन यहां रामजस के मुकदमें के बारे में वकील से सलाह लेने आया। मुकुन्दलाल-नन्दरानी का यहीं घर है। —**तितली**

बनारस[५]—यहाँ के दुर्गाकुंड, क्वींस कालेज। —**तितली ३-१**

बनारस[६]—सुना है बनारस एक सुन्दर और धनी नगर है। —**(दासी)**

दे० काशी, वाराणसी, गंगा भी।

बन्धुल—कोशल का सेनापति, वीर, रण-कुशल, साहसी और राजभक्त, पर सरल। मल्लिकादेवी ऐसे पति को पाकर अपने को धन्य मानती है। 'वे तलवार की धार हैं, अग्नि की भयानक ज्वाला हैं, और वीरता के वरेण्य दूत है।' वह सफल सेनानी और राजभक्त सेवक है। राजा की आज्ञा का पालन करते हुए वह अपनी निश्छल स्वामिभक्ति और सचाई का प्रमाण देता है, इससे भले ही उसको अपना बलिदान करना पड़ता है। ——**अजातशत्रु**

[बन्धुल कुशीनगर के मल्ल सामन्त का राजकुमार था। जब वे तक्षशिला में

पढ़ते थे तो प्रसेनजित और बन्धुल मल्ल में मित्रता हो गई। पीछे बन्धुल श्रावस्ती का सेनापति बनाया गया और वह अपने मित्र के पास जाकर रहने लगा। वैशाली के कमल सरोवर से जल पिलाकर उसने अपनी पत्नी मल्लिका की दोहद-इच्छा पूर्ण की। वहां से लौटते हुए उसने लिच्छवियों को परास्त किया। प्रसेनजित ने बन्धुल और उसके पुत्रों को सीमाप्रान्त का विद्रोह शान्त करने के बहाने बाहर भेजा और आज्ञा देकर उन्हें मरवा डाला।]

बन्धुवर्मा—मालव का राजा—साहसी, शूर और देशभक्त। गान्धार-घाटी के रणक्षेत्र में संकट में कूद कर वह अपनी कर्त्तव्य-भावना और स्वार्थ-हीनता का प्रमाण देता है। आश्रित विजया पर जयमाला का व्यंग्य उसे अप्रिय लगता है—यह उसकी सुजनता का परिचायक है। वह आर्त-त्राण-परायण है। "धन्य वीर ! तुमने क्षत्रिय का सिर ऊँचा किया है। बन्धुवर्मा, आज तुम महान् हो, हम तुम्हारा अभिनन्दन करते है।... धन्य तुम्हारी जननी—जिसने आर्य्यराष्ट्र का ऐसा शूर सैनिक उत्पन्न किया।" (चक्रपालित)

—स्कन्दगुप्त, २

"इनका स्वार्थ-त्याग दधीचि के दान से कम नही।" (गोविन्दगुप्त) "तुम्हारे इस आत्मत्याग की गौरव-गाथा आर्य जाति का मुख उज्ज्वल करेगी।"

—स्कंदगुप्त, २

"वसुन्धरा का शृंगार, वीरता का वरणीय पुत्र।" (भीम) **—स्कन्दगुप्त, ४**

वह स्कन्दगुप्त के हित में सब कुछ बलिदान कर देता है—अपने स्वजन, अपना राज्य और अन्त में अपने प्राण भी। वह शील, विनय, परदुःखकातरता आदि गुणों के कारण भी नाटक में आदर्श पात्र है। मरने के बाद भी उसका प्रभाव जीवित रहता है। **—स्कन्दगुप्त**

[नरवर्मा का पौत्र और विश्ववर्मा का पुत्र। बहुत से इतिहासकार मानते हैं कि वह कुमारगुप्त का प्रतिनिधि शासक था न कि स्वतंत्र राजा।]

बभ्रुवाहन[1]—इन्दु, आषाढ़ १९६८ (जुलाई १९११ ई०) में प्रकाशित; 'चित्राधार', द्वितीय संस्करण (सं० १९८५) मे संगृहीत चम्पू; पृष्ठसंख्या २३। अनुमान किया गया है कि इसकी रचना १९०७ मे हो गई थी।—मणिपुर नगर के अन्त में एक उद्यान के द्वार पर प्रतीची दिशा-नायिकानुकूल तरणि के अरुण-किरण की प्रभा पड़ रही है। अकस्मात् एक युवक वहां आ गया जिसने मालाकार को अपना परिचय "भ्रान्त पथिक" के नाम से दिया। उसने सुना कि एक मत्त मिलिन्द-मिलित मालती-लता-मंदिर के समीप एक कामिनी और एक प्रौढ़ा बातें कर रही हैं। साक्षात्कार होने पर पहले तो बहुत रोष में आयीं लेकिन जब प्रौढ़ा को ज्ञात हुआ कि वह पौरवंश का क्षत्रियकुमार है तो वह उसे राजकुमारी की इच्छा से,

अतिथि बनाकर राजप्रासाद की ओर ले चली। प्राभातिक शोभा में वह गायक वेश में शिवालय में पहुँचा और गाने लगा—
"हे शिव! धन्य तुम्हारी महिमा।"
इसी समय दो दीर्घकाय उज्ज्वल-वर्ण पुरुष सामने से आते हुए दृष्टिगत हुए। ये थे राजा और उसका मंत्री। मंत्री कह रहा था—"मणिपुर के राजवंश में एक ही संतान होता हुआ आया है... कुमारी चित्रांगदा जब उत्पन्न हुई थी तभी महर्षि ने कहा था कि यह कुमारी बड़े उच्च राजवंश को स्वयं वरण करेगी,... उससे एक सुन्दर पुत्र राजकुमारी को होगा जो कि आपके वंश को उज्ज्वल करने वाला होगा।" युवक को देखकर राजा ने पहचान लिया—
"धनु आकर्षण के युगल कर में चिह्न लखात।
बिना सव्यसाची नहीं, दूजे में यह बात॥"

राजा की इच्छा को स्वीकार करके अर्जुन ने चित्रांगदा के साथ विवाह किया। वसन्त की मनोहर संध्या थी। चित्रांगदा उपवन में बैठी पूर्व-स्मृति से विह्वल हो रही थी—"व्यतीत भये बहु वासर जात। न पारथ पूछत है इक बात॥" उसी समय उसका बेटा, कुमार बभ्रुवाहन, दीख पड़ा। उसने बताया कि पाण्डवों के अश्वमेध का घोड़ा हमारे राज्य के समीप पहुँच गया है, कल सबेरे हम उसे पकड़ेंगे। दूसरे दिन चित्रांगदा को सखी ने सूचित किया कि मध्यम पाण्डव धनञ्जय ही उस घोड़े के रक्षक हैं। मां ने गद्गद् होकर बेटे को पिता से आशीर्वाद लेने के लिए कहा। कुमार, मंत्री सहित, आरती का सामान लेकर चल पड़ा। अर्जुन ने उस तेजस्वी कुमार को आते हुए देखा—
वीर वदन महँ विभा, गमन जनु केहरि शावक। कर कृपाण झलमलै, तेज जनु ज्वाला पावक॥ मंत्री ने बताया कि यह आपका पुत्र है। पिता-पुत्र गले मिले। पर तुरन्त अर्जुन ने सावधान होकर कहा कि मंत्री, यदि तुम पाण्डवों के मंत्री होते तो कुमार को कभी ऐसी शिक्षा न देते।... क्षत्रिय होकर यह आरती का सामान लेकर आया है, धिक्कार है।" इस पर पिता-पुत्र में युद्ध चल पड़ा। दोनों घायल हुए, अर्जुन गिर पड़ा। तत्काल चित्रांगदा आ गई और वीर अर्जुन को उठाकर, रथ पर आरोहण कर राजप्रासाद में ले आई।

उपवन, प्रभात और युद्ध का वर्णन पुरानी परिपाटी के अनुसार पद्य में हुआ है। भाषा कुछ शुद्ध और व्याकरण-सम्मत है पर है अब भी कृत्रिम।

[कथा महाभारत से उद्धृत। विस्तृत कथा 'जैमिनी अश्वमेध' में वर्णित है।]

बभ्रुवाहन[२]—अर्जुन के पुत्र।
—(**बभ्रुवाहन**)

बम्बई[१]—मनोहरदास की बम्बई में भी दुकान थी। —(**अमिट स्मृति**)

बम्बई[२]—बम्बई का-सा सूरत कहीं नहीं मिलता। दे० सूरत। —(**आंधी**)

बम्बई[३]—यहाँ की चूड़ियाँ।
—(**चूड़ीवाली**)

बम्बई[४]—दे० कलकत्ता। **—तितली, १७**

बम्बई[५]—व्यापार-केन्द्र, अमरनाथ बनर्जी की एक दुकान यहां भी थी।

—(मदनमृणालिनी)

[साधारण-सा टापू था। पुर्तगाल की राजकुमारी को दहेज में मिला और उसके पति चार्ल्स ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को १६६१ ई० में किराए पर दे दिया। धीरे-धीरे भारत का दूसरा महानगर बन गया।]

बरना—दे० मुकुन्दीलाल। **—तितली, ३-७**

[= वरुणा नदी।]

बरुणा— **—(अरी बरुणा की०)**

[काशी के निकट गंगा में आ मिलने वाली नदी]

बरस पड़े अश्रु-जल, हमारा मान प्रवासी हृदय हुआ—सरमा का गीत। एक क्षण का परिहास था, फिर वह निर्दय रूठ गया और लौट कर नहीं आया, जीवन भर का रोना रह गया। अब तो उसके और मेरे बीच में खाई है, मिलन कैसे हो! **—जनमेजय का नाग-यज्ञ, २-५**

बर्बर—यहां की दासियां भारत में आकर बिकती थीं। **—इरावती, ८**

[= उत्तरी अफ्रीका।]

बलदाऊ—किशोरी का पुराना विश्वस्त नौकर। **—कंकाल, १-१**

बल-प्रयोग—बल का प्रयोग वहाँ करना चाहिए जहां उन्नति में बाधा हो। केवल मद से उस बल का दुरुपयोग न होना चाहिए। (तुर) **—जनमेजय का नाग-यज्ञ, १-३**

बलराज—वीर जाट योद्धा, स्वाभिमानी, प्रेमी युवक। पहाड़ के ढोके-सी काया, जिसमें असुर-सा बल होने का लोग अनुमान करते। हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान से उसे गहरा प्रेम है। **—(दासी)**

बलवन्तसिंह—(रसिया बालम) आदर्श प्रेमी। उसके प्रेम की अनेक बार परीक्षा हुई। उसने निराशा में आत्महत्या करनी चाही, अपने खून से प्रेमिका को पत्र लिखा, पहाड़ी काट कर झरना बनाने का प्रयत्न किया और अन्त मे प्राण अर्पित कर दिया। वह प्रेम की परीक्षा में सफल हो गया। रसिया नाम से उसकी रसिकता टपकती है। **—(रसिया बालम)**

बल वा बुद्धि—जिसकी भुजाओं में बल न हो उसके मस्तक में तो कुछ होना चाहिए। (रामगुप्त) **—ध्रुवस्वामिनी, पृ० १८**

बलि—दे० वामन।

[विरोचन का पुत्र दैत्यराज, प्रह्लाद का पौत्र, इन्द्र को पराजित कर के अश्वमेध का आयोजन किया। इन्द्र के कहने पर विष्णु ने वामन अवतार लेकर तीन पद भूमि मांग ली। विष्णु ने एक पद से पृथ्वी, दूसरे से स्वर्ग और तीसरे मे बलि की देह को लांघ लिया। अन्त मे बलि को इन्द्र-पद प्रदान कर के उसे सुतल स्वर्ग में भेज दिया।]

बलि-वध—दे० पतंजलि।

बल्लो—वह अपनी किताब लेकर आती, तारा उसे कुछ बताती। **—कंकाल, १-३**

बसरा—अकबर के भवन का द्वार बसरा के 'गुलाब' से वासित हो रहा था। यहाँ का मुश्क प्रसिद्ध है। **—महाराणा का महत्त्व**

[मेसोपोटामिया का प्रधान नगर और व्यापार-केन्द्र।]

बहार—वह शेख के स्वर्ग की अप्सरा थी। विलासिनी बहार एक तीव्र मदिरा की प्याली थी। गुल इस पर उन्मत्त हो गया था। —(**स्वर्ग के खंडहर में**)

बहुत छिपाया उफन पड़ा अब—२० पंक्तियों के इस सुन्दर गीत में श्यामा शैलेन्द्र के प्रति अपने प्रेम का उद्घाटन करती हुई कहती है—हे प्रिय, मेरा प्रेम आग की तरह चमक उठा है, अब छिपाए छिपा नहीं रह सकता है। चांद के बिना शून्य आकाश की तरह तुम्हारे बिना मेरा हृदय शून्य हो जायगा। कोकिला और पपीहे की पुकार न सुनने वाले बादल की तरह क्या तुम भी निष्ठुर हो जाओगे। तुम्हारे वास के लिए मेरी 'हृदय कुटी स्वच्छ हो गई है'। तुम्हारे स्वागत में 'पलक पांवड़े बिछा चुकी हूँ।' आओ, इसे आबाद करो। नहीं तो इसे कुचल दो। मैं इसे भी प्रेम की विजय समझूंगी। —**अजातशत्रु, २-२**

बाथम—अँग्रेज व्यापारी जो प्राचीन-कला सम्बन्धी भारतीय वस्तुओं का व्यवसाय करता है। एक भारतीय नारी, मारगरेट लतिका, से विवाह कर लिया है। वह इतना अल्पभाषी और गम्भीर है कि पड़ोस के लोग उसे साधु साहब कहते हैं। भारतीय गार्हस्थ्य-जीवन उसे बहुत पसन्द है। लतिका ने घंटी के प्रसंग के बाद उसे बहुत लताड़ा। "तुम जितने भीतर से क्रूर और निष्ठुर हो, यदि ऊपर से भी व्यवहार रखते तो तुम्हारी मनुष्यता का कल्याण होता। तुम अपनी दुर्बलता को परोपकार के पर्दे में क्यों छिपाना चाहते हो। नृशंस!..." लतिका से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने के बाद वह घंटी के साथ पादरी जान के बंगले में रहने लगा। —**कंकाल**

बादरायण—भगवान् बादरायण के रहते यह गृह-युद्ध क्योंकर हुआ।

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-१**

[=वेदव्यास]

बार्टली—बड़े कठोर थे। दया तो उनके पास फटकनी न थी। —**तितली**

बार्हद्रथ, वीर—कृष्ण-कथा के प्रसंग में।

—(**कुरुक्षेत्र**)

[=जरासन्ध, मगध के राजा, जिनकी राजधानी गिरिव्रज थी।]

बाल-क्रीड़ा—सर्वप्रथम इन्दु, कला ३, किरण २, कार्तिक '६८ में प्रकाशित। छः छः पंक्तियों के तीन छन्द। बच्चे, अपनी क्रीड़ा में इतने व्यस्त हो कि किसी की सुनते ही नहीं हो। कांटों की परवाह न करके तुम उपवन के फलफूल पाने को बढ़ते हो, माली बकबक करता है, पर जब तुम हँस देते हो तो उसका क्रोध जाता रहता है।

राजा हो या रंक एक ही-सा तुमको है
स्नेह-योग्य है वही हँसाता जो तुमको है।

तुम अपनी मनोकामना पूरी पाते हो तो प्रसन्न हो जाते हो। बूढ़े कोई गल्पकथा सुनाने ही लगते हैं कि तुम पहले ही हँस

पड़ते हो। लगता है तुम्हें कहीं आनन्द की ढेरी मिल गई है। —कानन-कुसुम

बालि—दे० लंका। —स्कन्दगुप्त, १

[किष्किंधा का वानर राजा, अंगद का पिता और सुग्रीव का भाई जो राम के हाथों मारा गया।]

बाली—द्वीप, जिसका वाणिज्य बुद्धगुप्त के हाथ में हो गया। —आकाशदीप

—बाली और जावा इत्यादि के मन्दिरों में अभिनय के दृष्टान्त मिलते हैं।

—(रंगमंच, पृ० ७३)

[पूर्वी द्वीपों में प्रसिद्ध, प्रथम शती से भारतीय उपनिवेश।]

बालू की बेला—१० पंक्तियों की लघु कविता। स्नेहहीन प्रियतम, जीवन के इस मेले में तुम्हें भीड़ के रेले में ही मिलना चाहता हूँ। मैंने इस प्रेम की राह में बहुत दुःख झेले है, तुम चाहे हँसी उड़ाओ। संयोग का मधुर गीत गाने दो, 'गलबांहीं दे हाथ बढ़ाओ'—मेरे आत्म-समर्पण से भी क्या द्रवित नहीं होगे? निठुर, इन्हीं चरणों में मैं

रत्नाकर हृदय उलीच रहा
पुलकित, प्लावित रहो,
बनो मत सूखी बालू की बेला।

—झरना

बाह्लीक—भारत का एक प्रदेश।

—(स्वर्ग के खंडहर में)

[बाक्त्रिया, वर्तमान अफगान तुर्किस्तान, वंक्षु (आमू) नदी के दक्षिण में स्थित मैदान।]

बिखरा हुआ प्रेम—कविता। जीवन के 'अरुणोदय में चंचल होकर, व्याकुल हो विकल प्रेम से', मैंने तारों का विनाश देखा, मोह से व्याकुल होकर मैं अधीर हो गया और फिर जीवन के निगूढ़ आनन्द को टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिया। किन्तु, नील निशा के शून्य गगन में वह आशा-तारा बन कर फिर प्रादुर्भूत हुआ। तब मैंने सोचा—आह मैं व्यर्थ ही रिक्त हो गया। मेरे अभिमान ने मुझे व्यर्थ ही अकिंचन कर दिया। वह सारा प्रेम बिखर गया। अब बूंद-बूंद सींचने से सम्पूर्ण अणु कैसे भीग सकते हैं। इनको प्लावित करने के लिए प्रेम-सुधाकर चाहिए। —झरना

बिखरी किरन अलक व्याकुल हो विरस वदन पर चिन्ता लेख—अलका के इस गीत में नाटककार ने उसके जीवन के व्यग्र अंश, उसकी संघर्षमय स्थिति को प्रगट किया है।

प्रिय नहीं आ रहे, आंखें प्यासी हैं, कुछ प्रणय-अवधि शेष है। इसी से आशा बनी है। परन्तु, यदि प्रकृति इस समय मेरे स्वर में स्वर नहीं मिला सकती तो मेरे गान को रूपनिशा की उषा में फिर कौन सुनेगा। —चन्द्रगुप्त, २-८

बिन्दो—काशी की विधवा और उसका अपराध है यौवन और रूप की सम्पत्ति।

—(घीसू)

बिम्बसार—मगध का सम्राट्, अजातशत्रु का पिता। शान्तिप्रिय, सहनशील, निराभिमानी, परन्तु राज्य के भौतिक

सुख से अभी उसकी तृप्ति नहीं हुई। अपने पुत्र अजातशत्रु और छोटी रानी से अधिकार-वंचित होकर भी उसकी मोहमाया और तृष्णा बनी है। इसी से वासवी यह प्रबन्ध करना चाहती है कि काशी का राजस्व अजात को न मिले, इन्हें दिया जाए। काशी के लिए दो युद्ध होते हैं। इन परिस्थितियों ने बिम्बसार को निराशावादी दार्शनिक बना दिया है। राग-विराग का द्वन्द्व, दार्शनिक अकर्मण्यता, नियति पर विश्वास, भावुकता आदि उसके चरित्र के मुख्य लक्षण हैं। वह छलना और अजात के क्रूर एवं दुर्विनीत आचरणों से बहुत दु:खी रहता है, मन को समझाता है, पर वह निराशावादी हो गया है। झगड़े उसे पसन्द नहीं हैं। वासवी के कहने पर राज्य का त्याग किया, तो अन्तर्मुखी और उदास हो गया और अकर्मण्य बन गया। संसार का विद्रोह, संघर्ष, हत्या, अभियोग, षड्यंत्र उसे नास्तिक बना देता है। नाटक के अन्त में उससे एकसाथ पुत्र और पत्नी क्षमा मांगते हैं, पौत्र का जन्म होता है। उसका विषाद वात्सल्य में परिणत हो जाता है। हर्षातिरेक को वह सँभाल नहीं सकता और पटाक्षेप के साथ लुढ़क जाता है। —अजातशत्रु

बिम्बसार के विंध्यसेन और श्रेणिक नाम भी मिलते हैं। (दे० मगध[१], मगध[११] भी।) उस समय मगध की राजधानी राजगृह थी। राजा ने अनेक वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए थे। उसकी प्रमुख रानियों में प्रसेनजित की भगिनी कोशलदेवी, लिच्छवी-वंश के राजा चेटक की पुत्री छलना और भद्र (मध्य पंजाब) की कुमारी क्षेमा थी। (J. R. A. S. 1915, पृ० १४६, तथा Lectures on the Ancient History of India by H. Ray Chaudhri.) अजातशत्रु ने पिता को बन्दीगृह में डाल दिया और निराहार रख कर मृत्यु की अवस्था तक पहुँचा दिया।

—अजातशत्रु, कथा-प्रसंग

बिल्फर्ड—सिपाही-विद्रोह में घबराया हुआ अँग्रेज। नील की कोठी वाले। —(शरणागत)

बिसाती[१]—प्रेम, प्रतीक्षा और निराशा की कहानी। शीरीं का प्रेमी रुपया कमाने हिन्दोस्तान चला गया। महीनों हो गए, वह लौटा नहीं। माता-पिता ने शीरीं का विवाह एक धनी पठान सरदार से कर दिया। एक दिन एक युवक पीठ पर गट्ठर लादे इनके बगीचे में आ गया और अपना सामान खोल कर सजाने लगा। सरदार ने अपनी पत्नी के लिए उपहार खरीदना चाहा। युवक बोला—"मैं उपहार देता हूँ, बेचता नहीं।" सरदार ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—"तब मुझे न चाहिए, ले जाओ, उठाओ।" बिसाती अपना सामान छोड़कर चला गया। गहरी चोट और पुरानी स्मृति की व्यथा को वहन करते, कलेजा थामे, शीरीं गुलाब की

झाड़ियों की ओर देखने लगी। सरदार ने पूछा—"क्या देख रही हो?" बोली—"मेरा एक पालतू बुलबुल शीत में हिन्दोस्तान की ओर चला गया था। वह लौट कर आज सबेरे दिखलाई पड़ा, पर जब वह पास आ गया और मैंने उसे पकड़ना चाहा तो वह उधर कोहकाफ़ की ओर भाग गया।" सरदार ने हँसकर कहा—"फूल को बुलबुल की खोज? आश्चर्य है।" शीरीं ने बोझ को उतार लिया, पर दाम नहीं दिया।

कहानी बहुत सुन्दर और मनोवैज्ञानिक है। इसकी नाटकीय शैली और काव्यात्मक भाषा बड़ी सरस है। कहानी रसपूर्ण है। —आकाशदीप

बिसाती[२]—मैं उपहार देता हूँ, बेचता नहीं। ये विलायती और काश्मीरी सामान मैंने चुन कर लिए हैं। इनमें मूल्य ही नहीं हृदय भी लगा है। ये दाम पर नहीं बिकने।—इसी से उसका प्रेमी रूप व्यक्त हो जाता है। —(**बिसाती**)

बीती विभावरी जाग री—ऊषा निकल आई, तारे डूब गए, सुबह हो गई, पक्षी बोलने लगे, फूल खिल उठे, लतिका मुकुल में रस-गागरी भर लाई है। पर तुम मदमत्त सोई हो, जागो।—इस गीत का राष्ट्रीय भाव भी हो सकता है। —**लहर**

बीरू बाबू—कलकत्ता का युवक जिसे मधुबन ने रहीम आदि के गुण्डों से बचाया और जिसने मधुबन को नौकर रख लिया। इस दल का संयोजक था। नती, सुरेन इसके सदस्य थे। बीरू ने परोपकार दृष्टि से ही इस दल का संगठन किया था। उसकी आस्तिक बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। जब अनायास, अर्थात् बिना किसी पुलिस के चक्कर में पड़े, कोई दल का सदस्य अर्थलाभ कर ले आता, तो उसे ईश्वर को धन्यवाद देते हुए वह पवित्र धन मानता। थोड़ा-बहुत पढ़ा था। बंगाल की पत्रिकाओं में दरिद्रों की सहानुभूति में बराबर लेख लिखा करता। रामदीन के कथनानुसार वह बड़ा ढोंगी और पाजी था। वह बड़ा मतलबी भी था। वही बीरू, जो परोपकार-संघ के लोगों को सादा भोजन करने का उपदेश देता था, मालती के संग में भारी पियक्कड़ बन गया। —**तितली, खंड ४**

बुद्ध[१]—गौतम बुद्ध से भारत का ऐतिहासिक काल माना जाता है।

—**अजातशत्रु, कथा-प्रसंग**

बुद्ध[२]—पगली (तारा) मोहन को बुद्ध का रूप मान कर पूजती थी।—**कंकाल, ४-१**

बुद्ध[३]—'राज्यश्री' नाटक के अंतिम दृश्य बुद्ध प्रतिमा के सम्मुख होते हैं। दे० बुद्धदेव, गौतम भी।

[बुद्ध के जीवन-काल के विषय में विद्वानों का मतभेद है। प्रायः जन्म ५६३ ई० पू० और निर्वाण ४८३ ई० पू० में माना जाता है।]

बुद्धगुप्त—जलदस्यु-सरदार, ताम्रलिप्ति का क्षत्रिय युवक, वीर, साहसी, दुर्दान्त, और हत्या-व्यवसायी। इसने द्वन्द्व-युद्ध में पोत-नायक को पछाड़ दिया। मणिभद्र के पोत को वश में कर लिया।

अनेक द्वीपों पर अधिकार जमाया और एक द्वीप का नाम अपनी प्रेयसी के नाम पर चम्पा रखा। प्रेम में दृढ़ और विनत। जिसके नाम से बाली, जावा और चम्पा का आकाश गूंजता था, पवन थर्राता था—वह घुटनों के बल चम्पा के आगे झुका था। उसने चम्पा के पैर पकड़ लिए। जब चम्पा को विश्वास हो गया कि वह उसके पिता का हत्यारा है, उसे आत्मसमर्पण कैसे करे, तो यह बेचारा अत्यन्त उद्विग्न हुआ। वह ईश्वर को नहीं मानता, पाप को नहीं मानता, दया को नहीं समझ सकता, उस लोक में विश्वास नहीं करता था, लेकिन अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा थी। उसका प्रेम निराश रहा। —आकाशदीप

बुद्धदेव—केवल प्रतिमा, रामनिहाल के कमरे में, सुन्दर सागवान की मेज पर, हँस रही थी। —(सन्देह)

बुद्धू—मुकुल उदाहरण देता है कि संसार में दुःख है जैसे बुद्धू के घर की काली-कलूटी हांड़ी भी कई दिन से उपवास कर रही है। —एक घूंट

बुध—इला के पति पुरुरवा के पिता। —उर्वशी-चम्पू, कथामुख

[वृहस्पति की स्त्री तारा के गर्भ से चन्द्रमा का पुत्र। इला वैवस्वत मनु की पुत्री थी। दे० इला, इड़ा।]

बुधुआ—रहमत की झोंपड़ी में मिरजा जमाल का एक नौकर जिसने सूचना दी कि गूजरों का डाका पड़ने वाला है। —कंकाल, ३-६

बुराई का वट-बीज—न जाने कब, हृदय की भूमि सोंधी होकर वट-बीज-सी बुराई की छोटी बात अपने में जमा लेती है। उसकी जड़ें, गहरी और गहरी भीतर-भीतर घुस कर अन्य मनोवृत्तियों का रस चूस लेती हैं। दूसरा पौधा आस-पास का निर्बल ही रह जाता है। —तितली, ३-४

बूटी—पहाड़ पर मालती की परिचारिका, नाटी सी गोल-मटोल स्त्री, गेंद की तरह उछलती चलती। बात-बात पर हँसती और फिर उस हँसी को छिपाने का प्रयत्न करती रहती। बूटी साधारण मजूरी करके स्वस्थ, सुन्दर, आकर्षक और आदर की पात्र बनी है। उसका यौवन ढालवें पथ की ओर मुंह किए है, फिर भी उसमें कितना उल्लास है। मालती से दो बरस बड़ी है, पर उसकी जीवन की कल्पना जवान है। —(परिवर्तन)

बृहदारण्यक—उपनिषद्। उस में के उद्धरण:—

मूर्त्त अमूर्त्त का उल्लेख —काव्य और कला, पृ० ८

मूर्त्त अमूर्त्त दोनों में रूपत्व का आरोप —वही

आत्मा मनोमय, वाङ्मय और प्राणमय है। —वही, पृ० १०

प्राणशक्ति सम्पूर्ण अविज्ञात (रहस्य) वस्तु को अधिकृत करती है। —वही, पृ० १३

समता के आधार पर भक्ति अर्थात् सख्यभावना। —(रहस्यवाद, पृ० २७)

[यह शतपथ ब्राह्मण का चौदहवां काण्ड और शुक्ल यजुर्वेद का अंतिम भाग है। वार्त्तालाप के रूप में आत्मा, सृष्टि और ब्रह्म, मुक्ति आदि विषयों की व्याख्या की गई है।]

बेगम सुलताना—सम्राट् अकबर की एक पत्नी। — (नूरी)

बेड़ी—यह भी एक भावपूर्ण यथार्थोन्मुख लघु कथा है। एक अंधा बूढ़ा अपने ९–१० वर्ष के लड़के की सहायता से भीख मांग कर उदर-पालन करता था। एक दिन बूढ़े के कुछ पैसे चुरा कर वह लड़का कलकत्ता भाग गया। कुछ दिन बाद चौक में वही बुड्ढा उसी लड़के के सहारे फिर दिखाई पड़ा। पूछने पर बुड्ढा बोला—बाबू जी यह नहीं भाग सकेगा, इसके पैरों में बेड़ी डाल दी गई है। हे भगवान्, भीख मंगवाने के लिए, पेट के लिए, बाप अपने बेटे के पैरों में बेड़ी भी डाल सकता है। एक दिन फिर...लड़का कचालू के लिए मचल गया। पैसे लेकर वह सड़क के उस पार जाने लगा कि नवीन बाबू की मोटर के नीचे आ गया। लोग बूढ़े को बेड़ी के लिए कोसने लगे। वह बोला—"काट दो बेड़ी बाबा, मुझे न चाहिए।" लेकिन लड़के के प्राण पखेरू अपनी बेड़ी काट चुके थे।

बूढ़े और लड़के के जीवन की चार झांकियां हैं जिनका चित्र कहानीकार ने अपने शब्दों में उपस्थित किया है। कहानी करुणापूर्ण और कलात्मक है। —आंधी

बेला—बेला बेड़िन थी। मां के मर जाने पर अपने शराबी और अकर्मण्य पिता के साथ वह कंजड़-दल में गायिका थी। बेला साँवली थी। जैसे पावस की मेघमाला में छिपे हुए आलोक-पिंड का प्रकाश निखरने में अदम्य चेष्टा कर रहा हो, वैसे ही उसका यौवन सुगठित शरीर के भीतर उद्वेलित हो रहा था। गोली के स्नेह की मदिरा से उसकी कजरारी आंखें लाली से भरी रहतीं। वह चलती तो थिरकती हुई, बातें करती तो हँसती हुई। एक मिठास उसके चारों ओर बिखरी रहती। पहले भानुमती का खेल करती थी। लोगों को इसका गाना अधिक पसन्द था।...छींट का घाघरा और चोली, उस पर गोटे से टंकी हुई ओढ़नी सहज ही खिसकती रहती। कहना न होगा कि आधा गांव उसके लिए पागल था।...उसके हृदय में विश्वास जम गया था कि भूरे के साथ घर बसाना गोली के प्रेम के साथ विश्वास-घात करना है। उसका वास्तविक पति तो गोली ही है।...उसके हृदय में वसन्त का विकास था। उमंग में मलयानिल की गति थी। कंठ में वनस्थली की काकली थी। आंखों में कुसुमोत्सव था और प्रत्येक आंदोलन में परिमल का उद्गार था। उसकी मादकता

बरसाती नदी की तरह वेगवती थी।
कहानी के उत्तरार्ध में वह निष्क्रिय सी है। —(इन्द्रजाल)

बैजू बावरा—संगीत नायक जिन्होंने सिद्धों की परम्परा में अपनी ध्रुपदों में योग का वर्णन किया है।
—(रहस्यवाद, पृ० ३७)

[अकबर के समय में इन्होंने तानसेन को संगीत-प्रतियोगिता में परास्त किया था।]

बोधीसिंह (ठाकुर)—नन्हकू से कभी कहा-सुनी हो गई थी। चार-पांच वर्ष के बाद बोधीसिंह के लड़के की बरात आ रही थी कि नन्हकू ने कहा—इधर से बरात नहीं जाने पाएगी। बोधीसिंह ने बहुत सुन्दर शब्दों में नन्हकू को प्रसन्न कर दिया—बेचारा डरता था। बरात नन्हकू सिंह लेकर गए, समधी बन कर। —(गुण्डा)

ब्रजकिशोर—मनोरमा को फुसलाने वाला, चालाक आदमी। वह चाहता है कि मोहन-लाल अदालत से पागल मान लिए जायें और वह स्वयं उनकी सम्पत्ति का प्रबन्धक बना दिया जाय, क्योंकि वह ही मोहनलाल का निकट सम्बन्धी था। —(सन्देह)

ब्रजराज—पत्नी ने इन्हें अड़ियल टट्टू कह दिया। इन्हें मिन्ना के साथ खेलने में, झगड़ा करने में और सलाह करने में ही संसार की पूर्ण भावमयी उपस्थिति हो जाती। ड्राइवर हो गया, बड़ा फुर्तीला आदमी था। जीवन से वैराग्य-सा हो गया। था बड़ा भलामानुस। —(भीख में)

ब्रह्मा[1]— —अजातशत्रु, १-६

ब्रह्मा[2]— —तितली, ४-२

ब्रह्मा[3]— —(पंचायत)

[त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) में प्रथम। प्रथम प्रजापति। इन्हें स्वयंभू के स्खलित वीर्य से, विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल से पैदा हुआ माना जाता है। सरस्वती के पिता और पति। इनकी कहीं पूजा नहीं होती। सृष्टि की रचना करने का काम इनके जिम्मे है—इसी लिए इन्हें विरंचि कहते हैं।]

ब्रह्मर्षि—प्रसाद की सर्वप्रथम कथा। इन्दु, किरण ९, चैत्र '६७ में प्रकाशित। इसमें विश्वामित्र के क्षत्रियत्व और वशिष्ठ के ब्राह्मणत्व के द्वन्द्व का कथानक है। इस कथा का विकसित रूप 'करुणालय' में प्रगट होता है। पौराणिक आधार पर लिखी इस कहानी में कवि की सुन्दर प्रांजल भाषा के दर्शन होते हैं। वशिष्ठ भगवान् अग्निहोत्र-शाला को आलोकमय किए विराजमान हैं। रघुकुल-श्रेष्ठ महाराज त्रिशंकु ने पूछा—"भगवन्, क्या कोई ऐसा यज्ञ है जिससे मानव शरीर के साथ स्वर्ग जाने का फल मिल सके।" उत्तर मिला—"नहीं।" त्रिशंकु ने वशिष्ठ पुत्रों से यही पूछा। उन्होंने इसे डांटा—"गुरु पर इतना अविश्वास! तुझे चाण्डालत्व प्राप्त होना चाहिए।" श्रीभ्रष्ट त्रिशंकु विलाप करता हुआ जा रहा था कि सहसा नारद का दर्शन हुआ। नारद ने उसे एक कथा सुनाई—"विश्वामित्र नामक राजा अपनी

चतुरंगिनी सेना लिए हुए वशिष्ठाश्रम में आया। जाते समय वह वशिष्ठ से कामधेनु मांगने लगा। जब उन्होंने न दिया तो उन्हें दुःख देने लगा। उसके सैनिकों ने तपोवन घेर लिया। पल्लव-देशीय मनुष्यों की युद्ध-यात्रा हो रही थी। उन्होंने विश्वामित्र को ससैन्य भगा दिया। वह शंकर को प्रसन्न करने लगा। धनुर्वेद का ज्ञान पाकर उसने फिर वशिष्ठाश्रम में आकर ब्रह्मर्षि वशिष्ठ पर वार किया। उनकी ब्रह्म-तेजमय सहिष्णुता ने उसे परास्त किया। अब वह और अधिक तपस्या कर रहा है।"—त्रिशंकु यह सुन कर विश्वामित्र के पास पहुंचा। विश्वामित्र ने सहर्ष यज्ञ-समारोह आरंभ किया। वशिष्ठ-पुत्रों ने देवगण को जाने न दिया। विश्वा-मित्र के अग्न्यास्त्र रूपी श्राप से वशिष्ठ-पुत्र भस्मीभूत हुए और त्रिशंकु स्वर्ग में तो न जा सके, पर एक नक्षत्र के रूप में स्थित हुए। विश्वामित्र को लोग 'ऋषि' कहने लगे। शुनःशेफ के स्थान पर अपने एक पुत्र को महाराज हरि-श्चन्द्र के यज्ञ का यज्ञपशु बना कर विश्वामित्र ने इन्द्र को प्रसन्न कर लिया और वह 'राजर्षि' कहलाने लगा। और तप करके उसने 'महर्षि' पद को प्राप्त किया। भगवान् वशिष्ठ ने विश्वामित्र के तप की अरुन्धती से बड़ी प्रशंसा की। विश्वामित्र उनकी सहनशीलता देख लज्जित हुआ और क्षमा-याचना की। वशिष्ठ ने कहा—"ब्रह्मर्षि, शान्त होवो। परम शिव तुम्हें क्षमा करेंगे।" दोनों ब्रह्मर्षियों का महा-सम्मेलन गंगा-यमुना के समान पवित्र—पुण्यमय था, ब्राह्मण और क्षत्रियों के हेतु वह एक चिरस्मरणीय शर्वरी थी। —**चित्राधार**

ब्राह्मण—ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है; स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है। ..ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रखने पर भी, स्वेच्छा से इन माया-स्तूपों को ठुकरा देता है। प्रकृति के कल्याण के लिए अपना दान देता है। (चाणक्य) —**चन्द्रगुप्त, १-१**

(ब्राह्मण) त्याग और क्षमा, तप और विद्या, तेज और सम्मान के लिए है—लोहे और सोने के सामने सिर झुकाने के लिए हम लोग ब्राह्मण नहीं बने हैं। (चाणक्य) —**चन्द्रगुप्त, १-७**

धर्म के नियामक ब्राह्मण हैं।... ब्राह्मणत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि-वैभव है। (चाणक्य) —**चन्द्रगुप्त, १-९**

ब्राह्मण राज्य करना नहीं जानता, करना भी नहीं चाहता; हां, वह राजाओं का नियमन जानता है; राजा बनाना जानता है। (चाणक्य) —**चन्द्रगुप्त, ३-२**

मेघ के समान मुक्त वर्षा का जीवन-दान; सूर्य्य के समान अबाध आलोक विकीर्ण करना; सागर के समान कामना-नदियों को पचाते हुए सीमा के बाहर न जाना; यही तो ब्राह्मण का आदर्श है। (चाणक्य) —**चन्द्रगुप्त, ४-८**

राजा न्याय कर सकता है ; परन्तु ब्राह्मण क्षमा कर सकता है। (चाणक्य)

—चन्द्रगुप्त, ४-१५

सन्तुष्ट रहने पर ही ब्राह्मण राष्ट्र का हित-चिन्तन करते हैं। (तुर) राष्ट्र के नियमन का अधिकार ब्राह्मणों को है। (काश्यप)

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, १-३

सहनशील होना ही तो तपोधन और उत्तम ब्राह्मण का लक्षण है। (शौनक)

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-८

इन्हीं महात्मा ब्राह्मणों की विशुद्ध ज्ञान-धारा से यह पृथ्वी अनन्त काल तक सिंचित होगी, लोगों को परमात्मा की उपलब्धि होगी, लोक में कल्याण और शान्ति का प्रचार होगा। सब लोग सुखपूर्वक रहेंगे। (व्यास) —वही

ब्राह्मण केवल धर्म से भयभीत है। अन्य किसी भी शक्ति को वह तुच्छ समझता है। (पुरोहित)

—ध्रुवस्वामिनी, पृ० ७८

भ

भक्ति—इन्दु, कला १, होलिकांक, फाल्गुन '६६ में प्रकाशित, 'चित्राधार', १९८५, में संगृहीत निबन्ध। इस लघु निबन्ध में श्रद्धा और भक्ति, एवं भक्ति और मुक्ति का अन्तर बड़ी तर्कपूर्ण और भावगर्भित शैली में समझाया गया है। श्रद्धा के जिस अलौकिक स्वरूप का विकास आगे चलकर 'कामायनी' में हुआ उसका प्रथम आभास इस लेख द्वारा मिलता है। श्रद्धा के परिपाक में भक्ति से उसे मनुष्य कहता है—"सत्यं," जब उसके मंगलमय स्वरूप को देखता है तब उसके मुख से अनायास ही—"शिवं" निकलता है, पुनः मनुष्य उस अलौकिक सौन्दर्य से आनन्दित होकर कहता है—"सत्यं शिवं सुन्दरम्।" 'निराशा में, अशान्ति में, सुख में उस अपूर्व सुन्दर चन्द्र की भक्तिरूपी किरणें तुम्हें शान्ति प्रदान करेंगी। ..तुम्हारे पास चिन्ता, निराशा कभी फटकने न पावेगी।' —चित्राधार, पृ० १३८

भक्ति-योग—इन्दु, कला ४, खंड १, किरण ४, अप्रैल १९१३, में प्रकाशित लम्बी कविता—७२ पंक्तियों में। सूर्य अस्त हो रहा था, उसकी प्रभा मलिन होती जा रही थी और मुख पीला पड़ गया था, पत्तियां भी दूर हटती जा रही थीं—सब सुख के ही साथी होते हैं ना! नदी का कलनाद तो था, पर शैल शान्त था, पौधों पर कुसुम खिल रहे थे। एक भक्त (कवि) बद्ध-पद्मासन, चिन्तित मन, कान्त ललाट, प्रफुल्लित हृदय शिला पर ध्यान-मग्न बैठा था। वह विश्व की आलोक-मणि की खोज में उद्विग्न था, प्रति श्वास में अपने इष्ट का आवाहन करता था। इतने में मंजीर की ध्वनि हुई और एक सुन्दरी उसके सामने आ खड़ी हुई, बोली—

"भक्तवर! आप किस झंझट में पड़ गए हैं, आपको मित्र, सम्पत्ति, सुन्दरी आदि का सुख लूटना चाहिए। विश्व का आनन्द मंदिर इसी प्रकार न खो दो। सुख छोड़कर किसके कुहक जाल में पड़े हो। संसार तेरा कर रहा है स्वागत चलो सब ठीक है।" भक्त आनन्द विभोर हो उठा। उसे सर्वत्र मित्र दिखाई देने लगे। बोला—"हमें जो सुख मिलता है उसके सामने जगत्-सुख-भोग फीके हैं। वह प्रेममय सर्वेश सब में व्याप्त है।

फिर वह हमारा, हम उसी के,
वह हमी, हम वह हुए।
तब तुम न मुझसे भिन्न हो,
सब एक ही फिर हो गए॥

उसकी कृपा हमारे लिए अत्यन्त आनन्द है। मत-धर्म से ऊपर हम उसी के प्रेम के मतवाले हैं। यह सुन वह सुन्दरी भी आनन्द-मग्न हो गई। —**कानन-कुसुम**

भटार्क—मगध का नवीन बलाधिकृत, वीर, साहसी और महत्त्वाकांक्षी जो साम्राज्य का शत्रु सिद्ध होता है। "तू देश-द्रोही है। तू राजकुल की शान्ति का प्रलय-मेघ बन गया; और तू साम्राज्य के कुचक्रियों में से एक है। ओह! नीच! कृतघ्न!" (कमला) —**स्कन्दगुप्त, २**

कुसंग में पड़कर उसकी असद्वृत्तिया और सत्संग में सद्वृत्तियां प्रस्फुटित होती हैं। अनन्तदेवी के वाग्जाल में फँसकर पुरगुप्त को मगध के सिंहासन पर बैठाने के लिए उसका प्रतिश्रुत होना बड़ी भारी भूल है। वह अनेक षड्यंत्रों में पड़ जाता है। कुमार गुप्त की हत्या, देवकी की हत्या का षड्यंत्र, मालव में स्कन्द के विरुद्ध षड्यंत्र—ये सब उसी की बुद्धि की उपज हैं। नगरहार में कुभा का बांध खोलकर वह अपनी पिशाच लीला का बीभत्स रूप दिखाता है। अनन्त देवी काम-पिपासा-युक्त संकेतों से उसे अपनी ओर आकृष्ट करने की भरपूर चेष्टा करती है, किन्तु वह अपना चरित्र नही खोता। अपनी माता कमला की भर्त्सनाओं से वह पापपंक से निकलता है और अपने कर्मों पर पश्चात्ताप करने लगता है। उसकी सच्चरित्रता और मातृभक्ति उसे सन्मार्ग पर ले आती है। वह दृढ़निश्चय, चतुर और अनुशासनप्रिय वीर सैनिक है, इसमें कोई सन्देह नहीं। पर प्रतिशोध में अंधा हो वह न्याय-अन्याय का विचार नहीं करता, विलासिता को वीरता का भूषण मानता है। राजनीति को ठीक तरह नहीं समझता। परिस्थितियों के कारण वह आत्मतेज खो देता है, पर वह नीच नहीं है। उसका सत्पथ पर पुनः अग्रसर होना स्वाभाविक भी है और मंगलमय भी। —**स्कन्दगुप्त**

भट्टनायक—साधारणीकरण का सिद्धांत प्रचारित किया। —**(रस, पृ० ४४)**

[भरतमुनि के मतानुयायी, रस-सिद्धांत के आचार्य; इनकी कृति 'हृदय दर्पण' अब उपलब्ध नहीं है।]

भण्डि—राज्यवर्धन और हर्षवर्धन का सेनापति। —**राजश्री, २.२, -३, ४-४**

[भण्डि महारानी यशोमती (हर्ष की माता) के भाई का पुत्र था। उसने राजकुमारों के साथ ही शिक्षा पाई थी। अवस्था मे वह हर्षवर्धन और राज्यवर्धन से कुछ बड़ा था।]

भद्रक—जनमेजय का शिकारी।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ

भरत[१]— —(चित्रकूट)

[कैकेयी के पुत्र, राम के भाई और भक्त।]

भरत[२]—दे० इक्ष्वाकु। —(प्रेम-राज्य)

भरत[३]— —(सत्यव्रत)

भरत[४]—सर्वप्रथम इन्दु, कला ४, खंड १, किरण १, जनवरी १९१३ में प्रकाशित कविता। हिमगिरि का एक रम्य शृंग है। प्रातः की रवि-रश्मियों से वह मणिमय हो उठा है। निकट ही काश्यप ऋषि कण्व का रमणीक आश्रम है। यहीं एक सुन्दर बालक सिंह के शिशु से खेल रहा है। खोल-खोल, मुख, सिंह-बाल ! इस वीर बालक के औद्धत्य को देखकर सिंहिनी क्रोध से गरजने लगी। वह रोष से तन कर बोला—क्रीड़ा मे बाधा दोगी तो पीट दूंगा, चली जा, भाग जा। अरे, यह वीर बालक कौन है ? यही 'भरत' वह बालक है, जिस नाम से 'भारत' संज्ञा पड़ी इसी वर भूमि की। शकुन्तला और दुष्यन्त का पुत्र है जिसने भारत का साम्राज्य स्थापित किया। इस अतुकांत कविता में देशप्रेम की भावना प्रबल है। —कानन-कुसुम

भरत[५]—निर्भीक वीर जिसके नाम पर 'भारत' नाम पड़ा। जिसने—

भारत का साम्राज्य प्रथम स्थापित किया
वही वीर यह बालक है दुष्यन्त का
भारतका शिरो रत्न 'भरत' शुभ नाम है।

—(भरत)

भरत[६]— —(वनमिलन)

[शकुन्तला से दुष्यन्त का पुत्र जिससे भारत नाम पड़ा। चक्रवर्ती राजा हुआ है। इसने ५५ अश्वमेध यज्ञ किए।]

भरत[७]—अमृत-मन्थन और त्रिपुरदाह नाम के नाटकों का उल्लेख मिलता है। (नाटयशास्त्र)

—(नाटकों का आरंभ, पृ० ५६)

भरत से पता चलता है कि देवासुर संग्राम के बाद इन्द्रध्वज के महोत्सव पर देवताओं ने नाटक का आरम्भ किया। —(वही, पृ०. ५८)

भरत ने, नाटय के साथ नृत्त का समावेश कैसे हुआ, इसका भी उल्लेख किया है। —(वही)

भरत ने लिखा है कि 'त्रिपुरदाह' के अवसर पर शंकर की आज्ञा से ताण्डव नृत्य की योजना इसमें की गई।

—(वही, पृ० ५९)

अत्यधिक गीत नृत्य मना है। —(वही)

भरत[८]—आत्मा का अभिनय भाव है (ना० शा० २६–३९)।

—(नाटकों में रस का प्रयोग, पृ० ५०)

अभिनय में इन्द्रिय के अर्थ को मन से भावना करनी पड़ती है।

—(वही, पृ० ५१)

नट में रसानुभूति की आवश्यकता।
—(वही)

भरत[9]—नाट्यशास्त्र में रंगशाला के निर्माण का विस्तृत वर्णन है।
—(रंगमंच, पृ० ६२)

भरत के समय में रंगमंचों में स्वाभाविकता पर ध्यान दिया जाने लगा था।
—(वही, पृ० ६८)

नाट्यशास्त्र के २६वें अध्याय में भावपूर्ण अभिनय का विस्तृत वर्णन है। —(वही, पृ० ६९)

भरत[10]—काव्य का पंचम वेद की तरह सर्वसाधारण में प्रचार था।
—(रस, पृ० ४०)

मूल रस चार हैं—शृंगार, रौद्र, वीर और बीभत्स। —(वही)

प्रमुख स्थायी मनोवृत्तियां विभाव, अनुभाव, व्यभिचारियों के संयोग से रसत्व को प्राप्त होती हैं।
—(रस, पृ० ४१)

नाट्य-प्रयोग एक यज्ञ है। —(वही)

शिलालिन, कृशाश्व और भरत आदि के ग्रन्थ अपनी आलोचना और निर्माण-शैली की व्याख्या के द्वारा रस के आधार थे। —(वही, पृ० ४२)

रस के लिए सामाजिकों या अभिनेताओं में सात्विक, आंगिक, वाचिक और आहार्य—इन चारों क्रियाओं की आवश्यकता है। —(रस, पृ० ४४)

भरत[11]—आनन्द के लिए नटराज के संगीतमय नृत्य की आवश्यकता है।
—(रहस्यवाद, पृ० ३६-३७)

[नाट्यशास्त्र के रचयिता, मुनि, समय प्रथम शताब्दी के आस-पास। दे० नाट्यशास्त्र।]

भरत खण्ड— —अजातशत्रु, २-१०

भरत नाट्य—दे० कला।

भरा नयनों में, मन में रूप—यह गीत देवसेना के भावी जीवन की सूचना देता है। जिस छलिया का रूप उसके 'नयनों में, मन में' भर गया है वह इस दृश्य के अन्त मे आना है। उसी की छवि सर्वत्र समायी है और मेरी आंखों में मद बन कर भरी है। वह मेरा जीवन-प्राण धूप-छांह खेलता फिरता है।

गीत में यौवन का उल्लास भरा है।
—(स्कन्दगुप्त, अंक १)

भव = शिव। —(धर्मनीति)

भवभूति—इनसे संकेत मिलते हैं कि 'ससंदर्भो अभिनेतव्य.'—अभिनय के साथ पाठ होता था।
—(नाटकों का आरम्भ, पृ० ६०)

दे० कालिदास।

बाह्य उपाधि से हट कर आन्तर हेतु की ओर प्रवृत्ति का नाम का व्यत्व है।
—(यथार्थवाद और छायावाद, पृ० ८९)

[विदर्भ के प्रसिद्ध नाटककार, मालती-माधव, महावीर चरित और उत्तर-रामचरित के रचयिता; विद्याविशारद कवि। समय ७वीं शती का अन्त।]

भवानी[1]— —(चित्तौर उद्धार)

भवानी[२] = पार्वती, जगज्जननी।

—(**पञ्चायत, ३**)

[भव से भवानी, दुर्गा ; अपने पिता से शिव की निन्दा सुन कर ये जल मरी थीं। दूसरा जन्म पर्वतराज हिमालय के घर हुआ, इससे पार्वती नाम पड़ा। इन्हीं का नाम योगमाया है।]

भविष्य—

कौन उठा सकता है धुंधला
पट भविष्य का जीवन में।

—**प्रेमपथिक, पृ० ३**

भविष्य को भगवान् ने बड़ी सावधानी से छिपाया है और उसे आशामय बनाया है। (चन्द्रलेखा) —**विशाख, २.१**

भविष्यत् का अनुचर तुच्छ मनुष्य केवल अतीत का स्वामी है। (चक्रपालित) —**स्कन्दगुप्त, ४.६**

दे० नियतिवाद भी।

भागीरथी[१]—पाटलिपुत्र में चक्रवर्ती अशोक तट पर टहलते दिखाए गए हैं।

—(**अशोक**)

भागीरथी[२]— —(**आकाशदीप**)

भागीरथी[३]—दे० रामनगर। काशी में विजय, मंगल, यमुना आदि सैर को जाते हैं। —**कंकाल, १.७**

भागीरथी[४]—पाटलिपुत्र के पास ; ब्रह्म-वेला में कपिंजल और नन्दन बड़े अनुराग से स्नान करने जाया करते थे। बाद में मनमुटाव हो गया। —(**व्रतभंग**)

दे० गंगा, जाह्नवी।

भाग्य—जो कुछ होगा भाग्य और निज कर्म में। (शुनःशेफ) —**करुणालय**

जैसा जिस के भाग्य में होगा वही होकर रहेगा। (माधुरी) —**तितली, १.५**

रही अभ्युदय की बात सो तो उनको अपने बाहुबल और भाग्य पर ही विश्वास है। (खड्गधारिणी)

—**ध्रुवस्वामिनी, पृ० १५**

भाग्य और पुरुषार्थ—सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के भय हैं।...पुरुषार्थ ही सौभाग्य को खींच लाता है। (शकराज)

—**ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४४**

भाग्यचक्र—भाग्यचक्र ! तेरी बलिहारी ! (मुद्गल) —**स्कन्दगुप्त, ५-१**

भाग्यलिपि—विधान की स्याही का एक विन्दु गिरकर भाग्य-लिपि पर कालिमा चढ़ा देता है। (चन्द्रगुप्त)

—**ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६९**

भाग्यवाद—दे० नियति।

भामह—दे० कला। भामह ने पहले काव्य-शरीर का निर्देश किया और अर्थालंकार तथा शब्दालंकार का विवेचन किया। —(**रस, पृ० ४२**)

पद-रचना, रीति और वक्रोक्ति को प्रधानता देने वाले अलंकारवादी भामह, दण्डि, वामन और उद्भट आदि अभि-व्यंजनावादी ही थे। —(**रस, पृ० ४३**)

['काव्यालंकार' के प्रसिद्ध रचयिता, अलंकारवाद के संस्थापक आचार्य। समय छठी शती।]

भारत[१]—इन्दु, किरण ११, ज्येष्ठ १९६७ में प्रकाशित व्रजभाषा की कविता जिसमें राष्ट्रीय भावना स्पष्ट रूप में प्रगट हुई

है। कवि को दुःख है कि उसका सुन्दर भारत आज नष्ट हो गया है। चारों ओर पाप, कलह और द्वेष है। नई सभ्यता की कौंध चमक रही है।

बहुत दिवस दुख महँ
बीते दे सुख के अवसर।
उदय होहु हिमगिरि पर
भारत-भाग्य-दिवाकर॥

भारत[२]— —अजातशत्रु, २-१०

भारत[३]— —(अमिट स्मृति)

भारत[४]— —(अशोक)

भारत[५]— —(आकाशदीप)

भारत[६]—मुझे (प्रज्ञासारथि को देखकर) दो-ढाई हजार वर्ष पहले का चित्र दिखाई पड़ा, जब भारत की पवित्रता हजारों कोस से लोगों को वासना दमन करना सिखाने के लिए आमंत्रित करती थी। आज भी आध्यात्मिक रहस्यों के इस देश में उस महती साधना का आशीर्वाद बचा है। अभी भी बोधिवृक्ष पनपते हैं! जीवन की जटिल आवश्यकता को त्याग कर जब काषाय पहने सन्ध्या के सूर्य के रंग में रंग मिलाते हुए ध्यान-स्तिमित-लोचन मूर्तियां अभी देखने में आती हैं, तब जैसे मुझे अपनी सत्ता का विश्वास होता है, और भारत की अपूर्वता का अनुभव होता है, अपनी सत्ता का इसलिए कि मैं त्याग का अभिनय करता हूँ न! और भारत के लिए तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसकी विजय धर्म में है। —(आंधी)

भारत[७]— —(आरम्भिक पाठ्य काव्य)

भारत[८]— —इरावती, १-४

भारत[९]—कृष्णशरण का मंगल को उपदेश—भगवान् की भूमि भारत में स्त्रियों पर तथा मनुष्यों को पतित बना कर बड़ा अन्याय हो रहा है।.. स्त्रियां विपथ पर जाने के लिए बाध्य की जाती है, तुमको उनका पक्ष लेना पड़ेगा। उठो। —कंकाल, २-७

'भारतवर्ष आज वर्णों और जातियों के बन्धन में जकड़ कर कष्ट पा रहा है और दूसरों को कष्ट दे रहा है।'

—कंकाल, ४.८

पढ़िये कंकाल, १-१, १-३, १-५, १-६, २-३, ३-३ भी।

भारत[१०]— —(कुरुक्षेत्र)

भारत[११]— —(गुलाम)

भारत[१२]—यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि—भारतभूमि क्या भुलाई जा सकती है? कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्म-भूमि हैं; यह भारत मानवता की जन्मभूमि है। (कार्नेलिया) —चन्द्रगुप्त, ३.२

भारत[१३]—

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, पृ० १७

भारत[१४]— —(जहांनारा)

भारत[१५]—शेरकोट में एक दुर्ग था। भारत का यह मध्यकाल था, जब प्रतिदिन आक्रमणों के भय से एक छोटे से भूमिपति को भी दुर्ग की आवश्यकता होती थी। —तितली, १.६

पढ़िये तितली, १-२, १-५, २-१, २-६ भी।

भारत[१६]— —दासी)

भारत[१७]— —(देवदासी)

भारत[१८]— —(नीरा)

भारत[१९]— —(पंचायत, १)

भारत[२०]— —(प्रलय की छाया)

भारत[२१]— —(प्रायश्चित्त, १-३)

भारत[२२]—भरत से भारत। —(भरत)

भारत[२३]— —(भारतेन्दु प्रकाश)

भारत[२४]— —(मदनमृणालिनी)

भारत[२५]—भारत के नर गावेंगे यश आपका। —महाराणा का महत्त्व

भारत[२६]— —(रंगमंच)

भारत[२७]—सुएन च्वांग इतना प्रभावित हुआ कि कह उठा—"यह भारत का देव-दुर्लभ दृश्य देखकर मुझे विश्वास हो गया कि यही अमिताभ बुद्ध की प्रसव-भूमि हो सकती है।... मुझे वरदान दो कि भारत से जो मैंने सीखा है वह जाकर अपने देश में सुनाऊँ।"

—राज्यश्री, ४-४

भारत[२८]—गुरु गोविन्द सिंह के सुपुत्रों ने अपना बलिदान देकर भारत का सिर ऊँचा किया। —(वीर बालक)

भारत[२९]— —(शिल्प सौन्दर्य)

भारत[३०]— —(सन्देह)

भारत[३१]—भारत समग्र विश्व का है, और सम्पूर्ण वसुन्धरा इसके प्रेम-पाश में आबद्ध है। अनादिकाल से ज्ञान की, मानवता की ज्योति यह विकीर्ण कर रहा है। वसुन्धरा का हृदय—भारत—किस मूर्ख को प्यारा नहीं है? तुम देखते नहीं कि विश्व का सब से ऊँचा शृंग इसके सिरहाने, और सब से गंभीर तथा विशाल समुद्र इसके चरणों के नीचे है? एक-से-एक सुन्दर दृश्य प्रकृति ने अपने इस घर में चित्रित कर रक्खे हैं। (धातुसेन) —स्कन्दगुप्त, ४

पढ़िये स्कन्दगुप्त अंक १ भी।

हमारा प्यारा भारतवर्ष। दे० हिमालय के आंगन में... गीत। —स्कन्दगुप्त, ५

दे० आर्यावर्त, जम्बुद्वीप। साधारणतया प्रसाद की ऐसी कोई कृति नहीं है जिसमें भारत के गौरव की गाथा न हो। दे० इतिहास भी। दे० अगले शब्द भी।

भारत[३२]—दे० महाभारत। प्रसाद ने अपनी भूमिकाओं में और अपने निबन्धों में महाभारत के लिए भारत शब्द का प्रयोग किया है।

भारत महिमा—

—प्रेमराज्य, चित्राधार, पृ० ६६-६७

भारतवासी—दे० भारत[९]।

—कंकाल, पृ० १६५

भारतीय—भारतीय कृतघ्न नहीं होते। (चन्द्रगुप्त) —चन्द्रगुप्त, १.१०

भारतीय सदैव उत्तम गुणों की पूजा करते हैं। (चाणक्य) —चन्द्रगुप्त, ३.३

भारतीय नारी—गृहिणीत्व की जैसी सुन्दर योजना भारतीय स्त्रियों को आती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इतना आकर्षक, इतना माया-ममतापूर्ण स्त्री-हृदय-सुलभ गार्हस्थ्य जीवन और किसी समाज में नहीं। (बाथम) —कंकाल, पृ० १२९

भारतीय संस्कृति—पश्चिमी जीवन का यह संस्कार है कि व्यक्ति को स्वाव-

लक्ष्य पर खड़े होना चाहिए।... भारतीय हृदय में, जो कौटुम्बिक कोमलता में पला है, परस्पर सहानुभूति की—सहायता की बड़ी आशाएँ, परम्परागत संस्कृति के कारण, बलवती रहती हैं। (शैला)

—तितली, २-३

भारतेन्दु[१]—(हरिश्चन्द्र ने) खड़ी बोली को अपनाया।

—(आरम्भिक पाठ्य काव्य, पृ० ८३)

भारतेन्दु[२]—'नाटक' नामक प्रबन्ध में इन्होंने नाटक के भेद गिनाए हैं।

—उर्वशी, भूमिका

भारतेन्दु[३]—

यह भारतेन्दु भयो उदय
धरि कान्ति जो सुखदायिनी।
हिन्दी रजनी-गन्धा सुलखि
के भारतेन्दु अमंद सों। इत्यादि।

—भारतेन्दु-प्रकाश, पराग, चित्राधार, पृ० १६४

भारतेन्दु[४]—साहित्य के पुनरुद्धार काल में श्री हरिश्चन्द्र ने प्राचीन नाट्य रसानुभूति का महत्त्व फिर से प्रतिष्ठित किया और साहित्य की भावधारा में वेदना तथा आनन्द का समावेश किया। नाटकों में 'चन्द्रावली' में प्रेम रहस्य, 'सत्य हरिश्चन्द्र' में फलयोग की आनन्दमयी पूर्णता, 'नीलदेवी' और 'भारत दुर्दशा' में राष्ट्रीय भावमयी वेदना, 'प्रेम-योगिनी' में जीवन के यथार्थ रूप का पहली बार (हिन्दी में) चित्रण हुआ।

—(यथार्थवाद और छायावाद, पृ० ८५)

हरिश्चन्द्र की युगवाणी में अपनी क्षुद्रता तथा मानवता में विश्वास, संकीर्ण संस्कारों के प्रति द्वेष प्रगट होने का अवसर मिला।

—(यथार्थवाद और छायावाद, पृ० ८६)

श्री हरिश्चन्द्र ने राजा शिवप्रसाद की सरकारी ढंग की भाषा का विरोध किया। —(वही)

हरिश्चन्द्र और हेमचन्द्र ने हिन्दी और बंगला में आदान-प्रदान किया। हेमचन्द्र ने बहुत-सी हिन्दी की प्राचीन कविताओं का अनुवाद किया और हरिश्चन्द्र ने 'विद्यासुन्दर' आदि का अनुवाद किया। —(वही)

भारतेन्दु[५]—हिन्दी रंगमंच की स्वतंत्र स्थापना की। उसमें पूर्व और पश्चिम का समन्वय था और उनके नाटकों—सत्य हरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, नीलदेवी, चन्द्रावली, भारतदुर्दशा, प्रेमयोगिनी में सब का सहयोग था।

—(रंगमंच, पृ० ७५)

भारतेन्दु[६]—इनकी चन्द्रावली नाटिका में प्रेमरहस्य को गोप्य रखने का संकेत है। —(रस, पृ० ४९)

[हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रवर्त्तक, कवि, नाटककार, गद्यकार, पत्रकार; इन्होंने १७५ ग्रंथ लिखे और ७५ सम्पादित किए। आयु केवल ३५ वर्ष—१८५१–१८८५ ई०।]

भारतेन्दु प्रकाश—२० पंक्तियों की कविता। सर्वप्रथम इन्दु, कला २, किरण

१, आश्विन '६८ में प्रकाशित। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रति श्रद्धांजलि। भारत के इस इन्दु के उदय से हिन्दी की रजनी-गंधा खिल उठी। भारतेन्दु ने हिन्दी के मार्ग को आलोकित किया। —(पराग)

भारवि—दे० कालिदास।

['किरातार्जुनीय' के महाकवि, समय ६३४ ई० से पहले।]

भालू—नये (विजय) का कुत्ता जो जीवन के अन्तिम दृश्य में भी उसके साथ था। **—कंकाल, ३-७**

भावचित्रण—(उदासी)

—इरावती, पृ० ९

—कामायनी में लज्जा, इच्छा, चिंता, निर्वेद, आनन्द आदि के भाव।

भावना—जीवन में सामंजस्य बनाये रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं, परन्तु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ घटती-बढ़ती रहती है। —(पुरस्कार)

भावनिधि में लहरियाँ उठतीं तभी—भटार्क के शिविर में नर्तकी का गीत। तुम्हारे स्मरण से भावनिधि में लहरियां उठने लगती हैं। तुमने वह मुरली फूंक दी कि रग-रग में बिजली दौड़ गई। कलिका बस खिला चाहती है, मलयज का एक झोंका ही लग जाए। 'नील नीरद! क्या न बरसोगे कभी।' **—स्कन्दगुप्त, ४**

भाव-सागर—२० पंक्तियों की अतुकांत कविता। तुम्हारे ऊपर मेरा जो निजस्व है, जो गर्व है, जो अहंकार है, उसके बदले में यह फटकार! भरी सृष्टि में मेरे लिए शून्यता है। साहस करके कुछ शिकायत लिखता हूँ, पर तुम्हें भेज नहीं पाता, मेरे भाव भाषा द्वारा प्रगट नहीं हो पाते। मेरा भावसागर अनिर्वचनीय है। **—कानन-कुसुम**

भावुकता—पल भर की भावुकता मनुष्य के जीवन में कहां से कहां खींच ले जाती है। (रामनाथ) **—तितली, १-१**

भास—दे० कालिदास।

[स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, पंचरात्र, बालचरित, चारुदत्त, अविमारक, आदि अनेक नाटकों के रचयिता। समय संदिग्ध—लगभग तीसरी शती।]

भिखारिन—दुःखी जीवन की एक कहानी। निर्मल गंगातट पर मां के साथ स्नान कर रहा था। एक किशोरी भिखारिन ने दीनतापूर्वक हाथ फैलाया। मां ने फटकार दी, निर्मल संकोचवश कुछ न दे सका। दूसरे दिन अपनी भाभी और भतीजे रामू के साथ निर्मल गंगा-तट पर घूम रहा था कि उसी भिखारिन ने भीख मांगी—"बाबूजी, तुम्हारा बच्चा फले-फूले, बहू का सोहाग बना रहे।" भाभी खीज उठी और निर्मल से बोली—"चलो, चलो, आज मां से कहकर इसे तुम्हारे लिए टहलनी रखा दूंगी।" निर्मल बोला—"भाभी व्यंग्य मत करो। मैं इससे ब्याह करने के लिए भी प्रस्तुत हो जाऊँगा।" भिखारिन यह कहती हुई कि जो एक पैसा नहीं दे सका, वह विवाह कर के जीवन भर निर्वाह क्या

करेगा! चली गई। भतीजे ने एक दुअन्नी उसकी ओर फेंकी, पर वह तो चली गई थी।

कहानी कलात्मक और मार्मिक है। भिखारिन के स्वाभिमान की झलक प्रभावोत्पादक है। कथोपकथन, चरित्र-चित्रण और भाषा की दृष्टि से कहानी सुन्दर है। इसमें विकृत दान-प्रथा की कटु आलोचना की गई है। —आकाशदीप

भीख में—कहानी। ब्रजराज अपनी पत्नी इन्दो और पुत्र मिन्ना को लेकर अपनी छोटी-सी गृहस्थी चलाता था। बहुत आय नहीं थी, पत्नी असंतुष्ट रहती थी। उसके घर में मालती (मालो) जो बड़ी चंचल और नटखट थी आ जाया करती; वह इन्दो के मन में सन्देह का कारण बन गई। एक दिन इन्दो के वाग्वाणों से ब्रजराज तिलमिला उठा और गांव छोड़ कर चला गया। कलकत्ते में उसने ड्राइवरी सीखी और जालंधर-ज्वाला-मुखी सड़क पर लारी चलाने लगा। सवारियों में उसे मालो मिल गई अपने पति के साथ। ब्रजराज की असावधानी से लारी पेड़ से लड़ गयी और उसे काम से हटा दिया गया। ज्वालामुखी के समीप ही पंडों की बस्ती में जाकर रहने लगा। दो-चार बरस बेकार रहा और फिर भीख मांगने लगा। मंदिर के निकट उसे मालो फिर मिल गई और दोनों ने इन्दो के संदेह की बात उठाई। पीछे से उसके पति आ गए। समझे भिखमंगा परेशान कर रहा है। उन्होंने इसे पंडों से धक्के दिलवा कर भगा दिया। बोला—यही धक्के मालो से अयाचित भाव से मिलते आ रहे थे। आज भीख में भी वही दिए। —इन्द्रजाल

भीम— —(कुरुक्षेत्र)

[पाण्डवों में से दूसरे जो कुन्ती से वायु के पुत्र माने जाते हैं। महाभारत-कालीन योद्धाओं में सब से अधिक वीर।]

भीम (वर्मा)—बन्धुवर्मा का भाई। [कोसम प्रान्त का शासक।] —स्कन्दगुप्त

भीमपाल—गांधार का अंतिम आर्य-नरपति जिसके साथ शाहीवंश का सौभाग्य अस्त हो गया। कहानी का नायक देवपाल इसी का पुत्र था। —(स्वर्ग के खंडहर में)

[दे० देवपाल]

भीमसेन—जनमेजय के यज्ञ के घोड़े के रक्षक वीर।—जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३.३

[=भीम]

भीष्म[१]—दे० इक्ष्वाकु। —(प्रेमराज्य)

भीष्म[२]—भीष्मादि गुरुजनों के मना करने पर भी कौरवनाथ विहार करने के हेतु द्वैत सरोवर के वन में आया। —(सज्जन)

[गंगा के गर्भ से उत्पन्न महाराज शांतनु के पुत्र, देवव्रत गांगेय। कुछ दिन तक कौरव सेना के सेनापति। शिखंडी (पहले जन्म में अम्बा) की आड़ में अर्जुन ने इन्हें धराशायी किया था।]

भीष्मव्रत—हरद्वार में मंगल के आर्य-समाजी मित्र। —कंकाल, १.३

भूतनाथ=शिव। —**कामायनी, स्वप्न**

भूरे—कंजड़ दल में ढोलक बजाने वाला। वह सचमुच भूरा भेड़िया था। बेला का प्रेमी, गोली का प्रतिद्वंद्वी। उसने चालाकी और घाघपन से बेला पर अधिकार तो पा लिया पर वह उसके हृदय तक नहीं पहुँच सका। —(**इन्द्रजाल**)

भूल[1]—इन्दु, कला ४, खंड १, किरण ५, मई '१३ में प्रकाशित एक गजल जिसमें प्रेम की अभिव्यंजना हुई है।

प्रसाद उमको न भूलो तुम,
तुम्हारा जो कि प्रेमी है।
न सज्जन छोड़ते उमको,
जिसे स्वीकार करते हैं।

भूल[2]—प्रतिदिन प्रतिक्षण भूल की अविच्छिन्न शृंखला मानव-जीवन को जकड़े हुए है। —(**सहयोग**)

भोज—कहा जाता है कि भोज ने भी कोई ऐसी रंगशाला बनवाई थी, जिसमें पत्थरों पर सम्पूर्ण शाकुन्तल नाटक उत्कीर्ण था।—(**रंगमंच, पृ० ६४**)

[मालवा का परमार-वंशी राजा जो विजेता होने के साथ बड़ा पंडित, कवि और गुणज्ञ था; समय ९९७–१०५३ ई०।]

भोजराज—दे० कला।

भ्रमर—ब्रजभाषा का एक कवित्त जो 'पराग' के अन्तर्गत था। यद्यपि है समस्यापूर्त्ति मात्र, पर बड़ा कलात्मक और विदग्ध है।

भरे मकरन्द जामें सौरभ अमंद ऐसे,
चारु अरविंद के हिंडोर चढ़ि झूले हो।
मंजुल रसालन की मंजरी के पुजन में
पाय के 'प्रसाद' तहाँ गूंज गूंज तूले हो॥
केतकी की ताक में बिमारि चेत ही को कबौं,
हित की न चेतौ मूधे स्वारथ में फूले हो।
एतेहु किए पै नही चेतौ, बिसराय लाज,
कौन बन बेलिन भ्रमर आज भूले हो॥

दे० शारदीय शोभा भी।

म

मकरन्द-बिन्दु[1]—सर्वप्रथम इन्दु, कला ५, खंड २, किरण ३, सितम्बर '१५ में। इस शीर्षक के अन्तर्गत छः छोटी-छोटी कविताएँ हैं, पांचवीं कविता चतुर्दशपदी है। यही इन सब से लम्बी कविता है।

(१) जो तप्त हृदय को शीतल करे, जो लोभ-क्षोभ से कूटस्थ हो वह विश्व भर का कुटुम्बी है।

नमस्कार मेरा सदा, पूरे विश्व-गृहस्थ को

(२) प्राण से प्राणाधार मिल रहा है—पलकों के परदे खिंच गए, आंखों के द्वार में अश्रुमुक्ता की झालर लग गई, पुतलियां पहरा देने लगीं, मुद-मृदंग और कल्पना-वीणा बज उठी, इन्द्रियां स्तब्ध हैं।

(३) तुम नहीं आते तो हृदय में तुम्हारा प्रतिबिम्ब तो हो; तुम न मिलो पर तुम्हारे प्रेम की करुण-व्यथा तो बनी रहे।

(४) प्रिय मिले हैं तो उन्हें हृदय अपनी बीती गाथाएँ सुनाना चाहता है।

(५)

जो विज्ञानाकार है, ज्ञानों का आधार है
नमस्कार सदनन्त को ऐसे बारंबार है।

(६) आज धर्म बिलख रहा है। गज, द्रौपदी, ध्रुव भक्त, सुदामा, प्रह्लाद, गौतमी आदि का संकट से उद्धार करने के लिए तुमने अवतार लिया था। लगता है कि अब तुम सो ही गए हो।

—कानन-कुसुम

मकरन्द-बिन्दु[२]—इस शीर्षक से 'चित्राधार' द्वितीय संस्करण में, २३ कवित्त, ३ सवैया, एक दोहा और १४ पद संगृहीत हैं। सब कविताएँ ब्रजभाषा की हैं। कवित्तों के क्रमशः वसन्त (रे वसन्त रसभीने कौन मंत्र पढ़ दीने तू), चकोरी और चांद (चैत चन्द नेक तो चकोरी को निहारिए), पिक (लगाए धुन कौन की कहौ तो कौन को चहौ), मेघ और चातक (फल कछु पाईहै यों प्रीति को पसारि कै), सुमन (कानन में पुन्य पूर पोखे पुंज प्रेम के), स्वार्थहीन तरु, आओ प्यारे (वेगि प्रानप्यारे नेक कंठ से लगाओ तो), पुलक उठैं रोम-रोम खड़े स्वागत को, सुधारस बरसाओ तो, पसीजिये (भरि भरि प्याले प्यारे प्रेम-रस पीजिए), तुम अन्तर में हो (राग है बजत गुनी लीजो पहिचानी कै), वह प्यारा क्यों, हृदय में कौन (आसन जमायो जनु कमला कमल पर), एरी कली भली, हे करुणानिधान, तुम्हारी शरण (हिलि उठै हिय जहां आसन तुम्हारो, तऊ तुम न निहारत ऐसे अचल न होइये), दीनबन्धु उबारो (एहो दीनबन्धु दीनबन्धुता बिसारी क्यों?), बरखा सी बसन्त, अंक भरि भेटो, एरे मेरे आंसू! प्रेम प्रतीति, मेरी लली—ये शीर्षक रखे जा सकते हैं। सवैयों में ईश, प्रेम का फल और उनकी कुटिलाई पर उपालम्भ है। पदों की टेकें क्रमशः ये हैं:—

'दियो भल उत्तर ह्वै के मौन', 'ढीठ ह्वै करत सबै ही आप', 'पुन्य और पाप न जान्यो जात', 'छिपि के झगड़ा क्यों फैलायो', 'ऐसे ब्रह्म लेइ का करिहै?', 'और जब कहिहैं तब का रहिहैं', 'नाथ नहीं फीकी परै गुहार', 'मधुप ज्यों कंज देखि मंडरावै', 'मेरे प्रेम को प्रतिकार', 'प्रिय स्मृति कंज में लवलीन', 'अरे मन अबहूँ तो तू मान', 'आज तो नीके नेह निहारो', और 'यह तो सब समुझयो पहले ही।'

मकरन्द-बिन्दु[१]—इन्दु, कला ५, खंड १, किरण ३, मार्च '१४। इस शीर्षक के अन्तर्गत ब्रजभाषा के चार पद हैं। कवि स्वयं को करुणा-निधि के हाथों में समर्पित कर देता है और मनमधुकर को उसके चरण-कमल में लीन कर देना चाहता है।

मगध[१]—कौरवों के पतन के बाद सब से अधिक शक्तिशाली साम्राज्य। राजधानी पटना। गौतम बुद्ध के समय में यहां के सम्राट् बिम्बसार थे। 'अजातशत्रु' की मुख्य घटनाएँ (८ दृश्य) मगध से सम्बद्ध हैं। —अजातशत्रु

मगध[२]—है ऊँचा आज मगध-शिर। अशोक का केन्द्रीय राज्य।—(अशोक की चिन्ता)

मगध[१]—घटना-क्षेत्र। —इरावती

मगध[४]—नाटक के १७ दृश्य मगध के हैं। राक्षस, शकटार, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, नन्द, सुवासिनी, कल्याणी, वररुचि, आदि पात्र इसी प्रदेश के हैं। मगध के योद्धाओं की प्रशंसा की गई है। 'लिच्छिवि और वृजि गणतंत्र को कुचलने वाला मगध'। (नागदत्त) —**चन्द्रगुप्त**

मगध[५]—गुप्त-साम्राज्य की राजधानी। नाटक का प्रमुख घटना-स्थल।

—**ध्रुवस्वामिनी**

मगध[६]—कोशल का चिर-शत्रु; अरुण यहां का राजकुमार था, बाद में वह विद्रोही निर्वासित कर दिया गया तो कोशल में दोबारा आया। —(**पुरस्कार**)

मगध[७]—बुद्धिवादी और दुःखवादी दर्शन का केन्द्र। —(**रहस्यवाद, पृ० २३**)
व्रात्य संघों का अनात्मवादी राष्ट्र।
—(**रहस्यवाद, पृ० २५**)

मगध[८]—राज्यवर्धन से मैत्री रखने वाला प्रदेश। —**राज्यश्री, २-३**

मगध[९]—मगध की महादेवी राधा पर कन्या के समान स्नेह करती थीं। मगध-नरेश की उपस्थिति में ही राधा का विवाह नन्दन से हुआ था। —(**व्रतभंग**)

मगध[१०]—गुप्त साम्राज्य का केन्द्रीय प्रान्त। कुमारगुप्त की मृत्यु के बाद स्कन्दगुप्त ने पुरगुप्त को मगध का शासक बना दिया। नाटक का केन्द्रीय घटना-स्थल। —**स्कन्दगुप्त, २**

मगध[११]—बुद्ध के समकालीन बिम्बसार से लेकर नन्दवंश तक का इतिहास—दे० नन्द। दे० पाटलिपुत्र भी।

[महाभारत में आता है कि जरासन्ध यहां के प्रतापी राजा थे। वंश में पांचवें राजा बिम्बसार हुए हैं। शिशुनाग-वंश का अन्त ४२५ ई० पूर्व में हुआ। नन्द, मौर्य्य, शुंग, गुप्त सम्राटों ने राज्य किया। मगध = दक्षिणी बिहार, कीटक देश। किसी समय में मगध राज्य बनारस से मुंगेर तक फैला था।]

मघा—नदी। —**कंकाल, २-१**

मङ्गलदेव (सिंह)—काशी में चन्द्रग्रहण के अवसर पर सेवासमिति का स्वयंसेवक। वहीं भूली हुई तारा से भेंट, बाद में लखनऊ के वेश्यागृह में भेंट 'अजगर के श्वास में खिंचे हुए मृग के समान मैं तुम्हारी इच्छा के भीतर निगल लिया गया।' दुर्बल, समाज-भीरु, रूढ़िवादी और पाखंडी। एक अनाथालय से सहायता मिलती थी। घर में कोई है या नहीं यह भी उसे ज्ञात नहीं। उसका सहज सुन्दर अंग ब्रह्मचर्य और यौवन से प्रफुल्ल था। सामाजिक अध्ययन के लिए पालि प्राकृत पढ़ी। तारा का वेश्यागृह से उद्धार कर उससे विवाह करने को प्रस्तुत होता है किन्तु तारा के अवैध जन्म की कथा ज्ञात होते ही उसका साहस नष्ट हो जाता है। भगोड़ा! समाज का कोप-भाजन बनने की चिन्ता उसे विश्वासघाती बना देती है। 'भारत संघ' में वह स्त्रियों की दीन दशा का रोना रोता है, किन्तु वह यमुना के प्रति किए गए अन्याय को नहीं सोचता। वह यमुना की उपस्थिति में गाला से विवाह

कर लेता है। सरल, प्रसन्न, अपनी अवस्था से सन्तुष्ट। वह कहता है—"मैं प्राचीन सीमा के भीतर ही सुधार का पक्षपाती हूँ।" लेकिन वह आगे चलकर मानता है कि समाज में परिवर्तन आवश्यक है। अन्त मे वह सम्भ्रान्त नेता भी बन जाता है। वृन्दावन में ऋषिकुल खोल लेता है। समाज सुधार में लगा रहता, लेकिन यमुना का उद्धार करने का संकल्प किया तो पाठशाला छोड़ दी। उसे पश्चात्ताप हुआ। उसने अपनी चारित्रिक दुर्बलता का अनुभव किया। 'मेरे मन में धर्म का दंभ था। बड़ा उग्र प्रतिफल मिला।' ठोकरें खानी पड़ी। व्यक्तिगत जीवन उसके सामाजिक जीवन के अनुरूप नहीं। —कंकाल

मङ्गला—बाल-विधवा। उसकी यौवनमयी उषा थी। सारा समार उन कपोलों की अरुणिमा की गुलाबी छटा के नीचे मधुर विश्राम करने लगा। वह मादकता विलक्षण थी। मगला के अंगकुसुम मे मकरन्द छलका पड़ता था। मुरली की धवल आंखें उसे देख कर ही गुलाबी होने लगीं।...घर वालों की सहायता से वह छविनाथ के साथ भाग गई। वनस्थली में मुरली की कुटी मे रहती रही। निराश प्रेम ने उसे भयानक बना दिया—राक्षसी-सी। समाज में हिन्दू विधवा का क्या स्थान होता है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मंगला है।

—(चित्रवाले पत्थर)

मङ्गली दुर्ग—उद्यान प्रदेश में सुवास्तु की घाटियों के बीच में शाही राजाओं का दुर्ग जहाँ देवपाल गांधार खो जाने पर रहते थे। इस पर चंगेज खां ने अधिकार कर लिया।

—(स्वर्ग के खँडहर में)

[मंगल अथवा मंगली उद्यान प्रदेश की राजधानी थी; दूसरा नाम मिंगलोर।]

मञ्जल—रमला के पहाड़ी प्रदेश के जमीदार का लड़का—स्वभाव से चंचल। रमला को चिढ़ाया करता था। रमला पहाड़ी की चोटी पर सब से आगे जा पहुँची तो मञ्जल प्रतिहिंसा से भर गया। उसने रमला को हलका-सा धक्का दिया और वह नीचे झील में लुढ़क गई। बाद में रमला से क्षमा भी मागी। रमला ने साजन को छोड़ मंजल के साथ रहने का निश्चय किया।

—(रमला)

मचा है जग भर में अन्धेर—महापिंगल विशाख की चापलूसी में आकर गाने लगता है। जगत् में अन्धेर मचा है। लोग उल्टा-सीधा जो कुछ समझते हैं उसी को सत्य मानते हैं, बुद्धि से काम नहीं लेते, दूसरों का धन खा जाने में लगे हैं, बक-बक करके दूसरों को चुप करा देने में अपनी चतुराई मानते हैं; इस प्रकार की अनेक चालें चलते हैं।

—विशाख, १-२

मणिकण्ठ—वैशाली का कुलपुत्र। "मैं तीर्थंकर प्रकुध कात्यायन का अनुगत हूँ। मैं समझता हूँ कि मनुष्य को सुनि-

स्थित वस्तु ग्रहण नहीं कर सकता। कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं कर सकता।"
—(सालवती)

मणिधर—वैशाली का सेनापति, अभय-कुमार का प्रतिद्वंद्वी। —(सालवती)

मणिपुर—चित्रांगदा के पिता के राज्य की राजधानी जिसे बभ्रुवाहन ने उत्तराधिकार के रूप में पाया।
—(बभ्रुवाहन)

[यह मणिपुर वर्तमान मणिपुर (आसाम) से भिन्न कलिंग (उड़ीसा) की राजधानी थी; आधुनिक माणिक-पट्टन।]

मणिभद्र[1]—पोताध्यक्ष, कामी वणिक् जिसने चम्पा को बंदिनी बनाया। बुद्ध-गुप्त ने उसे मार कर पोत पर अधिकार कर लिया। —(आकाशदीप)

मणिभद्र[2]—रोहिताश्व जाने वाली सेना के नायक। —इरावती, ३

मणिमाला[1]—प्रौढ़ श्रेष्ठि धनदत्त की युवती पत्नी, सरल-हृदया और भावुक। सामान्य परिचय मात्र से उसने कालिन्दी और इरावती से आत्मीयता स्थापित कर ली। वह युवती है, रूपवती है, किन्तु वह अत्यन्त सरल, भीरु प्रकृति की स्त्री थी। —इरावती, पृ० ८५

मणिमाला[2]—तक्षक की सरल, सुन्दर, भावुक और सच्चरित्र कन्या; जनमेजय की उदारता-व्यंजक मूर्त्ति और उसके तेजो-मय मुखमण्डल पर मुग्ध। उन दोनों का परिणय-सम्बन्ध सच्चे हृदयों का मिलन है। वह अतिथि (जनमेजय) की सेवा, विपन्न (दामिनी) की रक्षा, घायलों की सुश्रूषा आदि विविध कार्यों में लगी रहती है। उसका जीवन विश्वमैत्री से अनुप्राणित है। वह अपने पिता से युद्ध बन्द करने को कहती है। तक्षक के साथ वह साहस करके युद्ध-भूमि में जाती है, वह कायर नहीं है। नागजाति की होकर वह आर्य गुणों से सम्पन्न है।
—जनमेजय का नाग-यज्ञ

मथुरा—पादरी जान का चर्च; बाथम और लतिका यही रहते हैं; विजय और घंटी वृन्दावन से भाग कर यहां आ गए। —कंकाल, २

विजय रूठकर मथुरा चला गया। निरंजन विजय को जगह-जगह खोजता फिरा। मथुरा से द्वारिकाधीश के मंदिर में कई दिन टोह लगाया। विश्रामघाट पर आरती देखते हुए कितनी संध्याएँ विताई। —कंकाल, ३-३

मथुरा से अन्धा भिखारी रामदेव अयोध्या चला आया। —कंकाल, ४.१

[कृष्ण की जन्मभूमि, शूरसेन की राजधानी; ध्रुव की तपोभूमि ; दूसरा नाम मधुपुरी (वर्तमान महोली) जिसे रामायण काल में मधु ने बसाया था।]

मदन[1] = काम। —(प्रेमराज्य, उत्त०)

मदन[2]—चौड़ी हड्डी, सुडौल बदन और सुन्दर चेहरा। है तो अबोध किन्तु संयुक्तप्रान्त (यू० पी०) निवासी होने के कारण स्पृश्यास्पृश्य का उसे बहुत ही ध्यान है।... मृणालिनी के संग से बहुत ही प्रसन्न है। मदन की वह

सब कुछ हो गई—उसके हृदय-सरोवर की मनोहर मृणालिनी। वह अपवाद और अपमान को सहन नहीं करता। वह आत्मत्यागी, क्षमाशील और कृतज्ञ है। —(मदनमृणालिनी)

मदन-मृणालिनी—प्रेम-कथा। यह 'छाया' संग्रह की सब से बड़ी और अंतिम कहानी है जिसका बहुत बड़ा भाग बंगाली कुटुम्ब से सम्बन्धित है। मदन अपनी विधवा मां का इकलौता बेटा था। दशहरे के अवसर पर रामलीला में वह रामचन्द्र बना। घर में सहसा उसने धनुष से वाण छोड़ दिया जो एक पड़ोसिन की गर्दन में धँस गया। लड़का भाग गया। यू० पी० छोडकर वह कलकत्ते जा पहुँचा। एक बंगाली सज्जन अमरनाथ बनर्जी ने उसे आश्रय और नौकरी दे दी। उनकी पत्नी का नाम हीरामणि, लड़के का किशोरनाथ और लड़की का नाम मृणालिनी था। अमरनाथ मोतियों का व्यापार करते थे। समुद्र पार सीलोन में उनका दफ्तर था इसलिए रूढ़िवादी समाज उन्हें धर्मच्युत मानता था। वे सपरिवार सीलोन चले गए। मदन भी साथ गया। वह मृणालिनी से प्रेम करता था। अमर बाबू भी इन्हें स्वतंत्रता देते थे; वे चाहते थे कि इनका विवाह हो जाय। अमर बाबू ने एक दिन मदन से कहा कि तुम मेरी लड़की को भगा ले जाना चाहते हो। मदन ने समुद्र में डूब मरने की चेष्टा की पर किशोर ने बचा लिया। एक दिन फिर अवसर पाकर वह लोप हो गया। उसने मोतियों का व्यापार करके बड़ा पैसा पैदा किया। इधर अमर बाबू का व्यापार मन्द पड़ गया। एक दिन संयोग से मृणालिनी जिस नाव में सैर कर रही थी वह उलट गई, मदन ने उसे डूबने से बचा लिया। कुछ दिन बाद मदन ने कृतज्ञता और प्रेम के उपहार-स्वरूप सब सम्पत्ति मृणालिनी के नाम कर दी और आप भारत लौट आया। प्रसाद की यही अकेली कहानी है, जिस पर बंगला का यथेष्ट प्रभाव है। यह कहानी 'मदन' शीर्षक से इन्दु, नवम्बर १९११ में प्रकाशित हुई थी।

कहानी सरस और रोचक है, अलबत्त: वर्णनों और मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों के कारण गति में बाधा उपस्थित हो जाती है। इसे प्रेम-प्रधान सामाजिक कहानी कहा जा सकता है। —छाया

मधुआ—इसमें एक शराबी के हृदय के सरल, भावुक और करुणापूर्ण पक्ष का चित्रण है और यह दिखाया गया है कि एक निराश्रित बालक के प्रति स्नेह-सहानुभूति के कारण वह किस प्रकार संयत और नियमित जीवन का प्रारंभ करता है। वह शराबी था। लखनऊ में आए हुए ठाकुर सरदारसिंह को कोई न कोई लच्छेदार कहानी सुना कर उनका मनोविनोद करता था। एक दिन ठाकुर साहब से एक रुपया पुरस्कार में पाकर वह बाहर निकला था कि एक बालक के सिसकने का शब्द सुनाई पड़ा।

पता लगा कि वह, मधुआ, ठाकुर साहब के लड़के का नौकर है, जिसे लल्लू जमादार ने डांट-डपट कर भगा दिया है ; पर मधुआ बेचारा खाए-पिये बिना कैसे सो रहे। शराबी उसे कोठड़ी में ले आया, मिठाई-पूरी खरीद लाया और दोनों ने मिलकर भोजन किया। अब शराबी को लगा कि यदि शराब में पैसा लगा दिया, तो इस बच्चे का पेट कैसे पालूंगा। इस छोटे-से पाजी ने मेरे जीवन के लिए कौन-सा इन्द्रजाल रचने का बीड़ा उठाया है। शराबी के एक मित्र के यहां उसकी सान रखने की मशीन पड़ी थी। वह उसे उठा लाया। अब कल चलाकर काम चलाना पड़ेगा। दोनों ठाकुर की कोठडी छोड़ कर चले गए।

'शराबी' एक मानवीय चरित्र है। प्रेमचन्द ने इस कहानी को बहुत पसन्द किया था। इसका कथानक मार्मिक, चित्रण मनोवैज्ञानिक, कथोपकथन सुन्दर, और भाषा स्निग्ध है। —आंधी

मधुआ[२]—(मधुबन)। बंजो (तितली) के बापू की गायें चराने वाला और सहायता में थोड़ा-बहुत काम करने वाला युवक। दे० मधुवन। —**तितली, १-१**

मधुआ[३]—ठाकुर सरदार सिंह के लड़के के पास लल्लू जमादार के अधीन काम करने वाला अनाथ लड़का। —**(मधुआ)**

मधुकर[१]—सेवक। —**इरावती, ३**

मधुकर[२]—मालवराज का सहचर। —**राज्यश्री**

मधुच्छन्दा[१]—विश्वामित्र के सौ पुत्रों में ज्येष्ठ। —**करुणालय**

मधुच्छन्दा[२] —**(ब्रह्मर्षि)**

[भागवत में आता है कि वह विश्वामित्र के १०१ पुत्रों में मंझला था।]

मधुप कब एक कली का है—इस गीत में मालविका ने चन्द्रगुप्त के प्रेमी जीवन का बाह्य रूप स्पष्ट किया है। मधुप कली-कली का रस लेता फिरता है। एक का नहीं हो रहता। काटों में पड़ा कुसुम रँगरलियाँ चाहता है, पर मधुप कभी मल्लिका के, कभी सरोजिनी के और कभी यूथी के पुंज में क्रीड़ा करता फिरता है।

चन्द्रगुप्त मधुप है, मल्लिका, सरोजिनी एवं यूथी कल्याणी, कार्नेलिया तथा मालविका हैं। —**चन्द्रगुप्त, ४-४**

मधुप गुनगुना कर कह जाता—गीत। मधुप गिरी मुरझाई पत्तियों की गाथा सुना जाता है। यहां असंख्य जीवन हो चुके हैं। मेरी अपनी दुर्बलताएँ हैं, उन्हें क्या कहूँ। जीवन में मुझे सुख कहां मिला है कि मैं चांदनी रातों की बातें सुनाऊँ। किसी की स्मृति का पाथेय लिए इस पथ चला जा रहा हूँ। छोटा-सा मेरा जीवन है, मेरी कथा सुन कर क्या करोगे, मेरी व्यथा को सोया रहने दो। दे० आत्मकथा भी—उसी का यह रूप है। —**लहर**

मधुपान कर चुके मधुप, सुमन मुरझाय—महारानी का कहना है कि अब उसका यौवन ढल गया, नरदेव क्यों

उसको चाहे। सुमन मुरझा गए, पत्ते नीरस हो गए, अब हरियाली नहीं रही, इसलिए मधुप कहां, अब मलयानिल कहां?

—विशाख, ३.१

मधुमत्त मिलिन्द माधुरी, मधु राका जग कर बिता चुके—अरविन्द प्रभात में भला, फिर देता मकरन्द क्यों उन्हें।

प्रेमानन्द का कहना है कि मनुष्य को आनन्द-मकरन्द का पान करने में निरन्तर लगे रहना चाहिए जिससे यह नशा टूटने न पावे। देखो ये मधुप रात भर मधुमत्त रहे, सवेरे फिर उन्हे मधु मिलने लगा। —विशाख, १-४

मधुर माधवी सन्ध्या में—११ पंक्तियों की लघु कविता। सध्या में जब रागारुण सूर्य अस्त हो रहा होता है, जब समीर कोमल दलों को छेड़ता चलता है, जब कोकिल की कूक को वायु वहन करती है, तब तुम किस अतीत की विकल कल्पना से उदास हो जाते हो? किस स्मृति के टूटे तार झंकृत हो उठते है? नक्षत्रों से प्रकाश आने लगा है, पर तुम्हारी सध्या उदास है, क्यों? —लहर

मधुर माधव ऋतु की रजनी रसीली सुन कोकिल की तान—रानी वपुष्टमा की दासी रत्नावली और प्रमदा का नृत्य और गान। वसन्त ऋतु मे, हे मानिनी, हठीला मान न कर, अपने प्रियतम के संग प्रकृति का सुख लूट ले—

डाल दे गलबाही का जाल,
हृदय में भर ले प्रेम उमंग।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, २-३

मधुर मिलन कुंज में—'एक घूंट' में अंतिम गीत, वनलता द्वारा प्रेमलता और आनन्द के प्रेम-मिलाप का अभिनन्दन। मिलन-कुज में जगत् का श्रम-सन्ताप खो जाता है, इस कुज में सुखद सरल सुमन खिलते है। जिस कुंज में पेड़ और लतिकाएँ गले मिलती है उसी की छाया तले प्रेम का एक घूट पी लो। —एक घूंट

मधुवन—प्रभावहीन नायक। शेरकोट का कुलीन युवक जमींदार, अब तीन बीघे खेत रह गया था। मुकद्दमे में सब कुछ हार दिया। वह श्रमिक बन गया। उसके चरित्र का आरभिक अंश विशेष स्पष्ट नहीं हुआ। उसके जीवन में कर्म की कठोरता के साथ स्नेह की स्निग्धता भी है। वह लड़कों को पढ़ाता, नौकरी करता और खेती-बारी भी सम्भालता था। कलकत्ता में रिक्शा चलाता। जब श्यामलाल और मैना वैश्या को पीटा तो पकडा गया। मैना को लेकर प्रवाद चला। तितली का विश्वास अटल रहा। वर्षों का जेल-जीवन बिता कर वह पुनः तितली को प्राप्त हुआ। —तितली

मधूलिका—कितना भोला सौन्दर्य! कितनी सरल चितवन! दुबली होने पर भी उसके अंग पर तपस्या की कांति थी। आस-पास के कृषक उसका आदर करते। वह एक आदर्श बालिका थी। उसमें आत्माभिमान, देश-प्रेम और प्रियतम-प्रेम दोनों प्रबल थे। 'पुरस्कार' उसी के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी है। —(पुरस्कार)

मध्यप्रदेश —(दासी)

मन—मन मधुप से भी चंचल और पवन से भी प्रगतिशील है, वेगवान् है। (चन्द्रगुप्त) —चन्द्रगुप्त, ४.४

मन जागो जागो—रानी वपुष्टमा की नई परिचारिका कलिका का उद्बोधन-गीत। मोह निशा छोड़ो, कमल खिल गए, मधुप उन पर गुंजार रहे हैं, प्रकृति तुम्हारे लिए सुधा-पात्र लिए खड़ी है, जागो। —जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-२

मनसा—नागकुमारी, जरत्कारु की स्त्री और तक्षक की बहन, जो नागजाति की सच्ची हितैषिणी है। वह मग्मा का प्रतिरूप है। नाग-जाति को उभारने का कार्य बड़ी लगन से करती है। आर्यों से उसे घोर विद्वेष है। युद्ध कराकर जब वह अपनी जाति का नाश होते देखती है तो उसमें परिवर्त्तन होने लगता है। वह दोनों जातियों में संधि कराने में सफल होती है। अपने कठोर और रूखे व्यवहार से पति और पुत्र तक का त्याग कर देती है। —जनमेजय का नाग-यज्ञ

मना आनन्द मत, कोई दुःखी है—
सुखी संसार है तो तू सुखी है।
न कर तू गर्व औरों को दबा कर।
कठिनता से दबाकर तू दुखी है॥

प्रेमानन्द का बिशाख को उपदेश कि दूसरों के दुःख से दुःखी और उनके सुख में सुखी होना चाहिए।

—विशाख, १-४

मनियार सिंह—राजा चेतसिंह का सैनिक अधिकारी। —(गुण्डा)

मनु[१]—मनु के इक्ष्वाकु आदि नव पुत्र और इला नाम्नी एक कन्या हुई।

—उर्वशी चम्पू, कथामुख

मनु[२]—मनु 'कामायनी' का नायक है। वह देव-सन्तान है, उसमें धीर-ललित के गुण विद्यमान है। 'कामायनी' में मनु साधक के रूप में आता है। पहले उसमें शरीर-पक्ष की प्रधानता है। उसमें विलासिता, स्वार्थपरायणता, आसक्ति, अहंकार आदि दुर्वृत्तियां हैं। उसके जीवन में वासना, ईर्ष्या, चंचलता, दम्भ आदि दुर्बलताएँ है जो उसे विषम स्थितियों में डाल देती हैं। तप, मनन और संघर्ष के द्वारा धीरे-धीरे इनका निराकरण होता है और वह ज्ञान, कर्म और इच्छा के मार्ग से समरसता को प्राप्त करता हुआ अखण्ड आनन्द का लाभ करता है। संघर्ष करते हुए उसने जिस वीरता, साहसिकता, स्वच्छन्द-प्रियता और आत्म-विश्वास का परिचय दिया है वह मनुष्य मात्र के लिए अनुकरणीय है। वह मानवता के गुण-दोष का प्रतीक है। मनु के जीवन से कवि बताना चाहता है कि जो पुरुष श्रद्धा जैसी पतिव्रता नारी की उपेक्षा करेगा वह मनु के समान भटकता फिरेगा और ऐसी नारी को अपनाने से ही उसका उद्धार होगा। नारी (श्रद्धा हो चाहे इड़ा) के साथ सहयोग करके मनुष्य सुखी रह सकता है। —कामायनी

मनु[३]—धर्म वह है जो तर्क पर प्रतिष्ठित है। —(रस, पृ० ४०)

[मनु १४ हैं—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि, इन्द्रसावर्णि। इनमें स्वायम्भुव मनु ब्रह्मा के पुत्र, धर्मवेत्ता, मनुस्मृति के रचयिता हैं। मानवें मनु विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र, प्रलय के बाद मत्स्य द्वारा बचाए जाने वाले आदिमानव, तपस्वी, राजा और वेदवक्ता हैं।]

मनुष्य—मनुष्य साधारण-धर्मा पशु है, विचारशील होने से मनुष्य होता है और निःस्वार्थ कर्म करने से वही देवता भी हो सकता है। (सिंहरण)—**चन्द्रगुप्त, ४-६**

मनुष्य (ठग)—मनुष्य एक ओर तो दूसरे से ठगा जाता है, फिर भी दूसरे से कुछ ठग लेने के लिए सावधान और कुशल बनने का अभिनय करता रहता है। (मुकुल) —**एक घूंट, पृ० १९**

मनुष्य और चरित्र—चरित्रों से मनुष्य नहीं बनते। मनुष्य चरित्रों का निर्माण करते हैं। —**इरावती, पृ० ८९**

मनुष्य और पशु—इस पृथ्वी पर कहीं-कहीं अब तक मनुष्यों और पशुओं में भेद नहीं है। मनुष्य इसीलिये है कि वे पशु को भी मनुष्य बनावें। तात्पर्य यह कि सारी सृष्टि एक प्रेम की धारा में बहे और अनन्त जीवन लाभ करे। (श्रीकृष्ण)

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ, १.१**

—मनुष्य पशु नहीं है; क्योंकि उसे बातें बनाना आता है—अपनी मूर्खताओं को छिपाना, पापों पर बुद्धिमानी का आवरण चढ़ाना आता है। और वाग्जाल की फांस उसके पास है। अपनी घोर आवश्यकताओं में कृत्रिमता बढ़ाकर सभ्य और पशु से कुछ ऊंचा द्विपद मनुष्य, पशु बनने से बच जाता है। (मुद्गल)

—**स्कन्दगुप्त, १-३**

दे० मानव भी।

लाभ ही के लिए मनुष्य सब काम करता, तो पशु बना रहना ही उसके लिए पर्याप्त था। (शर्वनाग)

—**स्कन्दगुप्त, २-२**

मनुष्यता—जिसे काल्पनिक देवत्व कहते हैं, वही तो सम्पूर्ण मनुष्यता है। (श्यामा) —**अजातशत्रु, ३-३**

—उदार प्रकृति बल, सौन्दर्य और स्फूर्ति के फुहारे छोड़ रही है। मनुष्यता यही है कि सहज लब्ध विलासों का, अपने सुखों का संचय और उनका भोग करे। (विलास) —**कामना, २-५**

—मनुष्यता का नाश करके कोई भी धर्म खड़ा नहीं रह सकता। —(**देवरथ**)

सहायता में तत्पर होना सामाजिक प्राणी का जन्मसिद्ध स्वभाव है, संभवतः मनुष्यता का पूर्ण निदर्शन है। —(**परिवर्तन**)

—मनुष्यता का एक पक्ष वह भी है जहां वर्ण, धर्म और देश को भूलकर मनुष्य मनुष्य के लिए प्यार करता है। —(**सलीम**)

मनुष्य-हृदय की दुर्बलता—मनुष्य-हृदय स्वभाव-दुर्बल है। प्रवृत्तियां बड़ी-बड़ी राज्यशक्तियों के सदृश इसे घेरे रहती हैं। अवसर मिला कि इस छोटे-से हृदय-

राज्य को आत्मसात् कर लेने को प्रस्तुत हो जाती हैं। (ग्रहवर्मा) —राज्यश्री, १-२

मनोनुकूलता—जैसे एक साधारण आलोचक प्रत्येक लेखक से अपने मन की कहानी कहलाया चाहता है और हठ करता है कि नहीं यहां तो ऐसा न होना चाहिए था ; ठीक उसी तरह तुम सृष्टि-कर्त्ता से अपने जीवन की घटनावली अपने मनोनुकूल सही करना चाहते हो। (देवनिवास) —(नीरा)

मनोरमा[१]—मोहनलाल की पत्नी। भावुक युवती जो अपनी सरलता और बेसमझी के कारण पुरुषों के हथकण्डों को नहीं जान पाती और इसी लिए दुःखी होती है। —(सन्देह)

मनोरमा[२]—दिल्ली के पास एक गांव की रहने वाली। मोहन की पत्नी, जो एक बनावटी रूप और आवभगत को अपना आभरण समझने लगी। ससुराल में उसने किसी को अपने रूप से, किसी को विनय से, किसी को स्नेह से अपने वश में करना चाहा। उसे सफलता भी मिली। वह स्वामी की दासी सी हो गई। उनके सुख की व्यवस्था करती, पैर दबाती। गृहस्थी के काम में मनोरमा कुशल थी। —(सहयोग)

मन्दाकिनी[१]—

—कामायनी, स्वप्न, पृ० १७६

मन्दाकिनी[२]— —(चित्रकूट)

मन्दाकिनी[३]—ध्रुवस्वामिनी की खड्ग-धारिणी सहचरी। आदर्श नारी, पतितों के लिए सहारा, सदा न्याय का पक्ष ग्रहण करती है। उसमें स्वार्थ नहीं, उसमें नारी की निर्बलता और विवशता तो है, पर उसे न तो प्राणों की परवा है और न ही धर्मशास्त्र का डर। खरी-खरी सुनाने में वह निर्भीक है। अमात्य को, पुरोहित तथा रामगुप्त को कहे गए उसके कथनों में युग-युग की नारी का चीत्कार है, विद्रोह है। 'राजा का भय मन्दाकिनी का गला नहीं घोंट सकता' (मन्दाकिनी)। वह विवेकशील, कुशल और निस्पृह है। —ध्रुवस्वामिनी

मन्दाकिनी[४]— —(पंचायत)

मन्दाकिनी[५]— —(प्रार्थना)

मन्दाकिनी[६]— —(भक्तियोग)

मन्दाकिनी[७]— —(रूप की छाया)

मन्दाकिनी[८]— —(शिल्प-सौन्दर्य)

[=यमुना; बुन्देलखंड में पयस्विनी और केदार पर्वत से निकलने वाली कलि-गंगा का नाम भी मन्दाकिनी है।]

मन्दिर—४-४ पंक्तियों के सात पद। जब वह सर्वव्यापी है तो मन्दिर में भी तो है। जब देह-मन्दिर में आत्मा-परमात्मा विद्यमान है तो देव-मंदिर में तो वही है। प्रस्तर-मूर्त्ति में भी वही है, तब इससे नाक-भौंह क्यों चढ़ाते हो, इसके चरण-कमल से फिर मन क्यों हटाते हो। अनेक रूपों में वही है, सर्वत्र उसी की लीला है। मस्जिद, पगोडा, गिरजा सब भक्ति-भावना के नमूने हैं। उसका अनन्त मन्दिर, यह विश्व ही बना है। —कानन-कुसुम

मन्दोदरी—दे० त्रिजटा।

[रम्भा अप्सरा की पुत्री, रावण की पत्नी, इन्द्रजीत की मां।]

मञ्जू—तमोली जिसकी दूकान पर बहुधा नन्हकू सिंह बैठा करते। —(**गुण्डा**)

मन्सूर[1]—शाह आलम का प्रधान सहायक। यह इस बात से चिढ़ा हुआ था कि बादशाह ने मराठों की संरक्षता स्वीकार कर रक्खी थी। इसने बादशाह से धोखा किया और दिल्ली पर कब्जा करने में गुलाम कादिर की सहायता की। नमक हराम! —(**गुलाम**)

[दे० शाह आलम।]

मन्सूर[2]—मुसल्मानों ने उसे 'अनल-हक' कहने पर सूली चढ़ा दिया।

—(**रहस्यवाद, पृ० १९**)

[सूफी फकीर, असली नाम हुसैन, समय १०वी शती।]

ममता[1]—ममता एक ब्राह्मण विधवा थी। उसका पिता चूड़ामणि रोहतास दुर्ग के अधिपति का मंत्री था। पिता उसके मन को द्रव्य में उलझा कर उसके वैधव्य दुःख को विस्मृत कराना चाहते थे। परन्तु उसे यह उत्कोच से प्राप्त धन अच्छा नहीं लगा। शेरशाह ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया, चूडामणि मारा गया और ममता दुर्ग से निकल कर दूर, काशी के उत्तर धर्मचक्र विहार में, एक झोंपड़ी बनाकर रहने लगी। वहीं उसने बंगाल-बिहार से भागे हुए और बक्सर की लड़ाई मे परास्त हुमायू को एक रात के लिए शरण दी। बाद में इस घटना की स्मृति में अकबर ने वहां एक अष्टकोण मन्दिर बनवा दिया।

कहानी का वातावरण ऐतिहासिक है। इसमे करुणा की मूर्त्ति ममता के आदर्श चरित्र का चित्रण बहुत सुन्दर बन पाया है। परन्तु कहानी मे सन्तुलित प्रभाव की कमी है। ममता का व्यक्तित्व प्रभावशाली है। साधारण कोटि की कहानियों मे यह अच्छी है। अन्त सुन्दर है। —**आकाशदीप**

ममता[2]—करुणा की मूर्त्ति, युवती विधवा, रोहतास दुर्गपति के मंत्री चूणामणि की अकेली दुहिता। जब शेरशाह ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया तो इसके पिता मारे गए। यह भाग निकली। अतिथि-धर्म का पालन करने मे खतरे मे भी पडने को तैय्यार हुई। त्यागमय जीवन बिताया। —(**ममता**)

मरण जब दीन जीवन से भला हो—महापिंगल की हत्या करके विशाख कहता है कि दीन और अपमानित जीवन से मरण अच्छा है, क्योंकि वह मनुष्य पशु से भी गया बीता है जो धिक्कार मे जीता है। —**विशाख, ३-२**

मरियम[1]—ईसा की जननी मरियम का एक सुन्दर चित्र बाथम के कला-सम्बन्धी संग्रहों में था। —**कंकाल, २-३**

मसीह-जननी की छाया में चलने को जान ने घंटी से कहा। —**कंकाल, ३-४**

मरियम[2]—अकबर की ईसाई बेगम।

—(**नूरी**)

[मरियम जमानी पुर्तगाली महिला

थी, ऐसा कुछ इतिहासकार मानते हैं। लेकिन जहांगीर ने अपने को मरियम का बेटा कहा है, इससे मरियम जोधाबाई का दूसरा नाम जान पड़ता है।]

मरीचि-- --(वन-मिलन)

[ऋषि जिनके आश्रम में मेनका तिरस्कृत शकुन्तला और भरत को ले आई और बाद में यहीं दुष्यन्त से पुर्नमिलन हुआ।]

मर्मकथा—इन्दु, कला ३, किरण १० (सितम्बर १९१२) में प्रकाशित १६ पंक्तियों की कविता। प्रियतम बदल गया, पर हम भी अपनी प्रेम-व्यथा किसी और से जाकर नहीं कहेंगे। वह कब तक रूखा बना रहेगा? प्रेमी को विश्वास है कि उसके चुप रहने से प्रियतम आ जायगा। वह कहता है कि हम-तुम जब एक है तो लोग बकते फिरें। —कानन-कुसुम

मलय[1]— —(अशोक)

मलय[2]— —आंसू, पृ० २७, ४२

मलय[3] —कामायनी, काम, स्वप्न, निर्वेद

मलय[4]— —(झील में)

मलय[5]— —तितली, ४-३

मलय[6]— —(परिचय)

मलय[7]— —स्कन्दगुप्त

[कावेरी नदी के दक्षिण में पश्चिमी घाट का हिस्सा। चन्दन-वन के लिए प्रसिद्ध ; इसी से मलयबार और मल-यालम शब्द हैं।]

मलिना—कविता। नभ में जलभरे बादल छाए हैं। तरुओं के संग लजीली सजीली लता लहरा रही है। फूल की डालियों पर बुलबुल और कोयल शोर मचाते हैं। वह बरसाती नाला, वह सुन्दर अम-राई, वह सघन कुज,—ये सब दृश्य कितने अनूठे है। इस पृष्ठभूमि में एक मलिन-वसना बाला चिंतित मुद्रा में बैठी है ऐसे जैसे कल कमल कोष पर पाला पड़ गया हो। इसका यौवन खिलने वाला है। अभी तो यह उत्ताल तरंग में खिली पतली सी नलिनी है। इसे अभी मधुकर से दूर ही रखो। —कानन-कुसुम

मलिया—शेरकोट की एक नटखट चुल-बुली छोकरी। मलिया और रामदीन की सगाई हो गई। —तितली

मलूकी—कथक। नन्हकू सिंह की कुछ सेवा कर दी, कभी इनाम पा लिया। —(गुंडा)

मल्लाही टोला—शेरकोट के निकट ही एक पुरवा। शेरकोट के पतन के साथ यह भी उजड़ गया। अब केवल दस घर रह गए थे। —तितली, १-६

मल्लिका—आदर्श और काल्पनिक चरित्र, प्रसाद की प्रतिभा की महत्त्वपूर्ण सृष्टि। कोशल के सेनापति बन्धुल की पत्नी जिसे अपने पति के शौर्य्य और प्रेम पर दृढ़ विश्वास है। वह पति की गुण-गाथा गाते नहीं थकती। वह पत्नी के कर्त्तव्य और दायित्व को ठीक-ठीक समझती है। पति के कर्त्तव्य में हस्तक्षेप करना नहीं चाहती। वह आदर्श देवी है जो शत्रुओं के अपराधों को क्षमा करके उन्हें सद्बुद्धि प्रदान करती है। जिन्होंने

इसको विधवा बनाया उन दुष्ट विरुद्धक, प्रसेनजित, शक्तिमती और अजात का उद्धार करती है। धैर्य्य और करुणा की वह मूर्त्ति है जो दुःख में भी कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं होती। नाटक के अनेक पतित चरित्रों को उबारने में उसका प्रभावशाली हाथ है। उसके "मुखमण्डल पर तो ईर्ष्या और प्रतिहिंसा का चिह्न भी नहीं दिखाई पड़ता।" नाटक में यह पात्री अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्नेह, सेवा, उदारता, करुणा और विश्वमैत्री उसके चरित्र की निधि है। "स्त्री-सुलभ सौजन्य और समवेदना, कर्त्तव्य और धैर्य्य की शिक्षा" उसके व्यवहारों से चरितार्थ होती है। दे० बन्धुल। —अजातशत्रु

मसऊद—सुलतान महमूद का उत्तराधिकारी। सुलतान मसऊद के शिल्पकला-प्रेम की गम्भीर प्रतिमा, गजनी नदी पर एक कमानी वाला पुल था। —(**दासी**)

[वीर, उदार और साहित्य-प्रेमी पर शराबी, राज्यकाल १०३१-१०४१ ई०।]

मसूरी—'सुनहला सांप' शीर्षक कहानी का घटना-स्थल।

[जिला देहरादून में समुद्रतल से ७००० फुट ऊँचा। इसे पहाड़ों की रानी कहते हैं।]

मस्करी गोशाल—मस्करी गोशाल, अजित केश-कम्बली, नाथ-पुत्र संजय, बेलट्ठि-पुत्र, पूरन कस्सप आदि तीर्थंकर, बुद्ध के जिन-प्रतिद्वन्द्वी, जो दुःखातिरकवादी थे। —(**रहस्यवाद, पृ० २३-२४**)

[बौद्ध साहित्य में गौतम बुद्ध के समकालीन इन प्रतिपक्षियों का उल्लेख प्रायः मिलता है।]

महँगू महतो—गांव का चौधरी। सम्पन्न और अभिमानी। महँगू के अलाव पर गांव भर की आलोचना होती थी। —**तितली, खंड ३**

महत्त्वाकांक्षा[1]—(पात्र) —**कामना**

महत्त्वकांक्षा[2]—मनुष्य व्यर्थ महत्त्व की आकांक्षा में मरता है। (बिम्बसार) —**अजातशत्रु, १-२**

—महत्त्वाकांक्षा के दांव पर मनुष्यता सदैव हारी है। (कार्नेलिया) —**चन्द्रगुप्त, ४-**

महत्त्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी मे रहता है। (चाणक्य) —**चन्द्रगुप्त, ४-७**

—क्षुद्र हृदय जो चूहे के शब्द से भी शंकित होते हैं, जो अपनी सांस से ही चौंक उठते हैं, उनके लिए उन्नति का कंटकित मार्ग नहीं है। महत्त्वाकांक्षा का दुर्गम स्वर्ग उनके लिए स्वप्न है। (अनन्तदेवी) —**स्कन्दगुप्त, १-४**

दे० अभिलाषा भी।

महत्त्वशाली व्यक्ति (शोषक)—कौन न कहेगा कि महत्त्वशाली व्यक्तियों के सौभाग्य-अभिनय में धूर्तता का बहुत हाथ है। जिसके रहस्यों को सुनने से रोम-कूप स्वेद-जल से भर उठें ; जिसके अपराध का पात्र छलक रहा है, वही समाज का नेता है। जिसके सर्वस्व-हरणकारी करों से कितनों का सर्वनाश

हो चुका है, वही महाराज है। जिसके दण्डनीय कार्य्यों का न्याय करने में परमात्मा को समय लगे, वही दण्ड-विधायक है। (नरदत्त) —राज्यश्री, २-७

महमूद—गजनी का प्रसिद्ध सुलतान।
—(दासी)

[इसने १००१ और १०२५ ई० के बीच में १७ बार भारत पर आक्रमण किये। अन्त में पंजाब को गजनी के राज्य में मिला लिया।]

महाकवि तुलसीदास—१९२३ ई० में तुलसी ग्रंथावली (तृतीय भाग) के अंतिम पृष्ठ पर सर्वप्रथम प्रकाशित। रचना १९१४ के आस-पास की है। तुलसी ने मानवता को सदय राम का रूप दिया जो अखिल विश्व में रमा हुआ है। उसने 'अन्धकार-भव-बीच नाम-मणि-माला' दी। वह स्वयं दीन रहा और लोगों में चिन्तामणि वितरित करता रहा। उसने भक्ति-सुधा से जग का सन्ताप दूर किया। वह प्रभु का निर्भय सेवक था, प्रबल प्रचारक था।

राम छोड़ कर और की
जिसने कभी न आस की,
'राम चरित मानस'-कमल,
जय हो तुलसीदास की।

—कानन-कुसुम

[दे० तुलसी]

महाकाल[1]— —इरावती, १

महाकाल[2]— —कामायनी, रहस्य

महाकाल[3]— —(शिल्प सौन्दर्य)

महाकाल[4]—(शेरसिंहकाआत्मसमर्पण)

महाकाल[5]— —(समर्पण)
[=शिव]

महाक्रीड़ा—सर्वप्रथम इन्दु, कला ३, किरण ४ (मार्च १९१२) में प्रकाशित कविता। इसमें सुन्दर प्राची का वर्णन है। पूर्णिमा का चांद, तारे अपनी कान्ति खो देने को हैं, विहंगम गा रहे हैं। मलय-मारुत चला आ रहा है। कंज-कली खिलने लगी है। लताएँ कुसुमित हैं। अरुण की आभा फैल रही है। सूर्योदय होने वाला है। कवि चितचोर से वार्तालाप आरम्भ कर देता है। तुम प्रकृति के कण-कण में व्याप्त हो, अब तुम्हारा छिपना सम्भव नहीं है। पुरुष-प्रकृति का यह खेल चिरन्तन है।

इस कविता से कवि की रहस्यवादी प्रवृत्तियों का आभास मिलता है।

—कानन-कुसुम

महादेवगिरि—शिवसूत्रों की यहां से प्रतिलिपि करके रहस्य सम्प्रदाय का प्रचार किया गया।

—(रहस्यवाद, पृ० २८)

[वर्तमान छिन्दवारा, मध्यप्रदेश, के पास; इसकी चोटी पँचमढ़ी प्रसिद्ध है।]

महापद्म[1]—दे० नन्द। महावंश और जैनों के अनुसार इनका नाम कालाशोक है। —अजातशत्रु, कथा-प्रसंग

महापद्म[2]—नन्द इन महाराज का जारज पुत्र बताया गया है। इनको मार कर नन्द ने सिंहासन ले लिया।

—चन्द्रगुप्त, १-३

[दे० नन्द]

महापिङ्गल—कल्पित पात्र ; राजा नरदेव का सहचर, धूर्त्त, अर्थलिप्सु, चाटुकार सामन्त। विनोदी, अहंमानी और कामुक, बुढ़ापे में प्रेम की अफीम खाने चला। वह राजा की दुर्वासनाओं को उत्तेजित करने में सहायक होता है। रानी उसे कुटिल सभासद् बताती हैं। वह नीच है। विशाख से चन्द्रलेखा को समर्पित करने की मांग करना उसकी क्षुद्र बुद्धि का प्रमाण है। विशाख द्वारा मारा जाता है। —विशाख

महाबोधि—बौद्ध विहार, जहां संघ-महास्थविर थे। —स्कन्दगुप्त

[गया (बिहार) के निकट। यहीं गौतम को बोध हुआ था।]

महाभारत—महाभारत में करुण रस की कमी नहीं है; परन्तु वह आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी-सा हो गया है। और तब उसमें व्यक्ति वैचित्र्य का भी पूरा समावेश हो गया है। उसके भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन, युधिष्ठिर अपनी चरित्रगत विशिष्टता में ही महान् हैं। आदर्श का पता नहीं।

—(**आरम्भिक पाठ्य काव्य, पृ० ७९**)

रम्भाभिसार नाटक के अभिनय का वर्णन मिलता है।

—(**नाटकों का आरम्भ, पृ० ५६**)

महाभारत का भी अभिनय होता था, जैसे रामायण के आधार पर राम-लीला। —(**रंगमञ्च, पृ० ७१**)

आनन्दवर्धन के अनुसार इसमें शान्तरस प्रधान है। —(**रस, पृ० ४५**)

शान्त रस के अनुकूल होने पर दुःखान्त है—बुद्धिवादी प्रभाव।

—(**रस, पृ० ४७**)

[रामायण के बाद संस्कृत साहित्य में व्यासकृत महाभारत है। यह कृति महाकाव्य न होकर इतिहास कही जाती है। कहा गया है कि महाभारत एक साथ अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और कामशास्त्र है। इसे पंचम वेद कहते हैं। इसकी कथा का अंकुर शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। इसमें १८ पर्व (अध्याय) हैं। श्लोकों की मूल संख्या १ लाख बताई जाती है। गीता और हरिवंश इसके अन्तर्गत हैं।]

महामाया—दे० शक्तिमती।

महामेघवाहन खारवेल—कलिंग देश का चक्रवर्ती राजा। "स्निग्ध श्यामवर्ण, दाढ़ी-मूछ मुंडा हुआ, कंधों तक पीछे लटकी हुई सघन घुंघराली लटें, कौशेय का कंचुक, कमर में कटिबन्ध जिसमें छोटी कृपाणी, आंखों में निश्चिन्तता।" वह साहसी , वीर और कलामर्मज्ञ था। विपत्ति में भी अविचल रहा। दक्षिणापथ विजय कर लेने के बाद वह उत्तरी सीमान्त के विजय-स्कंधावार में रहा। खारवेल उपन्यास के अन्त में आता है, इसलिए उसके चरित्र का विकास अधिक नहीं हो पाया। —**इरावती**

[इसने १६८ ई० पू० में मगध पर आक्रमण किया, पर पुष्यमित्र ने इसे परास्त किया।]

महाराणा का महत्त्व—भिन्नतुकान्त खण्डकाव्य ; इन्दु, कला ५, किरण ६, जून १९१४ में प्रकाशित, 'चित्राधार' प्रथम संस्करण में संकलित, बाद में १९२८ ई० में पुस्तकाकार प्रकाशित। पृष्ठ संख्या २४। विरति के हेर-फेर से प्रयुक्त अरिल्ल छन्द। इस काव्य के पांच विभाग हैं। नव्वाब अबदुर्रहीम खानखानाँ का हरम राजपूताने के मरुस्थल के एक भाग से होकर स्थानान्तरित हो रहा है। शिविकाएँ चली जा रही हैं। बेगम को प्यास लगती है। तब नायक आगे एक मरु-उद्यान (शाद्वल) की ओर संकेत करके कहता है कि वहां तक चलने पर ही पानी मिल सकेगा। दूसरा दृश्य मरु-उद्यान का है। कुंवर अमरसिंह मुसलमान सैनिकों पर आक्रमण कर देते हैं और उन्हें परास्त कर नव्वाब की पत्नी को बंदिनी बना कर ले जाते हैं। अरावली की तलहटी में महाराणा प्रताप के सामने जब नव्वाब-पत्नी को उपस्थित किया जाता है तो उन्हें बड़ा खेद होता है और वे उसे सादर लौटा देने का आदेश देते हैं—

सिंह क्षुधित हो, तब भी करता नहीं
मृगया डर से दबी शृगाली-वृन्द की।
शत्रु हमारे यवन उन्हीं से युद्ध हो
यवनी-गण से नहीं हमारा द्वेष है।

यही तो महाराणा प्रताप का महत्त्व है। नव्वाब राणा से युद्ध बन्द करके चले जाने का निश्चय करते हैं। अन्तिम दृश्य दिल्ली में अकबर के दरबार का है। रहीम महाराणा की वीरता का गान करते हैं और अन्त में अकबर अपनी सेना वापस बुला लेने का आदेश देते हैं।

महाराष्ट्र—महाराष्ट्र सुशासित वीर-निवास है। (हर्ष) —**राज्यश्री, ३-३**

[दक्षिण-पश्चिम भारत का प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रदेश—केन्द्र पूना, सतारा, शोलापुर। वर्तमान बंबई प्रान्त, हैदराबाद और मध्यप्रदेश में इसका भाग सम्मिलित है।]

महारुद्र —(**बभ्रुवाहन, ४**)

[=शिव]

महावीरचरित—छायानाटक नहीं बना था। —(**नाटकों का आरम्भ, पृ० ६०**)

[भवभूति-कृत सात अंकों का वीर-रस-प्रधान नाटक जिसमें रामायण की कथा है।]

महोदय—पूर्वी प्रदेश। राज्यवर्धन के मित्रों में। —**राज्यश्री, १-२, २-३**

[=कन्नौज]

मागन्धी—दे० आम्रपाली। उदयन की तीसरी रानी के रूप में मागन्धी।

[इतिहास में इसे मागंधीय ब्राह्मण की कुमारी बताया गया है। इसके पिता ने इसका विवाह बुद्ध से करना चाहा था, पर बुद्ध ने स्वीकार नहीं किया ; इसलिए मागन्धी के मन में बुद्ध और बौद्धों के प्रति निरादर था। पद्मावती को अपमानित करने के लिए षड्यंत्र रचा। अन्त में उसने पद्मावती के गृह में आग लगवा दी।] —**अजातशत्रु**

माझी साहस है, खे लोगे ?—यह देवसेना के प्रति सखियों की छेड़-छाड़ है। बेचारी का स्कन्दगुप्त के प्रति प्रेम उन पर उघर गया है और वे उसे बना रही हैं। प्रेम की कठिनाइयों का वर्णन करते हुए पूछती हैं कि क्या इस बीहड़ वेला में तुम अपनी यह जर्जर तरी खे लोगी ? क्या तुम प्रेम के कांटों से भरा मार्ग अनायास ही पार कर लोगी ? क्या जलजाल का सामना कर सकोगी ? क्या इन उठती हुई लहरों को झेल सकोगी ? —**स्कन्दगुप्त, ३**

माणवक—सरमा और वासुकि का बेचारा पुत्र (कल्पित पात्र)। वह अपना और अपनी माता का अपमान देख कर प्रतिहिंसा के लिए उद्यत होता है। "क्रूरता का ताण्डव किए बिना न जी सकूंगा।" वह मातृभक्त है। माँ की आज्ञा से वह अनेक ऐसे कार्य नहीं करता जिन्हें वह करना चाहता है। वह रानी वपुष्टमा अथवा जनमेजय से प्रतिशोध लेना छोड़ देता है, बल्कि नागों से वपुष्टमा के जीवन और सतीत्व की रक्षा करता है। अन्ततः वह लोकहितकारी ही प्रमाणित होता है। —**जनमेजय का नाग-यज्ञ**

माण्डूक्यकारिका—दे० गौडपाद।

[गौडपादकृत उपनिषदों की कारिकाओं में आधा भाग माण्डूक्य उपनिषद् की कारिका का है।]

मातलि—दुष्यन्त, शकुन्तला और भरत के आने की सूचना मातलि ने सब को दी। —**(वनमिलन)**

[इन्द्र के पुष्पक विमान का चालक।]

मातृगुप्त—(कवि कालिदास ?), प्रतिभावान्, सहृदय कवि जो बाद में राजनीति में प्रवेश करता है। देवसेना को बचाने के पुरस्कार स्वरूप सम्राट् स्कन्दगुप्त ने उसे कश्मीर का शासक बना दिया। —**स्कन्दगुप्त, ३**

वह देश की पुकार पर कर्मक्षेत्र में प्रवृत्त होता है और अपनी लेखनी तथा तलवार दोनों से राष्ट्र की सेवा करता है।

उसका प्रणय भावुकता-प्रधान है। चाहे मालिनी ने उसकी परवा नहीं की लेकिन मातृगुप्त उसकी स्मृति को सँजोए रहता है। —**स्कन्दगुप्त**

[डा० भाऊदाजी कालिदास और मातृगुप्त को एक ही व्यक्ति मानते है। प्रसादजी उनसे सहमत हैं।]

मातृरूप—

तुम देवि ! आह कितनी उदार !
यह मातृ-मूर्ति है निर्विकार;
हे सर्व मंगले ! तुम महती..इत्यादि।

—**कामायनी, दर्शन, पृ० २४९**

माधव— —(**सात्वती**)

माधव विदेह—दे० सदानीरा।

माधुरी—इन्द्रदेव की बहिन बीबीरानी। घर की प्रबन्धकर्त्री है। वह दक्ष, चिड़चिड़े स्वभाव की सुन्दरी युवती है। माता श्यामदुलारी भी उसके अनुशासन को मानती है और भीतर ही भीतर दबती भी है। माधुरी का पति उसकी खोज-खबर नहीं लेता। उसके जीवन में प्रेम नहीं, सरलता नहीं, स्निग्धता भी

उतनी न थी। पिता के घर का अधिकार ही उसके लिए मन बहलाने का खिलौना था। —तितली

माधो—मधुबन के गांव का दरिद्र आदमी जो राजो के साथ महंत के पास गया, पर उसे महन्त ने निकाल दिया। —तितली, ३-५

मान लूँ क्यों न उसे भगवान्—स्वामी प्रेमानन्द चैत्य में बैठे गाते हैं। भगवान् वह है जिसमें करुणा, विश्व-वेदना और समभाव है, जिसमें मोह नहीं, द्वेष नहीं—ऐसा चाहे कोई नर हो अथवा किन्नर, उसे मैं तो भगवान् ही कहूँगा। —विशाख, २-६

मानव—मनुष्य! तुझे हिंसा का उतना ही लोभ है, जितना एक भूखे भेड़िये को! तब भी तेरे पास उससे कुछ विशेष साधन हैं—छल, कपट, विश्वासघात, कृतघ्नता और पैने अस्त्र। इनसे भी बढ़कर प्राण लेने की कलाकुशलता। (मातृगुप्त) —स्कन्दगुप्त, ३-१

दे० अगले शब्द, मनुष्य भी।

मानवकुमार—मनु और श्रद्धा के पुत्र। —कामायनी

मानव जीवन—

मनुज होकर जिया धिक्कार से जो
कहेंगे पशु गया बीता उसे हम॥
—विशाख, ३-२

मानवता—मेरी समझ में तो मनुष्य होना राजा होने से अच्छा है। (पद्मावती) —अजातशत्रु, १-१

उपकार, करुणा, समवेदना और पवित्रता मानव हृदय के लिए ही बने हैं। (मल्लिका) —अजातशत्रु, २-७

पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र। —कामायनी, श्रद्धा, पृ० ५८

आज से मानवता की कीर्ति
अनिल, भू, जल में रहे न बन्द
—वही

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय;
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।
—कामायनी, श्रद्धा, पृ० ५९

आकर्षण से भरा विश्व यह। —कामायनी, कर्म, पृ० १२८

अपने में सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा?
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा
—कामायनी, कर्म, १३२

औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ;
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।
—कामायनी, कर्म, १३२

मानवता की घोषणा करनी होगी, सब को अपनी समता में ले आना होगा। (श्रीकृष्ण) —जनमेजय का नाग-यज्ञ, १-१

विश्व का आकर्षण। —झरना, अव्यवस्थित

मानवता की कल्याण-कामना में लगना चाहिए। (रामनाथ) —तितली, २-१०

सेवा, परोपकार और दुःखी की सहायता मनुष्य के प्रधान कर्त्तव्य हैं। (प्रेमानन्द) —विशाख, १-४

मानवता का विकास—हंस, मई १९३० में प्रकाशित इस शीर्षक से श्रद्धा का कुछ भाग।

मानवतावाद—श्रेणीवाद, धार्मिक पवित्रतावाद, आभिजात्यवाद, इत्यादि अनेक रूपों में फैले हुए सब देशों के भिन्न-भिन्न प्रकार के जातिवाद हैं।...श्रीराम ने शबरी का आतिथ्य स्वीकार किया था। श्रीकृष्ण ने दासी-पुत्र विदुर का आतिथ्य ग्रहण किया था। बुद्धदेव ने वेश्या के निमंत्रण की रक्षा की थी। इन घटनाओं का स्मरण करके मानवता के नाम पर सब को गले लगाओ।

—कंकाल, पृ० २६८-६९

मानव दुर्बलता—जब जीवन का केवल एक पार्श्व-चित्र ही उपस्थित होकर मनुष्य की दुर्बलता को उसकी अन्य सम्भावनाओं से ऊपर कर लेता है तब उसकी स्वाभाविक गति जकड़ी-सी बन जाती है। —इरावती, पृ० १०२

मानसरोवर— —कामायनी

[कैलास पर्वत के पास झील जो १५ मील लम्बी और ११ मील चौड़ी बताई जाती है।]

मानव से दानव—

अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया रे मनुष्य! तू कितने नीचे गिर गया आज प्रलोभन भय तुझसे करवा रहे कैसे आसुर कर्म्म! अरे तू क्षुद्र है—क्या इतना! तुझ पर सब शासन कर सकें और धर्म की छाप लगाकर मूढ़ तू फँसा आसुरी माया में, हिंसा जगी। (विश्वामित्र)—करुणालय, पृ० २०-२१

मानव कब दानव से भी दुर्दान्त, पशु से भी बर्बर, और पत्थर से भी कठोर, करुणा के लिए निरवकाश हृदय वाला हो जायगा, नहीं कहा जा सकता। (सिंहरण) —चन्द्रगुप्त, १-१

मानव-स्वभाव—मानव स्वभाव है, वह अपने सुख को विस्तृत करना चाहता है। और भी, केवल अपने सुख से ही सुखी नहीं होता कभी-कभी दूसरों को दुःखी करके, अपमानित कर के, अपने मान को, सुख को प्रतिष्ठित करता है।

—तितली, १-५

कोई भी स्वार्थ न हो; किन्तु अन्य लोगों के कलह से थोड़ी देर मनोविनोद कर लेने की मात्रा मनुष्य की साधारण मनोवृत्तियों में प्रायः मिलती है।

—तितली, १-६

कभी-कभी मनुष्य की यह मूर्खतापूर्ण इच्छा होती है कि जिनको हम स्नेह की दृष्टि से देखते हैं, उन्हें अन्य लोग भी उसी तरह प्यार करें। अपनी असम्भव कल्पना को आहत होते देखकर वह झल्लाने लगता है। —तितली, २-१०

मानव हृदय—मनुष्य इसी तरह प्रायः दूसरे को समझा करता है। उसके पास थोड़ा-सा सत्यांश और उस पर अनुमानों का घटाटोप लाद कर वह दूसरे के हृदय की ऐसी ही मिथ्या मूर्त्ति गढ़ कर

संसार के सामने उपस्थित करते हुए निस्संकोच भाव से चिल्ला उठता है कि लो यही है वह हृदय जिसको तुम खोज रहे थे। मूर्ख मानवता ! —तितली, ३-८

मानस—कविता। मानस में चिन्ता, हर्ष, विषाद, क्रोध, निर्वेद, लोभ, मोह, आनन्द आदि के अनेक रूप रहते हैं। मनुष्य इसी के पुलिन पर बैठ कर अनोखी तरंगों की तानें सुनता है। इसमें आशा के अनेक हीरे-मोती भरे हैं। कल्पना का यही स्रोत है। दुःख में मानस को व्यथा होती है। उसमें सूक्ष्म भावनाओं का विकास होता है। अंतिम पंक्ति है—

तव तरंग की सीमा यहि विधि नाहिं ।
खेलत जा महँ चित्त मराल सुख चाहिं ॥

विषय और शैली की दृष्टि से कविता में नवीनता है। —(पराग)

मानिक—शैशव से कमला का युवक अनुचर। —(प्रलय की छाया)

[=काफ़ूर]

मारगरेट लतिका—भारतीय ईसाई रमणी, अंग्रेज व्यापारी बाथम की पत्नी। "मैं हिन्दू थी...हां फिर...सहसा आर्थिक कारणों से पिता माता...ईसाई हो गए। ...ओह मैं लता सी बढ़ने लगी... बाथम एक सुन्दर हृदय की आकांक्षा-सा सुरुचिपूर्ण...यौवन का उन्माद...प्रेरणा का पवन...मैं लिपट गई...क्रूर... निर्दय...मनुष्य के रूप में पिशाच... मेरे धन का पुजारी...व्यापारी...चाप-लूसी बेंचने वाला।" अन्त में अपनी सम्पत्ति भारत-संघ को दे दी। —कंकाल

मारीच वध—राग-काव्य।

['अभिनवभारती' में उल्लिखित।]

मार्कहेम—(रेज़ीडेण्ट) जिसकी आज्ञा से काशी का प्रबन्ध होने लगा। राजा चेतसिंह से अनबन थी। —(गुंडा)

मालती[१]—एक स्वस्थ युवती, किन्तु दूर से देखने में अपनी छोटी-सी आकृति के कारण वह बालिका-सी लगती थी। —(आंधी)

मालती[२]—कलकत्ता की वेश्या, बीरू की संगिनी, जिसके पीछे बीरू भारी पियक्कड़ बन गया। —तितली, खंड ४

मालती[३]—चन्द्रदेव की पत्नी। पति का कृत्रिम वैराग्य उसे खलता था। वह धीरे-धीरे रुग्णा हो गई। आत्मविश्वास लौटा, वह स्वस्थ, सुन्दर, हृष्टपुष्ट और हँसमुख हो सकती है, होकर रहेगी। वह मरेगी नहीं। ना, कभी नहीं, चन्द्र-देव को दूसरे का न होने देगी। प्रसन्नता ने उसके रोग को दूर कर दिया। —(परिवर्त्तन)

मालती[४]—(मालो) गांव में एक ही सुन्दर, चंचल, हँसमुख और मनचली लड़की थी। अभी विवाह नहीं हुआ था कि व्रजराज के घर में आना जाना था। पैर के अँगूठों के चांदी के मोटे छल्लों को खटखटाती। गृहस्वामिनी ने इस 'मनोविनोद' को नहीं चलने दिया। व्रजराज घर से चला गया तो इन्दो इससे कई बार लड़ी। स्वभाव से कोमल थी। पति पंजाबी मिले जिनसे

वह कुछ डरती है। है संयमशील और भावना-शून्य। —(भीख में)

मालती देवी—कुसुमपुर की एक महिला जिसके घर में नित्य संघ का निमंत्रण होता था। —इरावती, ८

मालदेव—हम्मीर का चिर-शत्रु। —(चित्तौर उद्धार)

[जलोर का रजवाड़ा, चित्तौरविजय के बाद अलाउद्दीन खिल्जी द्वारा नियुक्त अध्यक्ष।]

मालविका—शस्य-श्यामल सिन्धु देश की कुमारी, सरल, कोमलहृदया। चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है। वह एक कली है जो अपने भ्रमर से प्रेम करती है और समर्पण को ही अपना सर्वस्व मानती हुई अपना अन्त कर देती है। चन्द्रगुप्त उसकी सरलता पर मुग्ध है। वह उसे "स्वर्गीय कुसुम" कहता है। मालविका का प्रेम वासना-रहित है। वह कहीं सैनिका, कहीं दासी और कहीं ताम्बूलवाहिनी के रूप में अपने प्रियतम को सुख पहुँचाने में अपने को सुखी मानती है। उसका प्रेम और कर्त्तव्य एक हो गया है। अपने अंतिम क्षणों में वह चन्द्रगुप्त को याद करती हुई कहती है—"जाओ प्रियतम! सुखी जीवन बिताने के लिए; और मैं रहती हूँ चिर-सुखी जीवन का अन्त करने के लिए। जीवन एक प्रश्न है और मरण उसका अटल उत्तर।" वह जिसके भी सम्पर्क में आती है (चाहे वह अलका हो, चाहे सिंहरण), वह उसकी सहानुभूति के साथ सेवा करती है। उसे किसी से न द्वेष है न भय। —चन्द्रगुप्त

मालव[1]—उपन्यास की आरम्भिक घटनाओं से सम्बद्ध। —इरावती

[राजधानी उज्जैन]

मालव[2]—सिंहरण की जन्मभूमि। रावी के तट पर स्थित। सिकन्दर जब लौटने लगा तो मालवों और क्षुद्रकों ने उसे लोहे के चने चबवाए। —चन्द्रगुप्त

[यह मालव मुलतान और लाहौर के बीच में है।]

मालव[3]—देवगुप्त यहीं के राजा थे। —राज्यश्री

छठी शताब्दी में मालव के यशोधर्मदेव ने जब हूण मिहिरकुल को परास्त किया तो साम्राज्य-शक्ति मगध से हटकर मालव की शरण में चली गई, पर स्थिर न रही। —राज्यश्री, प्राक्कथन

[एक मालवा प्रयाग ही है। दे० वी० ए० स्मिथ "अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया", पृ० ३५०। एक मालवा रावी तट पर मुलतान के पूर्वोत्तर में रहा है—दे० रावी[1]। एक मालवा उज्जैन (अवन्ती) का प्रदेश है जिसे चन्द्रगुप्त और हर्ष ने जीता।]

मालवा—बन्धुवर्मा का राज्य। —स्कन्दगुप्त

[राजधानी दशपुर थी। इस समय लाटदेशीय वैश्य राजाओं का राज्य था। राजा भोज के समय धारा-नगरी राजधानी थी।]

मालविकाग्निमित्र—स्त्रियों को अभिनय की शिक्षा देने वाले आचार्यों का उल्लेख मिलता है। —(**रंगमञ्च, पृ० ६७**)

[कालिदास का ऐतिहासिक नाटक, जिसमें शुंगवंश के अग्निमित्र और मालविका की प्रेम-कथा चित्रित है।]

मालिनी—मातृगुप्त की प्रणयिनी। श्रीनगर की सब से अधिक समृद्धिशालिनी वेश्या। —**स्कन्दगुप्त**

मालो—दे० मालती[३]। —(**भीख में**)

मिंगलौर—अफ़गानिस्तान में दुर्ग जहां कई भारतीय वीर सिकन्दर के धोखे में मारे गए। —(**सिकन्दर की शपथ**)

[उद्यान प्रदेश की राजधानी; (मंगली)।]

मित्र (सखा)

सच्चा मित्र कहाँ मिलता है ?—
दुखी हृदय की छाया सा
...हृदय खोल कर मिलने वाले
बड़े भाग्य से मिलते हैं
मिल जाता है जिस प्राणी को
सत्य-प्रेममय मित्र कहीं
निराधार भव सिन्धु-बीच वह
कर्णधार को पाता है
प्रेम-भाव लेकर जो उसको
सचमुच पार लगाता है।

—**प्रेमपथिक, पृ० ९-१०**

मिथ्यावाद—वेदान्त में जो जगत् को मिथ्या और भ्रम मान लेने का सिद्धान्त है, वही यहां के मनुष्यों को उदासीन बनाता है। संसार को असत् समझने वाला मनुष्य कैसे किसी काम को विश्वासपूर्वक कर सकता है! (शैला)

—**तितली, २-६**

मिञा[१]—व्रजराज का पुत्र। —(**भीख में**)

मिञा[२]—दे० कमलो। —(**आंधी**)

मिल जाओ गले—इन्दु, कला ६, खंड २, किरण ४-५ (अक्टूबर-नवम्बर, '१६) में प्रकाशित २४ पंक्तियों की कविता। प्रकृति के कण-कण में प्रिय व्याप्त है। कुसुमित कानन की कमनीयता उसी का प्रतिबिम्ब है। मेरा हृदय भी तुम्हारे रस से सिक्त है, अब जग की कृत्रिमता इसे नहीं लुभा सकती। जिस मधुकर को अरविंद का परिमल छू गया हो, वह कुरबक पर क्यों मुग्ध होगा? यह हृदय जिसमें तेरी छवि छा रही है, दूसरों की घृणा की परवाह नहीं करता।

तुमसे कहता हूँ प्रियतम! देखो इधर
अब न और भटकाओ मिल जाओ गले।

—**कानन-कुसुम**

मिलन—कविता। पहले इन्दु, कला ५, खंड १, किरण ५, मई १९१४ में प्रकाशित। २० पंक्तियां। जैसे स्वर्ग मेदिनी से, मधुप माधवी से, ऐसे ही कवि के प्राण अपने प्राणाधार से मिल रहे हैं। शत-शत चन्द्रमा उदय होने लगे और हृदयाब्धि में तरंगें उठने लगीं। 'चन्द्र-कर पीयूष वर्षा कर रहा।' आज सृष्टि में आलोक भरा है। हृदय-वीणा बज रही है—

बेसुरा पिक पा नहीं सकता कभी
इस रसीली मूर्च्छना की मत्तता।

—झरना

मिहिरदेव—निर्भीक, स्पष्टवादी, सत्त्व-गुण सम्पन्न शक आचार्य। कोमा के पोषक पिता के रूप में वे कण्व ऋषि से कम नहीं हैं। वे न केवल दार्शनिक हैं अपितु भविष्य-द्रष्टा भी हैं। वे कोमा के सुखी जीवन की कामना करते हैं। जब वह दुःखी होती है तो वे शकराज को चेतावनी देते हुए कहते हैं—"राजा, स्त्रियों का स्नेह विश्वास भंग कर देना कोमल तंतु को तोड़ने से भी सहज है; परन्तु सावधान होकर उसके परिणाम को भी सोच लो।" कोमा के दुःख से कातर हो वह उसे ले आता है। कोमा ही की इच्छापूर्ति के लिए शकराज का शव लेने भी चला जाता है, पर रामगुप्त के सैनिक उसे शक जाति का होने के कारण मार डालते हैं। —ध्रुवस्वामिनी

मीठा हड़प—जो वस्तु अच्छी होती है, वही तो गले में धीरे से उतार ली जाती है। नहीं तो कड़वी वस्तु के लिए थू-थू न करना पड़ता। (श्रीनाथ) —(**आंधी**)

मीड़ मत खिंचे बीन के तार—पद्मावती खिन्नावस्था में वीणा बजाना चाहती है पर उंगलियां नहीं चलती। तो वह कहती है, अच्छा ही हुआ कि आन्तरिक वेदना प्रगट नहीं हुई क्योंकि मेरे साथ किसी की सहानुभूति तो है नहीं। हे अंगुलि, वीणा मत बजा, मेरी वेदना अप्रकाशित ही रहने दे। कारण, मेरी पीड़ा से जड़ वीणा भी द्रवित हो जायगी, उसका स्वर करुण हो जायगा और इस करुण स्वर को सुन मेरे प्रिय विकल हो उठेंगे।

इस गीत में असमर्थता, वेदना और निराशा का अत्यन्त सुन्दर वर्णन हुआ है। नाटक का यह उत्कृष्ट गीत है।

—**अजातशत्रु, १-९**

मीना[1]—शाही नाव में डांड़े चलाने वाली दासी। —(**गुलाम**)

मीना[2]—भृत्य विक्रम की पुत्री, लीला। राजकुमार के साथ 'स्वर्ग' में लाई गई तो मीना नाम रखा गया। वहां राजकुमार का प्रेम बहार से हुआ तो यह विक्षिप्त-सी हो गई। अन्त में केकेय में इसके पिता का शासन हो गया। लेकिन यह उन्मुक्त बुलबुल सी भटकती फिरती थी। मालूम नहीं, उसकी अन्तिम तान किसी ने सुनी या नहीं। उसका प्रेम दृढ़ रहा। —(**स्वर्ग के खंडहर में**)

मीरा—मीरा और सूर ने, देव और नन्ददास ने कृष्ण के रहस्यात्मक रूप को लेकर साहित्य को पूर्ण किया। उनमें रस की प्रचुरता तो थी, पर नाट्यरसों का साधारणीकरण न था।

—(**आरम्भिक पाठ्य काव्य, पृ० ८२**)

मीरा और सूरदास ने प्रेम के रहस्य का साहित्य संकलन किया।

—(**रहस्यवाद, पृ० ३८**)

[हिन्दी की अमर कवयित्री, चौकड़ी (मेड़ता) में रतनसिंह राव के घर में सं० १५०४ में जन्म, चित्तौड़ के राजा भोजराज से विवाह। विधवा हो जाने

पर वृन्दावन, द्वारका आदि स्थानों की यात्रा की। राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा में पद लिखे।]

मुकुन्दलाल—बनारस में बरना के उत्तरी तट पर सुन्दर वृक्षों से घिरा हुआ इनका छोटा-सा बंगला है। दो बंगले किराये पर चढ़े हैं। संगीतप्रिय हैं। ५० वर्ष की आयु है। उनका भीतरी शरीर भग्न पोत की तरह काल-समुद्र में धीरे-धीरे धँसता जा रहा है; गार्हस्थ्य जीवन के मंगलमय भविष्य में उनका विश्वास नहीं। **—तितली, ३-७**

मुकुल—उत्साही तर्कशील युवक जिसका मन उत्सुकता-भरी प्रसन्नता में रहता है। यह भी आनन्द से सहमत नहीं है और मानता है कि संसार में दुःख है। गौण पात्र। **—एक घूंट**

मुग्दगिरि— **—इरावती, १, २**

[मुग्दगिरि = मूंघेर (बिहार)।]

मुण्डक—आनन्दमय आत्मा की उपलब्धि, प्रवचन, मेधा आदि से नहीं हो सकती। **—(रहस्यवाद, पृ० २५)**

[इसमें वेदान्त-मत, सुन्दर पद्यों में वर्णित है। इसमें तीन भाग हैं जो क्रमशः ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मसिद्धान्त और ब्रह्ममार्ग का निर्णय करते हैं।]

मुद्गल—विदूषक, कल्पित पात्र। वह महादेवी देवकी का सन्देशवाहक है। गम्भीर वातावरण को अपने हास्य और विनोद से हलका कर देता है। उसका हास्य मर्यादित रहता है। अंतिम अंक में अनेक घटनाओं की सूचना देता है, जिन्हें रंगमंच पर नहीं लाया जा सका है। **—स्कन्दगुप्त**

मुरली—पात्र। कभी वह सुन्दर रहा होगा; किन्तु आज तो उसके अंग-अंग से, मुंह की एक-एक रेखा से, उदासीनता और कुरूपता टपक रही थी। लगा कि वह दार्शनिक भिखमंगा है, बड़ा विचित्र व्यक्ति।....मंगला के प्रेम में, भावना के अतिवाद में पड़ कर निराश व्यक्ति सा विरागी बन गया। मंगला और उसके प्रेमी छविनाथ की बड़ी सेवा की—यह सब 'मंगला की उपासना थी'। वह मंगला को भूल नहीं सका। **—(चित्रवाले पत्थर)**

मुलतान—लगता है कि तिलक यहीं का रहने वाला था। म्लेच्छ मुलतान की लूट-मार में इरावती को पकड़ ले गए थे और उसे कन्नौज के बाजार में नीलाम कर दिया। **—(दासी)**

दे० मूलस्थान भी।

[मल्लदेश की राजधानी, हिरण्यकशिपु की नगरी, चनाब नदी पर बसा हुआ दक्षिण-पश्चिमी पंजाब का महानगर; अब पाकिस्तान में है।)

मुहम्मद गोरी— **—(प्रायश्चित्त)**

[खुरासान (अफगानिस्तान) के दक्षिण-पूर्व में स्थित गोर में इसके चाचा हुसैन ने राज्य की नींव डाली। शहाबुद्दीन पहले गजनी का गवर्नर था। ११७५ में भारत पर आक्रमण किये।

आरम्भ में हारता रहा। ११९३ में दिल्ली को हस्तगत किया। मृत्यु १२०६ ई०।]

मूर्तिमती करुणा—जहांनारा।

—(छाया, पृ० १४६)

मल्लिका, इत्यादि, दे० करुणा।

मूलस्थान—मातृगुप्त को युवराज स्कन्दगुप्त ने वहां की परिस्थिति सँभालने के लिए भेजा था। मुद्गल कुसुमपुरी से अवन्ती और अवन्ती से मूलस्थान जा पहुँचा। —स्कन्दगुप्त, १

दे० मुलतान।

मूसा—यहूदियों के पैगम्बर जो ईश्वर को उपास्य और मनुष्य को ईश्वर (जिहोवा) का उपासक अथवा दास मानते हैं। —(रहस्यवाद, पृ० १९)

[यहूदी धर्मशास्त्री तथा नेता जिसने मिस्र के अत्याचारी शासक के विरुद्ध विद्रोह किया ; समय १४०० ई० पू०।]

मृच्छकटिक—अभिनेय था, ऐसा प्रस्तावना से प्रतीत होता है।

—(रंगमञ्च, पृ० ६५)

'अपटीक्षेप' का उल्लेख मिलता है। —(वही, पृ० ६६)

काशी में दक्षिणी नाटक मंडली द्वारा अभिनीत हुआ था।

—(रंगमञ्च, पृ० ७२)

[शूद्रककृत १० अंकों का सामाजिक नाटक जिसमें चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रेम-कथा है। समय प्रथम शती।]

मृणालिनी—वह देवबाला सी जान पड़ती है। बड़ी-बड़ी आंखें, उज्ज्वल कपोल, मनोहर अंगभंगी, गुल्फ विलम्बित केश-कलाप उसे और भी सुन्दरी बनने में सहायता देते थे। थी बहुत गम्भीर, सरला। मदन के प्यार से प्रफुल्लित थी। मदन के बिना वह विरक्त हो गई। संसार उसे सूना दिखाई देने लगा।

—(मदनमृणालिनी)

मृत्यु—

मृत्यु, अरी चिर-निद्रे तेरा
अंक हिमानी-सा शीतल
सतत चिरन्तन सत्य
छिपी सृष्टि के कण-कण में तू....
जीवन तेरा क्षुद्र अंश है।

—कामायनी, चिन्ता, पृ० १८-१९

मृत्यु के साथ ही सब झगड़ों का अन्त हो जाता है। (सुभद्र) —(सालवती)

मृत्यु सुख—भग्नहृदयों से पूछो—वे मृत्यु की कैसी सुखद कल्पना करते हैं।... अस्त होते हुए अभिमानी भास्कर से पूछो—वह समुद्र में गिरने को कितना उत्सुक है। पतंग-सदृश निराश हृदय से पूछो कि जल जाने में वह अपना सौभाग्य समझता है या नहीं। (राज्यश्री)

—राज्यश्री, २-७

मेगास्थनीज—सिकन्दर का दूत।

—चन्द्रगुप्त, अंक ४

[सिल्यूकस का राजदूत जो ३०४ ई० पू० के बाद चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में रहा। इसने 'इंडिका' में मौर्यकालीन भारत का विवरण लिखा है।]

मेघदूत—दे० कालिदास।

[कालिदासकृत खण्डकाव्य जिसमें मन्दाक्रान्ता छन्द में ११५ श्लोक हैं। इसमें यक्ष के विरह का वर्णन है।]

मेरी आंखों की पुतली में तू बनकर प्राण समा जा रे—प्रथम प्रकाशन—हंस, अंक १०, १८ जून '३२। १० पंक्तियां। हे प्रियतम, आ और मेरी आंखों में समा जा, जिससे मेरा हृदय संगीतमय हो, कन-कन में स्पन्दन, करुणा का नव-अभिनन्दन हो, मेरे अधर पर ऐसी मुस्कान खेले कि यह विश्व देखता ही रह जाय। आ और 'प्रेम-वेणु की स्वर-लहरी में जीवन-गीत सुना जा रे!'

—**लहर**

मेरी कचाई—अतुकान्त चतुर्दशपदी जो किसी संग्रह में उपलब्ध नहीं। इन्दु, अक्टूबर '१४ में प्रकाशित हुई थी। 'हम ही नहीं मिलते क्योंकि हम ही कायर हैं, तुमसे फिर क्या कहें' कि तुम क्यों नहीं मिलते। हम जब स्वयं मिलने को प्रस्तुत हों तो तुम खिचे आओ। प्रिय, हमारी बेबसी, हमारी कचाई, तुम्हें ज्ञात ही है। तुम्हीं क्यों कृपा नहीं करते? प्रियतम हमें विनती करने का अधिकार तो है।

मेरे मन को चुरा के कहाँ ले चले—सरला गायिका नरदेव के मन की बात कहती हुई गाती है—प्यारे, हम पतंग की तरह तुम्हारी प्रेमाग्नि में जलते हैं, तुम हमारी प्रेम-लता के लिए विषम पवन मत बनो। —**विशाख, २-३**

मेवाड़[1]—गौरव की काया

पड़ी माया है प्रताप की

वही मेवाड़!

—**(पेशोला की प्रतिध्वनि)**

मेवाड़[2]—दृप्त मेवाड़ के पवित्र बलिदान का ऊर्जित आलोक।

आंख खोलता था सब की।

—**(प्रलय की छाया)**

मेवाड़[3]—धर्मभूमि। अमरसिंह ने यवनों को हरा दिया तो मेवाड़ सुरक्षित हुआ।

—**(महाराणा का महत्त्व)**

[= चित्तौड़ भूमि; वर्तमान काल में उदयपुर।]

मेसोपोटामिया—मेसोपोटामिया के देव-मंदिरों में धार्मिक प्रेम का उद्गम हुआ अथवा भारतीय रहस्यवाद वहीं से आया, यह कहना ऐसा ही है जैसा कि वेदों को 'सुमेरियन डाकूमेण्ट' सिद्ध करने का प्रयास। —**(रहस्यवाद, पृ० २०-२१)**

[यूफ्रेटिज और टिग्रिस नदियों के बीच में स्थित रेतीला मैदान; बसरा और बगदाद यहां के प्रसिद्ध सांस्कृतिक केन्द्र रहे हैं।]

मैकू—लम्बी-चौड़ी हड्डियों वाला अधेड़ पुरुष। दया-माया उसके पास फटकने नहीं पाती थी। उसकी घनी दाढ़ी और मूछों के भीतर प्रसन्नता की हँसी भी छिपी ही रह जाती। वह धाघ था। वह पूरा खिलाड़ी था, रुपयों की चमक में आकर बेला ठाकुर को दे दी। वह सुयोग्य सरदार था, कठोर, चालाक और अनुभवी। —**(इन्द्रजाल)**

मैत्रायण—वैशाली के कुलपुत्र। "मैं

मैत्रायण विदेहों के सुनिश्चित आत्मवाद का मानने वाला हूँ। ये जितनी भावनाएँ हैं, सब का उद्गम आत्मन् है।" वह विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति का पक्षपाती है। —(सालवती)

मैथिली = मीना ; दे० गम। —कंकाल

मैनका— —(वनमिलन)

[हिमवान् की पुत्री मेनका, गन्धर्व-स्त्री, अप्सरा, जिसे इन्द्र ने विश्वामित्र का तप भंग करने के लिए भेजा था। विश्वामित्र से इसे शकुन्तला का जन्म हुआ।]

मैना—मधुबन उसे हाथी से बचाकर घर ले आया। कृतघ्न वेश्या। झूठी गवाही देकर मधुबन को पुलिस के पञ्जे में फँसा देती है। (कलकत्ता में) —तितली

मोती मसजिद— —(शिल्प-सौन्दर्य)

[लाल किला दिल्ली में।]

मोनी—सांवली सी युवती। वह विपन्न नन्दू की सेवा करके उसकी रक्षा करती है। वह दृढव्रत, उदार और भावुक है। —(बनजारा)

मोरिशस—बुड्ढा 'मोरिशस' में कुली होकर चला गया था। वहां 'कुलसम' से भेंट हो गई और वह इसका घर बसाने आ गई। कुलियों के लिए वहां किसी काजी या पुरोहित की क्या आवश्यकता ? —(नीरा)

[अफ्रीका के पूर्व में द्वीप जो चीनी की उपज के लिए प्रसिद्ध है।]

मोहन[१]—तारा का मंगल से पुत्र जिसे वह अस्पताल में ही छोड़कर हरद्वार से भाग गई थी। चाची (नन्दो) ने उसे अस्पताल से ले लिया और पाला। वह दरिद्रता और अभाव के गार्हस्थ्य जीवन की कटुता में दुलारा गया था। कभी वह पढ़ने के लिए पिटता, कभी काम सीखने के लिए डांटा जाता। फिर वह चिड़चिड़े स्वभाव का क्यों न हो जाता। वह क्रोधी था तो भी उसके मन में स्नेह था, प्रेम था और था नैसर्गिक आनन्द—शैशव का उल्लास। पगली (तारा) उससे खेलने लगी। चाची अयोध्या में किशोरी की रसोई बनाने का काम करती थी। श्रीचन्द ने चाची को कुछ देकर उसे अपना दत्तक पुत्र बना लिया। —कंकाल

मोहन[२]—१३ वर्षीय अनाथ, दरिद्र, अबोध और असहाय बालक जो चने बेच कर अपना और अपनी छोटी बहन का पेट पालता था। दरिद्रता के सामने उसने स्वाभिमान नहीं छोड़ा। वह धुन का पक्का था।

—(**करुणा की विजय**)

मोहन[३]—सर्वप्रथम इन्दु, कला ५, खंड १, किरण ४, अप्रैल '१४ में प्रकाशित। पहले इसमें १६ पंक्तियां थीं, अब १४ रह गई हैं। इसकी तुक-प्रणाली उर्दू गज़ल की-सी है। हे मोहन ! अपने रूप और प्रेम का प्याला पिला दो कि जिससे हम अपने को भूल जाएँ, अपना अस्तित्व ही न रहे। हमें अपनी रूप-शिखा का पतंग बना दो। मेरे हृदय को अपने राग की लाली में रंग दो।

आनन्द से पुलक कर हों रोम-रोम भीने।
संगीत वह सुधामय अपना सुना दे मोहन
—कानन-कुसुम

मोहन³—दे० कृष्ण भी। —(कुरुक्षेत्र)

मोहन⁴—बालक ; गूदड़साईं के रामरूप भगवान्, प्रतीक। —(गूदड़ साईं)

मोहन⁵—तितली और मधुबन का लड़का। मोहन ने शेरकोट का उद्धार करने की चेष्टा की। अपनी ही मानसिक जटिलताओं से अभी से (१४ वर्ष की आयु में) ही दुर्बल हो चला है। वह सोचने लगा है, कुड़कने लगा है, किसी से कुछ कहता नहीं। मां से भी अपने मन की व्यथा नहीं कहता। —तितली, ४-५

मोहन⁶— —(मोहन)

मोहन⁸—एक हृदयहीन युवक, जिसने अपनी पत्नी को हृदयहीन कल सी चलती फिरती पुतली बना डाला। —(सहयोग)

मोहनदास¹—सत्तर बरस का बूढ़ा ; भरा हुआ मुंह, दृढ़ अवयव और बलिष्ठ अंग-विन्यास गोपाल के यौवन से अधिक पूर्ण था। गिरधरदास के साथ सांझे में जवाहिरात का व्यवसाय करता था। भावुक। —(अमिट स्मृति)

मोहनदास²—हरद्वार में कोई व्यक्ति जिसके सम्बन्ध में चाची कहती है कि तारा चाहती तो मोहनदास उसके पैरों पर नाक रगड़ता। वह कई बार कह चुका है। —कंकाल

मोहनलाल¹—कुसुमपुर का जमींदार, महाजन कुंदनलाल का लड़का, धर्मात्मा और सहानुभूतिपूर्ण। विलायती पिक का बिजिस पहने, बूट चढ़ाए, हंटिंग-कोट, धानी रंग का साफा, अंग्रेजी–हिन्दुस्तानी का महासम्मेलन बाबू साहब के अंग पर दिखाई पड़ रहा था। गौर वर्ण, उन्नत ललाट...। अपने पिता के कदाचरण की बात बुढ़िया से सुनकर उसे बड़ी ग्लानि हुई। —(ग्राम)

मोहनलाल²—मनोरमा का पति, जो 'पागल बनाए जा रहे हैं। कुछ-कुछ हैं भी।' विश्वासघात की ठोकरों ने उसके हृदय को संशयालु बना दिया है। किसी ने उसके मानसिक विप्लवों में उसे सहायता नहीं दी। बेचारा अकपट प्यार का भूखा है, पर पत्नी पर सन्देह हो गया है। —(सन्देह)

मोहनसिंह—जमींदार का लड़का। —(दुखिया)

मौर्य्य—जब वैदिक धर्म अनेक आघातों के कारण जर्जर हो गया तो (जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समय में ७०० ई० पू० के लगभग) ब्राह्मणों ने अर्बुदगिरि पर एक महान यज्ञ किया। इस से चार जातियों की उत्पत्ति हुई जिन्हें अग्निकुल कहा जाता है। उनमें से एक जाति परमार नाम की थी। मौर्य्य उसी की शाखा थी। बौद्ध ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मोरियों के नगर का राजकुमार था। मौर्य्यवंश के नौ राजा पाटलिपुत्र में हुए। पिप्पलीकानन के अन्तिम राजा पूर्तवर्मा हुए। बाद में यह वंश अवंती में चलता रहा। विक्रम से ६४० वर्ष बाद महेश्वर नामक मौर्य्य राजा ने

नर्मदा के तट पर महिष्मती नगरी बसाई। उन्हीं का पौत्र दूसरा भोज हुआ। चित्र मौर्य्य ने चित्रकूट (चित्तौर) का पवित्र दुर्ग बनवाया। चित्तौरपति मानसिंह इसी कुल के थे। यही मान-मौर्य बाप्पारावल (७८४ वि०) द्वारा प्रवंचित हुए।

लगभग १०५० वर्ष तक मौर्य्य-नरपतियों का इतिहास मिलता है। मौर्य्य क्षत्रिय थे। —चन्द्रगुप्त, भूमिका

मौर्य्य-पत्नी—चन्द्रगुप्त की माता। —चन्द्रगुप्त

मौर्य्य-सेनापति—चन्द्रगुप्त का पिता। —चन्द्रगुप्त

पिप्पली-कानन का सरदार, जो नन्द का सेनापति हो गया जान पड़ता है। बाद में इस पर क्रुद्ध होकर नन्द ने इसे कारावास में डाल दिया। दे० मौर्य्य। —चन्द्रगुप्त, भूमिका

मौर्य्यों का राज्य-परिवर्त्तन—इन्दु, मार्च, १२ में प्रकाशित एक निबन्ध। इसकी सामग्री 'चन्द्रगुप्त' नाटक की भूमिका में सम्मिलित कर ली गई। दे० मौर्य, पिप्पली कानन।

य

यथार्थ—पेट के प्रश्न को सामने रखकर शक्तिसम्पन्न पाखण्डी लोग अभाव-पीड़ितों को सब तरह के नाच नचा रहे हैं। मनुष्य को अपनी वास्तविकता का जैसे ज्ञान नहीं रह गया है। (रामजस) —तितली, ३-४

संसार में चारों ओर दुष्टता का साम्राज्य है। (मधुबन)। —तितली, ३-४

यथार्थवाद—प्रसादजी के अनुसार साहित्य में यथार्थवाद का अर्थ है—दुःख और वेदना की अनुभूति; व्यक्तिगत अभावों का वास्तविक उल्लेख; लघु और उपेक्षित के प्रति सहानुभूति; जीवन का यथार्थ निरूपण; संकीर्ण संस्कारों के प्रति विद्रोह; स्त्रियों के सम्बन्ध में न्यायपूर्ण दृष्टिकोण।

दे० समाजवाद, प्रगतिवाद, (विशेषत:) सामयिकता।

यथार्थवाद और छायावाद—निबंध। हिन्दी के वर्तमान युग की दो प्रधान प्रवृत्तियां हैं जिन्हें यथार्थवाद और छायावाद कहते हैं। यथार्थवाद की विशेषताओं मे प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों में दुःख और अभाव का उल्लेख हुआ है। दुःख-संवलित मानवता को, साधारण मनुष्य के जीवन को, स्पर्श करनेवाला साहित्य यथार्थवादी कहलाता है। यथार्थवादी मानता है कि मनुष्य में दुर्बलताएँ होती ही हैं। उन दुर्बलताओं के कारण की खोज में व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था, प्रचलित नियम और सामाजिक रूढ़ियां देखी जाती हैं। अपराधियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न

कर सामाजिक परिवर्त्तन और सुधार की मांग होती है। स्त्रियों के सम्बन्ध में नारीत्व की दृष्टि ही प्रमुख होकर, मातृत्व से उत्पन्न हुए सब सम्बन्धों को तुच्छ कर देती है। समाज कैसा है चित्रित करने से यथार्थवादी इतिहासकार से अधिक कुछ नहीं ठहरता। कुछ लोग कहते हैं कि साहित्यकार को आदर्शवादी होना चाहिए। किन्तु, साहित्यकार न तो इतिहासकर्त्ता है और न धर्मशास्त्र-प्रणेता। इन दोनों के कर्त्तव्य स्वतंत्र हैं। साहित्य इन दोनों की कमी को पूरा करने का काम करता है। साहित्य, समाज की वास्तविक स्थिति क्या है इसको दिखाते हुए भी, उसमें आदर्शवाद का सामंजस्य स्थिर करता है। दुःख-दग्ध जगत् और आनंदपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है।

रीतिकालीन परंपरा में स्थूल बाह्य वर्णन की प्रधानता है। सूक्ष्म आभ्यन्तर भावों के व्यवहार में प्रचलित पदयोजना असफल थी। हिन्दी में नवीन शैली, नया वाक्य-विन्यास, नई भंगिमा चल पड़ी। इस तरह की अभिव्यक्ति के उदाहरण संस्कृत में प्रचुर हैं। हिन्दी में अपनी भारतीय साहित्यकला का ही अनुसरण किया गया। सिद्धान्ततः यह ठीक नहीं है कि जो कुछ अस्पष्ट, छाया-मात्र हो, जिसमें वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छायावाद है। हां, मूल में यह रहस्यवाद भी नहीं है। यद्यपि प्रकृति का आलम्बन, स्वानुभूति का प्रकृति से तादात्म्य नवीन काव्यधारा में होने लगा है, किन्तु प्रकृति से सम्बन्ध रखनेवाली कविता को ही छायावाद नहीं कहा जा सकता। छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर रहती है।

—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध

यमुना[१]—वही तारा (गुलेनार)। इस नाम से किशोरी के पास नौकरी कर ली। प्रबन्ध में बड़ी कुशल थी। उसका जीवन आरंभ ही से समाज-संताप सहता रहा। वह पहले वेश्या-वृत्ति के लिए बाध्य की गई। मंगल ने वहां से उद्धार किया किन्तु उसके प्रणय को लात मार कर अपनी राह ली। उसने बड़े-बड़े कष्ट सहे, मृत्यु को भी अंगीकार करना चाहा, दासीत्व स्वीकार किया, सन्ताप-ज्वाला में दग्ध होकर भी उसने अपनी आत्म-निष्ठा अटूट रखी। वृन्दावन में विजय ने जब कहा कि तुम दासी नहीं, मेरी आराध्य देवी हो, तो इसने तुरन्त कहा—"मैं आराध्य देवता बना चुकी हूँ—मैं पतित हो चुकी हूँ।" मंगल से उसने प्रेम किया और वह प्रेम अक्षुण्ण बना रहा, पर वह उस पर अब विश्वास न कर सकी। प्राणों को संकट में डाल उसने विजय के प्राण बचाए। —कंकाल

यमुना[२]—वृन्दावन के पास; कृष्ण की क्रीड़ाभूमि; मन्दिर, सैकड़ों कविताओं में वर्णित यमुना का पुलिन, निरंजन को यौवन-काल की स्मृति जगा देने के लिए कम न था। —कंकाल, खंड ३

मंगल बीमार पड़ा तो सरला प्रार्थना करती है—हे यमुना माता ! मंगल का कल्याण करो और उसे जीवित करके गाला को भी प्राणदान दो। यमुना-तट पर ही एक साधु (विजय) से उसको वह यंत्र मिल गया जिसके द्वारा वह पुत्र को पहचान सकी। —**कंकाल, ४-६**

उल्लेख कंकाल, २-१, २-६, २-८, ३-३, ४-७ में भी।

यमुना[३]—नील यमुना-कूल में गोप-बाल एकत्र होते थे। धेनु-चारण कार्य भी यहीं होता था। —**(कुरुक्षेत्र)**

यमुना[४]—दिल्ली के बादशाह शाह आलम यहां नौका-विहार करते थे। —**(गुलाम)**

यमुना[५]—उपनिषद् और आरण्यक की ज्ञानधारा यमुना के तट पर बहेगी। (व्यास) —**जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-८**

यमुना[६]—शाहजहां का महल, जहां वह कैद रहा ; आगरा में यमुना के किनारे पर है। —**(जहांनारा)**

यमुना[७]—हो रहा प्रतिबिम्ब-पूरित रम्य यमुना-जल भरा। —**(नव वसन्त)**

यमुना[८]—दिल्ली के महल के पास। यमुना प्रशान्त मन्द-मन्द निज धारा में। —**(प्रलय की छाया)**

यमुना[९]— —**(ब्रह्मर्षि)**

यमुना[१०]—इसके तट पर रामगांव में सरला का घर था। उसे अब भी याद हो आता था, यमुना की लोल लहरियों में से निकलता हुआ अरुण और उसके श्यामल तट का प्रभात। एक दिन कार्तिक-पूर्णिमा-स्नान को गई थी कि फिसल गई, तो बालपति ने हाथ पकड़ कर निकाल लिया था। —**(रूप की छाया)**

यमुना[११]— —**(शरणागत)**

यमुना[१२]— —**(श्रीकृष्ण जयन्ती)**

यमुना[१३]—दे० हिमालय तथा सरयू। —**स्कन्दगुप्त**

[वानर-पुच्छ पर्वत (हिमालय) से निकलकर दिल्ली, आगरा, मथुरा से होती हुई प्रयाग के पास गंगा में मिलती है। अन्य नाम मन्दाकिनी, तरणि-तनूजा।]

यवन—इस देश की दासियां भारत में आकर बिकती थीं। —**इरावती, ८**

[वर्तमान अजर्बाइजान, ईरान के उत्तर-पश्चिम में।]

यह कसक अरे आँसू सह जा—नाटक का पहला गीत जो न्याय की पुजारिन मन्दाकिनी ने गाया।—प्रेम और करुणा से बहाया गया आंसू दुखिया वसुधा पर शीतलता का संचार करता है।

—**ध्रुवस्वामिनी, १**

याकूब खां—लम्बा-सा, गौरवर्ण का युवक। कश्मीर के सुलतान यूसुफ खां का बेटा। नूरी से मतलब निकालने के लिए प्रेम किया, पर देश-प्रेम अधिक था। कठोर भावनाओं से उन्मत्त और विद्रोही शाहज़ादा, जो अकबर से लड़ा, पर हार गया और बिहार के भयानक तहखाने में बेड़ियों से जकड़ा हुआ कई दिन पड़ा रहा। सलीम की आज्ञा से रहाई पाई तो नूरी का प्रेम उसे सीकरी ले आया। बेचारा भीख मांगता

फिरा। अन्त में अपनी प्रेमिका के हाथों में प्राण छोड़ दिये। —(नूरी)

[दे० यूसुफ खां।]

याचना—सर्वप्रथम इन्दु, कला ५, खंड १, किरण २, फरवरी १९१४ में प्रकाशित ४–४ पंक्तियों के ५ छन्द। कवि जीवन की विषमताओं का वर्णन करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! चाहे प्रलय मचा हो, हम तेरे पद्मपद में लग्न रहें; जब यह मन विषयों के कुचक्र में पड़े, 'दुःख, कृतघ्नता, छल, स्वार्थ ने घेरा हो,' हमें दुःख हो चाहे आनन्द हो, तब भी मनमधुप तेरे चरणारविन्द में लीन रहे।

हम हों कहीं इस लोक मे ,
उस लोक में, भूलोक में
तव प्रेम-पथ में ही चलें ,
हे नाथ! तव आलोक में।

—कानन-कुसुम

यारकन्द—घोड़ों के व्यापार के लिए प्रसिद्ध। —(सलीम)

[चीनी तुर्किस्तान का व्यापार-केन्द्र]

युद्ध—युद्ध में बड़ी भयानकता होती है; कितनी स्त्रियां अनाथ हो जाती हैं। सैनिक जीवन का महत्त्वमय चित्र न जाने किस षड्यन्त्रकारी मस्तिष्क की भयानक कल्पना है। सभ्यता से मानव की जो पाशव वृत्ति दबी हुई रहती है, उसी को इस में उत्तेजना मिलती है। (अजातशत्रु) —अजातशत्रु, २-१०

—युद्ध क्या गान नहीं है? रुद्र का श्रृंगीनाद, भैरवी का ताण्डव नृत्य, और शस्त्रों का वाद्य मिलकर भैरव-संगीत की सृष्टि होती है। जीवन के अंतिम दृश्य को देखते हुए, अपनी आंखों से देखना, जीवन-रहस्य के चरम सौन्दर्य की नग्न और भयानक वास्तविकता का अनुभव केवल सच्चे वीर-हृदय को होता है। (जयमाला) —स्कन्दगुप्त, १-७

युद्ध-वर्णन—

—चित्राधार (बभ्रुवाहन), पृ० ४१-४

—चित्राधार (प्रेमराज्य), पृ० ६५

वीर के लक्षण

—चित्राधार (सज्जन), पृ० १०३-१०५

अमि

—चित्राधार (सज्जन), पृ० १००-१०६

युधिष्ठिर[1]—कृष्णशरण की कथा में प्रसंग —प्रमाद से युधिष्ठिर ने धर्मसाम्राज्य को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझ लिया और फलतः धर्मराज विश्रृंखल हुआ। —कंकाल, २-७

युधिष्ठिर[2]—सज्जनता का अवतार, शुद्ध सन्तोषी, साधुस्वभाव। —(सज्जन)

दे० धर्मराज।

[पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र, पांडवों में बड़े भाई। अपनी सत्यता के कारण धर्मराज कहलाए।]

युवक—छिपकर बातें करना, कानों में मंत्रणा करना, छुरों की चमक से आंखों में त्रास उत्पन्न करना, वीरता नाम के किसी अद्भुत पदार्थ की ओर अंध होकर दौड़ना (आधुनिक) युवकों का कर्त्तव्य हो रहा है। वे शिकार और जुआ, मदिरा और विलासिता के दास होकर

गर्व से छाती फुलाए घूमते हैं। कहते हैं, हम धीरे-धीरे सभ्य हो रहे हैं। (सन्तोष)

—कामना, २-४

यूडेमिस—ग्रीक कर्मचारी, फिलिपस का सहकारी। —चन्द्रगुप्त, ३-८

यूसुफ खाँ—काश्मीर का अंतिम सुलतान। आततायी था। —(नूरी)

[अकबर ने १५८६ ई० में काश्मीर जीत लिया और यूसुफ और उसके बेटे याकूब को बन्दी बनाकर बिहार में भेज दिया।]

योग्यता—काम करने के पहले किसी ने भी आज तक विश्वस्त प्रमाण नहीं दिया कि वह कार्य के योग्य है। (गौतम)

—अजातशत्रु, १-२

योद्धा—युद्ध में सम्मिलित होने वाले वीरों को एकनिष्ठ होना ही लाभदायक है.. (एक नायक की आज्ञा माननी पड़ती है)। (चाणक्य) —चन्द्रगुप्त, २-७

यौवन—दे०—आह रे, वह अधीर यौवन।

—जिसे लोग जीवन का वसन्त कहते हैं, जो अपने साथ बाढ़ मे बहुत-सी अच्छी वस्तु ले आता है और जो संसार को प्यारा देखने का चश्मा लगा देता है, शैशव से अभ्यस्त सौन्दर्य को खिलौना समझकर तोड़ना ही नहीं, वरंच उस मे हृदय देखने की चाट उत्पन्न करता है, उसे यौवन कहते हैं—शीतकाल के छोटे दिनो में घनी अमराई पर बिछलाती हुई हरियाली से तर धूप के समान स्निग्ध यौवन !

इसी समय मानव जीवन में जिज्ञासा जागती है। स्नेह, संवेदना, सहानुभूति का ज्वार आता है। —कंकाल, पृ० ८३

—हाड़-मांस के वास्तविक जीवन का सत्य—यौवन—आने पर उसका आना न जानकर बुलाने की धुन रहती है। जो चले जाने पर अनुभूत होता है—वह यौवन, धीवर के लहरीले जाल में फँसे हुए स्निग्ध मत्स्य-सा तड़फड़ाने वाला यौवन, आसन से दबे हुए पंचवर्षीय चपल तुरंग के समान पृथ्वी को कुरेदने वाला त्वरापूर्ण यौवन। —कंकाल, पृ० १२४

—यौवन काषाय से कहीं छिप सकता है ? —(देवरथ)

दे० प्रथम प्रभात, सुन्दरी का नव वसन्त। दे० नववसन्त। दे० यौवन तेरी चंचल छाया।

—यौवन सुख के लिए आता है—यह एक भारी भूल है। आशामय भावी सुखों के लिए इसे कठोर कर्मों का संकलन ही कहना होगा। (विशाख)

—विशाख, १-१

—वह यौवन निष्फल है, जिसका हृदयवान् उपासक नहीं। (मीना)

—(स्वर्ग के खँडहर में)

यौवन, तेरी चञ्चल छाया—कोमा का अकेले में गान। यौवन जब आता है तो अपने साथ प्रेम-रस भी लाता है, जीवन लहराने लगता है, पर यह यौवन तो क्षण भर रुकने वाले पथिक की तरह है।

—ध्रुवस्वामिनी, २

यौवन-वसन्त—दे० आज मधु पी ले, यौवन वसन्त खिला।

यौवनोन्माद—संसार नित्य यौवन और जरा के चक्र में घूमता है; परन्तु मानव जीवन में तो एक ही बार यौवनोन्माद का प्रवेश होता है, जिसमें अनुबन्ध का प्रत्याख्यान और स्नेह का आलिंगन भरा रहता है। —**इरावती, पृ० १९**

र

रमौया—एक धनी धीवर। —**(अनबोला)**

रघुनाथ (महाराज)—बनारस का एक नामी लठैत था, यात्रा में मनोहरदास के साथ था। —**(अमिट स्मृति)**

रङ्गमञ्च—निबन्ध, जिस में परिचय अधिक और विवेचन कम है। भरत के नाट्य-शास्त्र में रंगशाला के निर्माण के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से बताया गया है। नाट्य मण्डप, रंगशीर्ष, रंगपीठ, नेपथ्य-गृह, जवनिका के अनेक प्रकार इत्यादि का वर्णन मिलता है। सरगुजा के गुहा-मंदिर की नाट्य-शाला इसी ढंग की थी। चलते-फिरते रंगमंच का उल्लेख भी मिलता है। बाद के नाटकों से विदित होता है कि रंगमंच इतने पूर्ण और विस्तृत थे कि उन में बैलों और घोड़ों के रथ और उतरती अप्सराएँ दिखलाई जा सकती थीं। मुखौटों का प्रयोग भी होता था। जवनिका का सम्बन्ध यवनिका से न होकर जव (वेग) से है, क्योंकि वह शीघ्रता से उठाई-गिराई जाती थी। नाट्यमंदिरों में नर्त्तकियों, स्त्री-पुरुषों की शिक्षा आदि का प्रबन्ध होता था। सब कालों में रंगमंच को नाटकों के अनुसार ढाला जाता था। मध्यकालीन भारत में रंगशालाओं को तोड़-फोड़ दिया गया। अंग्रेजी काल में इब्सन का प्रभाव पहले बंगाल से आरंभ हुआ। पारसी कम्पनियों के समय में भी दक्षिण की सुरुचिपूर्ण नाटक-मण्डलियां रही हैं। इधर सिनेमा को कुरुचि का नेतृत्व करने का सम्पूर्ण अवसर मिल गया। रंचमंच की असफलता का प्रधान कारण है स्त्रियों का उन में अभाव, विशेषतः हिन्दी रंगमंच के लिए।

हमे अपने अतीत को देखकर भविष्य का निर्माण करना है। पश्चिम ने भी अपना सब कुछ छोड़कर नए को नहीं पाया है। केवल नई पश्चिमी प्रेरणाएँ हमारी पथ-प्रदर्शिका नहीं बन सकतीं। रेडियो-ड्रामा और एकांकी दृश्यों की योजना में नए प्रयोग कर रहे हैं। जहां तक भाषा की सरलता और स्वाभाविकता का प्रश्न है यह तो पात्रों के भावों और विचारों पर निर्भर है। भाषा को खिचड़ी नहीं बना देना है।

—**काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध**

रजनी[1]—

विश्व कमल की मृदुल मधुकरी
रजनी तू किस कोने से—इत्यादि
—**कामायनी, आशा, पृ० ३९**

रजत कुसुम के नव पराग-सी
उड़ा न दे तू इतनी धूल. . इत्यादि
—**कामायनी, आशा, पृ० ३९**

फिर झलमल सुन्दर तारक दल
नभ रजनी के जुगनू अविरल, इत्यादि।

*　　*　　*

(सारस्वत नगर की रात)
वह सारस्वत नगर पड़ा था
क्षुब्ध मलिन कुछ मौन बना, इत्यादि

—कामायनी, निर्वेद

जब कामना सिंधु-तट आई, इत्यादि।

—कामायनी, आशा, पृ० ३८-३९

चल चक्र वरुण का ज्योति भरा, इत्यादि

—कामायनी, काम, पृ० ६५

अंचल लटकाती निशीथिनी ..इत्यादि

—कामायनी, कर्म, पृ० ११९

वह चन्द्रहीन थी एक रात..इत्यादि।

—कामायनी, दर्शन, पृ० २३३

निस्तब्ध गगन था, दिशा शान्त इत्यादि।

—कामायनी, दर्शन, पृ० २४५-२४६

दे० शारदीय शोभा।

रजनी[2]—कुञ्जनाथ की दरिद्र साली जिसने अपनी भक्ति के कारण कुञ्जनाथ को शिव-भक्त बना दिया और साथ में अपना पति भी। **—(प्रतिमा)**

रजनीगन्धा—इन्दु, कला ३, किरण १, आश्विन, '६८ में प्रकाशित, ४० पंक्तियों की कविता, जिसमें प्रकृति का सुन्दर वर्णन है। आरंभ में सन्ध्या का वर्णन है। रजनी के आगमन के साथ ही रजनी-गन्धा भी खिल गई;

मधुमय कोमल सुरभिपूर्ण उपवन जिससे है
तारागण की ज्योति पड़ी फीकी इससे है।
निशा सखी के लिए उसके हृदय में अपार प्रेम है। 'रजनी-गन्धा' नाम हुआ है सार्थक इसका। **—कानन-कुसुम**

रञ्जन[1]—दे० कमलो। **—(आंधी)**

रञ्जन[2] = देवनिरञ्जन। किशोरी उसे इस नाम से पुकारती है। **—कंकाल**

रणजीतसिंह—शेर पंचनद का प्रवीर रणजीतसिंह।

—(शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण)

[पंजाब का प्रसिद्ध विजेता, प्रशासक और राजनीतिज्ञ। समय १७७३–१८३९ ई०।]

रति—काम-पत्नी, श्रद्धा की माता।

—कामायनी, काम, लज्जा

रत्न—मुझे एक अनगढ़, अपनी स्वाभाविकता में छिपा, रत्न मिल गया। 'मूल्य था मुझे नहीं मालूम, किन्तु मन लेता उस को चूम।' यह जानते हुए भी कि वह अमोल है, मन उसका मूल्य आंकने लगा। अरे लोभी मन, इसे पहन कर तो देख लेते! **—झरना**

—रत्न मिट्टियों में से ही निकलते हैं। स्वर्ण से जड़ी हुई मञ्जूषाओं ने तो कभी एक भी रत्न उत्पन्न नहीं किया। (विशाख) **—विशाख १-१**

रत्नावली—रानी वपुष्टमा की दासी। नृत्य और गान भी करती है।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, २-३

रबिया—सूफी **—(रहस्यवाद, पृ० २१)**

[मिस्र देश की एक सन्त महिला। समय ८वीं शती।]

रमणक प्रदेश—काश्मीर में।

—विशाख, पृ० १९

रमणकह्रद—काश्मीर में एक स्थान जहां सुश्रुवा नाग रहते थे। —**विशाख**

रमणी[1]—रमणी का अनुराग कोमल होने पर भी बड़ा दृढ़ होता है। वह सहज में छिन्न नहीं होता। जब वह एक बार किसी पर मरती है, तब उसी के पीछे मिटती भी है। (सरमा)

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ, २-५**

दे० स्त्री, नारी, रमणी-हृदय इत्यादि।

रमणी[2]—सुश्रवा की बहिन। —**विशाख**

रमणी-हृदय—इन्दु, कला ५, खंड १, किरण १, जनवरी '१४। नारी-हृदय रहस्यमय है। उसे जान लेना कठिन है, वह समुद्र की तरह अथाह है—

फल्गू की है धार हृदय वामा का जैसे
रूखा ऊपर, भीतर स्नेह-सरोवर जैसे।

कभी वर्षा-सा शीतल, कभी ज्वालामुखी के सामान। धन्य-धन्य रमणी हृदय। यह सॉनेट की तरह है। —**कानन-कुसुम**

रमणी-हृदय अथाह जो न दिखलाई पड़ता
भीतर है क्या बात न जानी जाती उसकी।

—**(रमणी-हृदय)**

—दुर्बल रमणी-हृदय! थोड़ी आंच में गरम, और शीतल हाथ फेरते ही ठंडा। (विजया) —**स्कन्दगुप्त, ४-१**

रमण्याटवी—काश्मीर मे एक प्रदेश। किसी समय नाग-सरदार सुश्रवा इसका स्वामी था।—**विशाख, पृ०२२, ५४, ६१**

रमला[1]—इस कहानी में एक प्रभाववादी चित्र है। साजन रमला झील के तट पर रहता था। वह उसके सौन्दर्य पर मुग्ध था। वह उसकी सहचरी थी, गृहिणी, रानी, सब कुछ थी। रमला दूर के गांव की किशोरी थी, स्वभाव से चंचल तथा शोख। वह झील पर झुके शिखर पर चढ़ गई। जमींदार के लड़के मंजल ने उसे धीरे से ढकेल दिया। लुढ़कती-लुढ़कती वह झील में आ गिरी। साजन से उसकी भेंट हो गई। दोनों गुफाओं में साथ-साथ रहने लगे। एक बार दोनों घूमने निकले, तो देर हो गई। एक जमीदार के यहां आश्रय मिला। वह मंजल ही तो था। पूर्व स्मृतियां जग उठी। साजन लौट गया। अब वह अपनी झील से प्यार करने लगा। उदास झील खिल उठी। एक तारिका रमला झील के उदास भाल पर सौभाग्य-चिह्न सी चमक उठी। साजन ने उल्लास में पुकारा—'रानी!'

रूप-चित्रण, प्रकृतिवर्णन, कथोपकथन और वातावरण की सृष्टि की दृष्टि से कहानी सफल है। —**आकाशदीप**

रमला[2]—झील का नाम। —**(रमला)**

रमला[3]—वह गांव भर में सबसे चंचल लड़की थी। लड़की क्यों! वह युवती हो चली थी। वह अपनी जाति भर में सब से अधिक गोरी थी, तिस पर भी उसका नाम पड़ गया था रमला! वह स्वच्छन्द विचरने वाली, निर्भीक और धृष्ट बालिका थी। यह उसकी चंचलता का प्रमाण है कि वह साजन को छोड़कर फिर मंजल जमींदार की हो गई। —**(रमला)**

रमा = लक्ष्मी। —**कामायनी, इड़ा**

रमेश—अशोक का मित्र जिसे वह दक्षिण से पत्रों में अपनी कथा सुनाता है। —(देवदासी)

रम्भा—दे० उर्वशी। —ध्रुवस्वामिनी, १

[समुद्र-मंथन से उत्पन्न, सौन्दर्य की प्रतीक अप्सरा; इन्द्र की सभा में पहुँची। इन्द्र ने इसे विश्वामित्र की तपस्या को भंग करने के लिए भेजा, विश्वामित्र ने इसे एक सहस्र वर्ष के लिए पाषाणी के रूप में रहने का शाप दिया।]

रम्भाभिसार—दे० महाभारत।

रस—निबन्ध। काव्य को पंचम वेद कहा गया है। भारतीय वाङ्मय में नाटकों को सब से पहले काव्य कहा गया। नाटकों में भरत के मत के अनुसार चार रस हैं—शृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स। इनसे अन्य चार रसों की उत्पत्ति मानी गई। रसात्मक अनुभूति आनन्द-मात्रा से सम्पन्न थी। भारत में नाट्य-प्रयोग केवल कुतूहल-शान्ति के लिए ही नहीं था। नाट्य-शास्त्र का प्रयोजन नटराज शंकर के जगन्नाटक का अनुकरण करने के लिए पारमार्थिक दृष्टि से किया गया था। स्वयं भरत मुनि ने भी नाट्यप्रयोग को एक यज्ञ के स्वरूप में ही माना था।—रसवाद के विरोध में अलंकार-मत खड़ा हुआ जिसमें रीति, वक्रोक्ति आदि का भी समावेश था। भामह, दण्डि आदि इस शब्द-विन्यास-कौशल के प्रवर्तक थे। रस को भी एक तरह का अलंकार माना गया। आनन्दवर्धन ने रस और अलंकार को ध्वनि के अन्तर्गत माना; परन्तु अभिनवगुप्त ने सिद्ध किया कि काव्य की आत्मा रस ही है—अभेदमय आनन्द-रस। इसीलिए शृंगार और शान्त रस प्रमुख रहे। सम्भवतः इसीलिए दुःखान्त प्रबन्धों का निषेध भी किया गया। आगे चल कर केवल शृंगार-रस का महत्त्व स्थापित किया गया। परकीया प्रेम का महत्त्व बढ़ा। रहस्य-वादियों ने प्रेममूलक रस की धारा बहाई। हिन्दी साहित्य के आरम्भ में विरहोन्मुख प्रेम की धारा वेगवती हुई। इतना अवश्य हुआ कि ध्वनि, रीति, विक्रोक्ति, अलंकार आदि पर रस की सत्ता स्थापित हो गई। यह रसानुभूति नाटकों में ही पूर्णता को प्राप्त हुई।
—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध

रसखान—दे० देव।

[दिल्ली के पठान सरदार, सूरदास की परम्परा में कृष्ण कवि। इनके दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं—'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान'। समय १५८४ वि० के बाद।]

रसदेव—वह पागल है। उसके भीतर न जाने कितनी हलचल है। उसकी आँखों में निश्छल अनुराग है। वह कंगाल है। —(कला)

रसाल[१]—एक भावुक कवि जो जंगली पक्षियों के बोल, फूलों की हँसी और नदी के कलनाद का अर्थ तो समझ लेता है, पर प्यार करने वाली अपनी पत्नी के आर्तनाद को कभी समझने

की चेष्टा भी नहीं करता। पहले दुःखवाद के गीत लिखता था—जलधर की माला घुमड़ रही जीवन-घाटी पर—, आनन्द के प्रभाव से स्वच्छन्द प्रेमवादी हो गया ; पर बाद में अपनी पत्नी के अनन्य सती-प्रेम ने उसे प्रभावित किया और वह उसके मोह-पाश में बँध गया—'प्रिये, आज तक मैं भ्रान्त था। मैंने आज पहचान लिया'। —एक घूंट

रसाल[2]—इन्दु, किरण १२, आषाढ़ १९६७ में प्रकाशित कविता। रसाल को कवि तरुवरराज कहकर सम्बोधित करता है। हे रसाल, तुम्हारे कारण कानन में मधुर गन्ध भरी है, मधु-लोभी भ्रमर गुंजार करते हैं, पथिक को शीतल छाया मिलती है। तुम्हारे हरित सघन रूप को देखकर पथिक का तन-मन पुलकित हो उठता है, और—

लहत अपार यश परम रसाल।
विहंग करत गान बैठि तव डाल॥

—(पराग)

रसालगिरि—दे० तुकनगिरि।

[मैनपुरी-निवासी, संन्यासी होकर मथुरा चले गए थे। रचनाएँ—वैद्य-प्रकाश और स्वरोदय ; रचना-काल १८७५ वि०।]

रसालमञ्जरी—'चित्राधार' में संकलित प्रसादजी की प्रारम्भिक व्रजभाषा कविताओं में से एक अत्यन्त सफल रचना। छः रोला छन्द, सुललित भाषा। इसमें मंजरी के कौमार्य का बड़ा ही मनोहर वर्णन है। ऋतुराज के आगमन पर आम्र-मंजरी मधुभार से झुक-झुक जाती है, उसके यौवन का सौरभ बिखरने लगता है। कवि मलयानिल, मधुकर और कोकिल से कहता है कि मंजरी अभी नवीन है, अभी इससे दूर हट कर बैठो।

फुल्ल कुमुद बन माँहि कीजिए तौ लौं केली
मलयानिल, जबलौं बिकसै मंजरी नवेली॥

रसिया बालम—बलवन्तसिंह (उपनाम रसिया बालम) को अर्बुदगिरि की राजकन्या कुसुमकुमारी से प्रेम था। वह घंटों राजमहल की खिड़की से राजकुमारी की झलक देखने बैठा रहता। एक दिन एक सैनिक ने उसे बताया कि राजकुमारी तुम्हें नहीं चाहती। युवक ने आत्महत्या कर लेने की चेष्टा की, पर सैनिक ने रोक लिया। यह सैनिक अर्बुदगिरि के महाराज ही थे। किले में पहुँच कर महारानी और कुसुमकुमारी को भी बुला लिया गया। महाराज बलवन्तसिंह को अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने कहा कि हमारी इच्छा है कि इससे राजकुमारी का विवाह कर दिया जाये, परन्तु महारानी ऐसे दीन व्यक्ति को अपनी कन्या नहीं देना चाहती थीं। उन्होंने उसके सामने एक शर्त रखी कि यदि रात भर में, कुक्कुट का स्वर सुनने के पहले, तुम अपने बाहुबल से पहाड़ी काट कर झरने के समीप से नीचे तक एक रास्ता बना लो तो विवाह सम्भव है। रसिया तत्परता से कार्य में लग गया। कार्य समाप्तप्राय ही था

कि रानी का छद्म 'तरुण-कुक्कुट-नाद' सुनाई पड़ा। रमिया ने काम छोड़ दिया और वह असफलता के कारण विषपान करके कुछ गुनगुनाता हुआ चेतनाहीन हो शिला-खण्ड पर लेट गया। प्रातः जब राजकुमारी ने सुना तो उसने अपने प्रणयी के उच्छिष्ट विष का पान करके उसी मार्ग का अनुसरण किया।

कहानी शीरी-फरहाद के किस्से के आधार पर लिखी गई जान पड़ती है। प्रेम का अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से भावुक वर्णन किया गया है। प्रेम अमर है। विष पीते समय रमिया कहता है—मैं तुमसे अवश्य मिलूंगा...और ऐसे स्थान में जहां कभी पलक गिरती ही नहीं। —छाया

रहमत—डाकू जिसे मिरजा जमाल ने बहुत-सा धन देकर शबनम को अपने महल में रख लिया। बाद में उसने सब धन लौटा दिया और शबनम को ले गया। उसने बाद में मिरजा को शरण दी। —कंकाल, ३-६

रहस्यवाद[१]—निबन्ध, जो शुक्लजी की इस घोषणा का युक्तिपूर्ण उत्तर है कि रहस्यवाद मूल में सेमेटिक या सामी है। प्रसाद ने वैदिक काल से लेकर आज तक इसकी अखण्ड परम्परा का प्रमाण दिया है और इसको भारतीय सिद्ध किया है। सेमेटिक धर्मों में अद्वैत कल्पना दुर्लभ ही नहीं, त्याज्य भी है। सूफियों में अद्वैत-भावना पाई जाती है, पर इस पर काश्मीर की साधना का बहुत कुछ प्रभाव है। भारत में दो धाराएँ अनादि काल से चलती रही हैं—एक दुःखवाद की और दूसरी आत्मवाद (आनन्दवाद) की। कभी-कभी दोनों धाराएँ मिल भी जाती रही हैं—जैसे सिद्धों, नाथों और सन्तों में। दुःखवाद की धारा वरुण, महावीर जैन, बुद्ध, आदि से होकर बहती रही है। आत्मवाद के प्रतीक इन्द्र थे। उपनिषद् में प्रेम और प्रमोद की भी कल्पना हो गई थी। आगे चल कर दुःखवादी व्रात्यों के प्रभाव से आनन्दवादियों की साधना-प्रणाली कुछ-कुछ लुप्त और रहस्यात्मक हो रही थी। रहस्य सम्प्रदाय अद्वैतवादी था। इसके अन्तर्गत भिन्न विचारधाराओं की सृष्टि होने लगी—शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध (सिद्ध), जैन। रहस्यवाद इन कई तरह की धाराओं में उपासना का केन्द्र बना रहा। श्रीकृष्ण और राम के द्वैत-उपासकों ने भी विरह-दुःख के साथ आनन्द और प्रेम की सृष्टि की। देव, रसखान, घनआनन्द आदि ने भी विरहोन्मुख प्रेम का निरूपण किया है। रहस्यवाद का एक दूसरा रूप है, प्रकृति का रहस्यवाद। यह भी संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। इस निबन्ध में इतिहास-तत्त्व का बाहुल्य है। प्रसादजी रहस्यवाद को काव्य की मुख्य धारा मानते हैं।

—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध

रहस्यवाद[२]—अलका की किस विकल इत्यादि। **—अजातशत्रु**

नृत्य करेगी नग्न विकलता परदे के उस पार। —अजातशत्रु

दे० मींड़ मत खिंचे। —अजातशत्रु

दे० आओ हिये में अहो! प्राण प्यारे। —अजातशत्रु

शशिमुख पर घूघट डाले। —आंसू

'आंसू' के प्रथम संस्करण का जो रूप दूसरे संस्करण में हुआ है वही प्रवृत्ति है स्वच्छन्दतावाद को रहस्यवाद में बदलने की। 'आंसू' की लौकिक व्यंजना को संपूर्ण रूप से अंतिम अंश में रहस्यवादी अर्थ दे दिया गया है।

'आँसू' प्रौढ़ रहस्यवादी रचना है।

चञ्चला स्नान कर आवे
चन्द्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी!
मैं अपलक इन नयनों से
देखा करता उस छवि को॥

—आंसू

कवि ने ब्रजभाषा में और 'कानन-कुसुम' में जो प्रेम और ईश्वर-सम्बन्धी कविताएँ लिखी है, उन्ही का आगे चलकर विकसित रूप रहस्यवाद में सिमट कर प्रगट हुआ। लोगों ने 'प्रथम प्रभात' को प्रसादजी की पहली रहस्यवादी कविता कहा है; पर मकरन्द-बिन्दु[१] (ब्रजभाषा में) स्पष्टत: रहस्यवादी है। 'प्रभो' और 'करुण-कुज' कुछ-कुछ रहस्यात्मक हैं। 'तुम्हारा स्मरण' 'भाव-सागर', 'मिल जाओ गले', 'नहीं डरते', रहस्यवादी रचनाएँ हैं।

'कानन-कुसुम' में अनेक कविताएँ लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक रूप देने में अग्रसर हैं। वास्तव में यहीं से रहस्यवाद का आरम्भ होता है।

'कामायनी' को रहस्यवाद की प्रतिनिधि रचना कहा गया है। निम्न-लिखित संकेत—

बिजली माला पहने फिर,
मुसकाता सा आँगन में।
हाँ कौन बरस जाता था
रस बूँद हमारे मन में?

—चांदनी सदृश खुल जाय कहीं, इत्यादि
—सब कहते हैं खोलो खोलो, इत्यादि
—(काम सर्ग)
—हे अनन्त रमणी...—(आशा सर्ग)
—हे विराट हे विश्वदेव तुम....
—(आशा सर्ग)
—०चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन
—(आनन्द सर्ग)

'झरना' में 'खोलो द्वार', 'चिह्न' 'कब', 'प्रत्याशा', 'मिलन', 'स्वप्न-लोक', 'दर्शन' रहस्यवादी कविताएँ हैं।

जीवन-पथ में सरिता होकर
उस सागर तक दौड़ चलें
जहाँ अखंड शान्ति रहती है
वहाँ सदा स्वच्छन्द रहें।

—प्रेम-पथिक

'लहर' में रहस्यवादी गीत अनेक हैं—

दे० अरे कहीं देखा है तुमने।
दे० निज अलकों के अंधकार में।
दे० निवरक तूने ठुकराया तब।

दे० मधुप गुनगुनाकर कह जाता।
दे० मधुर माधवी सन्ध्या में।
दे० मेरी आँखों की पुतली में।
दे० ले चल वहां भुलावा देकर।
दे० वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे।
दे० शशि सी वर सुन्दर....
दे० हे सागर संगम, हे अरुण नील।
अन्य कृतियों में भी संकेत है—
दे० भरा नयनों में मन में रूप
किसी छलिया का अमल अनूप।
—स्कन्दगुप्त

दे० छायावाद भी।

रहीम—कलकत्ता का एक बदमाश, रामधारी का गिरहकट साथी।
—तितली, ४-१

रहीम खां—दिल्लीपति अकबर का सैनप और चिर-मित्र। —महाराणा का महत्त्व

[अकबरी दरबार के उच्चाधिकारी, कवि, दाता, योद्धा, विजेता और राजनीतिज्ञ। रहीम खानखाना के नीति सम्बन्धी दोहे प्रसिद्ध हैं।]

राक्षस—मगध-सम्राट् नन्द का स्वामिभक्त, बौद्ध अमात्य, वक्रनास के कुल का कला-कुशल विद्वान् ब्राह्मण, चाणक्य का प्रतिद्वन्द्वी। प्रमाद ने उसका चरित्र बहुत हल्का और विकृत कर दिया है। राजनीति-कुशल राक्षस 'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रणयकुशल रसिया बन गया है। उसका सर्वप्रथम दर्शन विलास-कानन में होता है। नन्द की राज-नर्तकी सुवासिनी से वह कहता है—"सुवासिनी! एक पात्र और, चलो इस कुंज में।" अभिनय-सहित वह गीत भी गाता है, और तत्काल मंत्री बना दिया जाता है। अमात्य के रूप में वह चिन्तनशील और गम्भीर है। नन्दवंश के ह्रास के बाद चाणक्य उसे चन्द्रगुप्त का मंत्री बनाना चाहता है, और परिस्थितियों से पराजित राक्षस चन्द्रगुप्त का मंत्री बन जाता है, परन्तु सुवासिनी के सामने उसकी सारी राजनीति, सारी बुद्धि-कुशलता हवा हो जाती है। प्रणय में वह सफल होता है। वह व्यक्ति-स्वार्थों की सिद्धि के लिए प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से शत्रु की सहायता करता है। 'वह पाप की मलीन छाया है' (कार्नेलिया)। वह अपनी कूटनीति से चाणक्य को चकरा देता है, किन्तु अन्ततः असफल होता है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के राक्षस में बुद्धि-बल का अभाव है। नाटक के अन्त में वह भी परिवर्तित होता है और चाणक्य के प्रभाव से देशभक्त बन जाता है। जिस सिल्यूकस की वह पहले सहायता करता रहा है, उसी के विरुद्ध युद्ध करता है और सिल्यूकस को घायल करता हुआ स्वयं मारा जाता है। —चन्द्रगुप्त

राघव—दे० राम।

राघव-विजय—राग-काव्य—राग, अभिनय के साथ, वाद्यताल के अनुसार होता था।

—(नाटकों का आरंभ, पृ० ६१)

['अभिनव भारती' में उल्लिखित।]

राजकुमारी—मधुबन की बड़ी विधवा

बहिन जिसने आड़े समय में भाई के खँडहर में दीपक जलाने का काम अपने हाथों में लिया। संयम से अपने चारित्र्य की रक्षा करती रही। सुखदेव चौबे ने अकाल जलद की तरह उसके संयम के दिन को मलिन कर दिया। वह अब ढलते हुए यौवन को रोक रखने की चेष्टा में व्यस्त रहती। वह धीरे-धीरे चिकने पथ पर फिसल रही थी। और लोग क्या कहेंगे, इस पर उसका ध्यान बहुत कम जाता। उसके पतन का कारण है यौन-अतृप्ति। मधुबन बीच मे न पड़ता तो वह पतित हो जाती। —तितली

राजगृह—पाटलिपुत्र के पास सम्राट् की नगरी। —इरावती

[मगध-राज्य की प्राचीन राजधानी, वर्तमान राजगीर।]

राजतरङ्गिणी—कल्हण द्वारा लिखित कश्मीर के राजाओं का इतिहास। अशोक, कनिष्क और नरदेव का समय-निर्धारण राजतरंगिणी के प्रकाश में 'विशाख' नाटक की भूमिका में किया गया है। राजतरंगिणी का क्रमबद्ध इतिहास तृतीय गोनर्द से आरम्भ होता है। आदि गोनर्द से लेकर दूसरे गोनर्द तक और लव से लेकर शनीचर तक, फिर अशोक से लेकर अभिमन्यु तक कुल १७ राजाओं की सूची ५२ राजाओं में से छांटी गई है। —विशाख, परिचय

[इसमें ८१२ ई० से ११५० ई० तक कश्मीर का प्रामाणिक इतिहास मिलता है। रचनाकाल ११४८–११५० ई०]

राजदण्ड—राजदण्ड पति और पुत्र के मोहजाल से सर्वथा स्वतन्त्र है। षड्यंत्रकारियों के लिए वह निष्ठुर है, निर्म्मम है, कठोर है। (नन्द) —चन्द्रगुप्त, ३-७

राजन्याय—दे० स्वगत।

न्याय के दोनों ही आदेश हैं, दण्ड और दया। (प्रेमानन्द) —विशाख, १-५

अन्याय का राज्य बालू की भीत है। (महारानी) —विशाख, ३-१

राजभवन—उनके लोभ में मनुष्य आजीवन कारावास भोगता है।...कोमल शैया पर लेटे रहने की प्रत्याशा में स्वतंत्रता का भी विसर्जन करना पड़ता है। (अलका) —चन्द्रगुप्त, २-६

राजमद—राज-सम्पर्क हो जाने से इसी हड्डी-मांस के मनुष्य अपने को किसी बड़े प्रयोजन की वस्तु समझने लगते हैं। उन्हें विश्वास हो जाता है कि हम किसी दूसरे जगत् के हैं। (शीला) —जनमेजय का नाग-यज्ञ, २-१

राजराजेश्वर—प्रथम इन्दु, कला ३, किरण ३, मार्गशीर्ष '६८ में; बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित। इस कविता में दिल्ली दरबार का वर्णन है। सम्राट् जार्ज पंचम का आगमन, स्वागत, दरबार, घर-घर में आनन्द, सम्राट् की विदाई, का क्रमशः वृत्तान्त दिया गया है।

भारत को भी सुखी बना दो रहे न आरत
तुम नहि भूलो इसे, तुम्हें नहि भूले भारत।

राजा—दे० राजकुमारी। —तितली

राजा कैसा हो?—

—चित्राधार (सज्जन) पृ० १०१

राज्य—राज्य किसी का नहीं है; सुशासन का है। (अलका) —**चन्द्रगुप्त, ४-६**

राज्यवर्धन[1]—मगल के यत्र में एक कागज निकला जो प्राफेसर देव से पढ़वाया गया। उसमे लिखा था—शक-मण्डलेश्वर महाराजपुत्र राज्यवर्धन इस लेख के द्वारा स्वीकार करते हैं कि चन्द्रलेखा का हमारा विवाह-सम्बन्ध न होते हुए भी यह परिणीता वधू के समान पवित्र और हमारे स्नेह की सुन्दर पात्री है। —**कंकाल, १-६**

राज्यवर्धन[2]—स्थाणीश्वर का बड़ा राजकुमार, राज्यश्री का भाई, पराक्रमी, साहसी, धुन का पक्का, कर्तव्यशील, वीर। वह हूणों और मालवनरेश देवगुप्त का नाश करके अन्त में विश्वासघाती नरेन्द्रगुप्त के षड्यत्र का शिकार होता है। उदार और सीधा है।

—**राज्यश्री, २-३**

[प्रभाकरवर्धन के पुत्र, हूणों के विजेता, राज्यकाल ६०४—६०५ ई०।]

राज्यश्री[1]—प्रसादजी का प्रथम ऐतिहासिक रूपक। पहले इन्दु, कला ६, किरण १, जनवरी १९१५ में प्रकाशित। 'राज्यश्री' के प्रथम संस्करण में केवल तीन अंक थे (३९ पृष्ठ), दूसरे संस्करण में कुछ दृश्य और एक अंक बढ़ा दिया गया (७० पृष्ठ)। शान्ति भिक्षु (विकटघोष), सुरमा, पुलकेशिन और सुएनच्वांग—ये चार पात्र बाद में जोड़े गए। विकटघोष और सुरमा दोनों काल्पनिक पात्र हैं। दोनों संस्करणों को मिलाने पर प्रसादजी की नाट्य-कला के क्रमिक विकास पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है और यह भी ज्ञात होता है कि नाटककार अपनी त्रुटियों को सुधारने अथवा अपने शिल्प को परिष्कृत करने में किस प्रकार सफल हो रहा है। प्रथम संस्करण की घटनाओं में संघर्ष ही संघर्ष है—आदि से अन्त तक। प्रथम अंक में ग्रहवर्मा को मारकर देवगुप्त राज्यश्री को बंदिनी बनाता है; दूसरे अंक में राज्यवर्धन देवगुप्त को बंदी बनाता है और तीसरे अंक में राज्यवर्धन के वध के बाद हर्षवर्धन राज्यश्री को भिक्षुणी का बाना छोड़ कर पुनः रानी बनने का अनुरोध करता है; पर वह नहीं मानती। प्रथम संस्करण में नांदी-पाठ और अंत में प्रशस्ति-वाक्य भी हैं। पद्यात्मक कथोपकथन भी एकाध स्थल पर मिलता है। दूसरा संस्करण अधिक सरस और कथानक, चरित्र-चित्रण तथा कथोपकथन की दृष्टि से अधिक प्रौढ़ और सबल है। इसमें नान्दी नहीं है। चौथा अंक जो जोड़ा गया है, उससे न तो राज्यश्री के चरित्र का महत्व बढ़ता है और न ही कथा में कोई नवीनता आती है। इस अंक में तो हर्षवर्धन को प्रधानता मिल गई है। 'प्राक्कथन' में बाणभट्ट आदि के साक्ष्य द्वारा कथा के ऐतिहासिक पक्ष पर प्रकाश डाला गया है।

प्रकाशक—भारती भण्डार, इलाहाबाद (नौवां संस्करण, वि० सं० २०१३); अंक—चार।

पात्र (पुरुष)—

हर्षवर्धन—स्थाणीश्वर का राज-कुमार, फिर भारत सम्राट्

दिवाकर मित्र—एक बौद्ध महात्मा

नरेन्द्रगुप्त—गौड़ का राजा

राज्यवर्धन—स्थाणीश्वर का बड़ा राजकुमार

भण्डि—सेनापति

नरदत्त—मालव का सैनिक

सुएनच्वांग—चीनी यात्री

पुलकेशिन—चालुक्य नरेश

धर्मसिद्धि— } बौद्ध भिक्षु
शीलसिद्धि— }

शांतिदेव—भिक्षु, फिर दस्यु

देवगुप्त—मालवराज

मधुकर—उसका सहचर

ग्रहवर्मा—कन्नौज का राजा

दौवारिक, सहचर, प्रहरी, दस्यु, सैनिक, प्रतिहारी, दूत, मंत्री, नागरिक इत्यादि।

स्त्री (पात्र)—

राज्यश्री—कन्नौजराज ग्रहवर्मा की रानी

अमला, कमला, विमला—राज्यश्री की सखियां

सुरमा—एक मालिन

कथानक—

(प्रथम अंक) शांतिदेव यद्यपि भिक्षु-वृत्ति ले चुका है, फिर भी उसका मन अशान्त है। सुरमा नाम की मालिन के पीछे उसका हृदय पागल है ; किन्तु वह केवल सुरमा पर ही नहीं, राज्यश्री पर भी आसक्त है। उसके प्रस्थान के पश्चात् मालवराज गुप्त-कुल-कलंक देवगुप्त श्रेष्ठी बन कर छद्मवेश में वहां आता है और मदनोत्सव में राज्यश्री को देखता है। अपनी वाक्-चातुरी से वह सुरमा पर मुग्धकारी प्रभाव छोड़ता है। सुरमा राजमन्दिर में जाया करती है, यह जानकर उसे और भी सन्तोष होता है। आगे आने वाली घटना की छाया मानो पहले से पड़ जाती है। राज्यश्री के प्रति कान्यकुब्ज के मौखरी राजा ग्रहवर्मा का हृदय न जाने क्यों चिन्तित है। मृगया के बहाने वह अपने मन की शान्ति के लिए सीमा-प्रान्त के जंगलों में चला जाता है। मालवराज देवगुप्त का कुचक्र धीरे-धीरे सफलता की ओर बढ़ता है। उसके सैनिक कान्यकुब्ज में छद्मवेश में फैलते हैं तथा जिस ओर ग्रहवर्मा मृगया के लिए गए हैं, उस ओर भी उनके कुछ सैनिक जाते हैं। इधर देवगुप्त सुरमा पर डोरे डालता है। शान्तिदेव राज्यश्री से दान लेने के लिए जाता है, किन्तु अपने मन का कलुष छिपा नहीं पाता। सोचता है कि इतना सौन्दर्य, विभव और शक्ति एक में एकत्र है! वहीं राज्यश्री को सीमान्त प्रदेश पर मालवेश्वर द्वारा आक्रमण का समाचार मिलता है। राज्यश्री मंगल-कामना के लिए मंदिर में जाती है, वहां शांतिदेव प्रतिमा के पीछे से अकस्मात अट्टहास करता है। राज्यश्री समझती है कि देवमूर्त्ति की हंसी है और इसे अपशकुन

जान कर मूर्च्छित होती है। देवगुप्त का कुचक्र पूर्णरूपेण सफल होता है। ग्रहवर्मा मालव-सेना द्वारा मारे जाते हैं। देवगुप्त अपने छद्मवेशी सैनिकों को साथ लेकर दुर्ग पर अधिकार कर लेता है। राज्यश्री बन्दिनी बनाई जाती है। इसके पूर्व देवगुप्त अपनी कामना सुरमा पर प्रकट करता है। और उसे अपनी रानी बनाने का वचन देता है।

(द्वितीय अंक)—शान्तिभिक्षु सुरमा के विश्वासघात से प्रताड़ित होकर विकटघोष नाम धारण कर दस्यु बनता है। उसके अन्य दस्यु साथियों से यह ज्ञात होता है कि राज्यवर्धन ने राज्यश्री और ग्रहवर्मा का प्रतीकार लेने के लिए एक बड़ी सेना लेकर कान्यकुब्ज पर आक्रमण किया है और गौड़-नरेश नरेन्द्रगुप्त उसके सहायकों में हैं। विकटघोष आकर सेनापति भण्डि से कहता है कि हम लोग हैं तो साहसिक, पर अब चारित्र्य और वीरतापूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। देवगुप्त हमारा चिरशत्रु है। उससे प्रतिशोध लेना हमारा अभीष्ट है। अस्तु, वह राज्यवर्धन की सेना के अन्तर्गत पञ्चनद गुल्म में सम्मिलित होता है, ताकि इस प्रकार वह राज्यश्री तक पहुँच सके और उसे ले भागे। देवगुप्त बन्दिनी राज्यश्री को अपने वश में करने का प्रयत्न करता है, किन्तु राज्यश्री उसको धिक्कार देती है—'निर्लज्ज प्रवंचक! तुम्हारा इतना साहस!...मैं तुम्हारा वध तो न कर सकी, तो क्या अपना प्राण भी नहीं दे सकती?' देवगुप्त उस पर और कड़ा पहरा लगाता है। विकटघोष दुर्ग में पहुंचता है। वहां मधुकर द्वारा उसे ज्ञात होता है कि सुरमा ने मालव-नरेश देवगुप्त का वरण किया है। देवगुप्त और सुरमा उपवन में विहार करते हैं। वहीं शान्तिभिक्षु पहुँचता है और यक्ष का कल्पित भय दिखला कर देवगुप्त को भगाता है। सुरमा विकटघोष का वास्तविक परिचय प्राप्त कर उससे क्षमा-प्रार्थना करती है। —राज्यवर्धन दुर्ग पर आक्रमण करता है। युद्ध के कोलाहल में विकटघोष आकर राज्यश्री से कहता है—हमें राज्यवर्धन ने भेजा है, आपको कहीं सुरक्षित स्थान पर पहुंचाने के लिए। वह राज्यश्री को दस्युओं के हाथ गुप्त द्वार से दुर्ग के बाहर भेजता है। स्वयं सुरमा को लेकर जाता है। राज्यवर्धन और देवगुप्त में द्वन्द्वयुद्ध होता है। देवगुप्त मारा जाता है।

(तृतीय अंक)—नरेन्द्रगुप्त का वास्तविक रूप अब प्रकट होता है। वह राज्यवर्धन से ईर्ष्या करता है और षड्यंत्र द्वारा उसका वध कराना चाहता है। संयोग से विकटघोष और सुरमा की उससे भेंट होती है। उसे भी एक वेश्या और साहसिक की आवश्यकता है। वह इनको प्रलोभन देकर राज्यवर्धन की हत्या कराता है। राज्यश्री को दो डाकू साथियों की अधीनता में छोड़कर विकटघोष हत्या आदि अपराधों में अधिक व्यग्र रहने लगता है। दोनों डाकू राज्यश्री को लिए हुए विन्ध्य-

पाद के एक कानन में पहुंचते हैं। राज्यश्री से किसी प्रकार के धन की प्राप्ति की आशा न देखकर वे उसे बेचने को उद्यत होते हैं। दैववशात् दिवाकर मित्र नामक एक महात्मा वहां आते हैं। वे दस्युओं को अपनी कुटी से यथेष्ट धन देकर राज्यश्री को मुक्त करा लेते हैं। समीप ही रेवा-तट पर राज्यश्री के छोटे भाई हर्षवर्धन और पुलकेशिन चालुक्य का युद्ध चल रहा था। हर्षवर्धन पुलकेशिन की वीरता देखकर सन्धि करता है और वह भी हर्ष के साथ राज्यश्री को ढूढने निकल पड़ता है। सरयूतट के एक जंगल में विकटघोष सुएनच्वांग नामक चीनी यात्री को पकड़ लेता है और उससे धन मांगता है। पर भिक्षुक के पास धन कहां ? वह उसे शांति दे सकता था, जिसकी विकटघोष को कोई आवश्यकता नहीं। वह भिक्षुक को बलि देने का प्रस्ताव करता है। 'जो मुझे धन नहीं देता उसे मेरी देवी को रक्त देना पड़ता है।' दैववशात् आंधी आती है और अंधकार फैलता है। दस्युगण इस उत्पात का कारण सुएनच्वांग को ही मानते हैं और उसे मुक्त कर देते हैं। राज्यश्री दिवाकर मित्र के आश्रम में चिता पर सती होने का उपक्रम करती है। उसी समय हर्षवर्धन वहां आता है और उसे सती होने से बचाता है। दोनों बौद्ध धर्म से प्रभावित होते हैं और अपना सर्वस्व दान में देने का निश्चय करते हैं ; राजा होकर कंगाल बनने का अभ्यास करने चल पड़ते हैं।

(चतुर्थ अंक)—चीनी यात्री सुएनच्वांग हर्षवर्धन और राज्यश्री को प्रभावित करता है। बौद्धजन हर्ष तथा चीनी यात्री के महायान पंथी सिद्धान्तों से क्षुब्ध होते हैं। वे विकट-घोष को हर्ष की हत्या के लिए तैयार करते हैं ; किन्तु हत्या करने के पूर्व वह पकड़ा जाता है। हर्ष और राज्यश्री अपना समस्त धन प्रयाग में, गंगातट के पुण्यस्थल में, दान कर देते हैं। विकट-घोष वहीं लाया जाता है। राज्यश्री उसे पहचानती है, क्योंकि इसके पूर्व वह शान्तिभिक्षु के रूप में उसके समक्ष भिक्षा लेने के लिए गया था। सेनापति भण्डि उसे पहचानता है कि उसी ने राज्यवर्धन की हत्या की थी ; लेकिन राज्यश्री उसे प्राणदान देने का समर्थन करती है। इतने में सुरमा भी वहां आती है और अपने अपराधों की क्षमा चाहती है। महाश्रमण सुएनच्वांग दोनों को काषाय देते हैं। कुमार राजा, उदित राजा, ध्रुवभट्ट, प्रभृति अन्य माण्डलिक नरेश हर्ष को भेंट स्वरूप बहुत-सा धन देते हैं और उससे अनुरोध करते हैं कि वह पुनः राज्य-व्यवस्था चलाए। "महाराजाधि-राज हर्षवर्धन की जय !" "देवी राज्यश्री की जय !" के तुमुल कोलाहल के साथ पटाक्षेप होता है।

नाटक घटना-प्रधान है। पात्रों के अन्तस् का विश्लेषण करने का अवसर नहीं मिल पाया। राज्यश्री की चारित्रिक

विशेषताएं तो स्पष्ट होती हैं, पर अन्य पात्रों के रेखाचित्र सामने आकर मिट जाते हैं। चरित्र-चित्रण अविकसित रह गया है। वस्तु-संकलन में नाटकीयता का ध्यान नहीं रखा गया। शांतिभिक्षु का राज्यश्री के प्रति प्रेम एकांगी है, जिसमें अन्तर्द्वन्द्व का अवसर नहीं है। अधिकतर पात्रों को कोई व्यक्तित्व नहीं मिल पाया। मधुकर का हास्य शिष्ट और सुन्दर है।

ऐतिहासिक तथ्य—राज्यश्री तथा हर्षवर्धन से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का आधार हर्षचरित (बाणकृत) तथा युएनच्वांग और सी-यू-की का वर्णन है।

(१) कान्यकुब्ज-नरेश मौखरी ग्रह-वर्मा की हत्या करके मालव के शासक देवगुप्त ने राज्यश्री को बंदी बनाया; उस के पैरों में बेड़ी डाल दी गई। (हर्षचरित)।

(२) भण्डि का ध्यान परिवर्तित करने के विचार से गौड़ाधिपति शशांक (नरेन्द्रगुप्त) ने विधवा राज्यश्री को नगर के कारागार से मुक्त कर दिया। (डा० रामप्रसाद त्रिपाठी हिस्ट्री ऑव कन्नौज, पृ० ६७)।

(३) श्रीहर्ष को भण्डि ने सूचित किया कि राज्यश्री कारावास से मुक्त होकर विन्ध्य पर्वत की ओर चली गई है।

(४) हर्ष ने राज्यश्री को सती होने से बचा तो लिया, पर वह इतनी त्रस्त थी कि उसने काषाय लेने का अपना मन्तव्य प्रकट किया। पर हर्ष उसे कन्नौज ले गया। (हर्षचरित)

(५) हर्ष ने कुछ दिनों कान्यकुब्ज का शासन-प्रबन्ध किया, परन्तु कालान्तर में स्थानेश्वर और कन्नौज दोनों का अधिपति बन गया। (वी०ए० स्मिथ)

(६) दक्षिण की चढ़ाई में हर्ष पुलकेशिन द्वारा पराजित हुआ (वी० ए० स्मिथ) परन्तु, प्रसाद ने घटना-क्रम का व्यतिक्रम कर दिया है।

(७) बंगाल की विजय में ह्यून च्वांग से हर्ष की भेट हुई, तो वह उसे सानुरोध कान्यकुब्ज ले आया।

शांतिदेव (विकटघोष) और सुरमा को छोड़ शेष सभी प्रमुख पात्र और घटनाएँ इतिहास में वर्णित हैं।

शैली का नमूना—

(उपवन में सुरमा और देवगुप्त)

देव०—आज सुरमा ! अच्छी तरह पिला दो। कल तो मुझे भयानक युद्ध के लिये प्रस्तुत होना है। तुम कितनी सुन्दर हो सुरमा !

सुरमा—कितनी मादकता इस प्रशंसा में है, प्रियतम मुझे अपना स्वरूप विस्मृत होता जा रहा है। मेरा यह सौभाग्य. . ,!

देव—सुरमा मेरे जीवन में ऐसा उन्माद-कारी अवसर कभी न आया था। तुम यौवन, स्वास्थ्य और सौंदर्य्य की छलकती हुई प्याली हो—पागल न होना ही आश्चर्य है, मेरे इस साहस की विजय-लक्ष्मी।

सुरमा—(इधर-उधर देखती हुई)—मैं कहां हूँ ? यह उज्ज्वल भविष्य कहां

छिपा था? और यह सुन्दर वर्तमान, इन्द्रजाल तो नहीं?—(देवगुप्त का हाथ पकड़ कर)—क्या यह सत्य है?

देव०—उतना ही सत्य है, जितना मेरा कान्यकुब्ज के सिंहासन पर अधिकार। सुरमा! शंका न करो। दो—एक पात्र।

(सुरमा पानपात्र भरकर देती है)

देव०—(पीता हुआ) यह देखो सुरमा! नक्षत्र के फूल आकाश बरस रहा है, उधर देखो चन्द्रमा की स्निग्ध प्रसन्न हँसी तुम्हारा मनुहार कर रही है। जीवन की यह निराली रात है! सुरमा, कुछ गाओगी?

सुरमा—क्यों नहीं प्रियतम! (गाती है)

सम्हाले कोई कैसे प्यार!
मचल-मचल उठता है चंचल
भर लाता है आंखों में जल
बिछल्न कर, चलता है उस पर
लिये व्यथा का भार
सिसक सिसक उठता है मन में,
किस सुहाग के अपनेपन में,
'छुई मुई'-सा होता, हँसता,
कितना है सुकुमार।

देव०—सुरमा! तुम कितनी मधुर हो—मेरे जीवन की ध्रुवतारिका!

(नेपथ्य से)

"यह तुम्हारे दुर्भाग्य के मन्द ग्रह की प्रभा है!"

देव०—(चौंककर) —यह कौन?

(नेपथ्य से)

"मैं हूँ। सुरमा के उपवन का यक्ष। सावधान! इस अपनी विपत्ति और अलक्ष्मी से अलग हो जाओ, नहीं तो युद्ध में तुम्हारा निधन होगा।"

देव०—यक्ष, असम्भव! यक्ष और कोई नहीं, मनुष्य है। तुम कौन हो, प्रवञ्चक?

(नेपथ्य से)

"मैं यक्ष हूँ। तुम्हारी इच्छा हो, तो बाण चलाकर देख लो—वही तीर लौटकर तुम्हें लगता है कि नहीं। मैं फिर सावधान कर देता हूँ—सुरमा को अभी अपने पास से अलग करो, नहीं तो पछताओगे।"

देव०—तो मैं.....

(नेपथ्य से)

"हां, हां, तुम; यदि, तुम्हें मृत्यु का आलिंगन न करना हो तो सुरमा के बाहुपाश से अपने को मुक्त करो।"

(देवगुप्त भयभीत होकर सुरमा को देखता है, सुरमा हताश दृष्टि से उसे देखती है, दूर से कोलाहल की ध्वनि)

देव०—यह क्या?

(नेपथ्य से)

"यह है तुम्हारी सुख-निद्रा का अन्त-सूचक शत्रु-सेना का शब्द। मूर्ख! अब भी भागो!"

(देवगुप्त भयभीत सुरमा को छोड़ जाता है। सुरमा—'प्रियतम! सुनो-सुनो' कहती रह जाती है। विकटघोष का प्रवेश।)

राज्यश्री[२]—कन्नौजराज ग्रहवर्मा की पत्नी, नाटक की नायिका, आदर्श आर्य नारी, पतिपरायणा, सती, दानशील, धार्मिक और स्वाभिमान-युक्त; 'इतना सौन्दर्य,

विभव और शक्ति एकत्र' (शान्ति-भिक्षु); 'स्त्री की मर्यादा, करुणा की देवी' (सुरमा)। घोर विपत्तियों में पड़कर भी वह साहस और आत्मगौरव को नहीं छोड़ती। वह यातना, अत्याचार और कष्ट सह-सहकर जर्जर हो जाती है और अनेक बार जीवन का अंत कर देना चाहती है। पति के प्रति चिंताकुल, सहजभीरु; पर समय पड़ने पर कठोर और दृढ़। वह अपने सतीत्व की पूर्णतया रक्षा करती है। धैर्य और दृढ़ता के साथ उसमें स्त्र्योचित दुर्बलता भी है—चिन्ता और अपशकुन की आशंका; परन्तु इससे उसका नारीत्व ही उज्ज्वल होता है। सुएनच्वांग भी उसके चरित्र की प्रशंसा करता है। वह क्षत्राणी के सहज शौर्य-गुणों से भी सम्पन्न है। सीमाप्रान्त से युद्ध का सन्देश सुनकर कहती है—'क्षत्राणी के लिए इससे बढ़कर समाचार कौन होगा?' —**राज्यश्री**

[राज्यश्री असाधारण योग्यता की महिला थी और बौद्धों के समितिया सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की पंडिता थी]

राज्यश्री एक आदर्श राजकुमारी थी। उसने अपना वैधव्य सात्त्विकता से बिताया। अनेक अवसरों पर वह हर्ष के लौह-हृदय को कोमल करने में कृतकार्य हुई। —**राज्यश्री, प्राक्कथन**

राधा—मगध की महादेवी उसमे कन्या के समान स्नेह करती थी। उसके चरित्र की दृढ़ता के कारण ही कपिञ्जल और नन्दन का उत्थान होता है। —(**व्रतभंग**)

राधिका—ब्रज के कवियों ने राधिका-कन्हाई सुमिरन के बहाने आनन्द (प्रेमरहस्य) की सहज भावना परोक्ष भाव में की। —(**रहस्यवाद, पृ० ३८**)

दे० कृष्ण

[गोकुल के निकट बरसाने के गोपराज वृषभानु की कन्या, कृष्ण की प्रेयसी, जिसने कृष्ण के साथ रासलीला में प्रमुख भाग लिया था।]

राधे—अत्यन्त मद्यप, उसकी स्त्री ने उसे बहुत दिन हुए छोड़ दिया था। उद्दंड, जाति-सुधारक, अछूतों का नेता। वह मानता है कि ईश्वर किसी वर्ग-विशेष का नहीं सब का है। —(**विराम चिह्न**)

राम[१]—राम के दो भेद हो गए—कबीर और तुलसी का द्वन्द्व।

—(**आरम्भिक पाठ्य काव्य, पृ० ८२-८३**)

राम और कृष्ण का संघर्ष भी हुआ। —(**वही**)

साहित्यिक न्याय में राम की तरह आचरण करने के लिए कहा जाता है, रावण की तरह नहीं। —(**वही, पृ० ८७**)

राम[२]—पगली (तारा) मोहन में राम के दर्शन करने लगी। —**कंकाल, ४-१**

अयोध्या में एक बैरागी रामायण की कथा करता था जो श्रीचन्द और किशोरी सुनते थे—

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल सुमति सुधारी॥

—**कंकाल, ४-१**

सरला सोच रही थी—"जिन्हें लोग भगवान् कहते हैं, उन्हें भी माता की गोद

से निर्वासित होना पड़ा था। दशरथ ने तो अपना अपराध समझ कर प्राण त्याग दिया, परन्तु कौशल्या कठोर होकर जीती रही— जीती रही श्रीराम का मुख देखने के लिए।" सरला जीती थी मंगल का मुख देखने के लिए।

—कंकाल, ४-६

मंगल का उपदेश—लोकापवाद संसार का एक भय है, एक महान् अत्याचार है। श्रीरामचंद्र ने भी लोकापवाद के भय के सामने सिर झुका लिया और मैथिली को त्याग दिया। —कंकाल, ४-८

राम[१]— —(**गूदड़ साईं**)

राम[२]— —(**चित्रकूट**)

राम[३]— —**तितली** १.१, २-६, ३-७

राम[४]— —(**तुम**)

राम[७]—राम की तरह एकपत्नीव्रत।

—(**परिवर्तन**)

राम[८]—रामलीला मे स्वांग

—(**मदनमृणालिनी**)

राम[९]— —(**महाकवि तुलसीदास**)

राम[१०]—विवेकवाद (समन्वय) के सब से बड़े पौराणिक प्रतीक। वे अपनी मर्य्यादा में और दुःख-सहिष्णुता में महान् रहे।

—(**रहस्यवाद, पृ० ३०**)

कबीर ने विवेकवादी राम का अवलम्ब लिया। —(**वही, पृ० ३७**)

तुलसी के सगुण समर्थ राम

—(**वही, पृ०३८**)

राम की बहुरिया बनकर सन्त-सम्प्रदाय ने प्रेम और विरह की कल्पना की। —(**वही**)

राम[११]— —(**सत्यव्रत**)

राम[१२]— —**स्कन्दगुप्त, ४**

दे० रामचन्द्र, राघव भी।

[दशरथ-कौशल्या के पुत्र, रघुकुल-तिलक, मर्य्यादा-पुरुषोत्तम, विष्णु के अवतार माने गए हैं, प्रसिद्ध चरित्र।]

रामकली—३ वर्ष की लड़की जो दरिद्रता और भूख के मारे सोते में कुएं में गिरकर मर गई। —(**करुणा की विजय**)

रामगांव—यमुना के तट पर सरला का असली घर। —(**रूप की छाया**)

रामगुप्त—'अनार्य, निठुर, निर्लज्ज, मद्यप, क्लीव' (ध्रुवस्वामिनी); 'हिंसक, पाखंडी, क्षीव' (सामन्त कुमार); 'कुटिलता की प्रतिमूर्त्ति' (चन्द्रगुप्त); पतित, विलासी, अविवेकी निर्वीर्य, जीवन की कठिनाइयों से भागने वाला, सारहीन, निस्सत्व प्राणी। 'विलासिनियों के साथ मदिरा में उन्मत्त' (ध्रुवस्वामिनी)। 'कपटाचारी' (मन्दाकिनी)। 'भेड़ की तरह क्षुद्र जीवन', सशंक, भयतीत (ध्रुव-स्वा०) वह प्रेम का मूल्य नहीं जानता। स्त्री को वह विवशता और व्यथा की प्रति-मूर्त्ति समझता है। वह ध्रुवस्वामिनी के प्रेम को अपनी ओर परिवर्तित नहीं कर सका। उसका गृहस्थ जीवन सफल नहीं होता। फलतः उसके जीवन में कभी आनन्द का स्वर गूंजता ही नहीं। राम-गुप्त आवारा, मंत्री पर आश्रित राजा, भीरु, कायर और कर्त्तव्यच्युत है। ध्रुव-स्वामिनी को शकराज के प्रति सौंप देने का जघन्य पाप करके उसने अपनी नपुंसकता का प्रमाण दिया और शकराज

के शव के साथ जाने वाले असहाय मनुष्यों का वध कर के अपनी कायरता प्रमाणित कर दी। वह अपने भाई चन्द्रगुप्त को मारने का प्रबन्ध करने लगा। इस नीचता का भी कहीं ठिकाना है? गुप्तकाल के गौरव को कलंक-कालिमा के सागर मे निमज्जित करने वाला (सामन्तकुमार)। "यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं, पर गौरव से नष्ट, आचरण मे पतित और कर्मों मे राज-किल्विषी क्लीव है।" (पुरोहित) धूर्त और चाटुकार शिखरस्वामी को छोड़ उसके सब अनुचर और पारिषद उसके विरुद्ध हो जाते हैं। चन्द्रगुप्त को मार डालने की चेष्टा करता हुआ वह स्वयं सामतकुमार द्वारा मारा जाता है। —ध्रुवस्वामिनी

[समुद्रगुप्त का पुत्र ; मृत्यु ३७५ ई०]

रामगुलाम—गरीब बूढ़ा, विधवा दुखिया का पिता। आखों से दिखाई नही पड़ता। सारी उम्र जमींदार की सेवा की ; पर पाया कुछ नहीं—पेन्शन भी नहीं मिली। —(दुखिया)

रामचन्द्र[1]—शराबी सुनाने लगा था कि कहते हैं श्री रामचन्द्र ने भी हनुमानजी से निर्दयी दिल्लगी की थी। —(मधुआ)

रामचंद्र[2]—दे० लंका। —स्कन्दगुप्त

[= राम]

राम-चरित-मानस— दे० महाकवि तुलसीदास।

[= तुलसी रामायण ; हिन्दी (अवधी) का सर्वप्रिय महाकाव्य (१५७४ ई०) जिस के सात काण्डों में अयोध्याकाण्ड कवि की उत्कृष्ट रचना है।]

रामजस—मोहन का अभिन्न मित्र। वह अभी तीस बरस का नहीं हुआ था, किन्तु उसके मुंह पर वृद्धों की-सी निराशा की झलक थी। —तितली

रामजी—शराबी का कोई मित्र जिसके घर में इसने सान धरने की कल रखी हुई थी। —(मधुआ)

रामदास[1]—बाथम और लतिका का नौकर। —कंकाल, २-३

रामदास[2]—किसी दर्जी का नाम जान पड़ता है। बुड्ढे ने बालक के लिए बात कर रखी थी, सात आने में तेरा कुरता बन जायगा। —(बेड़ी)

रामदीन—इन्द्रदेव का नौकर, नटखट। शैला छोटी कोठी से चली गई, तो इस लड़के का विद्रोही मन अधीर हो गया। दूसरे ही दिन उसने लैम्प गिरा दिया। पानी भरने का तांबे का घड़ा लेकर गिर पड़ा। बड़ी कोठी से कुछ चीजें जाने लगीं। इस पर चोरी का अभियोग लगा और यह चुनार की रिफार्मेटरी में भेज दिया गया। —तितली

रामदेव—इसने नन्दो की लड़की को लड़के में बदल देने का पाखण्ड किया। गंगा-सागर के मेले में सरला के पुत्र मंगल को उठा लिया और नन्दो को जा दिया। लड़की को गोविन्दी चौबाइन ने पाला। यह सब रहस्य उसने स्वयं बतलाया। अब वह पश्चात्ताप करता फिरा। मथुरा

गया, अयोध्या में पगली (घंटी) को मिला। अन्त में नन्दो को अपनी लड़की घंटी मिल गई। लोगों ने देखा कि वह सरयू की प्रखर धारा में बहता हुआ, फिर डूबता हुआ, जा रहा है। **—कंकाल**

रामधारी पांडे—मछुआ बाजार (कलकत्ता) में एक मारवाड़ी कोठी का जमादार। उसके साथ १०–१२ बलिष्ठ युवक रहते थे, जो जेब कतरते थे। रहीम से मिलकर छीना-झपटी में लगा रहता है। **—तितली, ४-१**

रामनगर[१]—काशी से बजरा में बैठकर बिजय, किशोरी, मंगल और यमुना (तारा) रामनगर घूमने जाते हैं।

—कंकाल, १-७

[काशी के राजाओं की नगरी, काशी से गंगापार स्थित है।]

रामनगर[२]—लूनी नदी के पार।

[दे० लूनी] —(**प्रणय-चिह्न**)

रामनाथ[१]—बड़ा दयालु, बनिया। बुढ़िया ने सहायता लेने से इनकार किया तो उसे दूकान पर हल्का-सा काम दे दिया। जब वह काम करने के योग्य न रही, तो उसने पेन्शन भी लगानी चाही ; पर बुढ़िया न मानी। जब वह मरी, तो इसे बड़ा शोक हुआ और बुढ़िया के आत्माभिमान की प्रशंसा करने लगा।

—(**गुदड़ी में लाल**)

रामनाथ[२]—बाबाजी, सुधारक ब्राह्मण। सत्पथ पर विरोधों के बावजूद भी अटल। धार्मिक जनता के उस विभाग का प्रतिनिधि, जो संसार के महत्त्वपूर्ण कर्मों पर अपनी ही सत्ता, अपना ही दायित्वपूर्ण अधिकार मानता है। उसका दृढ़ विश्वास था कि विश्व के अन्धकार में आर्यों ने अपनी ज्ञान-ज्वाला प्रज्वलित की थी। काशी चला गया और संन्यासी हो गया।

—तितली

रामनिहाल—भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में, छोटा-मोटा व्यवसाय, नौकरी और पेट पालने की सुविधाओं को खोजता हुआ श्यामा के पास मुनीम हुआ। उसकी महत्त्वाकांक्षा, उसके उन्नतिशील विचार उसे बराबर दौड़ाते रहे ; किन्तु वह मृग-मरीचिका थी। "मैं चतुर था। इतना चतुर जितना मनुष्य को न होना चाहिए ; क्योंकि मुझे विश्वास हो गया है कि मनुष्य अधिक चतुर बन कर अपने को अभागा बना लेता है, और भगवान् की दया से वंचित हो जाता है।" युवती मनोरमा के पति से खिन्न होकर इसकी ओर देखने से, शरीर छू जाने से, 'आप देखते हैं न' कहने से, नाव पर थोड़ा हाथ का सहारा लेने से और बाद में पटना बुलाने से वह समझने लगा कि 'मैं धन्य हूँ', मनोरमा मुझे प्यार करती है। वह श्यामा को भी गलत समझ बैठा है। वासना-पीड़ित मूर्ख ! —(**सन्देह**)

रामपालसिंह—इंस्पेक्टर जो धामपुर में जांच के लिए आ गए। **—तितली, खंड ४**

रामप्रसाद—दे० तानसेन।

रामप्रसाद तिवारी—इन्होंने हिन्दी का प्रथम चम्पू (नृसिंह चम्पू) लिखा।

—उर्वशी, भूमिका

रामसिंह—बाबू श्यामलाल के साथ आया हुआ कलकत्ते का पहलवान, जिसे मधुबन ने पछाड़ दिया। —तितली, ३-१

रामस्वामी— —(देवदासी)

रामा[1]—बरेली की एक ब्राह्मण विधवा, जिसे दुराचार का लाञ्छन लगाकर देवर ने हरद्वार में लाकर छोड़ दिया। बाद मे भण्डारीजी ने रख लिया तो वह सधवा हो गई। तारा इसकी बेटी थी। —कंकाल

रामा[2]— —(प्रतिध्वनि)

रामा[3]—शर्वनाग की पत्नी, गौण स्त्री पात्र, निर्भीक और दृढ़चरित्र। पति को सावधान किया—"सोना मैं नहीं चाहती, मान मैं नहीं चाहती, मुझे अपना स्वामी अपने उसी मनुष्य रूप में चाहिए।" "तू ने पिशाच का प्रतिनिधित्व ग्रहण किया है। तू मेरा स्वामी नही है, तू मेरे स्वामी की नरक निवासिनी प्रेतात्मा है।" उसकी स्वामिभक्ति पतिभक्ति मे भी अधिक उत्कट और त्यागपूर्ण है। अपनी स्वामिनी देवकी के प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हुए शर्वनाग की कुकर्म-योजना से उसकी रक्षा करती है। "पहले मैं मरूगी, तब महादेवी"। —स्कंदगुप्त

रामायण—आनन्दवर्धन के अनुसार करुण रस का प्रबन्ध है। —(रस, पृ० ४५)

दुःखान्त है। —(रस पृ० ४७)

वैदिक साहित्य के बाद लौकिक साहित्य में भी पहले-पहल पद्य ही पाया जाता है। —(नाटकों का आरम्भ, पृ० ५६)

वाल्मीकि रामायण में भी नाटको का उल्लेख मिलता है—वधुनाटक (बालकांड, १४-५)। —(वही)

मलाबार में कम्बर का रामायण। —(वही, पृ० ६०)

[दे० कम्बर।]

अभिनय की परंपरा पर, रामायण के आधार पर रामलीला। —(रंगमंच, पृ० ७१)

रामायण तथा उसके अनुयायी बहुत से काव्य प्रायः आदर्श और चारित्र्य के आधार पर ग्रथित हुए हैं। —(आरम्भिक पाठ्य काव्य पृ० ७८)

[वाल्मीकि-कृत रामायण 'आदि-काव्य' समझा जाता है। इसमें २४ हजार श्लोक हैं। इसे इतिहासकारों ने ५०० ई० पू० की रचना माना है। इसका आरम्भ करुण रस से और अन्त सीता के पृथ्वी में अन्तर्धान होने के दृश्य मे करुण रस मे होता है। इसमें सात काण्ड है, जिनमें से पहला और सातवा प्रक्षिप्त माने जाते हैं।]

रामू[1]—तारा के पड़ोस का एक लड़का। —कंकाल, १-३

रामू[2]—विश्वासघाती कोल। नीच, साहसी, विश्वासघातक चीते से भी भयंकर जानवर। —(बन्दा)

रामू[3]—निर्मल का भतीजा जिसने मां की जेब से दुअन्नी निकाल कर भिखारिन की ओर फेंक दी और अपनी दया से मां तथा चाचा को प्रसन्न किया। —(भिखारिन)

रामू[4]—चन्द्रदेव का नौकर। वह भी

सांप पकड़ लेता है—बड़ी सफाई से, बिना किसी मंत्र-जड़ी के।

—(सुनहला सांप)

रामेश्वर—रामेश्वरनाथ वर्मा, सुनहला सांप क्यूरियो मर्चेंट। 'वह एक सफल कदम्ब है, जिसके ऊपर मालती की लता अपनी सैकड़ों उलझनों से, आनन्द की छाया और आलिंगन की स्नेह-सुरभि ढाल रही है।' वह अपने पारिवारिक घेरे में ही प्रसन्न और सुखी है।—(आंधी)

रावण—साहित्यिक न्याय के अनुसार (आदर्शवाद के स्तम्भ में) रावण की पराजय निश्चित है।

—(**यथार्थवाद और छायावाद**, पृ० ८७)

[लंका का प्रसिद्ध राक्षस-राज, जो प्रकांड पंडित, बुद्धिवादी और शिवभक्त होते हुए भी पतित था। राम ने इसे युद्ध में मार डाला।]

रावी[1]—रावी के किनारे एक सुन्दर महल में अहमद निआल्तगीन पंजाब के सेनानी का आवास था।—(**दासी**)

रावी[2]— —स्कन्दगुप्त

रावी[3]—चार दृश्य रावी के तट से सम्बद्ध हैं। मालव नगर और प्रदेश रावी तट पर ही था। सिकन्दर इसी रास्ते लौटे। —**चन्द्रगुप्त**

[= इरावती ; हिमालय में चम्बा की पहाड़ियों से निकल कर लाहौर से होती हुई मुलतान के निकट चनाब में जा गिरती है।]

राष्ट्र—बौद्ध ग्रन्थों में १६ जातिगत राष्ट्रों का उल्लेख है—अंग, मगध, काशी, कोशल, वृजि (वैशाली), मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्वक, अवंतिक, गांधार और कांबोज। जातक-कथाओं में शिवि, सौवीर, मद्र, विराट् और उद्यान का भी नाम आया है ; पर इनकी प्रधानता नहीं है।

—**अजातशत्रु, कथाप्रसंग**

राजनीति के सिद्धान्त में राष्ट्र की रक्षा सब उपायों से करने का आदेश मिलता है। उसके लिए राजा, रानी, कुमार और अमात्य सब का विसर्जन किया जा सकता है ; किन्तु राज-विसर्जन अन्तिम उपाय है। (शिखरस्वामी)

—**ध्रुवस्वामिनी, पृ० २८**

राष्ट्रनीति—राष्ट्रनीति, दार्शनिकता और कल्पना का लोक नहीं है। इस कठोर प्रत्यक्षवाद की समस्या बड़ी कठिन होती है। (पर्णदत्त) —**स्कन्दगुप्त, १-१**

राष्ट्रीयता—दे० अरुण यह मधुमय देश हमारा।

—जो जाति अपराध और पापों से पतित नहीं होती, वह विदेशी तो क्या, किसी अपने सजातीय शासक की भी आज्ञाओं का बोझ अपने स्कन्ध पर वहन नहीं करती। (छाया)

—**कामना, १-३**

पराधीनता से बढ़कर विडम्बना और क्या है ? (अलका)—**चन्द्रगुप्त, २-८**

जिस देश के युवक वीर हों, उसका पतन असम्भव है ?

जन्मभूमि की सेवा के लिए जब सुकुमारियां कटिबद्ध हों तब युवक कब पीछे रहेंगे?

जिस जाति में जीवन न होगा, वह विलास क्या करेगी? जाग्रत राष्ट्र में ही विलास और कलाओं का आदर होता है। (भटार्क) —स्कन्दगुप्त, ३-३

दे० भारत भी।

देशवासियो! दे० देश की दुर्दशा निहारोगे! —स्कन्दगुप्त, पृ० १५८

हमारा प्यारा भारतवर्ष। दे० हिमालय के आंगन में.....

—स्कन्दगुप्त, पृ० १६२-१६३

राष्ट्र और समाज मनुष्यों के द्वारा बनते हैं—उन्हीं के सुख के लिए। जिस राष्ट्र और समाज से हमारी सुख-शान्ति में बाधा पड़ती हो, उसका हमे तिरस्कार करना ही होगा। इन संस्थाओ का उद्देश्य है—मानवों की सेवा। यदि वे हमी से अवैध सेवा लेना चाहें और हमारे कष्टों को न हटावे, तो हमें उसकी सीमा के बाहर जाना ही पडेगा। (श्रमण)

—स्कन्दगुप्त, ४-५

दे० राष्ट्र और उद्बोधन भी।

दे० —शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण

—चन्द्रगुप्त के गीत

—स्कन्दगुप्त, तितली

दे० सामयिकता, सामयिक प्रश्न भी।

रासो—रासो और आल्हा, ये दोनों ही पौराणिक ढंग के महाभारत की परम्परा मे हैं।

—(आरम्भिकपाठ्यकाव्य, पृ० ८०)

[हिन्दी मे खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो आदि अनेक ग्रन्थ हैं—प्रसादजी का संकेत 'पृथ्वीराज रासो' की ओर है। ढाई हजार पृष्ठों का यह काव्यग्रन्थ ६९ समयों (अध्यायों) में चंदबरदाई का लिखा हुआ है। समय अनिश्चित।]

राहु—इड़ा ज्यों राहु-ग्रस्तसी शशि-लेखा।

—कामायनी, दर्शन

रुद्र—धूमकेतु-सा चला रुद्र नाराच भयंकर इत्यादि।

—कामायनी, संघर्ष, पृ०२०२

रुद्र को अन्याय, अत्याचार और अमर्यादा सहनीय नहीं है। वह अपनी सभी देव-शक्तियों सहित अपराधी (मनु) पर टूट पड़ता है। रुद्र-हुंकार, रुद्र-रोष।

—कामायनी, स्वप्न, दर्शन

[वेद में रुद्र का भयानक और विनाशकारी रूप वर्णित है। रुद्र का नाम 'शिव' भी आता है। इसकी शक्ति अपार है। इसी से तान्त्रिक काल में इसे ओषधियो का स्वामी माना गया है। वह मरुतो का पिता है।]

रूढ़ियाँ—प्राचीन कुसंस्कारों का नाश करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, क्योंकि ये रूढिया आगे चलकर धर्म का रूप धारण कर लेती है। जो बातें कभी देश, काल, पात्रानुसार प्रचलित हो गई थी, वे सब माननीय नही, हिन्दू-समाज के पैरों मे ये बेड़ियां है। (विजय)

—कंकाल, पृ० १०६

रूप—१६ पंक्तियों में अतुकान्त कविता—नख-शिख शैली का रूप-वर्णन। बंकिम भ्रू, कुटिल कुन्तल, नील नलिन से नेत्र, 'सुन्दर गोल कपोल, सुढर नासा बनी',

चपल-सी ग्रीवा, 'मुक्तागण हैं लिपटे कोमल कम्बु में', चंचल चितवन, अंग-अंग में स्वच्छता सिंचे हुए वे सुमन सुरभि मकरन्द से। —झरना

रूप की छाया—लघु कथा। युवती सरला को एक दिन गंगा-तट पर विपन्न अवस्था में शैलनाथ मिल गया, जिसने अपने को एक निस्सहाय विद्यार्थी बताया। चाची की स्वीकृति पाकर सरला, शैलनाथ को अपने घर ले आई। धीरे-धीरे वह सुरुचि-सम्पन्न हो गया। सरला वेश-सज्जा के साथ रहती और सौन्दर्य के सारे अस्त्रों का प्रयोग करती। एक दिन उसने शैलनाथ से कह ही तो दिया—"अब तुम नहीं छिप सकते। तुम्हीं मेरे पति हो। तुम्हीं से मेरा बाल-विवाह हुआ था। एक दिन चाची के बिगड़ने पर सहसा घर से निकल कर कहीं चले गए थे, फिर न लौटे। हम लोग आज-कल अनेक तीर्थों में तुम्हें खोजती हुई भटक रही हैं। तुम्ही मेरे देवता हो।" शैलनाथ के सामने सर्वस्व लुटाने को तैयार रूप की प्रतिमा थी। वह हां कहने को था, परन्तु सहसा उसके मुह से निकल गया—यह सब तुम्हारा भ्रम है भद्रे। उसी दिन वह वहां से चला गया। क्रमशः घनीभूत रात में सरला के रूप की छाया भी विलीन होने लगी। उसके रूप का जादू व्यर्थ गया। यह अन्तर्द्वन्द्व की कहानी है। —आकाशदीप

रूपदेव—सुन्दर किन्तु कठोर, रेखा-विज्ञान में कुशल, ठाठ-बाट से रहने वाला। —कला

रूप-वर्णन

वाजिरा —अजातशत्रु

मल्लिका —अजातशत्रु

ग्रामीण युवती —(अमिट स्मृति)

चम्पा —(आकाशदीप)

ईरानी बाला—लैला —(आंधी)

नखशिख जैसा वर्णन —आंसू, पृ० १७-२०

रूप-वर्णन —आंसू, पृ० २२-२३

" " —आंसू, पृ० २३-२४

बेला —(इन्द्रजाल)

कालिन्दी —इरावती, पृ० ५२, ७९-८०

किशोरी —कंकाल

घटी, शबनम —कंकाल

इन्दु में उस इन्दु के प्रतिबिम्ब के सम है छटा, इत्यादि। —कानन कुसुम

कंकण-क्वणित रणित नूपुर थे
हिलते थे छाती पर हार, इत्यादि।
—कामायनी, चिंता सर्ग, पृ० ११

रूप —कामायनी, लज्जा सर्ग

और देखा वह सुन्दर दृश्य, इत्यादि
—कामायनी, श्रद्धा, पृ० ४६

नील परिधान बीच सुकुमार, इत्यादि।
—कामायनी, श्रद्धा, पृ० ४७-४८

नित्य यौवन छवि से हो दीप्त, इत्यादि।
—कामायनी, श्रद्धा, पृ० ४६

घिर रहे थे घुघराले बाल, इत्यादि।
—कामायनी, श्रद्धा, पृ० ४७

सब अंग मोम से बनते हैं, इत्यादि।
—कामायनी, लज्जा, पृ० ९८

(जागृत सौन्दर्य)
जागृत था सौन्दर्य यदपि वह
सोती थी सुकुमारी।
—कामायनी, कर्म, पृ० १२५-१२६
(भावी जननी)
केतकी-गर्भ-सा पीला मुंह, इत्यादि।
—कामायनी, ईर्ष्या, पृ० १४२-१४३
(विरह में)
कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी,
न वह मकरन्द रहा, इत्यादि।
—कामायनी, स्वप्न, पृ० १७५
दिव्य तुम्हारी अमिट छवि देख, इत्यादि ।
—कामायनी, निर्वेद, पृ० २२२
रोहिणी —(ग्रामगीत)
गुण्डा —(गुण्डा)
गुलाम कादिर —(गुलाम)
बिन्दो —(घीसू)
कार्नेलिया —चन्द्रगुप्त
मगला —(चित्रवाले पत्थर)
अंग-अत्यंग
—चित्राधार (उर्वशी), पृ० २-३
वीर और सुन्दर व्यक्तित्व
—चित्राधार (बभ्रुवाहन), पृ० २२
वीर वेश
—चित्राधार (बभ्रुवाहन), पृ० ४०
सोये राजकुमार
—चित्राधार (अयोध्या का उद्धार)
पृ० ४६-४७
वनबाला
—चित्राधार (वन-मिलन),
पृ० ५५-५६
बाला (ललिता)
—चित्राधार (प्रेमराज्य), पृ० ६९
बालक (चन्द्रकेतु)
—चित्राधार (प्रेमराज्य), पृ० ७०
चूड़ी वाली, विलासिनी
—(चूड़ीवाली)
ये बंकिम भ्रू, युगल कुटिल कुन्तल घने। इत्यादि। —झरना, रूप
तितली, शैला —तितली
सुजाता। —(देवरथ)
नूरी —(नूरी)
भिल्ल सुन्दरी नीला
—(पाप की पराजय)
मधूलिका —(पुरस्कार)
मृणालिनी —(मदनमृणालिनी)
रमला —(रमला)
दे० —(रूप)
मरला —(रूप की छाया)
यौवन का उन्माद
—लहर (प्रलय की छाया)
चन्द्रलेखा —विशाख
युवती —(वैरागी)
धीवर-बाला —(समुद्र-संतरण)
युवक —(सालवती)
किन्नरी —(हिमालय का पथिक)
रूप-वर्णन में 'प्रसाद' से अच्छा चित्रकार आधुनिक हिन्दी साहित्य में नहीं है।
दे० वर्णन, सौन्दर्य।

रूम—जिन हूणों ने रूम साम्राज्य को पादाक्रान्त किया, उन्हें स्कन्द का लोहा मानना पड़ा। —स्कन्दगुप्त, ३

[तुर्की का पश्चिमी भाग, केन्द्र कस्तुन्तुनिया।]

रेवा—रेवातट पर हर्ष और पुलकेशिन का युद्ध हुआ। रेवा तक उत्तरापथ में हर्ष का राष्ट्र था। —**राज्यश्री, ३-२,-३**

[=नर्मदा नदी]

रोम—दे० ग्रीस —**तितली २-६**

[इटली की राजधानी, प्राचीन सांस्कृतिक तथा धार्मिक केन्द्र।]

रोहतास—दुर्ग, जिस पर शेरशाह सूरी ने अधिकार कर लिया। उस समय दुर्गपति के मंत्री चूड़ामणि थे।—(**ममता**) दे० रोहिताश्व भी।

[जिला शाहाबाद (बिहार) में; हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व ने बसाया था। इस पहाड़ी किले का घेरा लगभग २८ मील है।]

रोहिणी—जीवनसिंह का प्रेम न पा सकने के कारण उन्मादिनी हो गई और अन्त में प्रेम की वेदी पर आत्म-बलिदान कर दिया। "वह उसके यौवन का प्रभात था... उसकी झुकी हुई पलकों से काली बरौनियां छितरा रही थीं और उन बरौनियों से जैसे करुणा की अदृश्य सरस्वती कितनी ही धाराओं में बह रही थी।" —(**ग्रामगीत**)

रोहिताश्व[1]—दुर्ग। मगध-राज्य के अन्तर्गत। —**इरावती**

[=रोहतास]

रोहिताश्व[2]—युवराज, तर्कशील। —**करुणालय**

[वरुण की कृपा से उत्पन्न हरिश्चन्द्र-तारामती (शैव्या) का पुत्र। बाद में अयोध्या का राजा।]

ल

लकसर—हरद्वार से बनारस जाते हुए लकसर में गाड़ी बदलती है। —**कंकाल, १-१**

[जिला सहारनपुर; रेलवे जंकशन]

लक्ष्मण[1]— —(**चित्रकूट**)

लक्ष्मण[2]— —(**सत्यव्रत**)

[दशरथ-सुमित्रा के पुत्र, राम के प्रिय भाई और सहचर। १४ वर्ष तक कठिन व्रत-साधना कर इन्होंने राम-सीता की सेवा की।]

लक्ष्मी[1]— —(**अयोध्या का उद्धार**)

लक्ष्मी[2]— —**इरावती**

लक्ष्मी[3]— —**उर्वशी चम्पू**

[विष्णु की पत्नी, समुद्र-मंथन में प्राप्त। धन की अधिष्ठात्री देवी।]

लक्ष्मी[4]— —**चन्द्रगुप्त, १-११, ४-६**

लक्ष्मी[5]—आजकल क्या, सभी युगों में लक्ष्मी का बोलबाला रहा है। भगवान् भी इसी के संकेतों पर नाचते हैं। (रामजस) —**तितली, ३-४**

लक्ष्मी[6]— —(**देवदासी**)

लक्ष्मी[7]— —(**धर्मनीति**)

लक्ष्मी[8]— —(**सज्जन**)

लक्ष्मी[9]— —(**सरोज**)

लक्ष्मी[10]— —(**सालवती**)

लक्ष्मी[11]— —**स्कंदगुप्त**

[लक्ष्मी कई स्थानों पर विजय, वैभव और भाग्य का पर्याय है।]

लखनऊ[1]—लखनऊ संयुक्त प्रान्त में एक निराला नगर है। बिजली की प्रभा से आलोकित सन्ध्या 'शाम अवध' की सम्पूर्ण प्रतिमा है। पण्य में क्रय-विक्रय चल रहा है ; नीचे-ऊपर सुन्दरियों का कटाक्ष ; चमकीली वस्तुओं का झलमला, फूलों के हार का सौरभ और रसिकों के वसन में लगे हुए गन्ध से खेलता हुआ मुक्त पवन — यह सब मिल कर एक उत्तेजित करने वाला मादक वायुमण्डल बना है। यहां मंगल ने तारा के कारण कैनिंग कालेज में पढ़ने का निश्चय किया। अमीनाबाद पार्क में उसकी भेंट तारा (गुलेनार) की "अम्मा" वेश्या से हुई। शाह मीना की समाधि; चारबाग स्टेशन। —**कंकाल, १-२**

लखनऊ[2]—पहाड़िन बुढ़ी का भावी पति आया था कमाने। —**(परिवर्तन)**

लखनऊ[3]—ठाकुर सरदारसिंह का लड़का लखनऊ में पढ़ता था। ठाकुर साहब भी कभी-कभी वहीं आ जाते। 'मधुआ' कथा की पृष्ठभूमि यही स्थान है। लखनऊ की नवाबी विलासिता का चित्रण संकेत से हुआ है। —**(मधुआ)**

[गोमती नदी के किनारे बसा उत्तर-प्रदेश का प्रधान नगर। अवध के नवाबों की राजधानी रहा।]

लगा दो गहने का बाजार—नरला और महापिंगल गाते हैं कि खाने को चाहे कुछ मिले न मिले, नाक-कान छिदवा कर सोना-चांदी पहनाने से पति-पत्नी का प्यार प्रगट होता है। —**विशाख, २-२**

लंका—धातुसेन लंका का राजकुमार था। कुमार गुप्त ने हँसी में पूछा—"तुम्हारी लंका में अब राक्षस नहीं रहते, क्या ?" धातुसेन ने कहा—"राक्षस यदि कोई था तो विभीषण, और बन्दरों में भी एक सुग्रीव हो गया था। दक्षिणापथ आज भी उनकी करनी का फल भोग रहा है।..रामचन्द्र ने, सुना था, जब वे युवराज भी न थे, तभी युद्ध किया था।" कुमारगुप्त व्यंग्य से कहते हैं कि तुम बालि की सेना से बचे हुए हो। धातुसेन कहता है, कि स्त्री की मन्त्रणा बुरी होती है जैसे बालि के लिए उनकी तारा का मंत्रित्व। सोने की लंका राख हो गई। (रामा) —**स्कन्दगुप्त, १**

दे० सिंहल, ताम्रपर्णी भी।

[= सिंहल, सिलोन। वास्तव में लंका सिंहल देश में एक पर्वत है, जहां रावण रहता था।]

लज्जा[1]—लज्जा अनुरागरूपिणी है। 'नीरव निशीथ में लतिका सी', 'हृदय की परवशता', 'सौन्दर्य की धात्री', 'देव-सृष्टि की रतिरानी', 'रति की प्रतिकृति' लज्जा गौरव-महिमा और शालीनता सिखाती है और सुन्दरता की रखवाली करती है। —**कामायनी**

लज्जा[2]—सिन्धु-तटवर्ती अभिसार प्रदेश की सुन्दर कुमारी जो देवपाल के यौवन पर फिसल पड़ी। बाद में जब वह कश्मीर-कुमारी तारा की ओर आकृष्ट हुआ, तो हतभागिनी लज्जा ने कुमार सुदान की तपोभूमि में अशोक-निर्मित विहार में

शरण ली। वह उपासिका, भिक्षुणी, जो कहो, बन गई। जब वहां स्थविर ने विक्रम की लड़की और राजकुमार को शरण देते लज्जा को मना किया, तो इसने भिक्षुणी होने का ढोंग छोड़कर अनाथों के सुख-दुःख में सम्मिलित होने का निश्चय किया। लज्जा का चरित्र महान् है। उसका चरित्र दृढ़ और त्याग-मय है। —(**स्वर्ग के खंडहर में**)

लतिका—दे० मारगरेट लतिका।

लन्दन—इन्द्रदेव बैरिस्टरी के लिए यहां आए। लन्दन नगर में उन्हें पूर्व और पश्चिम का अन्तर मिला। पश्चिमी भाग में सुगन्ध जल के फौव्वारे छूटते हैं, बिजली से कमरे गरम हैं। पूर्वी भाग में बरफ और पाले में दूकानों के चबूतरों के नीचे अर्ध-नग्न दरिद्रों का रात्रि-निवास है। —**तितली, १-२**

[टेम्स नदी पर बसा हुआ इंगलैंड का राजकेन्द्र। संसार का सबसे बड़ा नगर।]

ललित—अमीर घराने का नवयुवक। अपने वैभव में भी किशोर के साथ दीनता का अनुभव करने में उसे सुख मिलता था। मित्र-वत्सल—किशोर से गहरा स्नेह था। गम्भीर मुखाकृति—कभी उदासीनता छा जाती थी। किसी भावना से साधु हो गया—कोई उसे अघोरी कहते, कोई योगी। मुर्दा खाते हुए उसे किसी ने नहीं देखा था। खेलता, हंसता, पढ़ता, पर कोई यह न जानता कि खाता क्या है। युवतियों को भी 'मां' कहता था। प्रकृति से बड़ा प्रेम था। कई लोग उसे पागल भी समझते थे। मलीन अंग; किन्तु पवित्रता की चमक, मुख पर रुक्षकेश, कौपीनधारी। किशोर के मोह के कारण उसके बच्चे से प्यार करने लगा। —(**अघोरी का मोह**)

ललिता—

लखि मूरति शान्त सुरसरी
हूँ को मन्द प्रवाह है।
कुञ्जन में छुपि के सुमन,
देखत सहित उछाह है।
शकुन्तला दुष्यन्त बीच
में भरत सुहावत।
धर्म, शान्ति, आनन्द
मनहुँ साथहि चलि आवत॥

—(**प्रेम-राज्य**)

लल्लू—लल्लू ठाकुर का जमादार था जिसकी निगरानी में मधुआ नौकर था और उसी की कठोरता के कारण बेचारे मधुआ को रोटी की जगह फटकार मिली। —(**मधुआ**)

लहर—काव्य-संग्रह जिसमें 'झरना' के बाद की स्फुट और प्रौढ़ रचनाएँ (प्रायः गीत) हैं। इसमें छायावादी, रहस्यवादी, प्रगतिवादी और ऐतिहासिक कई प्रकार की कविताएँ हैं जिनकी विशेषताएं हैं—व्यक्तिगत अतीत की स्मृतियां, इतिहास के अतीत के प्रति मोह, प्रगतिशीलता के बारे में प्रसाद का अपना दृष्टिकोण, जीवन और यौवन का उल्लास। 'आंसू' में जो हलचल है, उसकी शांति 'लहर' में हुई है। कभी-

कभी विह्वल भावनाएं अँगड़ाइयां लेने लगती हैं। अधिकतर कविताओं में—कथात्मक कविताओं में भी—निराशा और वेदना का स्वर स्पष्ट है। 'लहर' के रूप-चित्र और प्रणयगीत सुन्दर हैं। कविताओं की संख्या ३३ है।

लहर की कविताएँ—प्रथम पंक्तियां—उठ उठ री लघु लोल लहर, निज अलकों के अन्धकार में, मधुप गुनगुना कर कह जाता, अरी बरुणा की शान्त कछार, ले चल वहां भुलावा देकर, हे सागर संगम अरुण नील, उस दिन जब जीवन के पथ में, बीती विभावरी जाग री, आंखों से अलख जगाने को, आह रे! वह अधीर यौवन, तुम्हारी आंखों का बचपन, अब जागो जीवन के प्रभात, कोमल कुसुमों की मधुर रात, कितने दिन जीवन जलनिधि में, वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे, मेरी आंखों की पुतली में, जग की सकल कालिमा रजनी मे, वसुधा के अचल पर, अपलक जगती हो एक रात, जगती की मंगलमयी उषा बन, चिर तृषित कंठ से तृप्ति-विधुर, काली आंखों का अन्धकार, अरे कहीं देखा है तुमने, शशि-सी वह सुन्दर रूप-विभा, अरे आ गई है भूली-सी, निधरक तूने ठुकराया तब, ओ री मानस की गहराई, मधुर माधवी संध्या में, अन्तरिक्ष मे अभी सो रही।

अन्य कविताएँ—अशोक की चिन्ता, शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण, पेशोला की प्रतिध्वनि, प्रलय की छाया।

लालसा[1]—कुटिल, क्रूर, विलासिनी; "लालसा हूँ, मै जन्म भर जिसको सन्तोष नहीं हुआ।" सम्पत्ति और अधिकार पाकर भी वह अनेक षड्यंत्रों की रचना करती है। वह बड़ी चतुर है। शत्रु के सेनापति ने जब उसके प्रणय को ठुकरा दिया तो वह उसकी हत्या कर देती है। विलास, विनोद आदि को वह अपनी कठपुतली बना लेती है। अपनी महत्त्वाकांक्षा मे वह विलास को भी मात कर देती है और अन्त मे उसको ले डूबती है। वह मधुर गान, वाक्‌चातुरी और स्वर्णभंडार के द्वारा सबको वशीभूत कर लेती है, परन्तु अतृप्ति उसे एक का बने रहने में बाधा है। **—कामना**

लालसा[2]—बिल्ली कब तक छीछड़ों से अपना जी चुरावे। (भिक्षु)

—विशाख, ३-२

लालसिंह—लालसिंह जीवित कलुष पंचनद का। **—(शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण)**

[पंजाब का कलंकी सेनापति।]

लालाराम—हरद्वार में लालाराम की बगीची मे तारा और मंगल रहते थे।

—कंकाल, १-३

लाली— **—कंकाल**

लाहौर—अहमद निआल्तगीन के शासन की राजधानी। **—(दासी)**

[रामचन्द्र के पुत्र लव का बसाया लवपुर; मुसलमान और सिखों के राज्यकाल में बड़ा महत्त्वपूर्ण नगर; अब पाकिस्तान में।]

लीला[1]—चंचल, स्वर्ण और मदिरा से

मोहित; कामना की विश्वस्त सहचरी। वह आंख मूंद कर विलास और कामना का अनुगमन करती है और वनलक्ष्मी तक को नहीं सुनती। वह चाटुकारिता से सब को प्रसन्न करने की चेष्टा करती है। पहले वह विनोद को चाहती है बाद में संतोष को, और विवाह विनोद से करती है। जब लालसा विनोद को घेरने लगती है तो उसके स्वार्थ को चोट लगती है और वह आत्मसुधार की ओर अग्रसर होती है। **—कामना**

लीला[2]—मगध-राजकुमारी कल्याणी की सहेली। **—चन्द्रगुप्त, १-४**

लीला[3]—मीना का असली नाम।
—(स्वर्ग के खण्डहर में)

लूनी— **—(प्रणय चिह्न)**
[राजस्थान की एक छोटी सी नदी जो अर्बली पहाड़ से निकल कर कच्छ की खाड़ी में जा गिरती है।]

लेखराम मिसर—नन्दराम का पिता। एक छोटा-सा व्यापारी, परचून की दूकान थी। हिन्दू पठान जिसने अपने गांव की रक्षा के लिए वजीरियों से कई लड़ाइयां लड़ीं। **—(सलीम)**

ले चल वहाँ भुलावा देकर—जागरण, प्रथम अंक, फरवरी १९३२ में प्रकाशित, 'लहर' में संगृहीत, १८ पंक्तियों की कविता। कवि अपने अतीत-रूपी नाविक से कहता है कि मेरी बुद्धि तो यहां से जायगी नहीं, मुझे भुलावा देकर ले जा—वहां, जहां निर्जन है, जहां मानस-सागर की लहरी निश्छल प्रेमकथा कह रही है, जहां पृथ्वी का कोलाहल नहीं है; उस लोक में जहां जीवन की छाया, सांझ के समान सुख-सी ढीली हो, जहां उषा के तारे ढुलक रहे हों; जहां मधुर छाया में, अथवा विश्व के चित्र-पट पर, विभुता की व्यापकता और सुख-दु:ख की सत्यता स्पष्ट होती है; वहां जहां श्रम-विश्राम मिल कर नई सृष्टि करते हैं।—कवि जीवन के भौतिक धरातल से उठकर आदर्श लोक का निर्माण चाहता है। वह प्रकृति की पूर्ण शान्ति के सहारे रहस्यवादी भूमि पर जाना चाहता है। **—लहर**

लैला—सरल, स्वतंत्र और साहसिकता से भरी रमणी। उसकी सुरमीली आंखों में नशा है। वह अबाध गति से चलने वाली एक निर्झरिणी है। पश्चिम के सर्राटे से भरी हुई वायुतरंग माला है। प्रेम की वेदी पर वह अपना सर्वस्व, अपना जीवन-धन तक, उत्सर्ग कर देती है।
—(आंधी)

लोकनाथ—महायानी देवता जो शून्यवाद और देवपूजा के समन्वय का प्रतीक है।
—(रहस्यवाद, पृ० ३०)

लोभ सुख का नहीं, न तो डर है—
प्राण कर्त्तव्य पर निछावर है।।
स्वामि-भक्त जीवक की अपने बारे में सत्योक्ति। **—अजातशत्रु, २-९**

लौहित्य—लौहित्य से सिन्धु तक, हिमालय की कन्दराओं में भी, हूणों के ध्वंस हो जाने पर, स्वच्छन्दतापूर्वक सामगान होने लगा। **—स्कन्दगुप्त, ३**

[आधुनिक ब्रह्मपुत्र, मानसरोवर से निकल कर आसाम में प्रवेश करती है। पूर्वी बंगाल से होकर बंगोपसागर में जा मिलती है।]

व

वक्रनास—महापद्मनन्द के अमात्य, राक्षस के चाचा। —**चन्द्रगुप्त, १-२**

वक्रोक्तिजीवित—दे० कुन्तक।

[इसमें वक्रोक्ति और लोकोत्तर वैचित्र्य के महत्त्व की व्याख्या की गई है।]

वंक्षु—नदी। "देखना है कि एक बार वंक्षु-तट पर गुप्त-साम्राज्य की पताका फिर लहरायगी।" (पुरगुप्त)

—**स्कन्दगुप्त, ३**

[=आक्सस (वर्तमान आमू), बाह्लीक की ८८० मील लम्बी नदी जो उत्तर में सीमा निर्धारित करती है।]

वज्रसार—शैल —(**रसिया बालम**)

वत्स—दे० कौशाम्बी।

[प्रयाग से पश्चिम का प्रदेश।]

वनमिलन—इन्दु, पौष '६६ में 'वन-वासिनी बाला' नाम से प्रकाशित, 'चित्राधार', १९८५ में सकलित प्रबन्ध-काव्य। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' से प्रेरित। कविता लम्बी है, पृष्ठ संख्या २१। भूधर नृपति हिमालय पर्वत विलासित हो रहा है। 'तेहि कटि तट महँ कण्व महर्षि सो है।' प्रियंवदा और अनुसूया, शकुन्तला के लिए व्यग्र हैं। वे समझती हैं कि शकुन्तला ने 'पाइ राजसुख सखियन को निज हाय! बिसारी। बहुत दिवस बीते, निज खबर न दीन्हीं प्यारी।' गौतमी राजधानी में गई थी; पर वह भी कुछ बतानी नहीं है। कुछ दिनों बाद कश्यप ऋषि का शिष्य गालव, कण्व के आश्रम में आया और उसने समाचार दिया कि शकुन्तला एवं भरत के साथ महाराज दुष्यन्त मरीचि के आश्रम से चल कर यहां आ रहे हैं। वनवासियों के बीच जब यह राजपरिवार आया, तब उस करुण स्रोतस्विनी से आनन्द का एक उत्स फूट निकला—

शकुंतला दुष्यन्त,
बीच में भरत सुहावत।
धर्म, शान्ति, आनन्द मनहुँ
साथहि चलि आवत ॥

प्रियम्वदा और अनुसूया दुष्यन्त को उपालंभ देने लगीं तो शकुन्तला ने कहा—

अब यह मेरो एक विनय
धरि ध्यान सुनै तू
इनके विगत चरित्रन
को नहिं नेक गनै तू।
जामें फिर नहिं बिछुरैं,
सब यह ही मति ठानो
सदा हमारे संग चलो
अति ही सुख मानो ॥

अन्त में शकुन्तला ने अपने पिता महर्षि कण्व से दोनों सखियों को मांग

लिया। इसी बीच शकुन्तला की माता मैनका चीनांशुक उड़ाती उतर पड़ीं और इस शुभ अवसर पर सम्मिलित हुई। कण्व ने आशीर्वाद दिया और सब चल दिए।

वन और वनबालाओं के सौन्दर्य का वर्णन बड़े मौलिक ढंग से हुआ है। भाषा परिमार्जित है।

वनराज—बूढ़ा, अन्धा, वनलता का पिता। —(**ज्योतिष्मती**)

वनलक्ष्मी—(पात्र) —**कामना**

वनलता[1]—रसाल कवि की स्त्री। अपने पति की भावुकता से असन्तुष्ट। पति की समस्त भावनाओं को अपनी ओर आकर्षित करने में व्यस्त रहती है। पर समय के अनुकूल बनने की उसकी बान ही नहीं। आनन्द और रसाल से उसका बड़ा मतभेद है। वह मानती है कि संसार में सब दुःखी हैं, सब विकल हैं। सब को एक-एक घूट की प्यास बनी है; परन्तु वनलता ने तो चातक की तरह अपने पति ही के प्रेम का एक घूंट चाहा है— इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। अन्त में वह अपने सतीत्व का फल पाती है और पति के प्रेम-को पाकर सन्तोष-लाभ करती है। वह सच्ची प्रेमिका है। —**एक घूंट**

वनलता[2]—सुन्दर बालिका, दृढ़-चरित्र, निर्भीक और स्वच्छन्द।—(**ज्योतिष्मती**)

वनवासिनी बाला—दे० वन मिलन।

वन्दना—आठ पंक्तियों की लघु कविता। 'जयति प्रेम-निधि! जिसकी करुणा नौका पार लगाती है।' विश्ववीणा में उसकी ध्वनि, कादम्बिनी के रस में उसकी कृपा, भाव कानन में उसकी शोभा है। यह वाणी गद्गद् हो उसका गुणगान करने लगती है। हे प्रभु, तेरी शक्ति अपरम्पार है। —**कानन-कुसुम**

वपुष्टमा—जनमेजय की रानी। सती नारी, अपने पति के कल्याण की चिन्ता में व्यग्र, दृढ़, उदार, स्थिर तथा न्यायप्रिय। सरमा के साथ सहानुभूति होते हुए भी, वह उसका नागकुल में विवाह पसंद नहीं करती। पति का कल्याण सोचकर ही वह मणिमाला के साथ जनमेजय के विवाह का समर्थन करती है। उसमें एक दुर्बलता भी है—और वह है उसका जाति-द्वेष। —**जनमेजय का नाग-यज्ञ**

[सुवर्णवर्मा की कन्या, शतानीक की माता—महाभारत में]

वररुचि—मगध का चतुर अमात्य। नंद का मंत्री होकर भी, वह नंद द्वारा मौर्यपत्नी के प्रति किए गए दुर्व्यवहार का तीव्र विरोध करता है और पदत्याग कर देता है। वह अध्ययनशील, विद्याव्यसनी एवं उदारहृदय ब्राह्मण है। चाणक्य और तक्षशिला के प्रति उसका आकर्षण इसी कारण से है। वह क्षमाशील है। पारस्परिक फूट और भेद-भाव रोकने की सतत चेष्टा करता रहता है। कार्नेलिया के लिए मंगल-कामना करता रहता है। वह पाणिनि के सूत्रों का वार्तिककार है। दे० पाणिनि भी। —**चन्द्रगुप्त**

उदयन से १००–१२५ वर्ष पीछे कौशाम्बी में आचार्य वररुचि (जिन्हें कथा-

सरित्सागर में कात्यायन भी कहा गया है) का जन्म हुआ। इन्होंने बृहत्कथा प्रणीत की और काणभूति से कही, काणभूति ने गुणाढ्य से कही। काणभूति और गुणाढ्य ने क्रमशः इसे प्राकृत और पैशाची भाषाओं में विस्तारपूर्वक लिखा।

—अजातशत्रु, कथाप्रसंग

वरुण[1]— —(आकाशदीप)

वरुण[2]— —करुणालय

वरुण[3]—प्रलय में व्यस्त अम्लान वरुण-चक्र

—कामायनी, चिन्ता, आशा, काम, कर्म

वरुण[4]—वैदिक काल में एकेश्वरवाद के प्रतिनिधि —(रहस्यवाद, पृ० २२) आर्यों की उपासना में वे गौण रहे, पर असुर के रूप में असीरिया आदि अन्य देशों में प्रतिष्ठित हुए।—(वही)

वरुण[5]— —(समुद्र-संतरण)

वरुण[6]— —स्कंदगुप्त, ५

[अनन्त शक्ति-सम्पन्न अध्यात्म के देवता। इन्हें सिन्धुपति भी कहा गया है। इनकी स्तुति में बहुत कम सूत्र है।]

वरुणप्रिय—हरद्वार में मंगल के आर्यसमाजी मित्र। —कंकाल, १-३

वरुणा—दे० वरुणा

वरुणालय चित्त शान्त था—'विशाख' नाटक का प्रथम गीत, स्नातक विशाख द्वारा। शैशव मे कितनी शान्ति, कितना सन्तोष, कितनी करुणा, कितनी सुषमा थी, कितनी कल्पनाएँ थी, कितना मृदमंगल था, उसकी स्मृतियाँ कितनी सुखमय थीं। लेकिन जब से उसने मेरा साथ छोड़ा, अतृप्ति और अन्धकार ने हृदय को घोंसला बना लिया। भविष्य का कुछ पता नहीं। चित्त चंचल हो रहा है, इसका क्या करूँ? —विशाख, १-१

वर्णन—

राजमहल —(अशोक)

राजकीय कानन —(अशोक)

पूजा —इरावती, पृ० १०

नृत्य —इरावती, पृ० १६-१७

राजसभा —इरावती पृ० २४

सेना की विदाई —इरावती, पृ० ४६

आतिथ्य —इरावती, पृ० ८९

नृत्य —इरावती, पृ० १०५

प्रायः कहानियों में बहुत छोटे-छोटे वर्णन है, जैसे—सरोवर, पहाड़, नदी, नदी-तट, समुद्र, वीर-देश, ग्राम-बालाएँ, युवक, सुन्दरी, राजकुमारी, दरिद्र कन्या; दुर्ग, ग्राम, कुटीर, मन्दिर, प्रासाद, रेलवे स्टेशन; प्रभात से पहले, प्रभात, उषा, प्रातः, दोपहर, संध्या, निशा, चाँदनी रात, तारों भरी रात आदि।

—छाया

दुःख-दारिद्रय —(छोटा जादूगर)

दुःखिया का दयनीय वर्णन—(दुखिया)

देवदासी जीवन —(देवदासी)

मन्दिर का वर्णन —(देवदासी)

सुजाता की वेदना-पूर्ण स्थिति—(देवरथ)

दुःख-दारिद्रय —(नीरा)

वन-प्रदेश —(पाप की पराजय)

राजकीय समारोह —(पुरस्कार)

कुटिया —(प्रेम-पथिक)

पुजारिन का चित्र —(प्रतिमा)

मंदिर का वर्णन —(प्रतिमा)
पहाड़ी गाँव —(बिसाती)
भिखारिन का चित्र —(भिखारिन)
दुःख-दारिद्रय —(मधुआ)
रण —महाराणा का महत्त्व, पृ० ५-७
राजभवन

—महाराणा का महत्त्व, पृ० १९-२०
(ऐतिहासिक वर्णन)

दे० अरी वरुणा की शान्त कछार, जगती की मंगलमयी उषा में मूलगन्ध कुटी।

वर्षा में नदी कूल—इन्दु, कला १, किरण १, श्रावण '६७ में प्रकाशित व्रजभाषा की कविता। आरंभ में सुन्दर मेघों का वर्णन है। मलयानिल चल रहा है। कादम्बिनी सुन्दर रूप सँवार कर आ गयी है। नदी में हिलोरें उठ रही हैं। उसकी धारा कल-कल करती हुई बही जा रही है—

कूल तरु श्रेणी अति सुख देनी
सुन्दर रूप विराजै।
वर्षा नटिनि के पट मनोहर,
चारु किनारी राजै॥

त्रिपदी छन्द, व्रजभाषा। —(पराग)

वलभी[1]—दे० कामरूप —राज्यश्री, ४-१

वलभी[2]—हूण आ गए हैं, वलभी का पतन अभी रुका है। —स्कन्दगुप्त, १

[काठियावाड़ (गुजरात) में प्राचीन राज्य, सौराष्ट्र की राजधानी; ७७० ई० में अरब लोगों ने यहाँ के हिन्दू राज्य का अन्त कर दिया।]

वशिष्ठ[1]—ऋषि, हरिश्चन्द्र के कुल-गुरु। —करुणालय

वशिष्ठ[2]—वशिष्ठ का ब्राह्मणत्व जब पीड़ित हुआ, तब पल्लव, दरद, कम्बोज आदि क्षत्रिय बने थे। (चाणक्य)

—चन्द्रगुप्त, १-९

वशिष्ठ[3]—ब्रह्मर्षि, गम्भीर मुख-मण्डल। प्रशान्त महासागर में सोते हुए मत्स्य-राज के समान दोनों नेत्र अलौकिक आलोक में आलोकित हो रहे थे। ब्रह्म-तेज, सहिष्णुता की मूर्त्ति, देवकल्प, उदार, क्षमाशील। —(ब्रह्मर्षि)

वशिष्ठ[4]—ऋषि। दे० इला।

[प्रसिद्ध वैदिक ऋषि, ब्रह्मा के मानस पुत्र, इक्ष्वाकु राजाओं के कुल-गुरु। यह इनकी उपाधि रही होगी।]

वसन्त[1]— —कामायनी, काम, पृ० ६३

वसन्त[2]—कविता। वसन्त और प्रणय का आना-जाना एक-सा है। वसन्त आता है तो मंथर-गति मलयज, पपीहा, पिक, रसाल और डाल-डाल का आह्लाद बढ़ जाता है, और जब वह जाता है तो पतझड़ रह जाता है। —झरना

दे० वसन्त विनोद, वसन्त और मानव आदि अगले शब्द भी। दे० प्रकृति चित्रण और परिशिष्ट भी।

वसन्त और मानव—

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, पृ० ७८

वसन्तक[1]—काल्पनिक पात्र। कौशाम्बी के राजा उदयन का विदूषक। हास्य की सृष्टि करने में तो वह असफल रहता है, पर कौशाम्बी के समाचार सुना कर कथा-विकास में अवश्य सहायक होता है। —अजातशत्रु, १-६, २-९, ३-६

वसन्तक[१]—वैशाली के कुलपुत्र। "मैं संजय बेलट्ठीपुत्त का अनुयायी हूं। जीवन में हम उन्हीं बातों को जानते हैं, जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध हमारे संवेदनों से हैं। हम किसी अनुभवातीत वस्तु को नहीं जान सकते।!" —(**सालवती**)

वसन्त की प्रतीक्षा—१० तुकान्त पंक्तियां। मैंने बड़े परिश्रम से क्यारी बनाई है, उसे दृग्जल से सींचा है, कांटों की परवाह नहीं की और प्रतीक्षा करता रहा कि मेरे जीवन का वसन्त आवेगा, 'कभी तो होगा इसमें फूल', 'कुञ्ज होगा मलयज-आवास', 'नई कोंपल में से कोकिल कभी किलकारेगा सानन्द', जब कि तुम 'एक क्षण बैठ हमारे पास पिला दोगे मदिरा मकरन्द।' —**झरना**

वसन्त पञ्चमी— —**तितली, ३-१, ३-२**

वसन्त विनोद—इस शीर्षक से इन्दु, कला ३, किरण ३, मार्गशीर्ष '६८ में लगभग दस व्रजभाषा की कविताएं प्रकाशित हुईं। (चित्राधार, मकरन्द-बिन्दु, पृ० १७१–१९०)। 'वसन्त' में कवि पूछता है कि पतझर ने जिन द्रुमों को पल्लवहीन कर दिया था, उनमें तूने सुमन लगा दिये—यह कौन-सा मंत्र पढ़ दिया। 'चन्द्र' में कवि कहता है कि कुछ चकोरी की भी सुध लो, न जाने कब से वह रूप-सुधा की प्यासी तेरी आस लगाए बैठी है। 'कोकिल' में कवि पूछता है कि तुम किस धुन में हो, किसकी आस लगाए बैठे हो? 'आवाहन' और 'सुनो' में प्रिय से निवेदन है कि 'वेगि प्रानप्यारे नेक कंठ सों लगाओ तो।'

वसन्तोत्सव—चित्राधार, प्रथम संस्करण; इन्दु, कला ४, खंड १, किरण ३, मार्च १९१३ में प्रकाशित व्रजभाषा की कविता। 'रे वसन्त रस भीने कौन मंत्र पढ़ि दीने तू।'

वसिष्ठ— —**करुणालय, ४-५**

वसुधा के अञ्चल पर—कन-कन बिखरा पड़ा यह क्या मानव-जीवन है, जो आशा-निराशा, सुख-दुःख में विह्वल होता है? जब दो कण मिलते हैं तो दल के नस-नस में सुन्दर धारा बन जाती है और कण-कण करते करते अम्बुधि बन जाता है। तब तो—

गिरने दे नयनों से उज्ज्वल
आंसू के कन मनहर।
वसुधा के अंचल पर!

प्रेम ही जीवन में सरसता की धारा प्रवाहित करता है। विश्व में द्वेष और निष्ठुरता के स्थान पर करुणा की आवश्यकता है। —**लहर**

वह बचपन— —**झरना, धूल के खेल**

वाक्संयम—वाक्संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है। (गौतम)
—**अजातशत्रु, १-२**

वाजिरा—कोशल की राजकुमारी, आदर्श प्रेमिका के रूप में। बन्दी अजातशत्रु से प्रेम हो गया और इसके लिए वह किसी खतरे की परवाह नहीं करती। अजात की क्रूरता इसके प्रेमामृत से

भूल जाती है और वह 'चौकड़ी भरना' भूल जाता है। अन्त में वासवी के कहने पर प्रसेनजित इसका विवाह अजात से कर देता है। —अजातशत्रु, २-२, ५

[लेक्चर्स ऑन एन्शन्ट हिस्ट्री आफ़ इण्डिया : डी० आर० भांडारकर]

वाट्सन—वे अपने अध्ययन और साहित्यिक विचारों के कारण ही शासन-विभाग से बदल कर प्रबन्ध में भेज दिए गए थे। —तितली

वामन[1]—बौना (अकड़कर)—वामन के बलि-विजय की गाथा और तीन पगों की महिमा सब लोग जानते हैं। मैं भी तीन लात में कुबड़े का कूबड़ सीधा कर सकता हूँ। —ध्रुवस्वामिनी, १

[दे० बलि।]

वामन[2]—दे० भामह।

[काव्यालंकार सूत्र (जिसे कवि-प्रिया कहा जाता है) के रचयिता; कश्मीर के राजा जयापीड (७७९-८१९) के राजकवि। 'रीतिरात्मा काव्यस्य' इनका मुख्य सिद्धान्त है।]

वाराणसी[1]—यहां के स्वर्ण-खचित वस्त्र, राजा-रानियों का शृंगार।—(**देवरथ**)

वाराणसी[2]—दे० सिंहमित्र।

—(**पुरस्कार**)

[दे० बनारस, काशी।]

वाल्मीकि[1]—दे० कुश।

—(**अयोध्या का उद्धार**)

वाल्मीकि[2]—

—(**अयोध्या का उद्धार, भूमिका**)

वाल्मीकि[3]—'नारी निर्य्यातन का सजीव इतिहास लिख कर वाल्मीकि ने स्त्रियों के अधिकार की घोषणा की है'—(मंगल का भारत-संघ में भाषण)—'सच्चे तपस्वी ब्राह्मण वाल्मीकि की विभूति संसार में आज भी महान् है।'

—**कंकाल, ४-८**

वाल्मीकि[4]—वाल्मीकि के पाठ्यकाव्यों के साथ अभिनय होता था।

—(**रंगमंच, पृ० ७१**)

[महाकवि वाल्मीकि को 'आदि-कवि' कहा जाता है। इनका रामायण प्रसिद्ध महाकाव्य है। इन्हें राम का समकालीन बताया जाता है। इन्हीं के आश्रम में सीता के दो पुत्रों—लव और कुश—का जन्म हुआ था। दे० रामायण भी।]

वाह्लीक—गान्धार के पश्चिम का प्रदेश, बाद में सिल्यूकस ने यहां स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। दे० बाह्लीक।

—**चन्द्रगुप्त**

वासना—काम का एक रूप जो पतन की ओर प्रेरित करता है। मनु की वासना उसे पथ-भ्रष्ट करती है। वासना इन्द्रियों की विषय-तृप्ति की कामना करती है। वासना मन को विकृत कर देती है। छूटतीं चिनगारियां उत्तेजना उद्भ्रान्त धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशान्त।

—**कामायनी**

वासवदत्ता[1]—अवन्ती (उज्जैन) की राजकुमारी, चण्डमहासेन की कन्या, कौशाम्बी-नरेश उदयन की रानी। वह

अपनी सौत पद्मावती की सहोदरा के समान रक्षा करती हैं और उदयन को पद्मावती से अन्याय करने पर फटकारती है। —अजातशत्रु, १-९, २-१

[गुणाढ्य की कथाओं की प्रधान पात्री।]

वासवी—मगध-सम्राट् बिम्बसार की बड़ी रानी, पद्मावती की मां और कोशल-नरेश प्रसेनजित की बहिन। (बौद्ध-साहित्य में इसका नाम कोशला है)। बिम्बसार पर इसका अच्छा प्रभाव है और वह भी इसे बहुत मानता है। वह आदर्श पत्नी है। बिम्बसार का मन रखने के लिए वह बड़ा भारी खतरा मोल लेती है। मानापमान की भावना उसकी तटस्थता तथा वीतरागता को उद्वेलित कर देती है। अजातशत्रु से वह सगी मां से बढ़ कर स्नेह करती है और कष्ट पड़ने पर उसे प्रसेनजित की कैद से छुड़ा लाती है। वह दया की मूर्ति है। शांत-हृदया, उदार और क्षमा-शीला वासवी मानवी नहीं, देवी है। छलना और अजात सदैव उसका अनिष्ट करते हैं ; पर वह उनके हित और सुधार में ही लगी रहती है, और अन्त में उन्हें सन्मार्ग पर ले ही आती है। वासवी के चरित्र में स्त्री-सुलभ कोमलता, स्निग्धता, सहिष्णुता तथा अखंड पति-भक्ति आदि गुण हैं। वह आदर्श भारतीय महिला, बुद्ध की सच्ची अनुयायिनी देवी है, जिसकी व्यापक मानवता सदैव पशुता पर विजयिनी होती है। वासवी का त्याग उसे कर्मशील बनाए रखता है। —अजातशत्रु

[इतिहास में मगध की महादेवी का नाम कोशलकुमारी आता है। पति के मरने के बाद शोक में उसका भी शीघ्र देहान्त हो गया।]

वासुकि—विवेकी और सच्चरित्र नाग-सरदार, जो आस्तीक के समान शान्ति का पक्षपाती है, इससे वह तक्षक की क्रूरताओं में सहयोग नहीं देता ; पर वह है स्वामिभक्त और जाति-प्रेमी। उसमें वीरोचित उत्साह और आत्म-त्याग है। उसे पारिवारिक सुख नहीं है। अपनी पत्नी सरमा से मनोमालिन्य रहने पर भी वह उसकी रक्षा करता है। —जनमेजय का नाग-यज्ञ

[पातालीय नागराज। समुद्र-मंथन के समय देवासुरों ने रज्जु के रूप में इसका उपयोग किया था।]

वासुदेव—पूजा। —(सलीम)

विकटघोष = शान्ति भिक्षु।—राज्यश्री

विकास—मनुष्य अपूर्ण है ; इसलिए सत्य का विकास जो उसके द्वारा होता है, अपूर्ण होता है। यही विकास का रहस्य है। (प्रख्यातकीर्ति)

—स्कन्दगुप्त, ४-५

विक्रम—देवपाल का भृत्य। उसने शेख को अपनी करतूतों का फल चखाया। वह तातारियों का सेनापति बन कर आया और 'स्वर्ग' को नष्ट करके शेख का अन्त किया। यहीं उसकी भेंट

पुनः अपनी पुत्री से मीना के रूप में हुई। उसे उस प्रान्त का शासन भी मिला।
—(स्वर्ग के खंडहर में)

विक्रमादित्य—मंगल का भाषण—"विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त और हर्षवर्धन का रक्त हम में है।" —कंकाल, ४-८

[दे० चन्द्रगुप्त[४]।]

विक्रमोर्वशी—प्रस्तावना से प्रतीत होता है कि यह खेलने के लिए बना था।
—(रंगमञ्च, पृ० ६५)

जब उर्वशी और चित्रलेखा का आकाशमार्ग से आगमन होता है, तब 'तिरस्करिणी' और 'अपटीक्षेप' (पर्दे) मे प्रवेश कराया जाता है। परदा उठते ही पुरुरवा का प्रवेश होता है और सामने हेमकूट का भी दृश्य दिखाया गया है।
—(रंगमञ्च, पृ० ६५)

[कालिदास-कृत पांच अंकों का नाटक ; कथा के लिए दे० उर्वशी-चम्पू।]

विचार—दूसरों के मलिन कर्मों को विचारने से भी चित्त पर मलिन छाया पड़ती है। (गौतम)
—अजातशत्रु, २-८

विजय[१]—दे० विजयचन्द। —कंकाल

विजय[२]—राजसत्ता सुव्यवस्था से बढ़े तो बढ़ सकती है, विजयों से नहीं। (दाण्ड्यायन) —चन्द्रगुप्त, १-११

विजयतृष्णा का अन्त पराभव है।
—वही

विजय[३]—अर्जुन। —(सज्जन)

विजयकृष्ण(सरकार)—काशी के युवक गृहस्थ जो अपनी जमींदारी में सुन्दर अट्टालिका में रहते थे। उनके अनुचर और प्रजा उन्हें सरकार कहकर पुकारती थी। पहले विलासी थे, पत्नी की मृत्यु के बाद तपस्वी हो गए।—(चूड़ीवाली)

विजयकेतु—जैनियों का दमन करने के लिए अशोक द्वारा नियुक्त अधिकारी।
—(अशोक)

विजयचन्द्र—किशोरी और निरंजन के अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न ; रूढ़ि-विरोधी, निष्कपट, साहसी और ऊर्जस्वी। विजय में सच्चाई, निष्कपटता और ईमानदारी भरी है। वह बुद्धिवादी है, हिन्दू-समाज की दुर्बलताओं का विरोध करता हुआ वह व्यक्ति की स्वतंत्रता की मांग करता है। 'मां-बाप' से तिरस्कृत होकर भी वह आत्माभिमान को नहीं छोड़ता। वह समाज में क्रान्ति चाहता है। धर्म के दम्भी रूप का वह खुल कर विरोध करता है। पाखंडी मंगल की भांति वह अपनी प्रेमपात्रियों के प्रति विश्वासघात नहीं करता। समाज और धर्म से जूझता हुआ वह चूर हो जाता है और अन्त में केवल ईंट की तकिया लगाए, विजय भी पड़ा है। अब उसके पहचाने जाने की तनिक भी सम्भावना नहीं। छाती तक हड्डियों का ढांचा और पिंडलियों पर सूजन की चिकनाई, बालों के घनेपन में बड़ी-बड़ी आंखें और उन्हें बांधे हुए एक चीथड़ा, इन सबों ने मिल कर विजय को, 'नये' को, छिपा लिया था। स्वयंसेवकों ने उसका दाह किया।

मंगल ने देखा—एक स्त्री पास ही मलिन वसन में बैठी है। उसका घूंघट आंसुओं से भीग गया है। और, निराश्रय पड़ा है, एक —कंकाल। उसका कंकाल समाज के नग्न रूप की वास्तविकता को सत्य की सीमा में मिला देता है। —कंकाल

विजयसेन—पुरुरवा का अन्तरंग मित्र तथा प्रधान सचिव, परिहास-प्रिय। —उर्वशी चम्पू, १

विजया[१]—पहली बार 'हिन्दूपंच' के विजयांक में प्रकाशित। इस संग्रह की सब से छोटी कहानी। विलासी कमल का सब रुपया उड़ चुका था—सब सम्पत्ति बिक चुकी थी। बच गया था एक रुपया। उसे भी देकर वह विधवा सुन्दरी के साथ किए गए समस्त पापों का मूल्य चुकाना चाहता था। सुन्दरी को अपने बेटे के लिए विजयादशमी के अवसर पर कुरता सिलवा देने की इच्छा थी, इस पर भी उसने रुपया स्वीकार नहीं किया और कहा कि पाप का प्रायश्चित्त करना है, तो मिल कर गृहस्थी चलाएँ। आपत्य-स्नेह ने कमल को उबारा। बालक उसकी गोद में था, सुन्दरी पास में, वे विजया का मेला देखने चले। कहानी साधारण है। विधवा-विवाह का समर्थन किया गया है। —आंधी

विजया[२]—मालव के धनकुबेर (श्रेष्ठि) की कन्या जिसमें साहस और त्याग का न होना स्वाभाविक है। विलास, कामना, धनप्रियता, कायरता, ईर्ष्या, लोभ के कारण वह स्वार्थपरायण है। प्रेम में वह अस्थिर और विवेकशून्य है। स्कन्द-गुप्त और चक्रपालित के सामने दाल न गलती देख वह भटार्क को चाहने लगती है। वह उसी के साथ बन्दिनी होकर अपना निश्चय प्रगट करती है—"प्रलोभन से, धमकी से, भय से, कोई भी मुझको भटार्क से वंचित नहीं कर सकता।"

परन्तु उसका मिथ्या अभिमान उसे कुत्सित कर्मों की ओर प्रेरित करता चलता है। वह देवसेना के साथ धोखा करती है। वह अपने कर्मों का प्रायश्चित्त करती है; परन्तु वह फिर स्कन्द को अपने काम-पाश में बांधना चाहती है। उससे भर्त्सना पाकर वह आत्महत्या कर लेती है। उसका जीवन चंचलता, लालसा, अविवेक और पराजय का इतिहास है। —स्कन्दगुप्त

विजयादशमी[१]— —(ग्रामगीत)

विजयादशमी[२]— —(भवनमृणालिनी)

विजयादशमी[३]— —(विजया)

[=दशहरे का त्योहार]

वितस्ता[१]— —चन्द्रगुप्त, १-८, २-३, २-४, २-७, ४-९, ४-१०

वितस्ता[२]—नदी। विशाख नाटक में बताया गया है कि कश्मीर में है। —विशाख

[आधुनिक नाम झेलम, जो कश्मीर में निकलती है, श्रीनगर, झेलम आदि नगरों के पास से होती हुई चनाब से जा मिलती है।]

बिदाई—इन्दु, कला ४, खंड २, किरण १, जुलाई '१३ में प्रकाशित व्रजभाषा की कविता। इसका छन्द दोहा है, पर इसमें भाव-विदग्धता की पूर्णता है। तुम आए थे, तो नववसन्त की तरह हृदय खिल गया था, अब ग्रीष्म की तपन छोड़े जा रहे हो, जिससे हृदय जल जाए। आए थे घन की तरह नेहरस बरसाने, जाते हो चपला की तरह।

मन-मानिक चित चाहि कै,
पहिले लीन्हो छीन।
जान समय नीलाम करि,
किय कौड़ी को तीन।।
प्रिय जबहिं, तुम जाहुगे,
कछुक यहाँ से दूरि।
आँखिन में भरि जायगी,
तव चरनन की धूरि।।
—(पराग)

विदिशा—अग्निमित्र विदिशा का कुल-पुत्र था। —इरावती, ३

[म० प्र० राज्य में आधुनिक भीलसा जहाँ बौद्धकालीन स्तूप अब भी है।]

विद्यासुन्दर—दे० भारतेन्दु।

[यतीन्द्रमोहन ठाकुर के बंगला नाटक 'विद्यासुन्दर' का इसी शीर्षक से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अनुवाद।]

विद्रोह—आत्मशासन का अभाव—चरित्र की दुर्बलता विद्रोह कराती है। (मंगल) —कंकाल, पृ० ११०

विद्रोही—निर्लज्ज विद्रोही की हत्या करना पाप नहीं, पुण्य है।

विधवा—हिन्दू विधवा संसार में सब से तुच्छ, निराश्रय प्राणी है।—(ममता)

विनय[1]—इन्दु, कला ६, खंड १, किरण ३, मार्च १९१५ में प्रकाशित छोटी-सी कविता। हे प्रभु! हमारे हृदय-मन्दिर में निज धाम बनाओ, हमारे अंग-संग रहो, अपना अभय हाथ हमारे ऊपर रखो। हमारी पीड़ा मिटा दो, धैर्य दो, सद्‌बुद्धि प्रदान करो, दुःख-द्वन्द्व काट दो,

मिलो अब आके आनन्दकन्द
रहें तव पद में आठों याम।
—कानन-कुसुम

विनय[2]—इन्दु, कला २, किरण ४, कार्तिक '६७ में प्रकाशित पद्य। परमात्मा सर्वव्यापक है। वही भानु, चन्द्रमा, मलयानिल, जलनिधि, सुमन में विराजमान है।

संसार को सदय पालत जौन स्वामी।
वा शक्तिमान परमेश्वर को नमामी।।
—(पराग)

विनय-पत्रिका—दे० तुलसीदास।
—(बेड़ी)

[तुलसीकृत प्रौढ़ रचना, जिसमें राम के बल, शील और सौन्दर्य का भक्ति-पूर्ण वर्णन है। पद-संख्या २७९।]

विनयपिटक—विनयपिटक में इसका उल्लेख है कि कीटागिरि की रंगशाला में संघाटी फैलाकर नाचने वाली नर्तकी के साथ, मधुर आलाप करने वाले और नाटक देखने वाले अश्वजित पुनर्वसु नाम के दो भिक्षुकों को प्रव्राजनीय दण्ड

मिला और वे विहार से निर्वासित कर दिए गए। (चुल्ल वग्ग)

—(नाटकों का आरम्भ)

[दे० त्रिपिटक।]

विनोद—सरल, दृढ़प्रतिज्ञ और पराक्रमी। विवाह के लिए बहुत उत्सुक है। वह लीला पर मुग्ध है और उसी के कारण नवीन सभ्यता के प्रचार में सहायक होता है। सुरापान उसे विलासी और निष्ठुर हत्यारा बना देता है। वह हृदय की सात्त्विकता खो बैठता है, परन्तु सचेत होने पर उसका चरित्र पुनः अपने वास्तविक रूप में परिवर्तित हो जाता है, और वह अपनी प्रजा के लिए वैभव और सुख का आयोजन करता है।

—कामना

विनोद विन्दु[1]—इन्दु, कला ४, खंड १, किरण ६, जून '१३ में प्रकाशित। इस शीर्षक के अन्तर्गत 'चूक हमारी', 'प्रेमोपालम्भ' और 'उत्तर' नाम की ब्रजभाषा की प्रणय सम्बन्धी कविताएँ हैं।

विनोद विन्दु[2]—इन्दु, कला ५, खंड १, किरण ३, फरवरी '१४ में इस शीर्षक के अन्तर्गत चार कविताएँ हैं। कवि के हृदय में किसी अज्ञात का प्रवेश हुआ है और इसका मन उसकी सुन्दर छटा में उलझ गया है। जीवन-धन से कवि नवप्रकाश की याचना करता है, जिससे अमा भी राका बन जाए और सर्वत्र प्रेमपताका फहराए। चारों ओर विमल वसन्त का साम्राज्य देख कर कवि प्रसन्न है। उसके प्राणों की कोकिला पंचम स्वर में कूकने लगती है। उसका हृदय बीती गाथाएँ नहीं सुनाना चाहता, कंठ गद्गद हो उठा है, वह कुछ कह नहीं सकता।

विन्दु[1]—पद्य। संसार में वसन्त के बाद पतझड़ ही तो है। प्रिय को आँखों से दूर मत कर। 'परदेसी की प्रीति बुरी'। यह तो 'नाहर के नख से हृदय लड़ाना' है। इसमें प्रेम की असफलता पर मार्मिक वेदना व्यक्त की गई है। —झरना

विन्दु[2]—४ पंक्तियाँ। पहले हँसाया था, अब रुला दिया। इस सजी सुमन क्यारी में काला तमाल झूमने लगा। —झरना

विन्दु[3]—छः पंक्तियाँ। हमने हृदय को छिपा कर रखना चाहा, ताकि स्नेह लग जाने से यह सुपथ से बिछल न पड़े। "पर कैसी अपरूप छटा लेकर आए तुम प्यारे। हृदय हुआ अधिकृत तुम से, तुम जीते हम हारे।" —झरना

विन्दु[4]—पद। 'सुमन, तुम कली बने रह जाओ।' 'ये भौंरे केवल रस-लोभी, इन्हें न पास बुलाओ।' अपना मधुर स्वच्छ रस मत खोओ, रोना पड़ेगा। सूखी पंखुड़ियों को देखो, मिला विकसने का प्रसाद यह। —झरना

विन्दु[5]—चार पंक्तियाँ।

अपने मुख-चन्द्र की विभा से,
मेरे अन्तर की 'अमा को करिये सुन्दर
राका'।

—झरना

विन्दु[6]—८ पंक्तियाँ। देखो विमल वसन्त आया है। हम भी आज मन-रसाल की

कोमल मुकुल-माल लिये बैठे हैं। 'हँसते आओ सुमन सभी खिल जाएँ जिसके साथ।' आज प्राण बहुत उल्लसित हैं।

—झरना

विन्ध्य[1]—पृथ्वी का पुरातन पर्वत। वन्य प्रकृति का वर्णन। —(**चित्रमंदिर**)

विन्ध्य[2]—(शैलमाला)

—(**चित्रवाले पत्थर**)

विन्ध्य[3]—विन्ध्य की शैलमाला में गिरि-पथ पर बनजारों का एक झुंड बैलों पर बोझ लादे चला जा रहा था। यहीं पर डाका पड़ा, यहीं नन्दू और मोनी की भेंट हुई। —(**बनजारा**)

विन्ध्य[4]—यहीं राज्यश्री को दिवाकर मित्र और हर्ष छुड़ाते हैं।

—**राज्यश्री, ३**

विन्ध्य[5]— —**स्कन्दगुप्त, ४**

[मालवा के दक्षिण और नर्मदा नदी के उत्तर में लगभग ७४० मील की लम्बाई में स्थित पर्वतमाला। इसका पूर्वी भाग बिहार तक गया है। विन्ध्य-वासिनी देवी और योगमाया (कंस को चेतावनी देने वाली) देवी के मंदिर उत्तरप्रदेश में पड़ते हैं।]

विन्ध्यवासिनी—देवी। —**कंकाल, १-७**

विपाशा[1]—सिकन्दर के सैनिकों ने इसके आगे जाने से इन्कार कर दिया। यहाँ अलेग्जेंड्रिया का मन्दिर बनवाया गया।

—**चन्द्रगुप्त २-५, २-१०, ३-६**

विपाशा[2]— —**स्कन्दगुप्त**

[आधुनिक नाम व्यास—पंजाब में।]

विभीषण—दे० लंका। —**स्कन्दगुप्त, १**

[रावण के छोटे भाई, राक्षस होने पर भी हरिभक्त। रावण को मार कर इन्हें ही लंका का राज्य सौंप दिया गया था।]

विभो—इन्दु, कला २, किरण ३, आश्विन '६७ में प्रकाशित ब्रजभाषा की कविता। कवि अपने को पातकी कहते हुए जगद्वन्द्य पुरारी से ज्ञान के प्रकाश की भिक्षा माँगता है। तुम आशुतोष हो, तो फिर हम मूढ़ों पर क्यों खीझते हो?

है आस चित्त महँ होय निवास तेरो।
होवै निवास महँ देव! प्रकाश तेरो॥

—(**पराग**)

विमल—एक अमीर युवक जो साहित्य-सेवा को व्यसन मानता है। उसे पत्थर की पुकार में अतीत और करुणा का सम्मिश्रण मिला। शिल्पी पर क्रोध आ गया और प्रस्तर का प्रतिनिधित्व करते हुए बोला—"सुस्त पड़े हो, उसकी कोई सुन्दर मूर्ति क्यों न बना डालो?... भला देखो तो यह पत्थर कितने दिनों से पड़ा तुम्हारे नाम को रो रहा है?" शिल्पी के हृदय की करुण कथा सुन कर स्तब्ध रह गया। —(**पत्थर की पुकार**)

विमला—राज्यश्री की सखी। सुख-दुःख में साथ। —**राज्यश्री, १-७, २-४**

विरह—इन्दु, कला ५, खंड १, किरण ४, अप्रैल '१४ में ४–४ पंक्तियों के चार पद। प्रेम की नींद में स्मृति का जागरण होता है।

प्रियजन दृग-सीमा से जभी दूर होते।
यह नयन-वियोगी रक्त के अश्रु रोते॥

उनके साहचर्य का सुख सामने आता है, तो अविरल अश्रुधारा बहने लगती है।

हृदय द्रवित होता ध्यान में भून ही के
सब सबल हुए-से दीखते भाव जी के।

विरह-वर्णन—विरह-निवेदन (पिया बिसरायो कौन हेत) —**चित्राधार (बभ्रुवाहन)**, पृ० ३४

प्रणय-स्मृति—**चित्राधार (बभ्रुवाहन)**, पृ० ३६

विदाई —**चित्राधार (विदाई, पराग)** पृ० १५६

विरह —**चित्राधार (मकरन्द बिन्दु)** पृ० १९८

दे० कामायनी, प्रेम।

विराम चिह्न—हरिजन आन्दोलन से सम्बन्धित लघु कथा, जिसमें एक बुढ़िया का पुत्र-प्रेम भी दिखाया गया है। देव-मन्दिर के सिंहद्वार से कुछ हटकर बुढ़िया की दुकान थी। राधे उसका बेटा था। मजूरी करता था, परन्तु जो कमाता ताड़ी मे उड़ा देता। एक दिन महन्त के जमादार कुंजबिहारी की चेतावनी के बावजूद वह सैकड़ों अछूतों का एक दल मन्दिर में प्रवेश करने ले चला। लट्ठ चले, सिर फूटे। राधे मारा गया। बुढ़िया जो पुत्र को मना कर रही थी, राधे के शव को लेकर बढ़ी—"राधे की लोथ मन्दिर में जायगी।" पर सिंहद्वार की देहली पर पहुँची, तो ज्यों ही सिर झुकाया, प्राण निकल गए। मन्दिर में घुसने वाले अछूतों क आगे वह विराम-चिह्न-सी पड़ी थी।

कहानी करुणा-पूर्ण और प्रभावोत्पादक है। —**इन्द्रजाल**

विरुद्धक—(बाद में शैलेन्द्र डाकू) कोशल का राजकुमार, निर्भीक, कार्य-कुशल और साहसी। पिता द्वारा युवराजपद से वंचित किए जाने पर वह विद्रोही हो जाता है। माता से प्रोत्साहन पाकर वह प्रतिशोध लेने का निश्चय करता है। वह क्रूर बन कर काशी की जनता में आतंक फैलाता है, कई हत्याएँ करता है, लालच में आकर कोशल-सेनापति बंधुल का वध कर देता है। अपनी लक्ष्य-सिद्धि के लिए वह अजात और श्यामा को साधन बनाना चाहता है। उसका प्रेम वासनामय, मलिन और दोषपूर्ण है। दुराचार में पड़ कर वह श्यामा से प्रेम करता है; पर उससे विश्वासघात करके उसे मार डालने की असफल चेष्टा करता है। डाकू शैलेन्द्र उसके आभूषण उतार लेता है। मल्लिका के प्रति भी उसका प्रेमभाव सात्विक नहीं है। विधवा मल्लिका से सेवा पाकर वह नीच समझने लगता है कि मुझ से प्रेम करती है। मल्लिका से फटकार पाकर वह सुमार्ग पर आता है। मल्लिका ही की कृपा से वह पिता द्वारा फिर स्वीकार किया जाता है। साहसिक के रूप में वह चरित्र-हीन और क्रूर है; पर अपने साध्य तक पहुँचने में वह स्वावलम्बन, दृढ़ता और विवेक से काम लेता है। —**अजातशत्रु**

[अंगुत्तरनिकाय में इसका नाम विडूड्डभ और इसकी माता का नाम वासभाखत्तिया बताया गया है। पिता ने इसे अपदस्थ कर दिया था। दीर्घ-कारायण और बुद्ध की सहायता से इसे पुनः अपना पद प्राप्त हुआ।]

विलायत—इन्द्रदेव विलायत से बैरिस्टरी पढ़ कर लौटे। —**तितली, १-३**

बेटा विलायत हो आया है, कहीं जवाब दे बैठे ! —**तितली, १-५**

[विलायत का अर्थ है देश। भारत में इसका अर्थ इंग्लैण्ड रहा है।]

उल्लेख शैला के प्रसंग में।

—**तितली, २-२, २-४, २-५, २-१०**

विलास—'कामना' नाटक का नायक। अपने शत्रुग्रस्त और संघर्षपूर्ण देश को छोड़ फूलों के द्वीप में आता है। वह महत्त्वाकांक्षी है और उस जाति पर शासन करने के लिए स्वर्ण की चकाचौंध दिखाता है। राजनीति और भेद-भाव की सृष्टि करके द्वीप-निवासियों का मंत्र-दाता बन जाता है। वह बड़ा कार्यकुशल और पुरुषार्थी है, उस में अच्छी संगठन-शक्ति है। वह स्वार्थ-साधन में दक्ष है। "मनुष्यता यही है कि सहज-लब्ध विलासों का, अपने सुखों का संचय और उनका भोग करे।" कामना उस पर आसक्त है, पर वह स्वार्थी सोचता है—"मैं उसको अपना हृदय-समर्पण नहीं कर सकता। मुझको चाहिए बिजली के समान वक्र रेखाओं का सृजन करने वाली, आँखों को चौंधिया देने वाली तीव्र और विचित्र वर्णमाला; जिस हृदय में ज्वालामुखी धधकती हो, जिसे ईंधन का काम न हो, वह दुर्दमनीय तेज ज्वाला।" वह लालसा की ओर भी आकृष्ट होता है। "मैं इस देश के अनिर्दिष्ट पथ का धूमकेतु हूँ।" वह इस देश में हत्या, क्रूरता आदि का प्रचार करता है। वह स्वयं क्रूर, नृशंस, कामुक और नीच है। दूसरे देशों पर आक्रमण करता है, और नवीन नगरों का निर्माण करके नीचता फैलाता है। अन्त में तिरस्कृत हो कर भाग जाता है। —**कामना**

विलासिनी—(चूड़ी वाली)। वह २५ वर्ष की एक गोरी, छरहरी स्त्री थी। उसकी कलाई सचमुच चूड़ी पहनाने के लिए ढली थी। पान से लाल पतले-पतले ओंठ दो-तीन वक्रताओं में अपना रहस्य छिपाए हुए थे। उसकी हँसी में शैशव का अल्हड़पन, यौवन की तरावट और प्रौढ़ा की-सी गम्भीरता बिजली के समान लड़ जाती थी। वह नगर की एक प्रसिद्ध नर्तकी की कन्या थी। उसके रूप और संगीत-कला की सुख्याति थी, वैभव भी कम न था। विलास और प्रमोद का पर्य्याप्त सम्भार मिलने पर भी उसे सन्तोष न था। हृदय में कोई अभाव खटकता था, वास्तव में उसकी मनोवृत्ति उसके व्यवसाय के प्रतिकूल थी। कुलवधू बनने के लिए उसने बड़ी तपस्या और बड़ा स्वार्थत्याग किया।

अनाथ और दीन-दुःखियों की सेवा उसके धर्म का अंग बन गया।—(चूड़ीवाली)

विवेक[1]—वह तत्त्वदर्शी, विचारशील, सजग, निर्भीक, साहसी और सादा है। वह विलास द्वारा प्रचारित नवीन सभ्यता का विरोध करता है, न्याय के नाम पर की जाने वाली नृशंस हत्याएँ देख उसकी आत्मा तड़प उठती है। वह लोगों को सावधान करता है और विलास को ललकार कर पीड़ितों की सेवा में वह तत्पर रहता है और दुराचारियों का सामना करता है। उसे पागल और कुचक्री कह कर निराहत किया जाता है। अन्ततः उसी के उद्योग से कामना, विनोद आदि सीधे रास्ते पर आते हैं और द्वीप का पुनरुद्धार होता है। यहां उसकी कर्मशीलता दिखाई पड़ती है। —कामना

विवेक[2]—विचार और विवेक को कभी न छोड़िए; चाहे किसी के प्राण ले लीजिए, परन्तु विचार करके। (विवेक) —कामना, ३-४

विशाख[1]—प्रसादजी का दूसरा ऐतिहासिक नाटक, १९२१। यह नाटक कल्हण-कृत राजतरंगिणी की एक घटना पर अवलम्बित है। कथा-क्रम वही रखा गया है, पर राजा नरदेव और चन्द्रलेखा के वृत्तान्त को पहले लाया गया है। यह घटना ईसा की पहली अथवा दूसरी शताब्दी की है। (विशाख की भूमिका)।—इसमें प्रेम-कथा है। ऐतिहासिक तत्त्व कम है, आर्यों और अनार्यों (नागों) का संघर्ष प्रसंगान्तर रूप में आया है।

कथावस्तु—

प्रथम अंक में पांच दृश्य हैं। विशाख एक ब्राह्मण-कुमार है। नागसरदार सुश्रुवा की दो कन्याएँ हैं—चन्द्रलेखा और इरावती। चन्द्रलेखा विशाख पर मुग्ध हो जाती है। विशाख भी उसे प्यार करता है। काश्मीर-नरेश नरदेव के पिता ने सुश्रुवा की भूमि बौद्ध-भिक्षुओं को दे दी थी। भिक्षुओं का नैतिक पतन होना प्रारम्भ हो गया। उन्होंने जरा-सी बात पर झगड़ कर चन्द्रलेखा को मठ में बन्द कर दिया। विशाख राजा नरदेव के यहां इसकी सूचना देता है। नरदेव समस्त बौद्ध-विहारों को जला देता है और चन्द्रलेखा को मुक्त कराता है, किन्तु वह स्वयं चन्द्रलेखा के रूप का शिकार हो जाता है। विशाख और चन्द्रलेखा का विवाह हो जाता है। राजा नरदेव चन्द्रलेखा के यहां अतिथि के रूप में जाता है और उससे प्रणय-याचना करता है; किन्तु सती चन्द्रलेखा द्वारा वह अपमानित होता है।

द्वितीय अंक में छः दृश्य हैं। नरदेव का सहचर महापिंगल एक बौद्ध-भिक्षु से अपना काम कराता है। चन्द्रलेखा नित्य चैत्य की पूजा करने आती है। महापिंगल भिक्षु से कहता है कि जब वह आए तो तुम चैत्य के देवता बन कर उसे आज्ञा दो कि वह नरदेव की

रानी बन जाय। भिक्षु वैसा ही करता है; किन्तु प्रेमानन्द संन्यासी, जो कि विशाख के गुरु थे, उसे पकड़ लेते हैं। भिक्षु महारानी के समक्ष दण्ड-भय से सारा भेद खोल देता है। महारानी दुःखित होकर नदी में कूद कर आत्महत्या कर लेती है।

तृतीय अंक में पांच दृश्य हैं। महापिंगल इरावती पर आसक्त है; वह विशाख की कुटी में जाता है और उसके सामने चन्द्रलेखा के समक्ष रानी बनने का प्रस्ताव रखता है। विशाख कुपित होकर उसकी हत्या कर देता है। विशाख और चन्द्रलेखा को नरदेव के सैनिक पकड़ ले जाते हैं। प्रेमानन्द के आदेशानुसार सारी नाग-जाति नरदेव से न्याय मांगती है। वह चन्द्रलेखा और विशाख की रिहाई की मांग करती है; किन्तु नरदेव नहीं सुनता। राजा पहले कहता है, विशाख ने अपराध स्वीकार किया है। इसका सर्वस्व अपहरण करके इसे केवल राज्य से बाहर कर दो। बाद मे कहता है कि दोनों को ले जाओ और शूली दे दो। चन्द्रलेखा और विशाख को लेकर नाग लोग भागते हैं और राजमहल में आग लगा देते है। सब कुछ भस्म हो जाता है। प्रेमानन्द राजा को आग में घुसकर उठा लेता है, और पीठ पर लाद कर चला जाता है। उसकी सेवा-सुश्रुषा की जाती है। जब उसकी मूर्च्छना दूर होती है, तब वह बड़ा पछताता है। वह चन्द्रलेखा को मूर्त्तिमती करुणा कहता है और उससे तथा विशाख आदि से क्षमा-याचना करता है। सभी लोग उसे क्षमा कर देते हैं। सुश्रुवा की छिनी हुई भूमि उसे पुनः मिल जाती है। इस प्रकार प्रसन्नतापूर्ण वातावरण में पटाक्षेप होता है।

नाटक की कथा-वस्तु सरल और सरस तो है; पर नाटकीय कुशलता का इसमें अभाव है। कथानक बिखरा-बिखरा है। इस मे केवल ऐतिहासिक कथा है, जिसे कल्पना द्वारा विस्तार दिया जा सका है; परन्तु पारसी थियेटरों का प्रभाव स्पष्ट है। भारतेन्दु की जन-मन-रंजिनी कला का उपयोग भी किया गया है। तीसरे अंक का तीसरा दृश्य असम्बद्ध-सा लगता है। तुकबन्दी और थियेट्रिकल शैली के संवादों में कहीं-कहीं अशिष्टता आ गई है। गीतों के अतिरिक्त नृत्य की योजना भी की गई है। प्रेम की अभिव्यक्ति में गंभीरता नहीं आ पाई। पात्रों की संख्या अधिक नहीं है—छः पुरुष पात्र और पाँच स्त्री पात्र। इस कारण से चरित्र-चित्रण अपेक्षाकृत सुन्दर हुआ है। विशाख और चन्द्रलेखा का चरित्रांकन कुछ सफल माना जाता है। पात्रों में प्रेमानन्द और महापिंगल आदि दो-एक कल्पित है, पर वे भी समय के अनुकूल हैं।

शैली का नमूना—

नरदेव—नष्ट! भला क्या तूने मेरे हृदय को घुड़साल समझ रक्खा है।

महापिंगल—तो फिर और क्या। संकल्प-विकल्प, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, दया-क्रोध इत्यादि की जोड़ियाँ इसी घुड़साल में बँधती हैं।

नरदेव—पर लात तुम्हीं खाते हो! (हँसता है)

महापिंगल—और पीड़ा आपको हो रही है ?

नरदेव—सच तो। पिंगल, आज चित्त बड़ा उदास है, कहीं भी मन नहीं लगता।

महापिंगल—मन बैठे बैठे चरखे की तरह घूमता है। यदि रथ के चक्के की तरह आप ही घूमने लगिए, फिर तो वह धुरे की तरह स्थिर हो जायगा।

नरदेव—(हँसकर)—तो कहाँ घूमने चलूँ ?

महापिंगल—देव! मृगया के समान और कौन विनोद है।

नरदेव—विषम बन की ओर चलूँ ?

महापिंगल—नहीं, नहीं, उधर तो फाड खाने वाले जन्तु मिलते हैं। रम्याटवी की ओर चलिए, जहाँ मेरे खाने योग्य कुछ मिले।

नरदेव—डरपोक ! अच्छा उधर ही सही।

महापिंगल—(अलग) बहुत शीघ्र प्रस्तुत हो गए। उधर तो सोंधी बास आती है। (प्रकट)—अच्छा तो मैं अश्व प्रस्तुत करने को कहता हूँ।

नरदेव—शीघ्र। (महापिंगल जाता है)—उधर बसन्त की वनश्री भी देखने में आवेगी, साथ ही मनोराज्य की देवी का भी दर्शन होगा। अहा !

(महापिंगल दौड़ता हुआ आता है)

महापिंगल—महाराज ! विनोद यहीं हो गया। आ गई, सरला गाना सुनाने आ गई। दुहाई है, आज इसका नृत्य देखिए। कल मृगया को चलिए।

नरदेव—अच्छा।

(सरला आती है और गाती है—)

मेरे मन को चुरा के कहाँ ले चले।
मेरे प्यारे मुझे क्यों भुला के चले॥

. . . .

ऐसे जले हम प्रेमानल में
जैसे नहीं थे पतंग जले।
प्रीतिलता कुम्हिलाई हमारी
विषम पवन बन कर क्यों चले॥

विशाख[२]—ब्राह्मण युवक, नाटक का नायक, विद्वान्, पराक्रमी, विनम्र, धीर, परोपकारी, गुरुभक्त। इसके साथ उसके स्वभाव में अक्खड़पन, व्यवहार-पक्ष की दुर्बलता, उत्तेजना और प्रखरता भी है। वह कहता सत्य है, पर अप्रिय रूप में। उसकी निर्भीकता कभी-कभी उसे विग्रहों में उलझा देती है। पुरुषार्थ, लोक-सेवा उसका जीवन-लक्ष्य है। उसके चरित्र की सब से महत्त्वपूर्ण घटना चन्द्रलेखा का प्रेम है। यही उसके पुरुषार्थ का प्रेरक है। विशाख के चरित्र में विकास न दिखाकर नाटककार ने उसके गुणों के साथ उसकी दुर्बलताओं

का चित्रण किया है। प्रेम-पक्ष में उसकी वासना और स्वार्थवृत्ति अवश्य प्रगट होती है; पर वह है सच्चा प्रेमी पति।

—विशाख

विश्व और विश्वात्मा की अभिन्नता (विवेक) —कामना ३-८

विश्वनाथ—काशी में विश्वनाथ का मन्दिर जहाँ हताश बलराज आत्म-हत्या करने की सोचता था।

—(दासी)

[=शिव; काशी में बहुत प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग।]

विश्व-प्रेम—

सेवा, परोपकार, प्रेम सत्य कल्पना।
इनके नियम अमोघ और झूठ जल्पना॥
हो शान्ति की सत्ता वही शक्ति-स्वरूप है॥
...इस विश्वदयासिन्धु बीच सन्तरण करो
वह और कुछ नहीं विशाल विश्वरूप है। (साधु) —विशाख, १-४

दे० विश्वात्मा, परमार्थ भी।

विश्ववर्मा—मालवपति, जिनके निधन पर बन्धुवर्मा उत्तराधिकारी हुए।

—स्कन्दगुप्त, १

[दे० बन्धुवर्मा]

विश्वात्मवाद—अहंकार मूलक आत्म-वाद का खण्डन करके गौतम ने विश्वा-त्मवाद को नष्ट नहीं किया। यदि वैसा करते, तो इतनी करुणा की क्या आव-श्यकता थी? (धातुसेन)

—स्कन्दगुप्त, ४-५

(दे० सर्वात्मवाद भी)

विश्वात्मा—विश्वात्मा सब का कल्याण करती है। (व्यास)

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-१

व्यास कहते हैं कि विश्वात्मा के उत्थान ही से पुण्य का उदय होगा, लोक का कल्याण होगा।

"जय हो उसकी जिसने अपना
विश्वरूप विस्तार किया।
आकर्षण का प्रेम नाम से
सब में सरल प्रचार किया॥"

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-८

दे० समता, करुणा, विश्वप्रेम।

आत्म समर्पण करो उसी
विश्वात्मा को पुलकित होकर
प्रकृति मिला दो विश्व-प्रेम में
विश्व स्वयं ही ईश्वर है।
...किन्तु न परिमित करो प्रेम,
सौहार्द विश्व व्यापी कर दो।
क्षण-भंगुर सौन्दर्य देखकर
रीझो मत, देखो! देखो!!
उस सुन्दरतम की सुन्दरता
विश्वमात्र में छाई है।
...... विश्वात्मा ही सुन्दरतम है।

—प्रेमपथिक, पृ० २४-५

विश्वामित्र[1]—दृढ़चरित्र ऋषि। शुनः-शेफ के वास्तविक पिता।

—करुणालय

विश्वामित्र[2]—एक क्षत्रिय राजा जिसने तप करके ऋषि, पुत्र-बलि देकर राजर्षि, सिद्धान्त दान करने पर महर्षि और क्षमाशील बन कर ब्रह्मर्षि के पद को प्राप्त किया। —(ब्रह्मर्षि)

[पुरुवंशी महाराज गाधी के पुत्र, मूल नाम विश्वरथ । इन्होंने वसिष्ठ के सौ पुत्रों का वध किया था। शकुन्तला इन्हीं की पुत्री थी ।]

विश्वास--धार्मिक मनुष्य विश्वासी होता है। (प्रज्ञासारथि) .--(**आंधी**)

विश्वास करना और देना, इतने ही लघु व्यापार से संसार की सब समस्यायें हल हो जाती हैं। (शर्वनाग) ।

--**स्कन्दगुप्त, २-२**

विश्वास कहीं से क्रय नहीं किया जा सकता । --**स्कन्दगुप्त**

विषमता--आप धर्म मे प्राणिमात्र की समता देखते हैं, किन्तु वास्तव मे कितनी विषमता हैं । सब लोग जीवन मे अभाव ही अभाव देख पाते हैं । प्रेम का अभाव, स्नेह का अभाव, धन का अभाव, शरीर-रक्षा की साधारण आवश्यकताओं का अभाव, दुःख और पीड़ा--यही तो चारों ओर दिखाई पडता हैं । जिसको हम धर्म या सदाचार कहते हैं, वह भी शान्ति नहीं देता । सब मे बनावट, सब मे छल-प्रपंच ! (इन्द्रदेव)

--**तितली, २-१०**

विषाद--कोई विपन्न जंगली, निभृत निर्जन मे वृक्ष की छाया तले, गोधूली के मलिनाचल मे पड़ा हैं । उसकी प्रत्यंचा शिथिल, उसका धनुष भग्न, वंशी नीरव पड़ी हैं । स्मृति के आते ही उसके अन्तराल से आँसू के बादल उठ रहे हैं । 'विषय शून्य उसकी चितवन है', उसके हृदय का विषाद निर्झर के रूप में चला जा रहा है । उसे छेड़ो मत, क्योंकि उसे इसी में सुख है । कवि के लिए विषाद विषाद नहीं, 'सुख का कण' है । 'विषाद' कविता 'आँसू' और 'कामायनी' की मनोवैज्ञानिक कविताओं का पूर्व रूप है । --**झरना**

विष्णुगुप्त--दे० चाणक्य ।

विसर्जन--प्रथम इंदु, कला २, होलिकांक, '६७ में प्रकाशित । 'चित्राधार' मे संगृहीत 'पराग' के अन्तर्गत अन्तिम कविता ।--यह भी विदाई है ! तुम्हारे दर्शन से सुख साज मिला था । अब यह शरीर-पुष्प सौरभ-हीन करके जाते हो ।

जाहु विस्मृति अस्त शैल
निवास को चित चाहि ।
शान्ति की नव अरुण कान्ति
प्रकाशिहै हिय माँहि ।।

--(**पराग**)

विस्मृत-प्रेम--इन्दु, कला २, किरण ४, कार्तिक '६७ मे प्रकाशित , बाद में 'चित्राधार' मे संगृहीत । कवि के मन में प्रेम के सम्बन्ध मे कई जिज्ञासाएँ उठती है--प्रेम से निराश हो जाने पर भी मन राग को क्यों नहीं छोड़ता, विस्मरण क्यों नहीं होता ? अब भी अस्फुट हृदय गूंज उठता है ।

--(**पराग**)

वीताशोक--अशोक के भाई ; महात्मा । पौंड्रवर्धन के जैनियों को शरण दी । अशोक के अश्वारोहियों ने इनका वध

कर दिया । इनकी अँगूठी से पहचाना गया । अशोक को बड़ा दुःख हुआ ।

—(अशोक)

वीर—वीर-हृदय युद्ध का नाम ही सुन कर नाच उठता है । (मल्लिका)

—**अजातशत्रु**, २-३

—परम सत्य को छोड़ न हटते वीर हैं । (प्रताप) —**महाराणा का महत्त्व**

—सम्पूर्ण संसार, कर्मण्य वीरों की चित्रशाला है । वीरत्व एक स्वावलम्बी गुण है ।...जीवन में वही तो विजयी होता है, जो दिन-रात "युद्धस्व विगत ज्वरः" का शंखनाद सुना करता है । (चक्रपालित) —**स्कन्दगुप्त**, २-१

वीर एक कान से तलवारों की और दूसरे से नूपुरों की झनकार सुनते हैं । (भटार्क) —**स्कन्दगुप्त**, ३-३

वीरता—वीरभोग्या तो वसुन्धरा होती ही है । उस पर जो सबल पदाघात करता है, उसे वह हृदय खोल कर सोना देती है । (विनोद) —**कामना**, ३-८

लूट के लोभ से हत्या-व्यवसायियों को एकत्र करके उन्हें वीर-सेना कहना, रण-कला का उपहास करना है । (चन्द्रगुप्त) —**चन्द्रगुप्त**, २-२

वीरता भी एक कला है, उस पर मुग्ध होना आश्चर्य की बात नहीं । (पर्वतेश्वर) —**चन्द्रगुप्त**, २-४

वीरता उन्माद नहीं है, आँधी है, जो उचित-अनुचित का विचार न करती हो । (गोविन्दगुप्त)

—**स्कन्दगुप्त**, २-३

केवल शस्त्र-बल पर टिकी हुई वीरता बिना पैर की होती है । उसकी दृढ़ भित्ति है न्याय । (गोविन्दगुप्त)

—**स्कन्दगुप्त** २-६

वीर बालक—इनमें सिक्खों के गुरु गोविन्दसिंह के दो पुत्रों—जोरावरसिंह और फतहसिंह के बलिदान की कथा है । सरहिन्द (पंजाब) में आज भारत का सिर गौरव-मंडित होना चाहता है । जनता दुर्ग के सम्मुख एकत्र है । युगल बालकों की सुकुमार मूर्त्तियाँ खड़ी हैं । सूबा (गवर्नर सरहिन्द) ने कर्कश स्वर में कहा—'अभी समय है, सोच लो, एक ओर इस्लाम धर्म है, दूसरी ओर मृत्यु ।' यह सुनते ही जोरावरसिंह का वदन स्वर्गीय शान्ति की ज्योति से आलोकित हो उठा और उसकी धमनियों में पैतृक रक्तप्रवाह बहने लगा । बोला—मुझे व्यर्थ समझा रहे हो । वाह-गुरु (भगवान्) की इच्छा पूर्ण होने दो । छोटे भाई फतहसिंह ने भी जोरावरसिंह की तरह निष्ठुर यवन की धर्मान्धता की बलि होना स्वीकार किया । वे दोनों आकण्ठ दीवार में चुन दिए जा रहे थे । सूबा ने एक बार फिर कहा कि अब भी समय है । कुंवर बोला—क्यों अन्तिम प्रभु-स्मरण-कार्य में भी मुझे छेड़ रहे हो ? प्रभु की इच्छा पूर्ण हो । तत्काल छा गई 'शान्ति ! भयानक शान्ति !! और निस्तब्धता ।' धार्मिक असहिष्णुता की परिचायक यह कविता अतुकान्त है । —**कानन-कुसुम**

वीरसेन[1]—मालव-नरेश का सेनापति । —राज्यश्री

वीरसेन[2]—महामानी, गुप्त-साम्राज्य के महाबलाधिकृत कुमारामात्य जो अयोध्या में स्वर्ग सिधारे । —स्कन्दगुप्त, १

वीरेन्द्र—लखनऊ में मंगल का मित्र, साथी खिलाड़ी । —कंकाल, १-२

वृत्रघ्नी = सरस्वती नदी । वृत्रघ्नी का सूना उपकूल । —कामायनी, इड़ा

वृन्दावन[1]—किशोरी, निरंजन, विजय, घंटी, जमुना यहाँ रहने लगे । यहीं कृष्णशरण मन्दिर में कथा करते थे । —कंकाल, खंड २

वृन्दावन की साड़ी गाला पहनती थी । —कंकाल, ३-७

घंटी काशी से फिर वृन्दावन गई । बाथम ने कहा—'यह तो मेरी विवाहिता स्त्री है, यह ईसाई है ।' पर घंटी ने इन्कार किया । —कंकाल, ४-३

वृन्दावन की गलियों में मंगलदेव के 'धर्मसंघ' के बड़े-बड़े विज्ञापन देखे जाने लगे । —कंकाल ४-४

वृन्दावन[2]—हौं ही ब्रज वृन्दावन मोही से बसत सदा । (देव)

—(रहस्यवाद, पृ० ३८)

[कृष्ण की लीला-भूमि । मथुरा से छः मील यमुना-पार १२ बन थे, उनमें से एक । वृन्दावन को ब्रज भी कहते थे जिसका केन्द्र गोकुल था ।]

बृहत्कथा—दे० वररुचि भी ।

इस उपाख्यान को भारतीयों ने बहुत आदर दिया । क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा-मंजरी, सोमदेव का कथा-सरित्सागर इसी के रूप हैं । वत्सराज उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त इस भारतीय सहस्र-रजनी-चरित्र का नायक है । वत्सराज उदयन कई नाटकों और उपाख्यानों के नायक बने । सातवाहन नाम आंध्र-नरपति के राज-पंडित गुणाढ्य ने इसे ईसा की पहली शताब्दी में लिखा । मूल ग्रन्थ अप्राप्य है ।

—अजातशत्रु, कथा-प्रसंग

दे० उदयन, कथा-सरित्सागर ।

बृहस्पति—रामगुप्त शिखरस्वामी की सम्मति से प्रसन्न होकर कहता है—वाह ! तभी तो लोग तुम्हें नीति-शास्त्र का बृहस्पति समझते हैं ।

—ध्रुवस्वामिनी, १

[देवताओं के गुरु]

बृहस्पतिमित्र—मौर्य्य-साम्राज्य का कुमारामात्य, शतधनुष की मृत्यु के उपरान्त मगध का सम्राट् । पाखंडी, कायर, अनाचारी , कामुक, धर्म की ओट में विलास-लीला करने वाला । यह इरावती को बौद्ध विहार से अन्तःपुर में लाकर बलात्कार करना चाहता था । असफल होने पर कालिन्दी की ओर आकृष्ट हुआ । सम्राट् के बरसों के आचरण से परिषद् के बहुत-से लोगों की यह धारणा थी कि वह कुछ-कुछ सनकी और अव्यवस्थित चित्त के असंयमी व्यक्ति है । —इरावती

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे—इस कविता में उन मिलन के सुन्दर दिनों का

चित्रण है 'जब सावन-घन सघन बरसते, इन आँखों की छाया भर थे।' हमारे अधर इतने रस भरे थे कि उमड़ी हुई सरिता के हरित कूल भी कुछ नही थे। हमारा यौवन मदमाते गन्ध विधुर रस-कणों की वर्षा करता था। बिजली मेघ-पट पर चित्र खीचती थी। 'मेरी जीवन-स्मृति के जिममें, खिल उठते वे रूप मधुर थे।' —लहर

वेण—दे० कंस। —चन्द्रगुप्त, ३-८
[एक सूर्यवंशी राजा जिसे ऋषियों ने अत्याचारी होने के कारण मार डाला था।]

वेत्रवती— —इरावती, ३
[मालवा में वर्तमान बेतवा नदी]

वेद—कुलपति।
—जनमेजय का नाग-यज्ञ

वेदने ठहरो!—१२ पंक्तियाँ। सुखद थी पीड़ा, न मुझ को दुःख था। लेकिन मिलन के स्वप्न ने अवसन्न कर दिया। इसलिए 'प्राण है केवल मेरा अस्त्र', वेदने ठहरो, नही तो वही अस्त्र छोड़ दूगा। —झरना

वेदव्यास—कृष्णद्वैपायन। दार्शनिक महात्मा, जो विचार और विवेक मे युक्त, विश्व-कल्याण के इच्छुक है। वे जनमेजय, आस्तीक, मणिमाला, शीला, सोमश्रवा सब को कल्याण-मार्ग पर चलाते हैं। वे जनमेजय और वपुष्टमा और जनमेजय तथा ब्राह्मण-वर्ग में पुनः सौमनस्य की प्रतिष्ठा करते हैं। वे नियतिवादी है—जो हो रहा है उसे होने दें। वृद्धावस्था में अग्नि-होत्र के लिए तरुणी दामिनी से विवाह तो किया; पर वे उसकी वासनाओं का नियंत्रण नहीं कर सके। वे प्रेम और करुणा के प्रतीक है।
—जनमेजय का नाग-यज्ञ
[सत्यवती नाम की धीवर कन्या से उत्पन्न महर्षि पराशर के औरस पुत्र। एक द्वीप मे जन्म होने से द्वैपायन कहलाए। महाभारत और वेदान्त दर्शन के सूत्रों के रचयिता माने जाते हैं।]

वेदस्वरूप—हरद्वार के आर्यसमाजी सज्जन। —कंकाल

वैदेही—दे० मीता भी। —(चित्रकूट)

वैधव्य—वैधव्य-दुःख नारी जाति के लिए कठोर अभिशाप है। (मल्लिका)
—अजातशत्रु, २-५

वैभव—वैभव केवल आडम्बर के लिए है, सुख के लिए नहीं। (नरदेव)
—विशाख, २-३

वैयक्तिक विकास—मनुष्य को अपने व्यक्तित्व में पूर्ण विकास करने की क्षमता होनी चाहिए। उसे बाहरी सहा-यता की आवश्यकता नही।... मनुष्य पर मानसिक नियंत्रण उसकी विचार-धारा को एक सँकरे पथ मे ले चलता है—वह जीवन के मुक्त विकास से परिचित नही होता। (इन्द्रदेव)
—तितली, २-९

वैरागी—दार्शनिक समस्या (क्या विराग राग का पूर्ण प्रत्याख्यान कर सकता है) पर आधारित सांकेतिक कथा पहाड़ी

की तलहटी में वैरागी की स्वच्छ और शान्त कुटी थी। एकान्त में वैरागी का मन धुल कर स्फटिक के समान स्वच्छ हो गया था। एक दिन एक गैरिक-वसना युवती ने कुटी के द्वार पर खड़े हो कर आश्रय माँगा। "रात बिता कर चली जाऊँगी, क्योंकि यहाँ रह कर बहुतों के सुख में बाधा डालना ठीक नहीं, कुटी के बाहर ही पड़ी रहूँगी।" वैरागी को जैसे बिजली का धक्का लगा। सच्चा वैराग्य तो इस स्त्री में है। उसने स्त्री को कुटी के भीतर आने का आग्रह किया। स्त्री बोली—"इस कुटी का मोह तुमसे नहीं छूटा। मैं उसमें समभागी होने का भय तुम्हारे लिए न उत्पन्न करूँगी।" अब वैरागी उद्विग्न हो उठा, सहसा बोल उठा—"मुझे कोई पुकारता है, तुम इस कुटी को देखना।" और वह अन्धकार में विलीन हो गया। दीर्घ काल तक स्त्री की आँखें वैरागी को खोजती रहीं। कहानी साधारण है। —आकाशदीप

वैराग्य—गीत। न धरो कह कर इसको अपना। —अजातशत्रु, पृ० ३९

दे० चञ्चल चन्द्र, सूर्य है चंचल, वही, पृ० ४८

—जब तक सुख भोग कर चित्त उनसे उपराम नहीं होता, मनुष्य पूर्ण वैराग्य नहीं पाता है। (प्रेमानन्द) —विशाख, १-४

वैराग्य अनुकरण करने की वस्तु नहीं; जब वह अन्तरात्मा में विकसित हो, जब उलझन की गांठ सुलझ जावे उसी समय हृदय स्वतः आनन्दमय हो जाता है। —वही

दे० क्षणिकवाद भी।

वैशाली[1]—अजातशत्रु की माता छलना यहाँ की थी। बाद में अजातशत्रु ने इसे विजय किया। —अजातशत्रु

वैशाली[2]— —सालवती

[महावीर वर्द्धमान की जन्मभूमि; छलना, आम्रपाली यहीं की थीं। बाद में इस प्रदेश को अजातशत्रु ने अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।]

वैश्य—वैश्यों का अन्न पवित्र है। उनकी जीविका उत्तम है; क्योंकि वे दूसरे से दान ग्रहण करने की दीनता नहीं दिखाते और त्राम से दूसरों का धन भी नहीं छीन लेते। (ब्रह्मचारी) —इरावती, पृ० ८९

व्यक्ति—सच्चा वेदान्त व्यावहारिक है। वह जीवन-समुद्र आत्मा को उसकी सम्पूर्ण विभूतियों के साथ समझता है। भारतीय आत्मवाद के मूल में व्यक्तिवाद है; किन्तु उसका रहस्य है समाजवाद की रूढ़ियों से व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करना। और, व्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ है व्यक्ति-समता की प्रतिष्ठा, जिसमें समझौता अनिवार्य है। (रामनाथ) —तितली, २-६

व्यक्तिगत पवित्रता को अधिक महत्त्व देने वाला वेदान्त आत्मशुद्धि का प्रचारक है। इसीलिए इसमें संघबद्ध प्रार्थनाओं की प्रधानता नहीं। (रामनाथ) —वही

दे० व्यष्टि भी।

व्यक्ति और धर्म—प्रत्येक जाति में मनुष्य को बाल्यकाल ही में एक धर्मसंघ का सदस्य बना देने की मूर्खतापूर्ण प्रथा चली आ रही है। जब उसमें जिज्ञासा नहीं, प्रेरणा नहीं, तब उसके धर्म ग्रहण करने का क्या तात्पर्य हो सकता है ? (शैला)

—**तितली, २-८**

व्यंग्य—संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यंग्य है। हृदय मे जितना यह घुसता है उतनी कटार भी नहीं। (गौतम)

—**अजातशत्रु, १-२**

व्यंग्य की विषज्वाला रक्त-धारा मे भी नहीं बुझती। (अनन्तदेवी)

—**स्कन्दगुप्त, २-४**

व्यष्टि—परमात्मा की सुन्दर सृष्टि को, व्यक्तिगत मानापमान, द्वेष और हिंसा से किसी को भी आलोड़ित करने का अधिकार नही है। (नरदेव)

—**विशाख, ३-५**

दे० व्यक्ति भी।

व्यष्टि और समष्टि—दे० मानवता, समाज। कामायनी का प्रमुख विषय है।

व्यास—बुद्धिवाद के अनन्य समर्थक। इसीलिए उनका महाभारत दुःखान्त है। —**(रस, पृ० ४७)**

दे० वेदव्यास।

व्रज[१]—व्रजभूमि में यादव—कृष्णकथा के प्रसंग में। दे० वृन्दावन, मथुरा।

—**कंकाल, २-६**

कृष्णशरण की टेकरी व्रज-भर में रहस्यमय कुतूहल और सनसनी का केन्द्र बन रही थी। मंगल, यमुना, निरंजन, सरला, लतिका सब यहीं आ गई थीं। —**कंकाल, ४-४**

व्रज[२]—व्रज के कृष्ण-कवि।

—**(रहस्यवाद, पृ० ३८)**

व्रज[३]—बुद्धिवादी दर्शन का केन्द्र।

—**(रहस्यवाद, पृ० २३)**

व्रज[४]—कृष्ण की बाललीला पर सब मोहित थे। 'रास की राका रुकी थी देख मुख व्रजभूमि मे।' —**(कुरुक्षेत्र)**

[प्राचीन अनूप देश, यहाँ के १२ वनों मे वृन्दावन प्रसिद्ध रहा है। मथुरा जाने से पहले कृष्ण की लीला-भूमि। दे० वृन्दावन भी।]

व्रतभंग—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में एक व्यक्ति के अहंभाव और दूसरे के सेवा-व्रत की कहानी। कपिंजल और नन्दन में प्रगाढ़ मैत्री थी। किन्तु किंचित्मात्र अपमान से रुष्ट होकर साधु हो गया। नन्दन का विवाह कुसुमपुर के महा-श्रेष्ठी धनंजय की पुत्री राधा से हुआ और वे सुख से रहने लगे। नन्दन का पिता, धनकुबेर कलश, लक्ष्मी का उपासक था। वह अपनी विभूति के लिए सशंक रहता। एक नंगे साधु पर उसकी भक्ति हो गई। एक दिन वह सपरिवार साधु का दर्शन करने गया। आदर्श महिला राधा ने नग्न साधु के सामने जाना अस्वीकार कर दिया। साधु के संकेत पर उसे कुलक्षणी कहा गया और घर से निकाल दिया गया। नन्दन ने पहचाना, यह साधु कपिंजल ही तो था। राधा

दूर एक उपवन में रहने के लिए विवश हुई।...गंगा और शोण मे एक साथ ही बाढ़ आई। नन्दन बाढ़-पीड़ितों की सहायता मे लग गया। इस पर कलश ने नन्दन को भी घर से बाहर निकाल दिया। वह पीड़ितों को एक और मकान में ले गया; देखा कि यहाँ तो राधा रहती है। पीड़ितों मे अर्द्धमूर्च्छित नग्न कपिंजल भी था। सेवा करने के लिए नन्दन ने उसके शरीर पर कपड़ा डाल दिया। चेतना आने पर वह उठा। अपने को अपरिचित स्थान मे देख कर वह चिल्ला उठा—मुझे वस्त्र किसने पहनाया, मेरा व्रत किसने भंग किया। परिस्थिति समझ कर वह विनत हो गया। नन्दन ने कहा—कपिंजल, यह व्रत-भंग नही, व्रत का आरम्भ है। कहानी में चरित्र-विकास विशेषतः सुन्दर है। **—आंधी**

श

शकटार—मगध-सम्राट् नन्द का मंत्री, कठोर परिस्थितियों ने उसे कठोर बना दिया। अपने मित्र वररुचि की सहायता करने के अभियोग मे राजा नन्द ने उसे अन्धकूप मे डलवा दिया था। वहीं उसके सात पुत्र भूख से तड़प-तड़प कर मर गए। वह किसी प्रकार कुएँ से निकला। उसे केवल नन्दवंश से नहीं, मनुष्यमात्र से घृणा होने लगी। अपनी बेटी के राजनर्तकी बनाए जाने की बात सुन कर उसका बचा-खुचा हृदय भी झुलस गया। चाणक्य उसे सहायता देने का आश्वासन देता है। राज-सभा मे उसने नन्द के पेट में छुरा भोंक कर अपनी प्रतिहिंसा को शान्त किया। बाद में वह चाणक्य के हाथों का खिलौना बना रहा। सुवासिनी को राक्षस को समर्पित करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ। **—चन्द्रगुप्त**

ऐतिहासिक पात्र। नन्द को मरवाने और चन्द्रगुप्त को राज्य दिलवाने मे शकटार का हाथ था। **—चन्द्रगुप्त, भूमिका**

शकराज—'स्वार्थ-मलिन, कलुष से भरी मूर्ति' (कोमा); परिश्रमशील, कठोर, वीर, रणकुशल पर दुर्विनीत, दम्भी, पापी और विलासी। नियति पर उसे विश्वास नहीं, क्षमा पर उसकी श्रद्धा नहीं। 'मैं तो पुरुषार्थ को ही सब नियामक समझता हूँ। पुरुषार्थ ही सौभाग्य को खींच लाता है।' वह सुरा और सुन्दरियों का उपासक है। ध्रुवस्वामिनी को माँग कर उसने अपनी आत्मा और कोमा का प्रेम दोनों खो दिए। अपने धर्मगुरु को भी बुरा-भला कहने में आगा पीछा नहीं देखा। राजनीति में वह दूसरों को टाँग अड़ाते नहीं देखना चाहता। इसी बात पर वह मिहिरदेव से लड़ पड़ता है। वह हृदयहीन है, प्रेम को जीवन मे अधिक महत्त्व नहीं देता—इस बात को बाद में कोमा समझ जाती है और वह पिता के साथ चली जाती

है। विलासिता ने उसे दुर्बल और भीरु बना दिया और वह धूमकेतु को देख कर ही भयभीत हो जाता है। चन्द्रगुप्त द्वारा उसका वध उसकी दुर्वृत्तियों और दुष्कर्मों का उचित दण्ड है।—ध्रुवस्वामिनी

शकुनी[1]—नीच कौरवनाथ का साथ शकुनी ने दिया। —(कुरुक्षेत्र)

शकुनी[2]— —(सज्जन)

[गंधराज सुबल का पुत्र, जो दुर्योधन का मामा और उसके कुकर्मों का प्रधान प्रेरक था।]

शकुन्तला— —(वनमिलन)

[मेनका-विश्वामित्र की पुत्री, कण्व की पोषिता कन्या, दुष्यन्त की पत्नी, भरत की माता, कालिदास के 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' की नायिका।]

शक्ति[1]—शक्ति की परीक्षा दूसरों ही पर होती है। (प्रज्ञासारथि)—(आंधी)

शक्ति[2]—वसिष्ठ का पुत्र। यूप से बँधे शुनःशेफ का वध करने ही वाला है कि सहसा रुक जाता है।

'पिता, आप इस पशु के निष्ठुर तात से भी कठोर हैं, जो आज्ञा यों दे रहे।
(शस्त्र फेंक कर)
कर्म्म नहीं यह मुझसे होगा घोर है।'

—करुणालय, ५

[वसिष्ठ-अरुन्धती का ज्येष्ठ पुत्र। ऋषि।]

शक्तिमती—शाक्यकुमारी, कोशल की रानी, विरुद्धक की माँ। उसका दूसरा नाम महामाया है। दासी-पुत्री होने पर भी उसमें स्वाभिमान और साहस की कमी नहीं है। वह हताश पुत्र को उबारती है, "विरोधी शक्तियों का दमन करने के लिए कालस्वरूप बनो।...पुरुषार्थ करो। इस पृथ्वी पर जियो तो कुछ होकर जियो।" शक्तिमती में विद्रोह की भावना प्रबल है। वह पुत्र के लिए सब कुछ करती है, दीर्घकारायण से अभिसन्धि करने में उसी का हाथ है। अन्त में पुत्र की असफलता से विह्वल होकर वह चिंतित होती है। मल्लिका देवी के उपदेश से उसमें नारीत्व की भावना जागती है और पति से क्षमा माँग कर अपने पद को पुनः प्राप्त करती है। शक्तिमती में निष्ठुरता, महत्त्वाकांक्षा और बर्बरता दिखाकर नाटककार उसकी अशान्ति को उभार कर रखना चाहते हैं। व्यर्थ स्वतंत्रता और समानता का अहंकार करके स्त्रियाँ अपने पद से गिर जाती हैं।

—अजातशत्रु

[इतिहास में कोशल की महादेवी का नाम वासभखत्तिया दिया गया है।]

शंकर[1]—'त्रिपुर-दाह' नाटक में; दे० भरत।

शंकर[2]—विश्वामित्र ने शंकर को प्रसन्न करके धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया।

—(ब्रह्मर्षि)

शंकर[3]—भव। —(पंचायत)

शंकर[4]—जय शंकर जय जयति जय।

—(सज्जन)

दे० शिव, शम्भू भी।

शची[1]— —(आकाशदीप)

शची[2]— —स्कन्दगुप्त, ५

[= इन्द्राणी]

शतद्रु[1]—मगध के राष्ट्रप्रेमी योद्धा सिकन्दर को रोकने के लिए तैयार हुए। यवन-सेना शतद्रु पार कर जाती तो मगध का नाश निश्चित था।' (राक्षस)

—चन्द्रगुप्त, २-५, २-७

शतद्रु[2]—नदी।

कहेगी शतद्रु शत-संगरों की साक्षिणी–
सिक्ख थे सजीव,
स्वत्व-रक्षा में प्रबुद्ध थे।

—शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण

शतद्रु[3]—दे० सतलज। —स्कन्दगुप्त

[आधुनिक नाम सतलज—शिमला, फीरोजपुर (पंजाब), बहावल्पुर (पाकिस्तान) के पास से होती हुई सिन्धु नदी में जा मिलती है।]

शतधन्वा—मगध का सम्राट् (कामुक)। कालिन्दी को काम-वासना तृप्त करने के लिए पकड़वा मंगाया था। जिस दिन वह सुगांग प्रासाद में आई, संयोग से उसी दिन शतधनुष की मृत्यु हो गई।

—इरावती

[अंतिम मौर्य-सम्राट् बृहद्रथ का पिता, समय १९९ ई० पू०।]

शत्रु—शत्रु की उचित प्रशंसा करना मनुष्य का धर्म है। (राक्षस)

—चन्द्रगुप्त , ३-२

शबनम—रहमत डाढी की छोटी बेटी। उसके पास कुछ नहीं था—वसन, अलंकार या भादों की भरी हुई नदी-सा यौवन, कुछ नहीं ; थीं केवल दो-तीन कलामयी मुख-रेखाएँ जो आगामी सौन्दर्य की बाह्य रेखाएँ थीं, जिनमें यौवन का रंग भरना अभी बाकी रख छोड़ा था। संगीत में प्रवीण थी। मिरजा जमाल ने उसे अपने महल में रख लिया। वह मलिका बन गई। उसकी लड़की को बदन गूजर ले आया था, जिससे गाला का जन्म हुआ।

—कंकाल, ३-६

शबरपा—सिद्ध ; प्रेम, आनन्द और संगीत के समर्थक।

—(रहस्यवाद, पृ० ३६)

[८४ सिद्धों में से एक, कवि और प्रचारक—समय ९वीं शती]

शबरी—किसी को शबरी के सदृश अछूत न समझो—(निरंजन का उपदेश 'भारत संघ' में)। —कंकाल, ४-८

[रामायण में वर्णित शबर जाति की एक रामभक्त नारी। राम ने इसके जूठे बेर खाए थे।]

शम्भू—शम्भू नयन प्रतिबिम्ब,
जयति शैलजा वदन पै।
राजत विधु के बिम्ब,
मनहु नीलकमलावली।

—उर्वशीचम्पू (मंगलाचरण)

दे० शिव, शंकर भी।

शरणागत—कथानक ब्रिटिश-काल से संबद्ध है। प्रभात का समय था। यमुना के तट पर एक छोटी-सी नाव दिखाई दी। उसमें एक अंग्रेज दम्पती—बिलफर्ड और एलिस—सिपाही-विद्रोह ('५७)

की गड़बड़ी से भयभीत होकर आए थे। उन्होंने चन्दनपुर के ठाकुर किशोर सिंह की स्त्री, सुकुमारी, को डूबते हुए बचाया और वे उसे पहुँचाने वहाँ तक आ गए थे। एलिस को बड़ा आश्चर्य हुआ कि भारतीय नारी (सुकुमारी) अपने पति के सामने कुर्सी पर नही बैठती, पति के भोजन कर लेने पर भोजन करती है। धीरे-धीरे एलिस पर भी भारतीय सभ्यता का प्रभाव पड़ा। विद्रोह समाप्त हुआ। बिल्फई और एलिस अपनी नील की कोठी पर वापस जाने लगे। वाह ! आज एलिस ने लहँगा और कंचुकी पहन ली है। अधरों में पान की लाली भी है, आँखों में काजल, चोटी में फूल और मस्तक पर सिन्दूर। साहब घोड़े पर गए, एलिस पालकी में।

कहानी साधारण है। —छाया

शरद पूर्णिमा—इन्दु, कला २, किरण ४, कार्तिक '६७ में प्रकाशित, बाद में 'चित्राधार' में संगृहीत। आकाश में पूर्ण चन्द्र उगा है ; सर्वत्र नीरवता है, कभी-कभी समीर से तरु-पात हिल जाते हैं। मानों प्रकृति पर चन्द्रमा ने सुधारस बरसा कर मोहनी-मंत्र फूंक दिया है। अंधकार छिप गया है और किसी कन्दरा में जा विश्राम पाया है।

नदी धरनी गिरि कानन देश।
सु छाजत हैं सब ही नव भेश।
धरे सुख सों सब ही शुभ रूप।
लखात मनोहर और अरूप॥

—(पराग)

शर्वनाग—वास्तव में सरल, विशुद्धहृदय, निर्भीक वीर सैनिक, पर कुचक्रियों के फेर में पड़कर वह पतित हो गया, परन्तु रामा सती के पुण्य से बच गया। 'रामा के डर से मेरे देवता कूच कर जाते हैं।' प्रलोभन और शराब में फँस कर गिर गया, पर वास्तव में वह नीच नहीं है। उसके हृदय में ग्लानि होने लगती है। स्कन्द उसे अन्तर्वेद का विषयपति बना देता है। वह देश-सेवा में लग जाता है और अन्ततः आत्मजों का बलिदान भी कर देता है। शर्वनाग साधारण कोटि का पात्र है। —**स्कन्दगुप्त**

[गंगा-यमुना के अन्तर्वेद का शासक।]

शशि सी वह सुन्दर रूप विभा—गीति। वह अपना रूप-सौन्दर्य चाहे न दिखाओ पर उसकी शीतल छाया तो दे जाना। मेरे जीवन का सुख-निशीथ इस स्वप्न-मय दिन से अच्छा था ; उसे रोको।

मेरा अनुराग फैलने दो,
नभ के अभिनव कलरव में,
जाकर सूनेपन के तम में—
बन किरन कभी आ जाना।

—**लहर**

शहाबुद्दीन = मुहम्मद गोरी।

—(**प्रायश्चित्त**)

शाक्य—दे० कपिलवस्तु। —**अजातशत्रु**

[विरुद्धक की माँ शाक्य-देश की कन्या थी। बाद में जब विरुद्धक को पता चला कि शाक्यों ने धोखे मे उसके पिता से उसका विवाह कर दिया था तो उसने बदला लिया और शाक्यों का नाश किया।]

शाङ्करीमानसपूजा—पुस्तक मे अद्वैतवादी सहज आनन्द की व्याख्या की गई है।
—(**रहस्यवाद, पृ० २९**)

[शिव के प्रति आत्मनिवेदन के श्लोक।]

शान्ता—दशरथनंदिनी का उदाहरण देखो, जिसने दरिद्र पति के साथ दिव्य जीवन बिताया। —**अजातशत्रु, ६-७**

शान्तिदेव[1]— —**कामना**

शान्ति (भिक्षु) देव[2]—बौद्ध भिक्षु, बाद मे विकटघोष नाम से दस्यु। रूप और वैभव का लोभी; मोह-माया और महत्त्वाकांक्षा मे प्रेरित हो वह क्रमशः क्रूर, कठोर और समाज शत्रु हो जाता है। 'तुम्हे शील-सम्पदा नहीं मिली।' (राज्यश्री)। प्रचण्ड वीर और आत्म-विश्वासी; प्रमाद का अतिकर्मी पात्र। गुरुकुल मे पढा, भिक्षु बना, पर उसमें आत्मसंयम नही, प्रव्रज्या की योग्यता नही। भयानक दाढी और बिच्छू की दुम (डंक) की सी मूछ। वह हत्यारा बन जाता है। "स्पष्ट रक्त और हत्या का उल्लेख तुम्हारे ललाट पर है।" (नरेन्द्रगुप्त)। अपनी असफलता से व्यथित होकर वह फिर सुरमा के पास जाता है। 'विभव न मिल सका रूप ही सही।' पर उसकी कामना पूरी नही होती। उसका चरित्र-परिवर्तन आकस्मिक रूप मे होता है। जीवन की एक ही ठोकर मे वह चरित्रवान्, विवेकयुक्त और सत्वगुण-सम्पन्न हो जाता है। संसार की आलोचना का उसे भय नहीं है। धर्म और शान्ति के नाम से ही उसे चिढ़ है। वह निर्भीक और सा[illegible] है जिसमे संगठन, कार्य-कुशलता अ[illegible] गुण अवश्य है। उसे 'भाग्य का भरो[illegible] है। सुरमा के प्रेम को ठुकरा कर अपने भाग्य की परीक्षा करने राज्य के सम्मुख उपस्थित होता है। वहाँ असफल होकर सुरमा के पास [illegible] आता है। बडी चालाकी, आत्मश्ला[illegible] और प्रवंचना मे वह सेनापति भ[illegible] के पंचनद-गुल्म मे सम्मिलित हो जा[illegible] है। नाटक के प्रत्येक अंक में उस[illegible] एक नया रूप दिखाई देता है।
—**राज्य**

शारदा— —**चित्राधार (शारद महापूजन, पराग), पृ० १**[illegible]

[भारती, वाग्देवी, सरस्वती, ज्ञा[illegible] विज्ञान की अधिष्ठात्री। दे० ब्रह्मा।

शारदाष्टक—इंदु, कला १, किरण श्रावण १९६६ में प्रकाशित। लगभग [illegible] पंक्तियों की व्रजभाषा की इस कविता शारदा (सरस्वती) के अनेक गुणों अ[illegible] अवयवों की स्तुति है। आरम्भ मे—

'वन्दे मुकुलित नवल
नील अरविंद नयनि वर,
वरदे रवि शशि लांछित
अनुपम सुखे सुखाधर'

आदि पंक्तियों में वन्दना क[illegible] कवि वरदान माँगता है। इसके पश्च[illegible] वह वीणावादिनी के रूप और गुणों [illegible] वर्णन करता है। शारदा रस की मू[illegible] है एक हाथ में शुभ्र कमंडल है दूसरे

विखारस का पात्र। वीणा भी बज रही है। इन्द्रधनुष पर विद्युत् की भांति शारदा विराजमान है। अन्तिम पंक्तियां हैं—

ब्रह्मलोक वासिनि जय
कविकुल कंठनिवासिनी
नन्दन बीच विहारिणि,
जय मराल वर वाहिनि।

दे० शारदीय महापूजन
दे० सरस्वती।

शारदीय महापूजन—इन्दु, कला २, किरण ४, कार्तिक '६७ में प्रकाशित ब्रजभाषा के पद। इस कविता में शारदा की वन्दना की गई है। और उसे विश्व-धारिणी, विश्वपालिनी, विश्वेशी आदि नामों से पुकारा गया है।

देखिये यह विश्व-व्याप्त मनोहर मूर्त्ति।
चित्तरंजन करनि आनन्द भरति है धरि स्फूर्ति॥

—(पराग)

शारदीय शोभा—इन्दु, कला १, किरण ३, आश्विन १९६६ में। सर्वप्रथम प्रभात का वर्णन किया गया है। मधुर समीर विलास कर रहा है। विहग कलरव में तन्मय है। दिवाकर अपने करों को पसारता आ रहा है। भ्रमरों का दल कमल-दल पर मोहित है। इसके अन्तर्गत रजनी और प्रभात का भी चित्रण किया गया है। संध्या के आगमन से रजनी और भी सुन्दर प्रतीत होती है। प्रभात का विहंगम-कलरव, ओसकण अब दिखाई नहीं देते, फिर भी रजनी सुन्दर है। कमलिनी पर भी चार पंक्तियां है और चार पंक्तियां भ्रमर पर। इसमें कवित्त सवैया से भिन्न छन्द का प्रयोग हुआ है—

नित कान्त प्रकाश लखे नलिनी,
बिखरावत चारु पराग कनी।

(कमलिनी)

अथवा मधुपावलि गूंजत मौज भरें
लहि वायु प्रसंग सभी लहरें।

(भ्रमर)

(पराग)

शाह आलम—दिल्ली के मुगल-सम्राट्। प्रणयी, विलासी, लौंडेबाज। मराठा-सरदार सेंदिया के संरक्षण में दिल्ली में राज्य करता था। रुहेला-युवक गुलाम कादिर ने इसे अन्धा कर दिया। यह ऐतिहासिक सत्य है। —(गुलाम)

[राज्यकाल १७६१–१८०५ ई०]

शाहजहाँ—वृद्ध मुगल-सम्राट्। बीमारी में तख्त ताऊस की बड़ी चिन्ता है। पुत्रवात्सल्य ने उसकी यह अवस्था कर रखी है कि आज वह बन्दी है। बेटी जहाँनारा से बहुत स्नेह है। उसे शासन संबंधी अधिकार भी दे दिए, पर औरंगजेब ने विद्रोह किया। सम्राट् बंदीखाने में ही मर गया।

—(जहांनारा)

[मुगल साम्राज्य का पाँचवाँ बादशाह, जहाँगीर का पुत्र और औरंगजेब का पिता। राज्यकाल १६२७–५८ ई०।]

शिखरस्वामी—गुप्तकुल का अमात्य, 'राजनीतिक दस्यु'; (पुरोहित)।

निर्लज्ज, धूर्त, कुटिल, 'प्रवंचना का पुतला, स्वार्थ का घृणित प्रपंच'; (ध्रुवस्वामिनी)। रामगुप्त के सभी कार्य्यों में इसका इशारा है। रामगुप्त अपने प्राणों के भय से जब ध्रुवस्वामिनी को शकराज के पास भेजने का आशय प्रगट करता है, तो शिखरस्वामी उसका समर्थन करता है। वह बड़ा चतुर और कार्यकुशल है। वह समय और स्थिति के अनुसार अपनी भावनाएं बदलता है। रामगुप्त के बाद चन्द्रगुप्त का हो जाता है। यह राजनैतिक दस्यु अपनी दोरंगी चालों से अपना उल्लू सीधा करता है। इसीलिए रामगुप्त की तरह इसको अपनी दुर्नीति का फल नहीं भोगना पड़ता। —ध्रुवस्वामिनी

शिप्रा[१]— —इरावती, १

शिप्रा[२]—"आर्य (पर्णदत्त)! आपकी वीरता की लेखमाला शिप्रा और सिन्धु की लोल लहरियों से लिखी जाती है"—(स्कन्द)

'शिप्रा के इस पार साम्राज्य का स्कन्धावार स्थापित है।' (पृथ्वीसेन)

—स्कन्दगुप्त, अंक १

उल्लेख अंक २, ३ में भी।

[मालवा की नदी, जिसके तट पर उज्जयिनी बसी है।]

शिलालिन—दे० भरत।

[एक प्राचीन नाट्यशास्त्री। पाणिनि ने इनके नाट्यसूत्रों का उल्लेख किया है।]

शिल्परत्न—इसके अध्याय ३६ मे वास्तु-निर्माण, मूर्त्ति और चित्र को शि(ल्प) (शास्त्र) के अन्तर्गत माना गया है

—काव्य और कला, पृ० १

[श्रीकुमारकृत वास्तुकला पर प्राम(ा)णिक ग्रन्थ—१६वीं शती।]

शिल्प-सौन्दर्य—कवि चारों ओर हो(ने) वाले कोलाहल को देख कर कल्प(ना) करता है कि कहीं प्रलय का पयो(धि) तो नहीं उमड़ा आ रहा है। अत्याचा(री) आलमगीर (द्वितीय, सन् १७५४–५९) ने आर्य-मन्दिर खुदवा डाले थे। प(र) इसके साथ ही मुगल-साम्राज्य ब(की) बालू की दीवार गिर गई। इसी सम(य) (भरतपुर के जाट सरदार) सूर्यम(ल्ल) धूमकेतु की भांति उदित हुए। आ(ज) उनकी समस्त प्रतिहिंसा जाग उठी वे मोती मसजिद के प्रांगण में खड़े थे हाथ में गदा थी और मन में रोष क्रुद्ध होकर उन्होंने गदा चलाई। गद(ा) छज्जे पर पड़ी और संगमरमर की दीवाल काँप गई—

सूर्यमल्ल रुक गए, हृदय भी रुक गय(ा)
भीषणत(ा) रुक कर, करुणा-सी हो गई

इस शिल्प-सौन्दर्य को नष्ट नहीं किय(ा) जा सकता। धर्मान्धता ने शिल्प और साहित्य का अनिष्ट किया है—

लुप्त हो गए कितने ही विज्ञान के
साधन, सुन्दर ग्रन्थ जलाए वे गए।
कितना अत्याचार होता रहा है।

कविता अतुकान्त है। —कानन-कुसुम

[यह घटना सन् १७०० ई० के आस-पास की है जब मथुरा और भरतपुर

के जाटों ने अपने सरदार सूरजमल के नेतृत्व में आलमगीर द्वितीय की सेनाओं को परास्त करके दिल्ली पर आक्रमण कर दिया था।]

शिव[1]—प्रसादजी के इष्टदेव।

शिव[2]— —(**आंधी**)

शिव[3]— —**इरावती, १**

शिव[4]—ताण्डव नृत्य ; समरस अखण्ड, आनन्द वेश। दे० नटराज।

—**कामायनी, दर्शन सर्ग**

शिव साध्य के रूप में

—**कामायनी, आनन्द सर्ग**

प्रकृति त्रस्त थी, भूतनाथ ने
नृत्य विकम्पित कर अपना।

—**कामायनी**

नील गरल से भरा हुआ
यह चन्द्र कपाल लिए हो। इत्यादि।

—**कामायनी**

(नटराज)
वह रजत गौर, उज्ज्वल जीवन,
आलोक पुरुष! मंगल चेतन!
....
यह विश्व झूलता महा दोल
परिवर्त्तन का पट रहा खोल।

—**कामायनी, दर्शन, पृ०, २५२-२५३**

शिव[5]—आगमों में भी शिव को शक्ति-विग्रही मानते हैं। और यही पक्की अद्वैत भावना कही गई है ; अर्थात्—पुरुष का शरीर प्रकृति है।

—**काव्य और कला, पृ० ९**

शिव[6]—वट वृक्ष के नीचे उसी की जड़ में पत्थर का एक छोटा-सा जीर्ण मन्दिर है। उसी में शिवमूर्ति है। वट की जटा से लटकता हुआ मिट्टी का बर्तन अपने छिद्र से जल-विन्दु गिरा कर जाह्नवी और जटा की कल्पना को सार्थक कर रहा है। रजनी के उपास्य भगवान्। रजनी ने प्रतिमा से कामना पूर्ण होने का संकेत पाया और कामना पूर्ण हुई भी, क्योंकि कुंजनाथ ने उसे अपना लिया। —(**प्रतिमा**)

शिव[7]—स्तुति-निवेदन (हे शिव धन्य तुम्हारी महिमा)। —**चित्राधार (बभ्रुवाहन), पृ० २९-३०**

शिवरूप संसार— —**चित्राधार (प्रेमराज्य), पृ० ७२**

शिवरूप (जगपालक) —**चित्राधार (प्रेमराज्य), पृ० ७३**

नान्दीपाठ— —**चित्राधार (सज्जन) पृ० ९१**

शिव और शारदा। —**चित्राधार (शारदीय महापूजन, पराग), पृ० १५४**

स्तुति और विनय— —**चित्राधार (विभो, पराग), पृ० १५५**

शिव, स्कन्द, सरस्वती इत्यादि देवताओं के मन्दिर नगर के किस भाग में होते थे, इसका उल्लेख चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में किया है

—(**रहस्यवाद, पृ० २१**)

मन जहाँ भी जाए वहाँ शिव है। शिव के अतिरिक्त दूसरा स्थान कौन है? —(**रहस्यवाद, पृ० ३०**)

दे० पाशुपत, पुरारि, भव, महाकाल, त्रिपुरारि, रुद्र, विश्वनाथ, महारुद्र, शंकर, शम्भू, हर आदि भी।

[उमापति, गौरी स्वामी, महादेव, हिन्दुओं के तीन प्रधान देवताओं (त्रि-मूर्त्ति) में से एक जिनका कार्य सृष्टि-संहार है। इस रूप में इन्हें रुद्र कहा गया है। अमृत-मंथन के समय इन्होंने विष पीकर गले मे रोक लिया था; इनका एक नाम 'नीलकंठ' भी है। काश्मीर और दक्षिण भारत मे शैव दर्शन का विकास हुआ है।]

शिव सूत्र विमर्शिनी—दे० कला, क्षेमराज।

शिवप्रसाद (राजा)—उन्होंने गवर्नमेंट से प्रेरित होकर सरकारी ढंग की भाषा का समर्थन किया।

—(**यथार्थवाद और छायावाद, पृ०८६**)

[रणथम्बौर के वंशधर, अंग्रेजी सरकार के राजभक्त अधिकारी, हिन्दी में उर्दू शैली के पोषक गद्यकार ; समय १८२९–१८९५ ई०।]

शिवाजी—भारत के सपूत, हिन्दुओं के उज्ज्वल रत्न, छत्रपति। मराठा-राज्य के संस्थापक। इन्हीं के वंशज सेंधिया का शाहआलम और दिल्ली पर अधिकार था। —(**गुलाम**)

[मराठा सरदार जिसने दक्षिण के मुसलमान राज्यों में आतंक छा दिया और फिर औरंगजेब को विवश किया। समय १६२७–१६८० ई०।]

शिशुपाल—कृष्ण-कथा के प्रसंग मे—देखकर वह राजसूय जला हृदय दुर्भाव से होगया सन्नद्ध तब शिशुपाल लड़ने के लिए। उसने कृष्ण को गालियाँ दीं। अन्ततः कृष्ण ने 'उस' पाप के शिरमौर को' धराशायी कर दिया। —(**कुरुक्षेत्र**)

[चेदि (वर्तमान बुन्देलखण्ड) का एक प्रसिद्ध राजा।]

शीतल वाणी—शीतल वाणी—मधुर व्यवहार—से वन्य पशु भी वश में हो जाते हैं। (गौतम) —**अजातशत्रु, १-२**

शीरीं—उद्यान प्रदेश की एक नायिका। उसके पिता एक क्रूर पहाड़ी सरदार थे। उसका ब्याह एक धनी पठान सरदार से हो गया। प्रेम में दृढ़। उसी प्रेमी के स्वप्न देखती है। —(**बिसाती**)

शीलसिद्धि—ईर्ष्यालु, भिक्षु।

—**राज्यश्री, ४-१**

शीला—विप्र-कन्या, सोमश्रवा की सती पत्नी ; सरलता, हृदय की पवित्रता और स्वच्छता की प्रतिष्ठा चाहने वाली आर्य ललना। पति के मांगलिक कार्य्यों में पूरा-पूरा सहयोग देती है। मणिमाला से उसकी अभिन्न मित्रता है। शृंगार और ऐश्वर्य से उसे मोह नहीं है। उसमे बलिदान भी है, तेज भी।

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ**

शुक्ल यजुर्वेद—३९–४० वें अध्यायों मे आत्मा और ब्रह्म संबंधी विचार।

—(**रहस्यवाद, पृ० २६**)

[यजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा जिसे जनक के पुरोहित याज्ञवल्क्य ने पहले पहल विदेह नगर में प्रचारित किया। अब सारे उत्तरी भारत में इसकी मान्यता है।]

शुंग—वंश। —**इरावती**

[ब्राह्मणवंश, दे० पुष्यमित्र, राज्य-काल १८८–७६ ई० पू०।]

शुद्ध बुद्धि—शुद्ध बुद्धि तो सदैव निर्लिप्त रहती है। केवल साक्षी-रूप से वह सब दृश्य देखती है। (गौतम)

—**अजातशत्रु**, १-२

शुनःशेफ[1]—अजीगर्त का पुत्र।

—**करुणालय**

शुनःशेफ[2]— —(**ब्रह्मर्षि**)

[जब वरुण-बलि से शुनःशेफ बच गया (दे० करुणालय), तो करुणार्द्र हो विश्वामित्र ने उसे अपने पुत्र के रूप में ग्रहण कर लिया और उसका नाम देवरथ रखा।]

शुभकामना—(आशिस्)

—**चित्राधार** (**बभ्रुवाहन**), पृ० ४३

—**चित्राधार** (**सज्जन**) पृ० १०९-११०

शूद्रक—नाटकों में 'पटीक्षेप' का प्रयोग करते हैं। —(**रंगमंच**, पृ० ६७)

[दे० मृच्छकटिक।]

शून्य गगन में खोजता जैसे चन्द्र निराश—देवसेना का गीत। हृदय कुछ खोज रहा है, वह कुछ लेने को मचलता है। उसमें लहरियाँ उठती हैं। स्वाती की आस में मुह खोले सीपी की तरह जीवन प्यासा है। हृदय-समुद्र में हलचल है।

गीत में देवसेना के जीवन-भर की असफलता और पीड़ा का करुण चित्रण है। —**स्कन्दगुप्त**, ५.

शृङ्गार—परिरम्भ-सुख।

—**झरना**, **सुधासिंचन**

दे० प्रेम।

शृङ्गारतिलक—शब्द-विन्यास-कौशल का समर्थन करने वालों ने भी रस-स्थिति को स्वीकार किया है। —(**रस**, पृ० ४३)

[रुद्रट (रुद्रभट्ट) कृत अलंकार-ग्रन्थ जिसमें रस पर विशेष विचार किया गया है। समय १०६६ ई०।]

शृङ्गी ऋषि—नागराज तक्षक ने शृंगी ऋषि से मिल कर परीक्षित का संहार किया। दे० परीक्षित भी।

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ**, १-१

[अंगिरसकुलोत्पन्न शमीक के पुत्र; परीक्षित ने इनके पिता का अनादर किया तो शृंगी ने शाप दिया था।]

शेख—सन्देश-वाहक, आचार्य, महापुरुष; हरे वस्त्र वाला प्रौढ़ पुरुष। वह केकेय के पहाडी दुर्ग का भयानक शेख था—'स्वर्ग' का संस्थापक। मीना को अपने स्वर्ग का रत्न मानने लगा। वह क्षमता की ऐश्वर्य-मण्डित मूर्त्ति था। जब तातारियों ने स्वर्ग पर आक्रमण किया, तो इसने बन्दियों को मुक्त कर दिया। इसी आक्रमण में शेख का अन्त हो गया।

—(**स्वर्ग के खँडहर में**)

शेरकोट—गंगा के किनारे, मल्लाही टोला के समीप एक ऊँचे टीले पर बना छोटा-सा मिट्टी का ध्वस्त दुर्ग था। मध्ययुग में भूमिपति ऐसे दुर्ग बना लिया करते थे। शेरकोट उन्हीं दिनों की यादगार था। किसी समय में यह गाँव बहुत बसा हुआ था। अब तो पुराने घरों की गिरी हुई भीतों के ढूह अपने दारिद्रय-मंडित सिर को ऊँचा करने की चेष्टा में संलग्न

थे। शेरकोट खँडहर ही रहा। न इस पर बंक बना, न पाठशाला बनी। —तितली

शेरशाह—रोहिताश्व पर अधिकार किया। हुमायू को बंगाल-बिहार से भगा दिया। —(**ममता**)

[सहसराम (जिला शाहाबाद, बिहार) में जागीरदार ; सन् १५३५ ई० से इसकी शक्ति बढ़ी। हुमायू को १५३९ ई० में चौसा के निकट परास्त किया। दिल्ली, मालवा, सिन्ध, जोधपुर आदि प्रदेश जीते। राज्यकाल १५४०-१५४५ ई०।]

शेरसिंह—

—(**शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण**)

[सिक्ख योद्धा जिसने रामनगर और सदुल्लापुर (पंजाब) में अँगरेजों को परास्त किया। चिलियाँवाला में बड़ी वीरता से लार्ड गाऊ की सेना को हराया।]

शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण—अतुकान्त कविता। चिलियाँवाला (पञ्चनद) में सिक्खों ने शत्रुओं (अँगरेजों) का सामना किया। वे वीर थे। उनके हाथों में कृपाण नाचती लपलप करती थी—जीभ जैसे यम की। वह तलवार लूट-त्रास-भय के प्रचार को कभी नहीं उठती थी ; लेकिन जब सिक्खों ही के सेनापति लालसिंह ने छल किया और वह शत्रुओं से मिल गया, तो वीरता क्या करती ? उसने काठ के गोले और आटे का बारूद भेजा, तब ऐसे युद्ध में मृत्यु ही विजय थी। प्रवंचकों ने सतलज का पुल तोड़ दिया, श्यामसिंह जैसे वीर मारे गए। महाराजा रणजीतसिंह के बाद पंचनद के वीरों में विलासिता आ गई थी। इस पर भी सिक्ख प्राणपण से लड़े। उन्होंने प्राणों की भिक्षा नहीं माँगी।

आग से खेलने वाले सिक्ख वीर,
छल बलिवेदी पर आज सब सो गए।
रूप भरी, आशा-भरी यौवन अधीर भरी,
पुतली प्रणयिनी का बाहुपाश खोल कर,
दूध भरी दूध-सी दुलार भरी माँ की गोद
सूनी कर सो गए।
वास्तव में रणजीतसिंह आज मरा है।
ले लो यह शस्त्र है
गौरव ग्रहण करने का रहा कर मैं—
अब तो न लेशमात्र है।

—लहर

[ऐतिहासिक घटना, जनवरी, १८४९ ई० : चिलियाँवाला में अँगरेजों के २३१७ आदमी मारे गए ; पर इतिहास में वर्णित है कि शेरसिंह गुजरात की लड़ाई में, जो फरवरी '४८ में हुई, हारा था।]

शैलनाथ—अपने को एक विदेशी निस्सहाय विद्यार्थी बताता है। दृढ़व्रत।

—(**रूप की छाया**)

शैला—जेन की बेटी, आदर्श महिला, लन्दन में अनाथिनी होकर भिखमंगों और आवारों के दल में पेट भरने की शिक्षा पाई ; इन्द्रदेव से भेंट हुई, उसने मेस में नौकरानी बना ली और बाद में भारत ले आया। विदेशी रमणी होने पर भी उसे भारतीय ग्राम-जीवन से

सहानुभूति थी । "मै भी दुःख उठा चुकी हूँ । दुःखी के साथ दुःखी की सहानुभूति होना स्वाभाविक है।" शैला के चरित्र मे उदार मनुष्यत्व, विवेक तथा विचार-स्वातंत्र्य था । वह ईसाई से हिन्दू हो जाती है । उसकी निष्कपट मनोवृत्ति, नम्रता और सरलता से प्रभावित होकर श्यामदुलारी ने भी उसे अन्त मे अपनी पुत्र-वधू स्वीकार किया । नमूने का गाँव बसाने का सारा कार्यक्रम वही तैयार करती है ।

—तितली

शैलेन्द्र—डाकू के रूप मे विरुद्धक ; दे० विरुद्धक । —अजातशत्रु

शैवाद्वैत— यहाँ पर
कोई भी नही पराया ।
हम अन्य न और कुटुम्बी,
हम केवल एक हमी है,
तुम सब मेरे अवयव हो
जिस मे कुछ नहीं कमी है ।

—कामायनी, आनंद, पृ० २८७

सबकी सेवा न पराई,
वह अपनी ही संसृति है,
अपना ही अणु-अणु कण-कण
द्वयता ही तो विस्मृति है ।

—कामायनी, आनन्द, पृ० २८९

शोकोच्छ्वास—सम्राट् एडवर्ड सप्तम की मृत्यु पर १९१० ई० मे प्रकाशित शोक काव्य । इसके दो भाग है । प्रथम भाग 'अश्रु-प्रवाह' (इंदु, किरण १०) के अन्तर्गत ३२ पंक्तियाँ है । कवि भारत के मलीन मुख को देखकर नरपालक सातवें एडवर्ड के निधन का अनुमान कर लेता है । वह कठोर काल के सामने विवश हो जाता है । दूसरा भाग (इंदु किरण ११) 'समाधि-सुमन' है, जिसमें २४ पंक्तियाँ हैं । कवि धरती को कोमल हो जाने के लिए कहता है, क्योंकि उसी में सम्राट् सो रहे हैं ।

शोण[1]—पाटलिपुत्र के पास नदी ।

—इरावती, २,५,६,८

शोण[2]—पाटलिपुत्र के पास गंगा और शोण नदियाँ मिलती है ।

—चन्द्रगुप्त, ४-१

शोण[3]— —(ममता)

शोण[4]—गंगा और शोण में एक साथ बाढ आई और गाँव के गाँव बह गए । पीड़ितो की सहायता मे नन्दन लगा था । —(व्रतभंग)

[वर्तमान सोन नदी, विन्ध्य श्रेणी से निकल कर उत्तराभिमुख बहती हुई आरा के समीप बिहार प्रान्त में गंगा से मिलती है।]

शौनक—एक प्रधान ऋषि और ब्राह्मणों का नेता जिसने जनमेजय के अश्वमेघ यज्ञ मे आचार्य होना स्वीकार किया। प्राक्कथन में इसका पूरा नाम इन्द्रोत देवाप शौनक दिया है (शतपथ १३-५-४-१) ।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ

[ये नैमिषारण्य में रहते थे और इन्होंने एक बार १२ वर्ष का यज्ञ किया था ।]

श्मशान—संसार का मूक शिक्षक 'श्मशान' क्या डरने की वस्तु है ? जीवन की नश्वरता के साथ ही सर्वात्मा के उत्थान

का ऐसा सुन्दर स्थल और कौन है ?
(देवसेना) —स्कन्दगुप्त, ३-२

श्यामदुलारी—पुराने अभिजात कुल की विधवा, इन्द्रदेव की माँ। "मुख-मण्डल पर गर्व की दीप्ति, आज्ञा देने की तत्परता और छिपी हुई सरल दया भी अंकित है।" बेटा विलायत से मेम ले आया, तो इसने सोचा कि लड़का बिगड गया है। इसकी पुत्री माधुरी का पति श्यामलाल अनवरी को लेकर भाग गया, तो इसे बड़ी चोट पहुँची। बेटी के अन्धकारमय भविष्य मे आशा लाने के लिए इसने अपनी सम्पत्ति उसको दे दी। चिर-रुग्णा श्यामदुलारी ने पुत्रवधू को अपनाया। पारिवारिक मालिन्य मिट गया। —तितली

श्यामलाल—इन्द्रदेव का बहनोई, बिगडा रईस है। शैला मे अशिष्टता करता है, मलिया से दुर्व्यवहार करता है और अनवरी को भगा ले जाता है। —तितली

श्यामसिंह—देखी होगी तुमने भी वृद्ध वीर मूर्त्ति वह। —शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण

[श्यामसिंह अटारीवाला, प्रथम सिख-युद्ध (१८४५-४६) का महावीर जो कई लडाइयाँ जीतने के बाद १८४६ ई० में सोब्राउन मे (फीरोजपुर के पास) रणक्षेत्र में काम आया। उसकी पत्नी सती हो गई।]

श्यामसुन्दर—उपन्यास का शौकीन, जिसके लिए पत्नी के सच्चे प्यार ने उपन्यास की नायिका का आकर्षण समाप्त कर दिया। —(कलावती की शिक्षा)

श्यामा[1]—दे० आम्रपाली। वही मागधी बनी और बाद में काशी की प्रसिद्ध गणिका श्यामा। —अजातशत्रु

श्यामा[2]—उसमें दृढ़ता और आत्मसम्मान भरा है। अमीन और प्रकाश के विरुद्ध उसने अपने चरित्र-बल की पूर्ण रक्षा की। —(प्रतिध्वनि)

श्यामा[3]—(कल्पित पात्र) विधवा श्यामा व्रत की कठोर धार की तरह तीक्ष्ण है। उसका अवलम्ब दृढ़ है। वह अपने को भी जानती है और नारी-वर्ग के अन्तर को भी पहचानती है। पुरुष के स्वाँग को भी समझती है। वह बड़ी सुन्दरता मे रामनिहाल के भ्रम का निवारण कर देती है। —(सन्देह)

[बौद्ध ग्रन्थों की सामावती]

श्रद्धा[1]—'कामायनी' की नायिका। श्रद्धा काम और रति की पुत्री कामायनी है। उसने मनु को आत्म-समर्पण किया। आत्मदान ही तो नारी का सब से बडा सबल है। वह आदर्श पत्नी, आदर्श गृहलक्ष्मी, आदर्श माता और आदर्श नारी के रूप में अंकित की गई है। त्याग, सेवा, कर्म, उदारता, क्षमा, सहिष्णुता, करुणा, अनुराग, समरसता आदि उदात्त गुण उसके नारीत्व का सौन्दर्य हैं। उसका शरीर सुन्दर और हृदय कोमल है—'हृदय के कोमल कवि की कांत कल्पना की लघु लहरी।' उसके जीवन में आशा, उत्साह और विश्वास भरा है। वह तपस्विनी है। वह मनु का पथ-प्रदर्शन करने वाली, इड़ा को

प्रेरणा देकर आदर्श की ओर प्रवृत्त करने वाली, सब का कल्याण करने वाली मंगल-मूर्त्ति है। मनु से उसका चरित्र निश्चय ही बहुत ऊँचा है। श्रद्धा नारी के रूप में काम, वासना आदि वृत्तियों से युक्त है और हृदय-पक्ष के प्रतीक के रूप मे उस में सेवा, त्याग, उदारता, क्षमा आदि गुणों से पूर्ण है। वह सामूहिक चेतना का प्रतीक है। —**कामायनी**

श्रद्धा[२]— —**चित्राधार, भक्ति, पृ० १३६**

श्रवण-चरित—लड़का भाग गया। बुड्ढे को उस पर क्रोध आया। वह जो घाट की ओर बढ़ा, तो एक व्यासजी श्रवण-चरित की कथा कह रहे थे। —(**बेड़ी**)

[दशरथ के समय में प्रसिद्ध पितृभक्त बालक।]

श्रावस्ती[१]—दे० कोशल। —**अजातशत्रु**

श्रावस्ती[२]—दे० कोशल।—(**पुरस्कार**)

[अयोध्या से ५० मील उत्तर में उत्तर-कोशल की राजधानी ; बुद्ध यहाँ पर २५ वर्ष रहे।]

श्री = लक्ष्मी। —**स्कन्दगुप्त, ४**

श्रीकृष्ण—दे०अर्जुन। —**ध्रुवस्वामिनी, ३**

दे० कृष्ण भी।

श्रीकृष्ण-जयन्ती—इन्दु, कला ४, खंड २ किरण २, अगस्त १९१३। इस लम्बी कविता के चार खंड हैं। कविता अतुकान्त है। आरम्भ मे कवि जगत् के आन्तरिक अन्धकार का प्रतीक प्रकृति के अन्धकार को समझता है। घोर घन उठ रहे हैं। नीरद अपने नीर से भीग कर मन्थर गति से जा रहा है। व्योम की भांति ही जगत् में आन्तरिक अन्धकार है। उसे प्रकाश देने की ज्योति प्रगट होने वाली है। प्रकृति किसी के आगमन से बावली हो रही है। कोई आ रहा है। गोपाल संसार में आने वाले है। तब मानवजाति गोधन बनेगी। सब जीवों को परमानन्दमय कर्ममार्ग दिखाई देगा। घन आकाश को घेर लें किन्तु अब नवल ज्योति नहीं छिप सकती, भव बन्धन मे मुक्ति होगी। संसार दिव्य, अलौकिक हर्ष और आलोक प्राप्त करेगा। मानव-जाति गोपाल बनेगी और वे गोपाल उसे घुमावेंगे। —**कानन-कुसुम**

[भाद्रपद में कृष्ण-पक्ष की अष्टमी तिथि।]

श्रीचन्द—अमृतसर का व्यापारी, जिसने पत्नी (किशोरी) को पतित जानकर पृथक् किया, पर परिस्थितियों ने उसे फिर किशोरी के द्वार पर ला बिठाया। वह व्यक्तित्वहीन साधारण व्यक्ति है जिसका एकमात्र अन्तरंग सखा था धन। चन्दा से भी प्रेम से अधिक वह व्यवसाय करता है। किशोरी से समझौता होते ही वह चन्दा को भूल जाता है। —**कंकाल**

श्रीनगर[१]—कश्मीर में। कुणाल वहीं रहने लगे थे। —(**अशोक**)

श्रीनगर[२]—(कश्मीर) सुलतान यूसुफ खां की राजधानी। अकबर ने इसे अपने साम्राज्य में मिलाया। सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध। —(**नूरी**)

श्रीनगर[3]—काश्मीर की राजधानी।

—स्कन्दगुप्त, ४

[झेलम नदी के किनारे, छठी शती में राजा प्रवरसेन का बसाया नगर।]

श्रीनाथ—कहानी कहने वाला।

—(आंधी)

श्रीपर्वत—दक्षिण मे मंत्रवादियों का केन्द्र। इनका प्रभाव सहजयानियों और नाथों पर पड़ा और कामरूप उत्तर का श्रीपर्वत बना। —(रहस्यवाद, पृ० ३३-३४)

[=मलयाचल]

श्रुतसेन—पाण्डवकुल के महावीर। 'जनमेजय' में मेधाश्व के रक्षक।

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-२

[जनमेजय का भाई—महाभारत में।]

श्वेताश्वतर—ब्रह्म क्या है ?

—(रहस्यवाद, पृ० २६)

आनन्दवादियों की साधना-पद्धति कुछ-कुछ गुप्त और रहस्यात्मक थी। –(वही)

[श्वेताश्वतर नाम के ऋषि द्वारा प्रणीत उपनिषद् जिसमे सांख्य और वेदान्त के सिद्धान्तों को मिलाने की चेष्टा की गई है। इसका मत है कि प्रकृति जीवात्माओं के आनन्दार्थ निर्मित है।]

ष

षड़ानन— —(प्रेमराज्य, उत्तर)

स

सखी री ! सुख किस को हैं कहते ?—चन्द्रलेखा और उसकी बहिन इरावती अपने दुःखमय जीवन और दयाहीन जगत् से ऊब कर कहीं और चल रहने की सोचती हैं। —विशाख, १-१

सखे ! वह प्रेममयी रजनी—रात्रि का वातावरण उपस्थित करते हुए सुवासिनी अपने अतीत प्रेम का सुखमय और मदिर विलास स्मरण करती है। उसे वे रातें याद आ रही हैं जब कि उसके हृदय में मधुर झनकार होती थी और उसने रूप का आनन्द लूटा था। आज वह सब सपना हो गया।

—चन्द्रगुप्त, ४-१०

सघन वन वल्लरियों के नीचे—कामना का गीत। वन की सघन लताओं के नीचे मन-वीना के तार खिंच गए, अश्रुसिक्त गान फूट पड़ा, स्मृति उमड़ आई है जिसके कारण मन डावांडोल है।

—कामना, १-३

सङ्गीत—संगीत मेरी तन्मयता में आनन्द की मात्रा बढ़ाने में समर्थ है। तुम लोगों के कल्पित दुःख और विवेक की अतिरञ्जना के आवरण को वह सहज ही हटा देता है। (ब्रह्मचारी)

—इरावती, पृ० १०३

सज्जन—प्रसादजी का प्रथम नाटक, सुखान्त, घटना-प्रधान, प्रयोगात्मक। इन्दु.फाल्गुन-ज्येष्ठ १९६७ (१९११-१२)

में सर्वप्रथम प्रकाशित। 'चित्राधार' द्वितीय संस्करण में संकलित। संस्कृत-परम्परा के अनुसार इसमें नान्दी (शिव-स्तुति), प्रस्तावना, भरत-वाक्य आदि हैं। पारसी स्टेज का गद्यपद्य साथ-साथ चलता है। पद्य भाग अधिक है। पद्यों में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। स्वगत भी हैं। इसमें कुल पाँच दृश्य हैं। पाण्डव शान्तिपूर्वक द्वैत-सरोवर के निकट कानन में कालक्षेप कर रहे हैं। दुर्योधन के चाटुकार मित्र उसे परामर्श देते हैं कि वह वन में जाकर मृगया खेले और उत्सव मनाए जिससे पाँडवों को ईर्ष्या होगी। कूटनीति-चतुर दुर्योधन वन में जाते हैं। गन्धर्वराज चित्रसेन दुर्योधन को मना करता है कि यह मृगया-वन नहीं है, यह गन्धर्वों का क्रीडा-स्थल है; परन्तु दुर्योधन वैभव-गर्वित है, वह उसकी नहीं सुनता। फलस्वरूप युद्ध होता है और दुर्योधन कर्ण और शकुनी आदि समेत बन्दी हो जाते हैं। वन के दूसरे भाग में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी एक सघन वृक्ष के नीचे बैठे हैं। उनको इसकी सूचना मिलती है। धर्मराज युधिष्ठिर अपनी स्वाभाविक सज्जनता-वश अर्जुन को उनके छुड़वाने के लिए भेजते हैं। अर्जुन और चित्रसेन में युद्ध होता है। चित्रसेन अपने मित्र अर्जुन को पहचान जाता है, तो युद्ध रोक दिया जाता है। दुर्योधनादि युधिष्ठिर के सामने लाए जाते हैं और मुक्त होते हैं। दुर्योधन भी धर्मराज की उदारता और सज्जनता देख कर लज्जित होता है।

अपने में सफल नाटक है। इससे प्रसाद की भावी नाटकीय प्रतिभा की सूचना मिलती है।

शैली का उदाहरण—

दुर्योधन—अहा ! हा ! यह स्थान भी कैसा मनोरम है, सरोवर में खिले हुए कमलों के पराग से सुरभित समीर इस वन्य प्रदेश को आमोदमय कर रहा है।

नील सरोवर बीच,
इन्दीवर अवली खिली।
कर्ण—मनु कामिनी कच बीच,
नीलम की बन्दी लसै।
दुर्योधन—जल महँ परसि सुहात,
कुसुमित शाखा तरुन की।
कर्ण—मनु दर्पण दरसात,
निज चूमत कामिनी।
दुर्योधन—सारस करत कलोल,
सारस की अवली नसै।
कर्ण—मनु नरपति के गोल,
चक्रवर्ती विहरण करै।

सज्जन असज्जन—सज्जन से हो यदि
अपमान भी अच्छा है
दुर्जन-कृत बहुसम्मान से।
(खानखानां) —**महाराणा का महत्त्व**

सञ्जय बेलट्ठिपुत्त—दे० मस्करी गोशाल।

सतलज—

सतलज के तट पर मृत्यु श्यामसिंह की—

तोड़ा गया पुल प्रत्यावर्तन के पथ में अपने प्रवञ्चकों से ।

—(शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण)

[दे० शतद्रु]

सत्कर्म—सत्कर्म हृदय को विमल बनाता है और हृदय में उच्च वृत्तियाँ स्थान पाने लगती हैं। (प्रेमानन्द) —**विशाख, १-४**

जब तक शुद्ध बुद्धि का उदय न हो तब तक स्वार्थ-प्रेरित होकर भी सत्कर्म करणीय है। —**वही**

जो कर्तव्य है उसे निर्भय होकर करो।

—**वही**

सत्ताधारी—सत्ता शक्तिमानों को निर्बलों की रक्षा के लिए मिली है, औरों को डराने के लिए नहीं। (प्रेमानन्द)

—**विशाख, १-५**

सत्य—सुख और दुःख, आकाश और पृथ्वी, स्वर्ग और नरक के बीच में ही वह सत्य है, जिसे मनुष्य प्राप्त कर सकता है।(प्रज्ञासारथि) —(आंधी)

—सत्य महान् धर्म है। इतर धर्म क्षुद्र है, और उसी के अंग है। वह तप से भी उच्च है, क्योंकि वह दम्भ-विहीन है। वह शुद्ध-बुद्धि की आकाशवाणी है। वह अन्तरात्मा की सत्ता है। (व्यास)

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-६**

सत्यकाम—'बहु-परिचारिणी जाबाला के पुत्र सत्यकाम को कुलपति ने ब्राह्मण स्वीकार किया था।' (निरंजन का भारत संघ में उपदेश) —**कंकाल, ४-८**

[छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित। गौतम ऋषि ने इनका उपनयन किया था।]

सत्य पक्ष—निर्बल भी हो सत्य-पक्ष मत छोड़ना। (प्रेमानन्द)

—**विशाख, १-४**

सत्यव्रत—इन्दु, कला ४, खंड १, किरण १, जनवरी १९१३ में प्रकाशित कविता। दे० चित्रकूट[१]।

सत्यशील—कानीर विहार का बौद्ध महंत, पाखंडी, विलासी, कायर, नीच, स्वार्थी, लोभी, क्रूर, दुराचारी, गुण-कर्म-स्वभाव से मिथ्याशील और डर-पोक। वह दूसरों के समक्ष अपनी धार्मिकता की डींग हाँकता है, पर चन्द्रलेखा के रूप-लावण्य पर आसक्त हो कितना नीच कर्म करता है। महात्मा प्रेमानन्द के साथ भी अशिष्टता का व्यवहार करता है। राजा नरदेव उसे दण्डित करता है। विहार के साथ वह भी अग्नि की भेंट हो गया। —**विशाख**

सन्तसिंह—यारकन्द की व्यापार-यात्रा में नन्दराम का साथी। यह भी पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में कबायलियों के साथ रहता था। घोडों का अच्छा व्यापारी। —(**सलीम**)

सधिया—मुसहरिन, लेकिन मुसहरों से दूर श्रीनाथ के बंगले के पास रहती थी। अन्य मुसहरों की तरह अपराध करने में वह चतुर न थी। वह मुचकुन्द के फूल इकट्ठे करके बेचती। सेमर की रूई बीन लेती, लकड़ी के गट्ठे बटोर

कर बेचती। एक दिन वह मर ही तो गई। कल्लू उसका लड़का था।

--(आंधी)

सदाचार--जितनी अन्तःकरण की वृत्तियों का विकास सदाचार का ध्यान करके होता है--उन्ही को जनता कर्त्तव्य का रूप देती है। (कारायण)

--अजातशत्रु, ३-४

सदानीरा[1]--सदानीरा नदी मगध और विदेह के बीच मे आनन्दवादियों और व्रात्यों के बीच में सीमा थी। माधव विदेह ने अपने मुख में यज्ञ की अग्नि ले जाकर उस पार स्थापित की।

--(**रहस्यवाद, पृ० २५**)

सदानीरा[2]--वैशाली की एक नदी।

--(**सालवती**)

[वर्तमान बडी गंडक नदी, बिहार में]

सन्तोष[1]--गम्भीर, शान्त और संयमी। वह प्राचीनता का प्रेमी है, नवीनता का स्वागत नहीं करता। "मै सन्तुष्ट हूँ--मुझे ब्याह की आवश्यकता नही।" वह मन के आनन्द मे विश्वास करता है, भावुकता और भौतिकता को महत्त्व नहीं देता। "सुख तो मान लेने की वस्तु है। कोमल गद्दों पर चाहे न मिले; परन्तु निर्जन मूक शिलाखंड मे उसकी शत्रुता नही।" कामना मे उसे सहज प्रेम है और वह लीला के प्रणय-प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता। कामना अपनी चंचलता खोकर उसको प्राप्त होती है। वह द्वीप की हलचलों में विशेष भाग नहीं लेता, पर लोकसेवा मे लगा रहता है। **--कामना**

सन्तोष[2]--सन्तोष हृदय के समीप होने पर भी दूर है। (कामना) **--कामना, १-१**

सन्देह--एक साधारण-सी मनोवैज्ञानिक कहानी। श्यामा विधवा थी, रामनिहाल उसका मुनीम था। वासना-पीडित रामनिहाल श्यामा की ओर आकृष्ट दिखाई देने लगा, लेकिन जब देखा कि श्यामा का व्रत कठोर है तो वह वहाँ से चले जाने की सोचने लगा। श्यामा ने कारण पूछा तो रामनिहाल ने बताया --"मनोरमा मोहन बाबू की पत्नी है। मोहन बाबू को सन्देह है कि वह व्रज-किशोर पर मुग्ध है और उसकी सम्पत्ति लेने के लिए यह सिद्ध कर रही है कि उसके पति पागल हो गए हैं। नाव पर मेरी इस दम्पती से भेंट हुई और मनोरमा ने मेरे प्रति कुछ ऐसी आत्मीयता दिखाई कि मुझे सन्देह हुआ कि यह युवती मेरे लिए सुलभ है। हम दोनों का पत्र-व्यवहार भी हुआ और अब मनोरमा ने मुझे पटने बुलाया है। इसलिए मैं जा रहा हूँ।" इस पर श्यामा ने डाँटते हुए कहा--"तो क्या तुम समझते हो कि मनोरमा तुमको प्यार करती है और वह दुश्चरित्रा है? छिः, रामनिहाल, तुम यह सोच रहे हो? देखूं तो तुम्हारे हाथ में कौन-सा चित्र है.... मेरा? तो क्या तुम मुझसे भी प्रेम करने का लड़कपन करते हो? निहाल बाबू। प्यार करना बड़ा कठिन है।....

एक दुःखिया स्त्री तुमको मात्र अपनी सहायता के लिए बुला रही है, जाओ।" रामनिहाल की मनोकल्पना की भित्ति ही हिल गई, वह उठकर नहाने चला गया।

इसमें रामनिहाल की मनःस्थिति का कलात्मक चित्रण और लाक्षणिक स्पष्टीकरण है। स्त्री-चरित्र का भी सूक्ष्म चित्रण किया गया है। जीवन-सम्बन्धी संकेत भी हैं। —**इन्द्रजाल**

सन्ध्या तारा—सर्वप्रथम इन्दु, कला २, किरण १, श्रावण '६७ में प्रकाशित ब्रजभाषा की कविता। तारा, तुम सुन्दर वर्ण लेकर गगन में झलक रहे हो, तुम्हारा रूप अत्यन्त सुन्दर है।

नीलमनि माला माँहि सुन्दर लसत।
हीरक उज्ज्वल खण्ड विकाश सतत॥
कामिनी चिकुर भार अति घन नील।
तामें मणि सम तारा सोहत सलील॥

अनुपम सन्ध्या तुम्हे पाकर धन्य हुई है। प्राची की तरुणी प्रभात-मिलन की आशा से तुम्हें एक टक देख रही है। भयभीत नाविक को तुम दीप के समान पथ दिखा रहे हो। —(**पराग**)

सप्तसिन्धु[1]— —**कामायनी, चिन्ता**

सप्तसिन्धु[2]—दे० हिमालय, सप्तसिन्धु प्रदेश हूणों से पदाक्रान्त हुआ।

—**स्कन्दगुप्त, ४**

सप्त स्वर सप्तसिन्धु में उठे,
छिड़ा तब मधुर साम-संगीत।

—**स्कन्दगुप्त, ५**

सप्तसिन्धु[3]—दे० आत्मवाद।

[वर्तमान सिंध, झेलम, चनाब, रावी, व्यास, सतलुज और सरस्वती नदियों का प्राचीन देश जहाँ ऋग्वेद का सम्पादन हुआ।]

सब जीवन बीता जाता है—नेपथ्य गान। धूप-छांह के खेल की तरह जीवन अबाध गति से चला जा रहा है। हमें भविष्य-रण में लगाकर न जाने कहाँ छिप जाता। लहर, मेघ, बिजली, सभी से जीवन का नाता है। कुछ गाने दो। जीवन क्षणभंगुर है। —**स्कन्दगुप्त, ३**

समता—सृष्टि विषमता से भरी है, चेष्टा कर के भी इसमें आर्थिक या शारीरिक साम्य नहीं लाया जा सकता। (बुड्ढा) —(**नीरा**)

समता में विषमता—प्रत्येक परमाणु के मिलन में एक सम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती हिलने में एक लय है। मनुष्य ने अपना स्वर विकृत कर रक्खा है, इसी से तो उसका स्वर विश्व-वीणा में शीघ्र नहीं मिलता। (देवसेना)—**स्कन्दगुप्त, २-१**

समरसता—

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखंड घना था॥

—**कामायनी, आनन्द, पृ० २९४**

सब की समरसता कर प्रचार
मेरे सुत! सुन माँ की पुकार।

—**कामायनी, दर्शन, पृ० २४४**

सुख-दुख, व्यक्ति और समाज, शासक-शासित, अधिकारी-अधिकृत, शिव

और शक्ति, पुरुष और प्रकृति में समरसता आ जाने से आनन्द की प्राप्ति होती है—

नित्य समरसता का अधिकार
उमड़ता कारण जलधि समान।
व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुख मणिगण द्युतिमान।।

—**कामायनी, श्रद्धा, पृ० ५४**

जीवन वसुधा समतल है,
समरस है जो कि यहाँ है।

—**कामायनी, आनंद, पृ० २८८**

दे० आनन्दवाद भी।

जीवन के पथ में सुख-दुःख दोनों समता को पाते हैं। —**प्रेमपथिक**

'आँसू' के उत्तरार्ध में भी।

समष्टि—समष्टि में भी व्यष्टि रहता है। व्यक्तियों से ही जाति बनती है। विश्व-प्रेम, सर्वभूत-हित कामना परम धर्म है। (जयमाला) —**स्कन्दगुप्त, २-५**

दे० व्यष्टि, समाज।

समस्याएं—समस्याएँ तो जीवन में बहुत-सी रहती हैं; किन्तु वे दूसरों के स्वार्थों और रुचि तथा कुरुचि के द्वारा कभी-कभी जैसे सजीव होकर जीवन के साथ लड़ने के लिए कमर कसे हुए दिखाई पड़ती हैं। —**तितली, २-२**

समाज—मनुष्य इतना पतित कभी न होता, यदि समाज उसे न बना देता। ....हमारी शुद्ध आत्मा में किसने विष मिला दिया है, कलुषित कर दिया है, किसने कपट, चातुरी, प्रवंचना सिखाई है? इसी पैशाचिक समाज ने। (कुंजनाथ) —(**प्रतिमा**)

समाज और पाप—अत्याचारी समाज पाप कह कर कानों पर हाथ रखकर चिल्लाता है; वह पाप का शब्द दूसरों को सुनायी पड़ता है, पर वह स्वयं नहीं सुनता। —(**विजया**)

समाजवाद—जो हमारे दान के अधिकारी हैं, धर्म के ठेकेदार हैं, उन्हें इसी लिए तो समाज देता है कि वे उसका सदुपयोग करें; परन्तु वे मन्दिरों में, मठों में बैठे मौज उड़ाते हैं—उन्हें क्या चिन्ता कि समाज के कितने बच्चे भूखे, नंगे और अशिक्षित हैं। (विजय)

—**कंकाल, पृ० ११२–११३**

जिन्हें आवश्यकता नहीं उनको आदर से भोजन कराया जाय केवल इस आशा से कि परलोक में वे पुण्य-सचय का प्रमाण-पत्र देंगे, साक्षी होंगे। और इन्हें जिन्हें पेट ने सता रखा है, जिन्हें भूख ने अधमरा बना दिया है, जिनकी आवश्यकता नंगी होकर वीभत्स नृत्य कर रही है—वे मनुष्य कुत्तों के साथ जूठी पत्तलों के लिए लड़ें, यही तो तुम्हारे धर्म का उदाहरण है। (विजय) —**वही**

(समता)

जो जिस योग्य हों, उन से वैसा ही संघर्ष करना पड़ेगा। जिनमें थोड़ी कसर है, वे हम से ईर्ष्या करके ही हमारे बराबर पहुँचेंगे। जो बहुत पिछड़े हुए हैं, उन्हें फटकारने से ही काम चलेगा। जो हमारे विकास के विरोधी हैं और अपने को जड़ ही मानते हैं, उन्हें रूप

बदलना ही पड़ेगा। दूसरा परिवर्त्तन ही उन्हें हमारे पास ले आवेगा। (श्रीकृष्ण)। (इसी बात को अगली पंक्तियों में स्पष्ट किया गया है अर्थात् हेय, पददलित और जड़ प्राणियों को उबारने और दुर्वृत्त प्राणियों को हटा देने में ही विषम सम होगा।)

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, १-१

दे० मानवता भी।

जिनकी रसना की तृप्ति के लिए अनेक प्रकार के भोजनों की भरमार होती है, वे पेट की ज्वाला नहीं समझते। (सरमा)

जो उत्तम पदार्थों की थाली पैर से ठुकरा देते हैं, जिन्हें अरुचि की डकार सदा आती रहती है, वे इसे क्या जानेंगे! (माणवक)

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, १-४

अन्न पर स्वत्व है भूखों का और धन पर स्वत्व है देशवासियों का। (पर्णदत्त)

—स्कन्दगुप्त, ५-२

दे० परमार्थ, पाखंड, पूँजीपति, प्रगतिवाद, महत्त्वशाली व्यक्ति, रूढ़ियाँ, व्यष्टि, सत्ताधारी, समाज आदि शब्द।

समीर-स्पर्श कली को नहीं खिलाता है।—विकस गई, खुली, मकरंद जब कि आता है।

प्रेमानन्द का कहना है कि जब अन्तरात्मा में वैराग्य विकसित होता है, उसी समय हृदय स्वतः आनन्दमय हो जाता है जैसे मकरन्द आने पर कली स्वतः खिल जाती है। —विशाख, १-४

समुद्रगुप्त[१]—दे० विक्रमादित्य।

—कंकाल, ४-८

समुद्रगुप्त[२]—गुप्तवंश के गौरवशाली भारतीय सम्राट् जिनका उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त था। —ध्रुवस्वामिनी

समुद्रगुप्त[३]—स्वर्गीय सम्राट् समुद्रगुप्त ने देवपुत्रों तक का राज्य विजय किया था। —स्कन्दगुप्त, १

[गुप्तवंश का दूसरा सम्राट्, प्रसिद्ध विजेता जिसने अश्वमेध किया। राज्य-काल ३३५–३७५ ई०।]

समुद्रदत्त—काल्पनिक पात्र। देवदत्त का शिष्य, अजातशत्रु की क्रूरता को बढ़ावा देनेवाला, बिम्बसार को बंदी बनाने का प्रस्ताव रखने वाला, काशी में अजात का प्रणिधि, जो साधु होकर भी श्यामा वेश्या की रूप-ज्वाला का पतंग बनने को प्रस्तुत होता है और शैलेन्द्र के स्थान में फांसी पर लटकाया जाता है।

—अजातशत्रु, १-१, १-३, २-१, २-४

समुद्र-सन्तरण—एक भाव-प्रधान रेखा-चित्र। वर्तमान के प्रति असन्तोष और अनन्त का आकर्षण छायावादियों का प्रिय विषय है। कहानी में प्रेम के स्वर्ग का नया चित्र खींचा गया है। राजकुमार सुदर्शन प्रतिदिन साँझ के समय समुद्र-तट पर जाता और प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर आनन्द-विभोर होता। एक दिन उसने देखा, एक धीवर-कुमारी समुद्र-तट में कगारों पर चढ़ रही थी, जैसे पंख फैलाए तितली। सुदर्शन ने उसे पुकारा तो ज्ञात हुआ कि वह राजकुमार के

[व]वाह के लिए सुनहली मछलियाँ [प]कड़कर ले जा रही है। सुदर्शन ने उसे [ब]ताया कि राजकुमार का विवाह नहीं [ह]ोगा, तब उसने मछलियाँ जल में [छ]ोड़ दीं। सब लोग चले गए, पर राज-[क]ुमार समुद्रतट पर ही बैठा रहा। [र]ात को उसे आशंका हुई कि कोई [उ]से लौटा ले जाने के लिए आ रहा है। [व]ह फेनिल जलधि में कूद पड़ा, लहरों [प]र तैर चला। वह तैरते-तैरते थक चला [थ]ा। संयोग से एक छोटी-सी नाव आई। [उ]समें बैठी धीवर-बाला बंसी बजा रही [थ]ी। उसने राजकुमार को बिठा लिया [औ]र ले चली पृथ्वी से दूर जल-राज्य में [ज]हाँ आत्म-विश्वास है, सरल सौन्दर्य है।

कहानी का सौन्दर्य रहस्यात्मकता मे [द]ब गया है। कथोपकथन अच्छे हैं; पर [क]थानक में कोई जान नहीं है।

—आकाशदीप

[स]म्मिलित कुटुम्ब—हिन्दू-समाज की [ब]हुत सी दुर्बलताएं इस खिचरी कानून के [क]ारण हैं। ....प्रत्येक प्राणी, अपनी [व्य]क्तिगत चेतना का उदय होने पर, एक [कु]टुम्ब में रहने के कारण, अपने को [प्र]तिकूल परिस्थिति में देखता है। इसलिए [स]म्मिलित कुटुम्ब का जीवन दुःखदायी [ह]ो रहा है। (इन्द्रदेव) —**तितली, २-७**

[सम्र]ाट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य—८० पृष्ठों [क]ा ऐतिहासिक अनुशीलन। प्रथम बार [१]९०९ में स्वतंत्र पुस्तक के रूप में, [१]९१८ में 'चित्राधार' के अन्तर्गत और [१]९३१ में 'चन्द्रगुप्त' नाटक की भूमिका के रूप में प्रकाशित। इसमें नौ प्रकरण हैं—उपक्रम, वंश और समय, बाल्य जीवन, सिकन्दर और चन्द्रगुप्त पंजाब में, मगध में चन्द्रगुप्त, विजय, चन्द्रगुप्त का शासन, चन्द्रगुप्त के समय का भारत वर्ष, चाणक्य।

[दे० चन्द्रगुप्त]

सम्हाले कोई कैसे प्यार!—सुरमा का गाना। प्यार बड़ा चञ्चल है, मचल-मचल जाता है। 'छुई-मुई' की तरह झट से कुम्हला जाता है और झट से हँस पड़ता है। 'कितना है सुकुमार।' 'लिए व्यथा का भार'।

—**राज्यश्री, २-६**

संयम—शारीरिक कर्म तो गौण है, मुख्य संयम तो मानसिक है। (प्रज्ञासारथि)

—(**आंधी**)

संयुक्त प्रान्त[1]— —**कंकाल, १-२**

संयुक्त प्रान्त[2]—वर्तमान उत्तर प्रदेश, यू० पी०, जहां का मदन था।

—(**मदनमृणालिनी**)

संयोगिता— —(**प्रायश्चित्त**)

[जयचंद राठौर की पुत्री, पृथ्वीराज की प्रेमिका जिसे वे स्वयंवर से भगा लाए थे।]

सरगुजा[1]—बनजारे सरगुजा तक के जंगलों में जाकर प्याज-मेवा आदि का क्रयविक्रय करते थे। —(**बनजारा**)

सरगुजा[2]—सरगुजा के गुहा-मंदिर की नाट्यशाला दो हजार वर्ष की मानी जाती है। —(**रंगमंच, पृ० ६४**)

[मध्य प्रदेश में विन्ध्य परका छत्तीसगढ़ी प्रदेश।]

सरदारसिंह, ठाकुर—उनको कहानी सुनने का चसका था। खोजने पर एक शराबी मिला जो कहानी सुनाकर उनका मनोविनोद करता था। —(**आंधी**)

सरमद—मैमेटिक धर्मभावना के विरुद्ध चलने पर इनका सिर काट दिया गया। —(**रहस्यवाद, पृ० १९**)

[सूफी फकीर। इनकी समाधि जामिआ मसजिद दिल्ली के पास है।]

सरमा—कुकुर-वंश की यादवी, प्रभास क्षेत्र में अर्जुन के साथ जाते हुए वह नागों तथा आभीरों द्वारा अपहृत हुई। अपनी इच्छा से वासुकि नाग से परिणय किया। वह सच्ची प्रेमिका है। वासुकि के त्राण के लिए वह दासी तक बनती है। मनसा के विषाक्त व्यंग्यों से वह बहुत क्षुब्ध होती है। वह तेजस्विनी, स्वाभिमानिनी है और निर्भीक है। "जातीय अपमान मैं सहन नहीं कर सकती।...मैं अपने सजातियों के चरण सिर पर धारण करूंगी, किन्तु इन हृदयहीन उद्दंड बर्बरों का सिंहासन भी पैरों से ठुकरा दूंगी।"—(**जनमेजय का नागयज्ञ १-१**) वह धीरतापूर्वक परिस्थितियों का सामना करती है। उस पर कृष्ण की शिक्षा का प्रभाव है; "मैं तो एक मनुष्य जाति देखती हूँ—न दस्यु और न आर्य! न्याय की सर्वत्र पूजा चाहती हूँ।"—(जन० १-२) सब प्रकार से शक्तिहीन हो जाने पर भी वह न तो अकर्मण्य होती है न दुर्बल। वह किसी का अनिष्ट नहीं करती। विपन्नावस्था में भी उसकी आत्मा पतित नहीं होती। वह तक्षक के हाथों उत्तंक को बचा लेती है। अपने पति को संकट में पड़ा देख वह क्षुब्ध हो उठती है। पति के लिए कल्याण कामना करती हुई सरमा वपुष्टमा की कलिका नामधारिणी दासी बनती है और अत्यन्त कठिन परिस्थिति में पति का उद्धार करती है। वह आदर्श नारी और स्नेहमयी माता है। अन्त में इस पावन मूर्ति के सामने शत्रु भी सिर झुकाते हैं। उसी के उद्योग से नागों और आर्यों का विरोध समाप्त होता है। —**जनमेजय का नाग-यज्ञ**

[महाभारत आदि० ३ में वर्णित]

सरयू[1]—अयोध्या के निकट नदी। रामदेव ने इसमें डूबकर प्राण दे दिए। —**कंकाल, ४-१**

सरयू[2]—सरयू की नाव पर जल-विहार करते हुए महाराज हरिश्चन्द्र का सहचर जनों सहित प्रथम दृश्य में प्रवेश। —**करुणालय**

सरयू[3]—सरयू तट पर अशोक-कानन में विकटघोष सुएनच्वांग को लूटने और मारने की चेष्टा करता है। —**राज्यश्री, ३-४**

सरयू[4]—गंगा, यमुना और सरयू पर गड़े हुए ब्राह्मणों के यज्ञयूप सद्धर्मियों की छाती में ठुकी हुई कीलों की तरह बौद्धों को खटकते हैं। —**स्कन्दगुप्त, ४**

[वर्तमान घाघरा नदी जिसके किनारे पर अयोध्या नगरी बसी है।]

सरला[१]—मल्लिका की दासी।

—अजातशत्रु, २-५

सरला[२]—मंगल की माँ। उपन्यास में वह मार्गरेट लतिका की रसोईदाग्नि के रूप में पहली बार सामने आती है। दुःखिया सरला पचास बरस की प्रौढ़ा थी। "सदैव प्रस्तुत रहो" का महामंत्र मेरे जीवन का रहस्य है—दुःख के लिए, सुख के लिए, जीवन के लिए और मरण के लिए।

—कंकाल, खंड २

सरला[३]—भोली लड़की जिसे मुसलमानों ने बंदी बना लिया।

—(चक्रवर्ती का स्तम्भ)

सरला[४]—कुञ्जनाथ की पहली पत्नी, दरिद्र माँ की कन्या, जिसे कुञ्जबिहारी की अनुनय-विनय करके भी वह मृत्यु के हाथों से न बचा सका।—(प्रतिमा)

सरला[५]—भगवान् की उपासिका जिसे अपनी श्रद्धा-भक्ति का 'प्रसाद' मिल गया।

—(प्रसाद)

सरला[६]—कुमुदों से प्रफुल्लित शरत्काल के ताल सा भरा हुआ यौवन! सर्वस्व लुटाकर चरणों में लोट जाने के योग्य सौन्दर्य-प्रतिमा! मन को मचला देने वाला विभ्रम, धैर्य्य को हिलानेवाली लावण्य-लीला। मोटी पलकों वाली बड़ी-बड़ी आँखें गंगा के हृदय में से मछलियों को ढूढ निकालना चाहती थीं। उसने शैलनाथ पर 'बालविवाह' का आरोप करके अपना अन्त बिगाड़ लिया।

—(रूप की छाया)

सरला[७]—राजनर्तकी और गायिका।

—विशाख

सरस्वती[१]—श्रद्धा को छोड़ मनु हिमालय से उतरे और एक ऊजड़ प्रदेश में आए जहाँ सरस्वती नदी बड़े वेग से बह रही थी। यही देवेश इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था। सरस्वती के नाम पर ही इस प्रदेश को सारस्वत कहते थे।

—कामायनी, इड़ा, दर्शन तथा निर्वेद

सरस्वती[२]— —(ग्रामगीत)

सरस्वती[३]—सरस्वती का जल पीकर स्वस्थ और पुष्ट नाग जाति कुरुक्षेत्र की सुन्दर भूमि का स्वामित्व करती थी!

—जनमेजय का नाग-यज्ञ, १-१

सरस्वती के तट पर ज्ञान-धारा बही (व्यास)। यहो खाण्डव बन भी था।

—वही, ३-८

सरस्वती[४]—इतने रक्तपात के बाद भी इतनी ममता (स्कंद के प्रति)—जैसे सरस्वती के शोणित जल में इन्दीवर का विकास। (विजया) —स्कन्दगुप्त, ५

सरस्वती[५]—दे० शिव, शारदा आदि।

[सिरमौर से निकलने वाली नदी जो पूर्वी पंजाब में बहती हुई किसी युग में यमुना और सतलज के बीच में चलती थी और प्रयाग में गंगा-यमुना में आ मिलती थी।]

सरस्वती[६]—देवी। —चन्द्रगुप्त, १-१

सरहिन्द—यहाँ पर जोरावरसिंह और

फतह सिंह अपने धर्म की रक्षा करते हुए दीवार में चुना दिए गए थे।

—(**वीर बालक**)

[यमुना और सतलज नदियों के बीच का भूभाग जो औरंगजेब के राज्यकाल में एक पृथक् प्रान्त था।]

सरोज[1]—इन्दु, मार्च '१२ में प्रकाशित, 'चित्राधार' द्वितीय संस्करण में संगृहीत ४ पृष्ठों का निबन्ध। इसमें संस्कृत के आचार्यों के श्लोक उद्धृत करके सरोज का भावपूर्ण वर्णन किया गया है। संसार-कानन में जितने कुसुम हैं, उनमें सरोज का आसन सबसे ऊंचा है। उसका प्रवेश सब देव-दुर्लभ स्थानों में है। श्री का विलास-मंदिर सरोज ही है। मधुकर भी मलयानिल से कहता है कि जब तक तुम सरोज-पराग-धूलि-धूसर न होगे, तब तक तुम यों ही रहोगे। पण्डित-राज, कालिदास, भारवि और श्रीहर्ष का एक-एक श्लोक उद्धृत करके लेखक कहता है कि सरोज! साहित्य-सरोवर की तुम एक सुखद समीपस्थ सामग्री हो। वास्तव में तुम कवि-कल्पना के कल्पद्रुम कुसुम हो। . . . सौन्दर्यमयी सुन्दरियों के चरण से लेकर, नेत्र, मुख आदि की उपमा के लिए, तुम्हीं तो हो। तुम्हारे गुणों का उल्लेख कहाँ तक कर सकते हैं? तुम से बढ़कर संसार-कानन में अन्य कौन कुसुम है?

सरोज[2]—इन्दु, कला ३, किरण ४ (मार्च १९१२ ई०) में प्रसादजी की पहली चतुर्दशपदी जिसमें संगीतात्मक प्रवाह है। सरोज का यह सन्देश है कि मनुष्य निर्लिप्त तथा कर्त्तव्य में स्थिर हो। सरोज पानी में रहकर भी निर्लिप्त है और तरंगों के बीच में भी विचलित नहीं होता। सरोज अलि को मकरन्द और समीर को परिमल देता ही रहता है। यह कविता इतिवृत्तात्मक, नीति-पूर्ण और स्वानुभूति-रहित है। इसे सानेट की कोटि में नहीं रखा जा सकता।

—**कानन-कुसुम**

सर्वदर्शन-संग्रह—ऋग्वेद पद्यात्मक, यजु: गद्यात्मक, साम संगीतात्मक है।

—**काव्य और कला, पृ० १४**

[शास्त्रीय सिद्धान्तों (न्याय, सांख्य, वैशेषिक, योग, मीमांसा, बौद्ध, जैन, चार्वाक आदि) की व्याख्या में माधव-कृत प्रसिद्ध ग्रन्थ—समय १३७५ ई०]

सर्वात्मा—सर्वात्मा के स्वर में, आत्म-समर्पण के प्रत्येक ताल में, अपने विशिष्ट व्यक्तित्व का विस्तृत हो जाना—एक मनोहर संगीत है।(देवसेना)।

—**स्कन्दगुप्त, २-५**

दे० विश्वात्मा, समष्टि भी।

सलीम[1]—पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में पठानों की एक छोटी-सी बस्ती थी। गुलमुहम्मद इस गाँव का मुखिया था जिसके लड़के का नाम अमीर खां था। उन्हीं लोगों के बीच में नंदराम और उसकी पत्नी प्रेमकुमारी (प्रेमा) रहते थे। अमीर खां प्रेमा को अपनी बहिन मानता था। एक बार जब नंदराम व्यापार के लिए यारकन्द गया हुआ

था, तब सलीम नाम का एक भारतीय (यू० पी० का) कट्टर मुसलमान वहाँ आया। वहाँ के हिन्दूमुसलमानों का पारस्परिक सद्भाव देखकर जलभुन गया। उसने कट्टर वजीरियों के द्वारा गाँव पर आक्रमण करा दिया, परन्तु गाँव वाले एक थे, वजीरी परास्त हुए। सलीम खुफिया बनकर नन्दराम के साथ आया, तो प्रेमा ने उसका अतिथि-सत्कार किया, लेकिन यह नीच उसे भगा ले जाने की सोचने लगा। वजीरियों के दूसरे आक्रमण के समय इसने यह दुष्कर्म करना चाहा, तो अमीर खां ने उसका हाथ तोड़कर गाँव से बाहर निकाल दिया। वह पेशावर में बहुत दिनों तक भीख माँगता और प्रेमा को लक्ष्य करके 'बुते-काफिर' वाला गीत गाता फिरता रहा।

कहानी बुरी नहीं है। इसमें के वर्णन सुन्दर हैं। —इन्द्रजाल

सलीम[2]—युक्तप्रान्त का मुसलमान, हिन्दुस्तान से हिजरत करके इस्लामी देशों में चला गया। वहाँ उसे कड़वा अनुभव हुआ। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के गाँव में 'काफिर' के हाथ से प्रसाद लेने पर अमीर खां का विरोध करने लगा, तो पठान लड़कों ने उसे उल्लू बनाया। वह घुमक्कड़ी जीवन की लालसाओं से संतप्त, व्यक्तिगत आवश्यकताओं से असन्तुष्ट था। उसमें कट्टरपन धर्म की प्रेरणा से नहीं, लालसा की ज्वाला के कारण था। प्रेम के नशे में वह धर्म और देश को भूलकर शायर बन बैठा। वह सूफी कवियों-सा सौन्दर्योपासक बन गया। अपनी कुचेष्टा में कलाई तुड़वा ली।

—(सलीम)

सलीम[3]—अकबर का पुत्र और उत्तराधिकारी। इसने विद्रोह किया। विद्रोह तो सफल नहीं हुआ ; परन्तु इसे सीकरी में रहने की आज्ञा मिल गई। सीकरी की दशा देखकर इसका हृदय व्यथित हो उठा। इसने तहखाने के बंदियों को छोड़ दिया। इस आज्ञा के परिणाम-स्वरूप नूरी और याकूब को भी रिहाई मिली।

—(नूरी)

[इसी का नाम बाद में जहाँगीर हुआ। राज्यकाल १६०५–१६२७ ई०]

सलीम[4]—चिश्ती सूफी संत जिसकी समाधि फतहपुर सीकरी में है ; जिसकी कृपा से अकबर को पुत्र प्राप्त हुआ, उसका नाम भी सन्त सलीम के नाम पर सलीम रखा गया। सन्त सलीम की समाधि का दर्शन करने लोग आते हैं। —(नूरी)

[समय १६वीं शती का उत्तरार्द्ध]

सलोने अंग पर पट हो मलिन भी रंग लाता है। — कुसुम-रज से ढका हो तो कमल फिर भी सुहाता है। थियेटरी धुन। विशाख चन्द्रलेखा के मलिन वेश में भी उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता है और गुदड़ी में लाल मानता है।

—विशाख, १-१

सविता = सूर्यदेवता।

—कामायनी, आशा

सवैया—दे० मकरन्द-बिन्दु।

सव्यसाची[1]— —(कुरुक्षेत्र)

सव्यसाची[2] = अर्जुन —(बभ्रुवाहन)

संसार—अमीर कंगाल हो जाते हैं। बड़ो-बड़ों के घमण्ड चूर होकर धूल में मिल जाते हैं। तब भी दुनियाँ बड़ी पागल है। (शराबी) —(मधुआ)

संसार-प्रपंच—संसार भी बड़ा प्रपंचमय यंत्र है, वह अपनी मनोहरता पर आप ही मुग्ध रहता है। —(भवनमृणालिनी)

संसार सत्य है—

यह सत्य यही स्वर्ग यही पुण्य घोष है।
सत्कर्म कर्मयोग यही विश्व कोश है॥
किसने कहा कि झूट है संसार कूप है।
(साधु) —विशाख, १-४

संसृति के वे सुन्दरतम क्षण यों ही भूल नहीं जाना—'स्कन्दगुप्त' का दूसरा गीत जिसमें मातृगुप्त के जीवन की मधुमय स्मृति है—उस बिखरे हुए स्वप्न को, जिसे उसने अपने यौवन के प्रारम्भ में देखना शुरू किया था। जब चपल भौहें चली थी, जब प्रेम का प्याला छलका था। वह जो लहर थी, अब लीन हो गई। कभी भूल कर आ जाओ, तो सुख का वह सागर फिर हिलोरे लेने लगे।

मातृगुप्त का ऐन्द्रिय प्रेम बाद मे देशप्रेम मे मुड़ गया और यौवन की कामुकता कर्त्तव्यपालन में परिवर्तित हो गई।

—स्कन्दगुप्त, १

सहचरी शरण—दे० खड़ी बोली।

सहनशीलता—सहनशील होना अच्छी बात है; परन्तु अन्याय का विरोध करना उससे भी उत्तम है। (तितली)

—तितली, ३-२

सहयोग—एक छोटी कहानी, जिसमें दाम्पत्य जीवन की झांकी दी गई है। मनोरमा को मोहन नामक एक हृदयहीन युवक दिल्ली से ब्याह लाया था। वह उसके साथ क्रूरता का व्यवहार करता था। एक दिन मेला देखकर वह लौटा, तो बड़ा उद्विग्न और उदास था। उसकी एक प्रेयसी वेश्या किसी विशेष आकर्षक पुरुष के साथ चली गई थी। घर में पत्नी का ध्यान आया। मनोरमा ने उसे बड़े औपचारिक ढंग से दूध और पान दिया, और यह न पूछा कि तुम कहाँ रहे? वह तो एक कल की पुतली थी, बनावटी रूप और आवभगत वाली। मोहन को यह सब असह्य हो गया। मनोरमा उसके पैर दबाने बैठी। वेश्या से तिरस्कृत मोहन घबरा उठा। उसने सोचा कि मैंने ही मनोरमा को ऐसा बना दिया है। उसने अपनी भूल स्वीकार की। अकस्मात् वह उठा। मोहन और मनोरमा एक दूसरे के पैर पकड़े हुए थे।

गृहस्थ जीवन में जो असन्तुलन है, उसका कारण और समाधान इस कहानी मे दिया गया है। कथोपकथन, चरित्र-चित्रण कुछ भी नहीं है, अंत अवश्य कलात्मक है। —प्रतिध्वनि

सहानुभूति—

फिर उन निराश नयनों की
जिन के आँसू सूखे हैं,

उस प्रलय दशा को देखो
जो चिर वञ्चित भूखे हैं।
—आंसू, पृ० ७८

सहारनपुर[१]—प्रयाग से देवनिरंजन सहारनपुर चले गए और वहाँ से हरद्वार। —कंकाल, १-१

सहारनपुर[२]—गुलामकादिर की जागीर। यहीं उसका बाप रहता था। —(गुलाम)

[दिल्ली से लगभग १०० मील उत्तर में]

साइबर्टियस—सिकन्दर का दूत। —चन्द्रगुप्त

साकेत = अयोध्या —इरावती

सागर-सङ्गम—इस गीत मे कवि ने सागर की अरुणिमा, नीलिमा से प्रेरणा ग्रहण की है। दे० हे सागर-संगम...
—जागरण, अंक २, २२ फरवरी, '३२

साजन—भावुक युवक। उसके मन मे नित्य वसन्त था। वह जीवन के उत्साह से कभी विरत नही, न-जाने कौन-सी आशा की लता उसके मन में कली लेती रहती। उसका सुन्दर सुगठित शरीर बिना देख-रेख के अपनी इच्छानुसार मलिनता में भी चमकता रहता। रमला झील का वह एकमात्र स्वामी था, रक्षक था, सखा था। वह जल-देवता था। —(रमला)

सांची—पाश्चात्य पुरातत्त्वज्ञ साँची और अमरावती के स्तम्भ तथा शिल्प के चिह्नों में वस्त्र पहनी हुई मूर्त्तियों को देखकर, ग्रीक शिल्प-कला का आभास पा जाते हैं और कल्पना कर बैठते हैं कि भारतीय बौद्ध कला ऐसी हो ही नहीं सकती, क्योंकि वे कपड़ा पहनना जानते ही न थे! फिर चाहे आप त्रिपिटक से ही प्रमाण क्यों न दें कि बिना अन्तर्वासक चीवर इत्यादि के भारत का कोई भिक्षु भी नहीं रहता था; पर वे कब मानने वाले! —(आंधी)

[भूपाल के अन्तर्गत बौद्ध केन्द्र जहाँ बौद्धकालीन कला अब भी सुरक्षित है।]

सामयिकता—सामयिक समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रसादजी ने कहानियों और विशेषतः उपन्यासों को माध्यम बनाया। उनकी सब से पहली कहानी 'ग्राम' में जमीदार और महाजन वर्ग की आर्थिक प्रभुत्व के लिए होड़ दिखाई गई है। 'मधुआ', 'घीसू', 'नीरा', 'बेड़ी' आदि 'आँधी' और 'इन्द्रजाल' की बहुत-सी कहानियों में आधुनिक समाज के दृश्य उपस्थित किये गये हैं। 'कंकाल' में साधुओं, गृहस्थों और मध्यम श्रेणी के स्त्री पुरुषों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। तीर्थों, सेवासमितियों, मुसाफिरखानों, आर्यसमाज और सनातन धर्म सभाओं, गिरजाघरों और वेश्यालयों की पोल निर्भीकता से खोली गई है; और उपन्यास के अन्त में समाज-सुधार के निर्माणात्मक सुझाव भी दिये गये हैं। 'तितली' में ग्रामीण समस्या, पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव, गृहकलह, सम्मिलित कुटुम्ब का परिणाम, शिक्षित युवकों और युवतियों का स्थान और

कर्तव्य, आर्थिक विषमता, जीवन के प्रभाव, बनावट, जमींदारों के कारिंदों के अत्याचार आदि अनेक सामयिक प्रश्नों को उठाकर आदर्श ग्राम की कल्पना भी की गई है। काव्यग्रंथों में भी सामयिक स्थितियों की ओर संकेत किया गया है। 'कानन-कुसुम' में—जो अछूत का जगन्नाथ हो, कृषक-करों का दृढ़ हल हो, दुखिया की आँखों का आँसू और मजूरों का बल हो ; एवं लहर में 'अरी वरुणा की शान्त कछार', 'बीती विभावरी जाग री';' अब जागो जीवन के प्रभात', 'जगती की मंगलमयी उषा बन', और 'अशोक की चिन्ता' के अन्त में

भुनती वसुधा, तपते नग,
दुखिया है सारा अग-जग
कंटक मिलते हैं प्रति पग
जलती सिकता का यह मग

इत्यादि कविताओं का संकेत स्पष्ट है। 'कामायनी' में अतीत की गाथा होने पर भी युग की प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ती है। यह युग संघर्ष का युग है। 'संघर्ष','इड़ा', 'स्वप्न' सर्ग में विशेषतया सामयिक संकेत मिलते हैं, जैसे—नारी की समस्या, नागरिक सभ्यता और यन्त्र-युग का परिणाम, शस्त्र और शक्ति का दुरुपयोग, भौतिक बल की शिक्षा देने वाली बुद्धिवादी सभ्यता (इड़ा), शासक और शासित का वैमनस्य, जीवन की विषमता, वर्णभेद की खाई, अधिकारों का दुर्व्यवहार इत्यादि। 'ईर्ष्या' सर्ग में अहिंसा, तकली के गीत आदि प्रमुख गांधीयुगीन अस्त्रों का उल्लेख भी हुआ है।

नाटकों में 'एक घूंट' तो है ही यथार्थवादी, 'कामना' में व्यंग्य से सामयिक समस्याओं और समुद्र पार से आने वाले विलास और भारतीय जीवन की शांति और संतोष का विवेचन किया गया है। दे० कामना।

इस देश के बच्चे दुर्बल, चिंता-ग्रस्त और झुके हुए दिखाई देते हैं! स्त्रियों के नेत्रों में विह्वलता-सहित और भी कैसे-कैसे कृत्रिम भावों का समावेश हो गया है! व्यभिचार ने लज्जा का प्रचार कर दिया है। (विवेक)—कामना, २-४

इत्यादि अनेक उक्तियों में सामयिकता है।

ऐतिहासिक नाटकों में भी प्रसाद-युग (भारत के आधुनिक युग) के संकेत स्पष्ट हैं। 'अजातशत्रु' में गृहकलह, धार्मिक विषमता, राजनीतिक अशांति के चित्र हैं। स्कंदगुप्त में धार्मिक समन्वय, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और पारिवारिक स्नेह पर बल दिया गया है। 'ध्रुवस्वामिनी में राष्ट्रीय नवनिर्माण के लिए अनेक सुझाव हैं। 'चन्द्रगुप्त' में राष्ट्रीय एकता का महत्त्व बताया गया है। मालव और मागध की प्रांतीयता को घृणित भावना कहा गया है। विस्तार के लिए दे० नाटकों के कथन और सूक्तियाँ, अनुक्रमणिका।

अतीत के गड़े मुर्दे उखाड़ना ही प्रसाद का काम नहीं है, अतीत की पीठिका

पर वर्तमान समस्याओं का समाधान उपस्थित करना उनका विशेष ध्येय रहा है।

दे० समाज, यथार्थ भी।

सारस्वत प्रदेश वा नगर—सरस्वती के तट पर पावन प्रदेश, जहाँ इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था। इससे विदित होता है कि यहाँ असुर-सभ्यता का प्रभाव रहा। किलात और आकुलि नाम के असुर-पुरोहित भी यहीं की प्रजा का नेतृत्व कर रहे थे। असुर-प्रभावित बुद्धिवाद और भौतिकता (इड़ा) का सहारा पाकर मनु में जो स्वार्थ और अहंकार जाग पड़ा, तो यह स्वाभाविक ही था।

'कलरव कर जाग पड़े मेरे,
यह मनोभाव सोये विहंग।'

मनु और सारस्वत प्रजा का संघर्ष देवासुर सभ्यताओं का संघर्ष है ! असुर शक्तियां सदा प्रबल दीखती रही हैं। लेकिन देवत्व के सम्पर्क से उनमें अन्तर आया है। अन्त में सारस्वत नगर के निवासी भी कैलास जाते हैं और मनु के खोजे हुए आनन्द को प्राप्त करते हैं।

—**कामायनी; इड़ा, संघर्ष, निर्वेद और आनन्द सर्ग**

[दे० सरस्वती]

सारिपुत्र—बौद्ध आचार्य। नाटक में केवल एक दृश्य में आते हैं (अंक २, दृश्य ५)। मल्लिका देवी के धैर्य्य की प्रशंसा करते है, उसे 'मूर्त्तिमती करुणा', 'मूर्त्तिमती धर्मपरायणता' कहते हैं।

—**अजातशत्रु, २-५**

[बुद्ध और आनन्द का अभिन्न मित्र, बुद्ध का मुख्य शिष्य। उसका मूल नाम उपतिस्स था। उसके पिता 'वणगंत' ब्राह्मण थे और उसकी माता का नाम रूपसारी था। बुद्धि और ज्ञान में वह बौद्ध-भिक्षुओं में सर्वश्रेष्ठ था।]

सालवती[1]—प्रसाद की अन्तिम कहानी जो 'सरस्वती', १९३५ में प्रकाशित हुई थी। लम्बी ऐतिहासिक कथा। हिरण्यगर्भ के उपासक वैशाली गणतंत्र के कुलपुत्र आर्य धवलयश की पुत्री कुमारी सालवती सौन्दर्य की अद्भुत प्रतिमा थी, जो सदानीरा के किनारे सालवन में रहती थी। आठ कुलपुत्रों के आग्रह से वह अपना सालवन-निवास छोड़कर वज्जिसंघ में सौन्दर्य प्रतियोगिता में सम्मिलित हुई। वह संगीत में भी कुशल थी। उसे विजय मिली और वह अनंग-पूजा के लिए सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी चुनी गई। उपराजा अभयकुमार ने, जिसका हृदय पहले ही उसके गुणों से बँध गया था, उससे पाणिग्रहण की याचना की ; किन्तु बहुमत से वह सेनापति मणिधर को मिली। मणिधर की इच्छा से वह कुलवधू न बनकर नगरवधू बनाई गई। एक भीषण युद्ध में मणिधर मारा गया और अभयकुमार सेनापति हुआ। सालवती के विजय नाम का लड़का हुआ, जो अभय के हाथ लगा। आठ वर्ष बीत गए। अब की प्रतियोगिता में भाग लेने निकली, तो नारी समाज ने उसे वेश्यावृत्ति आरम्भ करने वाली

तिरस्कृत नारी माना। अब उसने वेश्या-वृत्ति बन्द करने का निश्चय किया। अन्य आठ वेश्याओं को, जो पिछले ८ वर्षों की प्रतियोगिताओं में अनंग की पुजारिन बनी थीं, आठ कुलपुत्रों ने और सालवती को अभयकुमार ने स्वीकार किया। सालवती को अपना पुत्र भी मिल गया और प्रेम भी। जयनाद से संस्थागार मुखरित हो उठा। कुलपुत्र तीर्थंकरों के अनुयायी थे। धवलयश के अतिरिक्त आठ कुल-पुत्रों के नाम ये हैं—अभिनन्द, सुभद्र, वसन्तक, मणिकण्ठ, आनन्द, अन्तेवासी, सुमंगल, मैत्रायण। दे० यथास्थान। इनके प्रसंग ने कथा को अनावश्यक रूप में लम्बा और जटिल बना दिया है। कहानी का वातावरण बहुत सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। उस युग के समाज, धर्म और राजनीति का प्रतिबिम्ब कहानी में विद्यमान है। कहानी के सभी अंग पुष्ट और सुन्दर हैं। —इन्द्रजाल

सालवती[२]—साल-कानन में रहती और सोना बेचती थी। उसे सोने का उद्गम मालूम था, इसलिए पिता की मृत्यु के बाद वह अपनी जीवन-चर्या में स्वतंत्र बनी रही। उसका रूप और यौवन मानसिक स्वतंत्रता के साथ सदानीरा की धारा की तरह वेगपूर्ण था। प्रति-योगिता में राष्ट्र की सुन्दरतम कन्या घोषित हुई। अनंग की पुजारिन के रूप में १०० स्वर्णमुद्राएँ प्रति रात्रि उसकी दक्षिणा नियत हुई, क्योंकि वह समझती थी कि स्वर्ण ही संसार में प्रभु है। कुलवधुओं ने इसे फटकारा, तो इसने अनंगपूजा को ही बन्द कर देने का निश्चय किया। —(सालवती)

सालुम्ब्रापति—दे० कृष्णसिंह।
—महाराणा का महत्त्व

साहित्य—साहित्य का कोई लक्ष्य नहीं होता। साहित्य के लिए कोई विधि या बंधन नहीं है। साहित्य में कवि का व्यक्तित्व सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है। साहित्य के विषय हैं सत्य और सुन्दर। नये साहित्य के लिए रीति काव्य अथवा पश्चिमी साहित्य का अनुकरण ठीक न होगा। निबन्ध। —इन्दु, १९०९-१०

साहित्य-सेवा भी एक व्यसन है। (विमल) —(पत्थर की पुकार)

अतीत और करुणा का जो अंश साहित्य में है, वह मेरे हृदय को आक-र्षित करता है।...स्तुत्य अतीत की घोषणा और वर्तमान की करुणा। (नवल) —(पत्थर की पुकार)

साहित्य-दर्पण—चैतन्य और आत्मा का अभिन्न होना ही रस है। रस, पृ० ४६

[विश्वनाथकृत प्रामाणिक काव्यशास्त्र जिसमें काव्य, रस, रीति, अलंकार आदि की सूत्रशैली में व्याख्या की गई है—समय १३५० ई०।]

सिकन्दर—ग्रीक विजेता। वीर, गम्भीर, उत्साही, नीति-पटु, कार्यकुशल। पर्व-तेश्वर को पराजित करता है और उसके साथ राजोचित व्यवहार करता है। वह रणकुशल योद्धा है। महात्माओं एवं

गुणी पुरुषों के प्रति वह श्रद्धा एवं सम्मान प्रदर्शित करता है। वह चाणक्य के प्रति भी समुचित आदर और सौहार्द व्यक्त करता है। वह उदार है। "मैंने भारत में हरक्यूलीस, एचिलिस की आत्माओं को भी देखा और देखा डिमास्थनीज को। सम्भवतः प्लेटो और अरस्तू भी होंगे। मैं भारत का अभिनन्दन करता हूँ।" सिकन्दर चन्द्रगुप्त का प्रतिपक्षी है, इसलिए नाटककार ने उस पर नृशंसता, लोभ और क्रूरता का आरोप लगाया है। वास्तव में प्रसाद विदेशी वीरों के प्रति पूर्णतः न्याय नहीं कर पाए। —**चन्द्रगुप्त**

[सन् ३२६ ई० पू० में भारत पर आक्रमण किया। गांधार-नरेश आंभी (आंभीक) इससे मिल गया। पुरु (पोरस) ने विरोध किया ; पर वह हार गया। उसकी वीरता से प्रभावित हो सिकन्दर ने पुनः उसे व्यास और झेलम के दोआब का क्षत्रप नियुक्त किया। मालव और क्षुद्रकों ने मिलकर सिकन्दर को बुरी तरह घायल किया। वह मकदूनिया लौट गया और ३२३ ई० पू० में उसका देहान्त हो गया। प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक की भूमिका (पृ० २४–२५) में सिकन्दर के भारतीय आक्रमण का पूरा विवरण दिया है।]

सिकन्दर[२]—गाज़ा और परसिपोलिस आदि के विजेता को अफ़गानिस्तान के एक छोटे से दुर्ग को जीतने में सफलता नहीं मिली। इस कहानी में उसे धोखेबाज दिखाया गया है। कपट से सरदार की हत्या करना, प्रतिज्ञा का पालन न करना, प्रलोभन देकर भारतीय सैनिकों को अपनी सेना में लेने की चेष्टा करना, आदि बातें उसके हीन चरित्र का प्रमाण हैं। —(**सिकन्दर की शपथ**)

सिकन्दर[३]—दे० सिन्धु। —**स्कन्दगुप्त**

[मैकदोनिया (ग्रीस) का प्रसिद्ध सम्राट्, योद्धा तथा विजेता, जिसने सीरिया, मिस्र, ईरान, अफगानिस्तान, पंजाब आदि देशों को अपने राज्य में मिलाया। भारत में ३२६ ई० पू० में प्रवेश किया। मृत्यु ३२३ ई० पू०—आयु ३२ वर्ष।]

सिकन्दर की शपथ—अश्वक जाति के वीर भारतीय सैनिक मिंगलौर (अफगानिस्तान) के सरदार के निमंत्रण पर उसे सहायता देने गए थे। सिकन्दर उस दुर्ग को वीरतापूर्वक विजय न कर सका, तो उसने कपट से सरदार की हत्या कर दी और दुर्ग में प्रवेश पाया। सरदार-पत्नी ने सिकन्दर को उत्कोच देकर टालना चाहा और अन्त में आत्मसमर्पण कर दिया। वह वहां की रानी बनाई गई। सन्धि के अनुसार भारतीय सैनिक अपने देश को लौटने लगे ; लेकिन सिकन्दर ने शपथ तोड़ दी और उन्हें अपनी सेना में सम्मिलित करना चाहा तो उन्होंने इन्कार किया। युद्ध फिर छिड़ गया और न जाने कितने वीर 'राजपूतों' ने प्राण दिए। आज हम उनके नाम तक नहीं जानते।

इस घटना की ऐतिहासिकता संदिग्ध

है। कहानी का उद्देश्य सराहनीय है। इसमें प्रसाद के इतिहास-प्रेम के साथ उनकी राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं। बाद में इसका विस्तार 'चन्द्रगुप्त' नाटक में हुआ है। कहानी में प्रसाद व्याख्यानदाता होकर आए हैं। —छाया

सिंघारपुर—खारी नदी के तट पर (फतेहपुर सिकरी के निकट) एक गांव; गाला और बदन की गूजर बस्ती इसी के पास थी। —**कंकाल**, ३-५

[अछनेरा के पास, जिला आगरा।]

सिन्धु[1] (तट)—पांच दृश्य सिन्धुतट से सम्बद्ध हैं। यवन सेनाएँ यहां से पार होकर आम्भीक की सहायता से पर्वतेश्वर पर टूट पड़ी। दाण्ड्यायन का आश्रम भी यहीं था। मालविका सिन्धुदेश की थी। —**चन्द्रगुप्त**

सिन्धु[2]—फूलों से भरी, फलों से लदी हुई, सिन्ध और झेलम की घाटियों की हरियाली! वह कश्मीर जिसके लिए शाहजादा याकूब खां ने नारी-प्रेम को ठुकरा दिया। —(**नूरी**)

सिन्धु[3]—सिन्धु देश के तुरंग। —(**पुरस्कार**)

सिन्धु[4]—सिन्धु के उस पार का देश भी भारत-साम्राज्य के अन्तर्गत था। जगद्विजेता सिकन्दर के सेनापति सिल्यूकस से उस प्रान्त को मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त ने लिया था। —**स्कन्दगुप्त**, १

हूणों को सिन्धु का तट छोड़ देना पड़ा। और सिन्धु प्रदेश से म्लेच्छराज का ध्वंस हुआ, तब स्कन्दगुप्त ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। —**स्कन्दगुप्त**, ३

स्कन्दगुप्त ने अन्त में सिन्धु के इस पार के हूणों को घेर लिया।

—**स्कन्दगुप्त**, ५

सिन्धु[5]—दे० शिप्रा। —**स्कन्दगुप्त**

सिन्धु[6]— —(**स्वर्ग के खँडहर में**)

[हिमालय में रावण ह्रद से निकलती हुई अटक के समीप मैदान में प्रवेश करती है। यहीं इसके साथ काबुल (कुभा) नदी मिलती है। पंजाब की सब नदियां भी मुलतान के पास इसमें आ मिलती हैं। लम्बाई १८०० मील है। भारत और गान्धार की सीमा पर है।]

सिन्धुकोश—पर्वत। अशोक के राज्य की उत्तरी सीमा। —(**अशोक**)

सिन्धुदेश[1]— —(**अशोक**)

सिन्धुदेश[2]—मालविका सिन्धुदेश की थी। —**चन्द्रगुप्त**, २-५

सिन्धुदेश[3]—यहां के धवल अश्व प्रसिद्ध रहे हैं। —(**सालवती**)

[वर्तमान सिन्ध (राजधानी कराची) जो अब पाकिस्तान में है।]

सिंहपाद—साधारण पात्र। —**इरावती**

सिंहपुर—देवनन्दन की किसानी।

—**तितली**, १-७

सिंहमित्र—मधूलिका का पिता, वाराणसीयुद्ध का अन्यतम वीर, जिसने मगध के सामने कोशल की लाज रखी थी। —(**पुरस्कार**)

सिंहरण—मालवगण-मुख्य का कुमार।

सच्चा वीर, निर्भीक, स्पष्टवादी, कर्त्तव्य-परायण, सरल, विनम्र और सतर्क। वह एक प्रकार से छोटा चन्द्रगुप्त ही है। उसे तक्षशिला का स्नातक होने का गर्व है। तक्षशिला मे चाणक्य और चन्द्रगुप्त का सहवास पाकर उसने तत्कालीन राजनीति को समझा और राष्ट्रभावना को हृदयंगम किया। उसे देश की चिन्ता है और यवनों के प्रति आन्तरिक घृणा। सिकन्दर के साथ युद्ध करते हुए उसने वह वीरता दिखाई कि सिकन्दर के सारे स्वप्न टूट गए। उसमे आत्मविश्वास भरा है। "वर्तमान को मै अपने अनुकूल बना ही लूंगा।" युद्ध के लिए उसमे सदा उत्साह और तत्परता है। वह देश-द्रोही आम्भीक से भी घृणा करता है। उसे अपने गुरुदेव चाणक्य में श्रद्धा है। वह चन्द्रगुप्त का दाहिना हाथ है। यवन-सेना के साथ युद्ध मे वह चन्द्रगुप्त की सहायता करता है। प्रेमी के रूप में वह अलका को अपने हृदय की एकमात्र देवी मानता है। दोनों की प्रकृति में साम्य है। अलका भी उसे पाकर फूली नहीं समाती। दोनों का विवाह होता है।

—चन्द्रगुप्त

सिंहल[1]—प्रज्ञासारथि कहते हैं कि यदि मैं चाहूँ तो प्रव्रज्या ले सकता हूँ, नहीं तो गृही बनने मे धार्मिक आपत्ति नहीं। सिंहल में तो यही प्रथा प्रचलित है।

—(आंधी)

सिंहल[2]—यहां के वणिक् दूर-दूर टापुओं तक पहुँचते थे। —(आकाशदीप)

सिंहल[3]—अभी कई दिन हुए मै सिंहल मे आ रहा हूँ, मेरा पोत समुद्र में डूब गया है। (युवक) —(खंडहर की लिपि)

सिंहल[4]—सिंहल में और काश्मीर मे क्या भेद है। तुम (काश्मीरी) गौरवर्ण हो, लम्बे हो, खिंची हुई भौंहें है। सब होने पर भी सिंहलियों की घुँघराली लटे, उज्ज्वल श्याम शरीर, क्या स्वप्न में देखने की वस्तु नहीं। (धातुसेन)

—स्कन्दगुप्त, १

भारत ने सिंहल को शील सिखाया। (गीत) —स्कन्दगुप्त, ५

दे० सीलोन और लंका भी।

[भारत के दक्षिण में द्वीप। अनुमान किया जाता है कि किसी समय में यह प्रदेश भारत से मिला हुआ था। लम्बाई २७० मील, चौड़ाई १४० मील है।]

सिंहवर्मा—पुष्करणाधिपति सिंहवर्मा ने अवन्ती मे एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। —स्कन्दगुप्त

[समय चौथी शती।]

सिल्यूकस[1]—वीर, स्वाभिमानी, पर कातर तथा अवसरवादी।

—कल्याणी-परिणय

सिल्यूकस[2]—सिकन्दर का सेनापति, वीर, साहसी और उदार। नाटक के आरम्भ में वह आक्रमणकारी, हिंसक पशु है जिसे अलका को बन्दी बना कर उससे मानचित्र छीनने में संकोच नहीं हुआ। बाद में नाटककार ने उसे भारतीय संस्कृति के रंग में रंगा है। वह चन्द्रगुप्त की रक्षा करता है और उसे अपने शिविर में ले

आता है। वह भारतीय वीरों की वीरता पर मुग्ध है। वह हत्यारा नहीं था। उसमें केवल विजेता होने की महत्त्वाकांक्षा थी। अपनी पुत्री कार्नेलिया को चन्द्रगुप्त को समर्पित करके उसने वात्सल्य की विजय स्वीकार की। कर्त्तव्यपरायण होने के साथ-साथ वह मानव भी है। परिस्थितियों के अनुसार बदल जाना उसके चरित्र की प्रमुख विशेषता है। —**चन्द्रगुप्त**

[सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसका सेनापति सिल्यूकस सीरिया प्रान्त का अधिपति बना। सिल्यूकस और चन्द्रगुप्त का युद्ध सन् ३०५ ई० पू० में हुआ। सिल्यूकस हार गया। वर्तमान लासबेला, कलात, कंदहार, हिरात और काबुल के प्रदेश उसने चन्द्रगुप्त को दिये और अपनी पुत्री एथिना (हेलेन) का विवाह भी उससे कर दिया। प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' की भूमिका में (पृ० ३२–३६) सिल्यूकस का विस्तृत वृत्तान्त दिया है।]

सिल्यूकस[२]—दे० सिन्धु।

—**स्कन्दगुप्त, १**

[सिकन्दर महान् का साथी और उसकी मृत्यु के बाद बाक्त्रिया का प्रशासक, विजेता और योद्धा; चन्द्रगुप्त मौर्य से हार गया था।]

सीकरी—फतहपुरसीकरी, मुगल-साम्राज्य का वह अलौकिक इन्द्रजाल! अकबर की यौवन-निशा का सुनहरा स्वप्न—सीकरी का महल। अकबर यहीं रहता था। बाद में इसे छोड़ दिया। इतना आकस्मिक उत्थान और पतन! जहां एक विश्वजनीन धर्म (दीने इलाही) की उत्पत्ति की सूचना हुई, जहां उस धर्मान्धता के युग में एक छत के नीचे ईसाई, पारसी, जैन, इस्लाम और हिन्दू आदि धर्मों पर वादविवाद हो रहा था, जहां सन्त सलीम की समाधि थी, जहां शाहजादा सलीम का जन्म हुआ था, वहीं अपनी अपूर्णता और खंडहरों में अस्त-व्यस्त सीकरी का महल अकबर के जीवन-काल में ही, निर्वासित सुन्दरी की तरह दया का पात्र, शृंगार-विहीन और उजड़ा पड़ा था। शाहजादा सलीम को यहां रहने की आज्ञा मिली, तो उसने इसका उद्धार करना चाहा। —(**नूरी**)

[दे० अकबर, फतहपुर सीकरी।]

सीतल—दे० खड़ी बोली।

[टट्टी सम्प्रदाय के महन्त, जिनका कविताकाल १७८० ई० माना जाता है। मिश्रबन्धुओं ने इन्हें खड़ी बोली का प्रथम कवि कहा है। रचनाएँ—गुलजार चमन, आनन्द चमन और बहार चमन।]

सीता[१]—दे० त्रिजटा।

सीता[२]— —(**रंगमंच, पृ०, ७६**)

सीता[३]— —(**सत्यव्रत**)

[राम की पत्नी। वर्णित है कि जनक के हल जोतने से ये पृथ्वी से निकली थी। इससे इनका नाम भूमिजा है। अन्त में ये भूमि में ही समा गई थीं। वाल्मीकि आश्रम में इनके लव और कुश दो पुत्र हुए थे।]

सीमाप्रान्त[1]— —**राज्यश्री, १**

सीमाप्रान्त[2]— —(**सलीम**)

[अब पश्चिमी पाकिस्तान में।]

सीरिया[1]— —**कल्याणी-परिणय**

सीरिया[2]—सीरिया सिल्यूकस के राज्य में था। —**चन्द्रगुप्त, ४-१४**

[भूमध्यसागर के तट पर एशिया का प्राचीन देश।]

सीलोन—वहां से मोती की खरीद होती थी। भारत के व्यापारी वहां यह काम करते थे। —(**मदन-मृणालिनी**)

दे० सिंहल, लंका।

सुएनच्वांग—चीनी यात्री।

[चीनी बौद्ध जो खोतान, गांधार से होकर तक्षशिला आए। ६२९ से ६४४ ई० तक भारत में रहे। हर्ष को वंगयात्रा में मिल गए। हर्ष इन्हें आग्रह-पूर्वक कन्नौज ले आया। इनका यात्रा-वर्णन तत्कालीन इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण है।] —**राज्यश्री, अंक ४**

सुकरात—तर्कशास्त्री। (कार्नेलिया) —**चन्द्रगुप्त, ४-७**

[प्लेटो का गुरु, समय ४५० ई० पू० के आस-पास ; दे० प्लेटो।]

सुकुमारी—ठाकुर किशोरसिंह की पत्नी। आदर्श पुरानी सभ्यता का पालन करने वाली भारतीय गृहिणी। —(**शरणागत**)

सुख—सब सुख सब के पास एक साथ ही नहीं आते, नहीं तो विधाता को सुख बांटने में बड़ी बाधा उपस्थित हो जाती। (सोमदेव) —**कंकाल, पृ० ११९**

दे० दुःख भी।

सुख तो मान लेने की वस्तु है। कोमल गद्दों पर चाहे न मिले ; परन्तु निर्जन मूक शिलाखंड से उसकी शत्रुता नहीं। (सन्तोष) —**कामना, २-७**

सुख का गर्व—बिना किसी दूसरे को अपना सुख दिखाए हृदय भली भांति गर्व का अनुभव नहीं कर पाता। —(**उस पार का योगी**)

सुख की सीमा नहीं सृष्टि में नित्य नए ये बनते हैं—चन्द्रलेखा कहती है कि सुख तो अनन्त हैं, इनका रूप आवश्यकता के अनुसार नित्य नया बनता रहता है। सन्तोष सच्चा सुख है, पूर्णकाम ही शान्ति को प्राप्त करता है। —**विशाख, २-४**

सुख दुःख—किसी कर्म को करने के पहले उसमें सुख की ही खोज करना क्या अत्यन्त आवश्यक है ? सुख तो धर्माचरण से मिलता है। अन्यथा संसार तो दुःखमय है ही। संसार के कर्मों को धार्मिकता के साथ करने में ही सुख की सम्भावना है। (प्रज्ञासारथि) —(**आंधी**)

दे० दुःखवाद, आनन्दवाद।

चिर दुःखी को सुख की
आशा उसे असीम हर्ष देती,
सुखी नित्य डरता रहता
ध्यान भविष्यत का करके।

—**प्रेमपथिक, पृ० २३**

सुखदेव चौबे—एक खल पात्र, धूर्त और कामुक। राजो को पथभ्रष्ट करता है। —**तितली**

सुखभरी नींद—इन्दु, कला ६, खंड २, किरण ३, सितम्बर '१६, में प्रकाशित

चतुर्दशी। कवि ने कलिकाओं की माला गूंथी थी कि प्रिय के आने तक वह खिल जायगी। कलिकाएँ खिल गयीं ; पर हृदय की कली न खिली।

सुखिया[1]—गाँव की कोई स्त्री।

—**चूड़ीवाली**

सुखिया[2]—शेरकोट की एक ग्रामीणा।

—**तितली**

सुखी कुटुम्ब—जब स्वजन लोग अपने शील-शिष्टाचार का पालन करें—आत्म-समर्पण, सहानुभूति, सत्पथ का अवलम्बन करें, तो दुर्दिन का साहस नहीं कि उस कुटुम्ब की ओर आँख उठा कर देखे। (देवकी) —**स्कन्दगुप्त**, २-४

दे० बच्चे बच्चों से खेलें....

सुग्रीव—दे० लंका। —**स्कन्दगुप्त**, १

[सूर्य के पुत्र, बालि के अनुज, किष्किन्धा के राजा, राम के प्रसिद्ध मित्र। रावण के साथ युद्ध में सुग्रीव ने राम की बड़ी सहायता की थी।]

सुजाता—संसार को दुःखपूर्ण समझ कर संघ की शरण में आई थी। दो-तीन रेखाएँ भाल पर, काली पुतलियों के समीप मोटी और काली बरौनियों का घेरा, घनी आपस में मिली रहने वाली भवें और नासा-पुट के नीचे हलकी-हलकी हरियाली उस तापसी के गोरे मुह पर सबल अभिव्यक्ति की प्रेरणा प्रगट करती थी। भिक्षुणी बनकर भी वह शान्ति न पा सकी।

बौद्ध महन्त ने इसे 'भैरवी' बना दिया। आर्यमित्र उसे अपनी वाग्दत्ता भावी पत्नी कहता है ; पर वह आर्य-मित्र को अपनाए तो कैसे। वह अमूल्य उपहार—जो स्त्रियाँ, कुलवधुएँ अपने पति के चरणों में समर्पण करती हैं, यह कहाँ से लाए ! वह वरमाला जिसमें दूर्वा-सदृश कौमार्य हराभरा रहता हो, जिसमें मधूक-कुसुम-सा हृदय-रस भरा हो, बेचारी कहाँ से लाकर पहनाए। जब स्थविर ने उसे प्रायश्चित्त करने को कहा तो कड़क कर बोली—'किसके पाप का प्रायश्चित्त। तुम्हारे या अपने ?... चुप रहो असत्यवादी वज्रयानी नर-पिशाच...मैं मरूंगी ; किन्तु तुम्हारा यह काल्पनिक आडम्बरपूर्ण धर्म भी मरेगा। मनुष्यता का नाश करके कोई धर्म खड़ा नही रह सकता।' सुजाता के चरित्र में प्रबल दृढ़ता है। —(**देवरथ**)

सुदत्त—कोशल का कोषाध्यक्ष। अत्यन्त गौण पात्र। आया था वासवी को मगध से कोशल ले जाने ; पर उस पर विपत्ति आई देख लौट जाता है।

—**अजातशत्रु**, १-३, १-७

सुदर्शन—भावुक राजकुमार।

—(**समुद्र-सन्तरण**)

सुदान—सिन्धु-तट पर अभिसार-प्रदेश के कुमार जिनकी तपोभूमि में अशोक-निर्मित वह बौद्ध-विहार था, जहाँ लज्जा ने शरण ली। —(**स्वर्ग के खँडहर में**)

दे० देवपाल

[समय १३वीं शती का अन्त।]

सुदामा— —(**मकरन्द-बिन्दु**)

[कृष्ण के सहपाठी, कृष्ण की कृपा से इन्हें स्वर्ण-नगरी मिली।]

सुद्युम्न—दे० इला। —**उर्वशी-चम्पू**

[मनु के पुत्र, पहले जन्म में श्रद्धा की पुत्री इला, थे। पार्वती को नग्न देखने पर स्त्री हो गए—इनसे पुरुरवा की उत्पत्ति हुई। वसिष्ठ की दया से फिर पुरुष हुए।]

सुधा में गरल—८-८ पंक्तियों के तीन पद। 'सुधा में मिला दिया क्यों गरल', 'सुना था तुम हो सुन्दर! सरल।' हमारे लिए तो शुक्ल की अष्टमी की रात हो गई—आधी उजली, आधी काली। तुम्हारे संयोग से मन की 'कुमुदिनी मुकुलित हो कुछ खिली' थी कि तुम्हारे वियोग से 'अस्त हो गई कौमुदी—राह में ही।' अब बीते कैसे रात! —**झरना**

सुधार—लड़कों को कड़ा दंड देने से सुधार होने की सम्भावना तो बहुत कम होती है, उल्टे उनके स्वभाव में उच्छृंखलता बढ़ती है। (इन्द्रदेव) —**तितली, २-७**

सुधार की आवश्यकता—सुधार सौन्दर्य का साधन है। समाज की उन्नति करें, परन्तु संघर्ष को बचाते हुए। अतिवाद से बचना है। लोकापवाद का भय दूर करना होगा! इत्यादि (पढ़ें मंगल का व्याख्यान)। —**कंकाल, पृ० ३००-३०२**

सुधा-सीकर से नहला दो—अपनी अंतिम घड़ियों में आकाश के चन्द्र को देखकर कल्याणी को अपने 'चन्द्र' का स्मरण हो आया। उसके अन्तिम स्वर 'चन्द्र' की छाया चाहते हैं। वह उन्मत्त-सी गाने लगती है—हे मेरे चन्द्र, अपने सुधा-सीकर से मुझे नहला दो। आज हृदय-सागर बहुत व्यथित और कंपित है, इसे नहला दो, ताकि यह शान्त हो जाय। इस अँधेरे को उज्ज्वल कर दो। अपनी मृदुवाणी से पूर्णिमा के आगमन की बात प्रकट कर दो। मेरे अंचल पर जो आँसू बिखरे हैं, उन्हें सहला दो, तो वे मोती बन जायँ। —**चन्द्रगुप्त, ४-१**

सुधासिञ्चन—लघु कविता। 'बहुत दिन से था हृदय निराश', पर आज मन को न सम्भाल सकूंगा। व्यथा सब कहे देता हूँ। 'तुम्हारा शीतल सुख परिरम्भ' मिल जाये, तो 'हृदय-क्षत मलयज से खिल जाय'।

"घटा से निकल बस नवचन्द्र
सुधा से सींची जाय मही।"

—**झरना**

सुनहला साँप—एक सिद्धान्तवादी और मनोवैज्ञानिक कहानी। चन्द्रदेव अपने मित्र देवकुमार के साथ पहाड़ पर गया। एक दिन वे वर्षा से बचने के लिए पास की एक पहाड़ी चट्टान की गुफा में घुस पड़े। साथ में चन्द्रदेव का नौकर रामू भी था। चन्द्रदेव ने देखा कि एक श्याम, पर उज्ज्वल, मुख अपने यौवन की आभा में दमक रहा है। वह इस पहाड़िन की ओर आकर्षित हुआ। इसका नाम नेरा था। साँप पकड़ना इसका धंधा था। उस दिन इसने रामू की सहायता से एक सुनहला साँप पकड़ा। तीन दिन बाद चन्द्रदेव ने देखा कि नेरा और रामू

घुल-मिल कर बातें कर रहे हैं। उसे बड़ा रोष हुआ। रात को रामू शराब की बोतल लेने भीतर आया, तो वही सुनहरा सांप उससे लिपट गया। नेरा ने उसकी जान छुड़ाई। चन्द्रदेव ने जो देखा, तो आग-बबूला हो गया। बोला, "रामू, अभी चले जाओ, और कभी अपना मुंह मत दिखाना।" ठीक ग्यारह महीने बाद चन्द्रदेव ने रामू और नेरा को पति-पत्नी के रूप में देखा। चन्द्रदेव अपने हृदय की कमजोरी का अनुभव अब करने लगा।

कहानी में यह जतलाया गया है कि मनुष्य स्वयं अपने को भी पूर्णतया नहीं समझता। कथानक नगण्य है। कथोपकथन और वर्णनशैली सुन्दर है। उद्देश्य अस्पष्ट-सा है। —आकाशदीप

सुनो—दे० वसन्त विनोद।

सुन्दरपुर—चन्दनपुर की जमींदारी में किशोरसिंह का गांव जिसे विद्रोह के दिनों में सिपाहियों ने लूट लिया। —(शरणागत)

सुन्दरी—दृढ़ चरित्र विधवा, कर्मशीला रमणी। —(विजया)

सुभद्र—वैशाली के कुलपुत्र। "मैं यह मानता हूँ कि मृत्यु के साथ ही सब झगड़ों का अन्त हो जाता है।" —(सालवती)

सुभद्रा[1]—हरद्वार में आर्यसमाजी विदुषी महिला। तारा के पास प्रायः आती। —कंकाल, १-३

सुभद्रा[2]—कृष्णकथा के प्रसंग में। 'सख स्थापन कर सुभद्रा को विवाहा पार्थ से। —(कुरुक्षेत्र

सुभद्रा[3]—दे० अर्जुन के प्रसंग में। [वासुदेव-देवकी की कन्या, अर्जु की पत्नी, अभिमन्यु की माता।]

सुमङ्गल—वैशाली के कुलपुत्र। "· तीर्थंकर गौतम का अनुयायी हूँ, किस वास्तविक सत्ता में विश्वास ही नह करता। आत्मन् जैसा कोई पदार्थ ह नहीं है।" —(सालवती

सुमात्रा— —(आकाशदीप

सुम्भानाला—काशी में। —(गुंडा

सुयोधन— —(कुरुक्षेत्र

[= दुर्योधन]

सुरमा—कन्नौज की एक मालिन, 'भावना मयी युवती' (देवगुप्त); 'यौवन स्वास्थ्य और सौन्दर्य की छलकती हुई प्याली' (देव०); स्वस्थ, सुन्दर, पर चंचल और विवेकहीन। वासना से अभिभूत वह शांतिदेव से कहती है—"मेरी प्राणों की भूख, आँखों की प्यास, तुम न मिटाओगे ?" देवगुप्त से भेंट होने पर 'इसके हृदय में महत्त्व की आकांक्षा' उभर आती है। देवगुप्त उस पर इतना लट्टू है कि अपने को मालिन का अनुचर कहता है। वह हैरान होती है—क्या यह मेरे अदृष्ट का उपहास तो नहीं। देवगुप्त के साथ विलास और वैभव पाकर वह शांतिभिक्षु को ही नहीं, अपने को भी भूल जाती है। आशातीत सुखों की आकस्मिक प्राप्ति से वह आपे में नहीं

समाती ; पर यह जीवन का उन्माद न रहा। वह शांतिभिक्षु के साथ दस्यु-वृत्ति निभाने को विवश होती है। अन्त में वह पश्चात्ताप करती है और सन्मार्ग पर अग्रसर होती है। इस परिवर्त्तन के पीछे कोई अन्तर्द्वन्द्व नही है। चरित्र की दुर्बलता कोई मनोवैज्ञानिक स्थिति नहीं है, मनुष्य को क्या-क्या नाच नचाती है ! —राज्यश्री

सुरसरि[1]— —(चित्रन)

सुरसरि[2]— —(देवबाला)

सुरसरि[3]— —(प्रेमराज्य, उत्तर०)

[दे० गंगा]

सुरेन—वीरू का साथी।

—तितली, खंड ४

सुरेन्द्र = इन्द्र। —सज्जन, ५

सुलतान = सुलतान अलाउद्दीन खिलजी। दे० अलाउद्दीन।

सुवासिनी—मगध सम्राट् नन्द के मंत्री शकटार की रूपवती कन्या जो शकटार के अंधकूप में डाले जाने के बाद सम्राट् नन्द की राजनर्तकी बनती है। वह सर्व-प्रथम नन्द के विलास-कानन की सुन्द-रियों की रानी के रूप मे हमारे सामने आती है ; और वह है राक्षस की प्रेयसी। वह राक्षस से कहती है—"मैं तुम्हारा प्रणय अस्वीकार नहीं करती ; किन्तु अब इसका प्रस्ताव पिता जी से करो . . .।" जब सम्राट् अपनी दुर्भावना प्रगट करता है तो वह उसे कठोरता से झाड़ देती है। चाणक्य से इसका बाल्यकाल से परिचय है और पूर्व स्मृतियां उसे चाणक्य की ओर आकृष्ट करती हैं ; लेकिन इसको भी वह हल कर लेती है। वह उसकी बहिन बन जाती है, और राक्षस की पत्नी। प्रेमपक्ष मे वह दृढ़ और संयत है। अपने चिर-दुःखी पिता की भावनाओं का आदर करती है। सुवासिनी में भाव-स्निग्धता के साथ ही वाक्चातुरी और कार्यपटुता भी पर्याप्त है। इसी से उसका प्रभाव कार्नेलिया और राक्षस पर पड़ा। वह राक्षस को युक्तिपूर्ण ढंग से यवन-शिविर से निकाल कर भारतीय सीमा मे ले आई। —चन्द्रगुप्त

सुवास्तु—उद्यान प्रदेश में पहाड़ी जहाँ देवपाल अपने दिन काट रहा था।

—(स्वर्ग के खँडहर में)

[वर्तमान स्वात नदी, जिसके किनारे गांधार की राजधानी पुष्कलावती स्थित थी—अब पाकिस्तान में।]

सुव्रता—दासी रूप में विश्वामित्र की गन्धर्व-विवाहिता स्त्री और शुनःशेफ की माता।

प्रभो! उस ग्राम से लांछित करके देश-निकाला ही मिला; क्योंकि गर्भिणी थी मैं। इससे घूमती आई मै इस ऋषि आश्रम के पास में। प्रसव-समर्पण किया इसी की गोद में और स्वयं अन्तःपुर में दासी बनी। —करुणालय

सुश्रुवा—स्वाभिमानी, ओजस्वी, नाग-सरदार; किसी समय रमण्याटवी का स्वामी था जिसके आतंक से सारा प्रदेश थर्राता था। शोषित और उत्पीड़ित

होने पर भी उसके चरित्र का पतन नहीं होता। राजा नरदेव उसकी सम्पत्ति लौटा देता है। पर मुश्रुवा एक और विपत्ति में फँस जाता है। उसके जामाता और कन्या चन्द्रलेखा को राजा के सैनिक पकड़ ले जाते हैं। —विशाख

सूक्ति—किसी के उजड़ने मे ही दूसरा बसता है। (श्रीनाथ) —(आंधी)

बरफ से ढकी हुई चोटियों के नीचे भी ज्वालामुखी होती है। (फीरोजा) —(दासी)

ऐश्वर्य का मदिरा-विलास किसे स्थिर रहने देता है? —(व्रतभंग)

सूचना—'ध्रुवस्वामिनी' की भूमिका (पृष्ठ संख्या ६) जिसमें यह समस्या उठाई गई है कि पति के जीते-जी किन अवस्थाओं में स्त्री को मोक्ष (तलाक) मिल सकता था। विशाखदत्त द्वारा रचित 'देवी चन्द्रगुप्त' नाटक, बाण-भट्ट, राजशेखर, नैलंग, राखालदास बनर्जी, अल्टेकर, जायसवाल, भण्डार-कर, अबुलहसन अली आदि के साक्ष्य मे चन्द्रगुप्त, रामगुप्त और ध्रुवदेवी के सम्बन्ध की घटना के सूत्रों को एकत्र किया गया है। साथ ही नारद, पराशर और कौटिल्य के वचनों को उद्धृत करके पुनर्लग्न के प्रश्न को सुलझाया गया है।

सूर—सूर के दो पद—कहां री जो कहिबे की होई (सौसन द्वारा गाया गया), हमारो हिरदय कुलिसहु जीत्यो (राम-प्रसाद द्वारा गाया गया)—उद्धृत हैं। —(तानसेन, ४)

दे० सूरदास।

सूरत—रामेश्वर यहीं रहते थे। लैला उ
रामेश्वर पहले सूरत में मिले थे। श्री
ने लैला को विश्वास दिलाया कि रामे
मे तुम्हें मिला दूंगा। वह जानती थी
सूरत, बंबई, कश्मीर वह चाहे कहीं
श्रीनाथ उसे लिवा चलेगा। —(आंध

[ताप्ती नदी पर बसा व्यापारके
पहले यह बंबई प्रान्त की राजधानी रहा

सूरदास—दे० मीरा।

[पुष्टिमार्गी कृष्ण कवि (१४७
१५८३ ई०); ब्रजभाषा प्रदेश
निवासी, सूरसागर, सूर सारावली अ
ग्रन्थों के रचयिता।]

सूर्यकेतु (सिंह)—विजयनगर के रा
जो टालीकोट के युद्ध में काम आ
महाराज यद्यपि वृद्ध थे, किन्तु बड़े उत्सा
और पराक्रमी थे। उन्होंने यवन-से
पर इस प्रकार धावा किया, जैसे ग
पन्नग प्रवाल पर। उन्होंने शत्रुओं
वध करके धर्म का पालन किया। अन्त
उन्हें सुगति प्राप्त हुई। —(प्रेमराज्य

[विजयनगर के तत्कालीन राजा का
इतिहास में सदाशिव राय मिलता है।]

सूर्यमल्ल—

मुगल—अदृष्टाकाश—मध्य अति तेज
धूमकेतु से सूर्यमल्ल समुदित हुए
—(शिल्प-सौन्दर

[औरंगजेब के समय में जाटों ने वि
किया। उनके सरदार चूड़ामन
सूर्यमल्ल इनका भतीजा था जि
भरतपुर में राज्य स्थापित किया। उ

मथुरा, आगरा, मेवाड़ आदि में विजय प्राप्त की। मृत्यु १७६४ ई०]

सृष्टि—सृष्टि एक व्यापार है, कार्य है। उसका कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य है। (श्रीकृष्ण)

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ, १-१**

सेवक—लूनी नदी में नाव चलाकर जीविका पाने वाला युवक मांझी; लोकोपकारक; युवती और युवक के संयोग में सहायक होता है।

—(**प्रणय-चिह्न**)

सेवा—दे० मानवता भी।

सोमदेव चौबे—मिरजा जमाल के यहाँ मुसाहिब और कवि। वह सहचर, सेवक और सभा-पंडित भी था। वह मिरजा का मुंह-लगा था, और उनके लिए प्राण भी दे सकता था। —**कंकाल, ३-६**

सोम—देवता। —**कामायनी, आशा**

सोमश्रवा—नागकन्या से उत्पन्न उग्रश्रवा का पुत्र और जनमेजय का नया पुरोहित; शुद्धबुद्धि, उदार ब्राह्मण। वह नाग-यज्ञ का विरोध करता है। जनमेजय और ब्राह्मणों में सौमनस्य देखकर उसे बड़ा सन्तोष होता है। उसमें ब्राह्मणोचित विनय और क्षमाशीलता की पराकाष्ठा है।

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ**

[महाभारत में इसे श्रुतश्रवा का पुत्र कहा गया है।]

सौन्दर्य—सर्वप्रथम इन्दु, कला ३, किरण ४ (मार्च १९१२) में प्रकाशित कविता। नील नीरद, चातक, चकोर, कलानिधि, कमल, भ्रमर सभी उल्लासपूर्ण हैं। सौन्दर्य लौह-हिय को भी द्रवित कर देता है। इसके रूप, रस, गंध, स्पर्श से मन प्राण मुदित हो जाते हैं। वास्तव में प्रिय का दर्शन स्वयं सौन्दर्य है। इसी व्यापक सौन्दर्य में सत्य है। यह सब सौन्दर्य—मानवी या प्राकृतिक—उस दिव्य शिल्पी का कौशल है। इसे देख लो, हृदय पर अंकित कर लो।

—**कानन-कुसुम**

उज्ज्वल वरदान चेतना का,
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं।

—**कामायनी, लज्जा, पृ० १०२**

सौन्दर्य लहरी—आनन्दकी सहज-भावना (अध्याय २७)—(**रहस्यवाद, पृ० २९**)

शिव की सहज-भावना में आनन्द (३०) —(**वही**)

[रचयिता शंकराचार्य (७८८-८२० ई०)। इसमें भगवती की स्तुति की गई है।]

सौमित्र = लक्ष्मण।

[सुमित्रा-नन्दन]

सौमिल्ल—दे० कालिदास।

[कालिदास ने इन्हें कविपुत्र कहा है। इनकी कोई रचना अब उपलब्ध नहीं है।]

सौराष्ट्र[1]—गोस्वामी कृष्णशरण कृष्ण-कथा के प्रसंग में बता रहे थे कि सुदूर सौराष्ट्र में श्रीकृष्ण के साथ यादव अपने लोकतंत्र की रक्षा में लगे थे।

—**कंकाल, २-६**

सौराष्ट्र[१]—दे० कामरूप।

—राज्यश्री, ३-३

सौराष्ट्र[२]—म्लेच्छवाहिनी से पदाक्रान्त हो चुका है। —स्कन्दगुप्त, १

सौराष्ट्र[३]—सौराष्ट्र की गतिविधि देखने के लिए एक रणदक्ष सेनापति की आवश्यकता है। वहाँ शक-राष्ट्र बड़ा चञ्चल अथच भयानक है। —स्कन्दगुप्त, १

सौराष्ट्र के शकों को स्कन्दगुप्त ने निर्मूल किया। —स्कन्दगुप्त, २

[प्राचीन समय में गुजरात, कच्छ और काठियावाड़ का प्रदेश सौराष्ट्र के अन्तर्गत था। गुजरात नाम बहुत बाद का है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने जीता था।]

सौसन—गायिका; सरदार-पत्नी उसे देहली से खरीद कर लाई थी। कमनीय कण्ठ। प्रथम साक्षात्कार में ही तानसेन की ओर आकृष्ट हुई। —(तानसेन)

स्कन्द[१]—देव सेनापति कुमार, बलवीर, लड़ाका; जिसके सम्बन्ध में गणेश कहते हैं—"तुम लोगों से बुद्धि उतनी ही समीप रहती है, जितनी कि हिमालय से दक्षिणी समुद्र।" —(पंचायत)

स्कन्द[२]—दे० शिव।

[= कार्त्तिकेय, शिव-पुत्र।]

स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य[१]—प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ नाटक-कृति; पाँच अंकों में प्रस्तुत ऐतिहासिक नाटक। इसमें पाश्चात्य और भारतीय पद्धतियों का सुन्दर और सफल समन्वय हुआ है। पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के अनुसार उसमें कार्य और संघर्ष तथा भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार रस, नायक और वस्तु का सफल निर्वाह इस नाटक की अपनी विशेषता है। सम्पूर्ण घटना-चक्र इतिहास द्वारा अनुमोदित है। नाटक की सभी कार्य-अवस्थाओं का स्पष्ट बोध होता है। स्कन्दगुप्त-सम्बंधी राजनीतिक और शृंगारिक कथाओं का विकास एक-साथ होता चलता है। अन्य नाटकों की भांति इसमें भी दुष्ट, साधारण और आदर्श पात्र आए हैं। पुरुषपात्रों में कर्म और शक्ति तथा स्त्रीपात्रों में सेवा और त्याग दिखाकर मर्यादा की स्थापना की गई है। दुष्ट पात्र जो इष्ट के विरोधी हैं, अपने किए का दण्ड पाते हैं। नायक स्कन्दगुप्त है जो युद्धवीर और त्यागवीर है। प्रधानता वीररस की है; पर अन्तिम दृश्य में शान्तरस ने व्याघात उपस्थित कर दिया है।—नाटक में प्रासंगिक कथा-वस्तु नहीं है। एक ही अविच्छिन्न कथा, एक ही भावना, एक ही उद्देश्य होने के कारण इसका प्रभाव अधिक है। उज्जयिनी, कुसुमपुर और गांधार तीन घटना-स्थल हैं। नाटक की प्रधान घटना है स्कंदगुप्त का हूणों से युद्ध। कथानक बहुत स्पष्ट है। अलबत्त: वस्तु का विस्तार, कुछ अधिक हो गया है। पात्रों की संख्या अधिक है। प्रपंचबुद्धि, कुमारदास, मुद्गल, प्रख्यातकीर्ति आदि अनेक पात्र नाटक के लिए अनिवार्य नहीं हैं। इन्हें हटाकर कथा को

और संघठित किया जा सकता था। 'स्कंदगुप्त' चरित्र-चित्रण, कल्पना, कला और भाषा-शैली के कारण प्रसाद के नाटकों में सर्वोत्तम माना जाता है। इसमें आर्य-साम्राज्य के पतन-काल का चित्र है। पहले अंक का पाँचवाँ दृश्य और नाटक का अन्तिम दृश्य सर्वोत्तम है। अन्तिम अंक शिथिल है। भाव-विदग्ध शैली, सफल नाटकीय परिणति, चरित्रों का बड़ा विस्तृत जीवन-क्षेत्र है। कथावस्तु के संगठन में संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण किया गया है।

कुछ एक घटनाएँ इतिहास-विरुद्ध हैं—मालवा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में ही गुप्त-साम्राज्य का अंग हो चुका था; पर नाटक में बताया गया है कि बन्धुवर्मा ने इस राज्य को स्कन्द-गुप्त को अर्पित किया। शर्वनाग का अकस्मात् विषयपति बनाया जाना भी बहुत युक्तिसंगत नहीं बन पाया। भटार्क वलभी के सेनापति थे। प्रसाद ने इनका सम्बन्ध अनन्तदेवी के षड्यंत्र से कर दिया है। भीमवर्मा और बन्धुवर्मा भाई-भाई थे, ऐसा कहीं प्रमाणित नहीं होता। यह भी इतिहास से सिद्ध नहीं होता कि स्कन्द ने खिंगिल को परास्त किया था।

कथानक—

बर्बर हूणों के आक्रमणों और आन्तरिक षड्यंत्रों के कारण गुप्तराज्य जर्जर हो रहा है। सौराष्ट्र म्लेच्छों से पदाक्रान्त है। मालव पर संकट है। वलभी और कपिशा को श्वेत हूणों ने पदाक्रान्त किया है। अयोध्या से चिन्ता-जनक समाचार मिल रहे हैं। मगध विलासिता का शिकार है। विषयग्रस्त सम्राट् कुमारगुप्त तरुणी अनन्तदेवी की आकांक्षाओं का अस्त्र मात्र है। ऐसी विषम स्थिति में ज्येष्ठ कुमार स्कन्द-गुप्त उदासीन और विरक्त-से दिखाई पड़ते हैं। वृद्ध पर्णदत्त उन्हें अपना दायित्व समझाते हैं। पर्णदत्त का पुत्र और स्कन्द का मित्र चक्रपालित कहता है कि स्कन्द की उदासीनता का कारण है गुप्त-कुल का अनिश्चित और अव्य-वस्थित उत्तराधिकार-नियम। इसी समय दशपुर (मालवा) का दूत आकर बताता है कि महाराज विश्व-कर्मा का देहान्त हो गया और बन्धुवर्मा ने सहायता के लिए सेना माँगी है। स्कन्दगुप्त तुरन्त मालव की ओर चल पड़ता है।—कुसुमपुर (मगध) में गृहचक्र चल रहा है। एक ओर स्कन्द की माँ देवकी, कमला, पृथ्वीसेन और अन्य राजभक्त हैं, दूसरी ओर कुमार पुरगुप्त की माँ अनन्तदेवी, भटार्क, प्रपंचबुद्धि, शर्वनाग, इत्यादि। पृथ्वीसेन पुरगुप्त को सौराष्ट्र भेजना चाहता है, किन्तु भटार्क नहीं मानता। अनन्तदेवी और उसके साथी महाराज कुमारगुप्त को अपने मार्ग से हटाने का प्रयत्न करते हैं और वे सफल भी हो जाते हैं। भटार्क और पुरगुप्त किसी को अन्तःपुर में घुसने नहीं देते, इस कारण से कुमारा-मात्य पृथ्वीसेन, महादंडनायक और महा-

प्रतिहार से उनकी झड़प हो जाती है। इस बीच में सिंहल का राजकुमार धातुसेन (कुमारदास) जो महाराज कुमार-गुप्त के पास आया हुआ था, काश्मीर चला जाता है और वहाँ उसकी भेंट मातृगुप्त से होती है। मातृगुप्त ही कवि कालिदास है जिसे स्कन्दगुप्त ने काश्मीर का शासक बना दिया है। धातु-सेन, मातृगुप्त और मुद्गल स्कन्दगुप्त के पास अवन्ती जाने का निश्चय करते हैं। सूचनाएं मिलती हैं कि मूलस्थान में हूण परास्त हो गए। पुष्यमित्रों के युद्ध में भी मगध को विजय प्राप्त हुई। मालवा में बन्धुवर्मा और भीमवर्मा बड़े भयंकर युद्ध में घिरे हैं। स्कंद के जाने पर शक और हूण बंदी बनाए जाते हैं। यहीं श्रेष्ठि कन्या विजया और स्कंद की आँखें चार होती हैं और उनके हृदयों में भावनाओं का समुद्र हिलोरें मारने लगता है।

द्वितीय अंक का आरंभ मालव के शिप्रा-तट से होता है। विजया जब देवसेना को बताती है कि उसके गर्व ने स्कंद के सामने हार मान ली है, तो देवसेना विक्षुब्ध हो उठती है। स्कंद पुनः विरक्त-सा दिखाई देता है। उसके मन में त्याग और कर्त्तव्य, हृदय और बुद्धि का द्वन्द्व चल रहा है। इसी समय बंधु द्वारा सूचना मिलती है कि कुसुमपुर से कोई संदेश पाकर कुमार स्कन्दगुप्त मगध जा रहे हैं। कुसुमपुर में षड्यंत्र चल रहा है। अब की बार कुचक्र गहरा है। विरोधी पक्ष वाले देवकी की हत्या करने के लिए तैयार होते हैं, लेकिन मदिरोन्मत्त शर्वनाग इस भेद को अपनी पत्नी रामा पर प्रगट कर देता है। रामा उसे मना करती है; पर वह कब मानता है। रामा देवकी को बंदीगृह में जाकर सारे प्रपंच से अवगत करती है। अनन्त-देवी के साथ शर्व, भटार्क आदि आ जाते हैं और जब शर्व देवकी का वध करने के लिए आगे बढ़ता है, तो रामा बीच में पड़ जाती है। उसी समय किवाड़ तोड़कर स्कन्द भीतर घुस आता है—उसके पीछे मुद्गल और धातुसेन भी। शर्व और भटार्क बन्दी बनाए जाते हैं और अनन्तदेवी को चेतावनी देकर छोड दिया जाता है। स्कन्द माता का चरण-स्पर्श करता है। बन्धुवर्मा मालवा का राज्य स्कंदगुप्त को सौंप देना चाहता है, उसकी पत्नी जयमाला पहले तो विरोध करती है, किन्तु जब बन्धुवर्मा समझाते हैं कि मालवा की रक्षा स्कन्द ने ही की है, इसलिए अब इस पर उसी का अधिकार हो गया है तो जयमाला सहमत हो जाती है। अन्ततः स्कन्द को मालवेश्वर घोषित किया जाता है। इस अवसर पर उनके चाचा गोविन्द-गुप्त, माता देवकी, मुद्गल और धातुसेन भी उपस्थित रहते हैं। शर्वनाग, भटार्क, विजया और कमला बन्दी रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। शर्वनाग को आत्मग्लानि होती है। माता देवकी के

कहने से स्कन्द उसे अन्तर्वेद का विषयपति बना देते हैं। भटार्क को क्षमा प्रदान की जाती है और उसे पुनः महाबलाधिकृत बना दिया जाता है। विजया कहती है कि मैंने भटार्क को वरण किया है। यह सुनकर स्कन्द को क्लेश होता है। पर देवकी की प्रेरणा से स्कन्द सब को मुक्त कर देता है।

तृतीय अंक के आरंभ में प्रपंचबुद्धि बड़ी सक्रियता से षड्यंत्र चला रहा है। वह उज्जयिनी में पहुंचकर दुर्बल-बुद्धि भटार्क को पुनः विचलित कर देता है। विजया देवसेना से डाह करती है और चाहती है कि प्रपंचबुद्धि की सहायता से यह काँटा मार्ग से हटा दे। प्रपंचबुद्धि उग्रतारा की साधना के लिए राजबलि माँगता है। इन बातों को मातृगुप्त छुपे-छुपे सुन रहा है, और वह स्कन्द को इस कुचक्र की सूचना दे देता है। जब देवसेना की बलि होने लगती है, तो तत्काल स्कंद और मातृगुप्त पहुंच जाते हैं। मातृगुप्त प्रपंचबुद्धि को निरस्त्र कर देता है। आश्वस्त हो देवसेना स्कंद से लिपट जाती है। प्रपंचबुद्धि शिप्रातट पर समाप्त हो जाता है ; भटार्क और विजया मगध पहुंच जाते हैं। अनंतदेवी का कुचक्र चल रहा है। भटार्क यह सुनकर कि हूण कुसुमपुर पर आक्रमण करके मणिरत्न-भंडार लूटने की सोच रहे हैं, बड़ा प्रसन्न होता है। वह स्कंदगुप्त को गहरी चोट पहुंचाने की सोचता है। स्कंद शकों और हूणों के विरुद्ध प्रस्थान कर देता है। बंधुवर्मा, गोविन्दगुप्त आदि उनके साथ हैं। शक पराजित होते हैं, सिन्धु प्रदेश में म्लेच्छों का नाश होता है। पर गोविन्दगुप्त वीरगति प्राप्त करते हैं। स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य की उपाधि धारण करता है। अब वे वापस आने वाले हैं ; किन्तु नियति की इच्छा कुछ और है। बन्धुवर्मा मारे जाते हैं। स्कंद की सेना कुभा (काबुल नदी) पार करके हूणों का पीछा करना चाहती है कि भटार्क बाँध तुड़वा देता है। नदी में अकस्मात् जल बढ़ जाता है और स्कंद के साथी डूबने लगते हैं।

चौथे अंक में स्कंदगुप्त और उनके सहयोगी पर्णदत्त के भरोसे पुनः संगठित होते दिखायी देते हैं। विजया और अनन्तदेवी के बीच में भटार्क को लेकर विद्वेष, ईर्ष्या और प्रतियोगिता की भावना प्रबल होने लगती है। विजया अत्यन्त दुःखी होती है। तभी उसकी भेंट शर्वनाग से होती है जो उसे देश-सेवा के लिए प्रेरित करता है। विजया उसका साथ देने के लिए तैयार हो जाती है। दूसरा मार्ग भी क्या है ? बाद में विजया मातृगुप्त को उद्‌बोधन गीत गाने के लिए प्रोत्साहित करती है। प्रख्यातकीर्ति भी मातृगुप्त को नए जीवन के लिए कल्याण का वरदान देता है। भटार्क की मां कमला और स्कंद की मां देवकी स्कंद की खोज में मारी-मारी फिरती हैं। वे भटार्क से पूछती हैं तो वह कहता है—मैं नहीं जानता, कुभा की क्षुब्ध

कहरों से पूछो कि वह कहां है। वे समझती हैं कि स्कंद भी बांध टूट जाने पर कुभा की धारा में बह गया। देवकी पुत्र-वियोग में प्राण छोड़ती है। तब भटार्क को ठेस लगती है। वह मां से क्षमा-याचना करता है। कमला इसके बाद गांधार क्षेत्र में पहुँच जाती और एक कुटी बनाकर रहने लगती है। वहीं कनिष्क-चैत्य में प्रख्यातकीर्ति और धातुसेन रहते हैं। स्कंद, शर्वनाग, पर्णदत्त, रामा, देवसेना सब पहले से उसी प्रदेश में रहकर जनता को हूणों के विरुद्ध भड़काने लगते हैं। स्कंद फिर विरक्तमन हो अपने को निस्सहाय और अकेला समझते हुए निश्चेष्ट हो जाता है। कमला और पर्णदत्त उसको प्रोत्साहित करके आर्य्यावर्त की रक्षा के लिए प्रेरित करते है। हूण देव-सेना का पीछा करते हुए कुटी के पास आ जाता है। पर्णदत्त देवसेना की रक्षा करता है। स्कद भी 'सच्चे मित्र बन्धु-बर्मा की धरोहर' देवसेना के कारण विक्षुब्ध हो जाता है। उसे बताया जाता है कि देवसेना अब सुरक्षित है और उसे कनिष्क-चैत्य में जहा देवकी की समाधि है, पहुँचा दिया गया है। मां की मृत्यु की इस प्रकार सूचना पाकर स्कंद मूर्च्छित हो जाता है।

पांचवें अंक में स्कंदगुप्त की दूसरे हूण-युद्ध में सफलता और मगध की गृहकलह का अन्त दिखाया गया है। विजया और भटार्क अपने कर्मों का पश्चाताप करते हुए स्कन्द को महादेवी की समाधि के पास आ मिलते हैं। जयमाला सती हो गई है, वहीं उसकी भी समाधि है। स्कन्द समाधियों पर पुष्पांजलियां अर्पित करने आता है, तभी देवसेना से भेंट होती है। वह प्रणय की याचना करके मालव-नरेश के त्याग का प्रतिदान नहीं लेना चाहती। स्कन्द आजीवन कुमार रहने की प्रतिज्ञा करता है। तुरन्त ही विजया आ जाती है और वह आत्मसमर्पण करती हुई कहती है—"मेरे अन्तस्तल की आशा तुम्हारे लिए जीवित है। मेरे पास दो रत्नगृह हैं जिनसे सेना एकत्र करके तुम हूणों को परास्त कर सकते हो।" स्कन्द उसे झाड़ देते हैं—"चुप, रहो, साम्राज्य के लिए मैं अपने को बेच नहीं सकता। चली जाओ।" इस चोट से पीड़ित हो विजया आत्महत्या कर लेती है। भटार्क भी आत्महत्या करना चाहता है; पर स्कन्द उसे बचा लेता है। विजया को गाड़ने के लिए भूमि खोदी जाती है, तो उसका रत्नगृह मिल जाता है। भटार्क सब रत्न स्कन्द को दे देता है, ताकि हूणों से लड़ा जा सके। हूणों से लड़ते हुए पर्णदत्त वीरगति को प्राप्त होते हैं। खिंगिल और दूसरे हूण बन्दी होते हैं। पुरगुप्त और अनन्तदेवी को भी पकड़ कर लाया जाता है। स्कन्द उन्हें क्षमा कर देता है और रक्त से पुरगुप्त का अभिषेक करता है। हूण-सरदार को भी इस शर्त पर क्षमा कर

दिया जाता है कि वह फिर कभी सिन्धु के इस पार न आए। अंतिम दृश्य में मालव-कुमारी देवसेना चले जाने की आज्ञा मांगती है। स्कन्द कहता है— " इस नन्दन की वसन्तश्री, इस अमरावती की शची, इस स्वर्ग की लक्ष्मी, तुम चली जाओ—ऐसा मैं किस मुह से कहूँ? (कुछ ठहर कर सोचते हुए) और किस वज्र कठोर हृदय से तुम्हें रोकूं! देवसेना! देवसेना!! तुम जाओ। हतभाग्य स्कन्दगुप्त, अकेला स्कन्द, ओह!!"

देवसेना—कष्ट हृदय की कसौटी है, तपस्या अग्नि है। सम्राट्! यदि इतना भी न कर सके तो क्या? सब क्षणिक सुखों का अन्त है। जिससे सुखों का अन्त न हो, उसके लिए सुख करना भी न चाहिए। मेरे इस जीवन के देवता! और उस जीवन के प्राप्य, क्षमा!

[घुटने टेकती है। स्कन्द उसके सिर पर हाथ रखता है।]

(यवनिका)

शैली का नमूना—

देवसेना—सो न होगा सम्राट्! मैं दासी हूं। मालव ने जो देश के लिए उत्सर्ग किया है, उसका प्रतिदान लेकर मृत आत्मा का अपमान न करूंगी। सम्राट्। देखो, यहीं पर सती जयमाला की भी छोटी-सी समाधि है, उसके गौरव की भी रक्षा होनी चाहिए।

स्कन्द०—देवसेना! बन्धुवर्मा की भी तो यही इच्छा थी।

देवसेना—परन्तु क्षमा हो सम्राट्! उस समय आप विजय का स्वप्न देखते थे; अब प्रतिदान लेकर मैं उस महत्त्व को कलंकित न करूंगी। मैं आजीवन दासी बनी रहूंगी; परन्तु आपके प्राप्य में भाग न लूंगी।

स्कन्द०—देवसेना! एकांत में, किसी कानन के कोने में, तुम्हें देखता हुआ, जीवन व्यतीत करूंगा। साम्राज्य की इच्छा नहीं, एक बार कह दो।

देवसेना—तब तो और भी नहीं! मालव का महत्त्व तो रहेगा ही, परन्तु उसका उद्देश्य भी सफल होना चाहिये। आपको अकर्मण्य बनाने के लिये देवसेना जीवित न रहेगी। सम्राट्, क्षमा हो। इस हृदय में... आह! कहना ही पड़ा, स्कन्दगुप्त को छोड़कर न तो कोई दूसरा आया और न वह जायगा। अभिमानी भक्त के समान निष्काम होकर मुझे उसी की उपासना करने दीजिये; उसे कामना के भँवर में फँसा कर कलुषित न कीजिये। नाथ! मैं आपकी ही हूँ, मैंने अपने को दे दिया है, अब उसके बदले कुछ लिया नहीं चाहती।

(पैरों पर गिरती है)

स्कन्द०—(आँसू पोंछता हुआ) उठो देवसेना। तुम्हारी विजय हुई। आज से मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं कुमार-जीवन ही व्यतीत करूंगा। मेरी जननी की समाधि इसमें साक्षी है।

देवसेना—हैं, हैं, यह क्या किया!

स्कन्द०—कल्याण का श्रीगणेश! यदि साम्राज्य का उद्धार कर सका, तो उसे पुरगुप्त के लिए निष्कंटक छोड़ जा सकूंगा।

देवसेना—(निःश्वास लेकर) देवव्रत! तुम्हारी जय हो। जाऊँ आर्य पर्णदत्त को लिवा लाऊँ। (प्रस्थान)

(विजया का प्रवेश)

विजया—इतना रक्तपात और इतनी ममता, इतना मोह—जैसे सरस्वती के शोणित जल में इन्दीवर का विकास। इसी कारण अब भी मैं मरती हूँ। मेरे स्कन्द! मेरे प्राणाधार!

स्कन्द०—(घूमकर) यह कौन इन्द्रजाल मंत्र? अरे विजया!

विजया—हाँ, मैं ही हूँ।

स्कन्द०—तुम कैसे?

विजया—तुम्हारे लिए मेरे अन्तस्तल की आशा जीवित है!

स्कन्द०—नहीं विजया! उस खेल को खेलने की इच्छा नहीं, यदि दूसरी बात हो तो कहो। उन बातों को रहने दो।

विजया—नहीं मुझे कहने दो। (सिसकती हुई) मैं अब भी...

स्कन्द०—चुप रहो विजया! यह मेरी आराधना की—तपस्या की भूमि है, इसे प्रवञ्चना से कलुषित न करो। तुम से यदि स्वर्ग भी मिले, तो मैं उससे दूर ही रहना चाहता हूं।

विजया—मेरे पास अभी दो रत्न-गृह छिपे हैं, जिनसे सेना एकत्र करके तुम सहज ही उन हूणों को परास्त कर सकते हो।

स्कन्द०—परन्तु, साम्राज्य के लिए मैं अपने को नहीं बेंच सकता। विजया! चली जाओ; इस निर्लज्ज प्रलोभन की आवश्यकता नहीं। यह प्रसंग यहीं तक।

स्कन्दगुप्त[२]—कुमारगुप्त का उत्तराधिकारी, युवराज (विक्रमादित्य), 'स्कन्दगुप्त' नाटक का धीरोदात्त नायक, मगध की आशा का केन्द्र ध्रुवतारा, जो प्राणों के मोह का त्याग करना ही वीरता का रहस्य मानता है। वह रूपवान्, गम्भीर, शान्त, क्षमाशील, वीर, धीर, विनीत, दृढ़-संकल्प और निरभिमान है, जिसे निज का कोई स्वार्थ नहीं है। कुल शील और समुद्रगुप्त की मर्य्यादा का उसे बहुत ध्यान है। "केवल गुप्त-सम्राट् के वंशधर होने की दयनीय दशा ने मुझे इस रहस्यपूर्ण क्रियाकलाप में संलग्न रक्खा है।" आरम्भ में वह विरक्त और विचारमग्न दिखाई देता है। धीरे-धीरे त्याग और लोक-कल्याण का प्रादुर्भाव होना है। क्षात्रतेज प्रस्फुटित होता है। "वह आर्य-जाति का रत्न! देश का बिना दाम का सेवक, वह जनसाधारण के हृदय का स्वामी।" (देवकी)। "जिसने अपनी प्रचण्ड हुंकार से दस्युओं को कँपा दिया, ठोकर मारकर सोई हुई अकर्मण्य जनता को जगा दिया,

जिसके नाम से रोएँ खड़े हो जाते, भुजाएँ फड़कने लगतीं, वही स्कंद, रमणियों का रक्षक, बालकों का विश्वास, वृद्धों का आश्रय और आर्यावर्त की छत्रच्छाया।" (रामा)। वह भारतीय चरित्र का प्रतीक है। वह अधिकार सुख को मादक और सारहीन समझता है। सारा जीवन वह अनासक्त भाव से कर्म करता रहा है। कठोर कर्म के बाद भी उसमें वैराग्य का उन्मेष होता है। उसके कार्य आदर्शोन्मुख हैं। वह मानवोचित सद्व्यवहार द्वारा ही अपने विरोधियों को दंडित-सा करता है। वह आर्तपरायण देवकी और देवसेना की रक्षा करता है। वह अनन्तदेवी, शर्वनाग आदि को क्षमा कर देता है। वह माता का भक्त पुत्र है। आत्मसम्मान और गर्व उसमें बराबर बना रहता है। राष्ट्र के हित के लिए वह नाना संकट सहने को तैयार है। वह व्यवहारकुशल है। पुरगुप्त के प्रति उसका व्यवहार उसकी दया-उदारता का प्रमाण है। गोविन्दगुप्त, बन्धुवर्मा, मातृगुप्त, भटार्क और धातुसेन आदि सब उसके चरित्र की सराहना करते हैं। प्रणय-पक्ष में वह गम्भीर और संयत है। वह रूप का लोभी नहीं है। विजया में अधिक गुण न देख वह उसे अपने अयोग्य ठहराता है,—"साम्राज्य के लिए मैं अपने को नहीं बेंच सकता। विजया! चली जाओ; इस निर्लज्ज प्रलोभन की आवश्यकता नहीं।" (स्कंदगुप्त, ५)। अन्ततः वह कुमार-जीवन व्यतीत करने का व्रत ले लेता है। देवसेना के प्रति उसका आकर्षण उसके गुणों के कारण है। वीर और प्रेमी होने के अतिरिक्त वह दार्शनिक भी है। उसके चरित्र में ग्रहण और त्याग, प्रेम और विराग का संघर्ष उत्तमता से अंकित किया गया है। "आर्य चन्द्रगुप्त की अनुपम प्रतिकृति गुप्तकुल तिलक" (गोविन्दगुप्त)। "उदार, वीर-हृदय, देवोपम सौन्दर्य, इस आर्यावर्त का एकमात्र आशास्थल।" (बन्धुवर्मा) —स्कन्दगुप्त

[इसकी उपाधियों में 'विक्रमादित्य', 'परमभट्टारक महाराजाधिराज', और 'क्षितिपशतपति' प्राप्त होती है। स्कन्दगुप्त ने म्लेच्छों का पूर्ण विध्वंस करके मालव और सौराष्ट्र को संकट से बचाया।]

स्त्री—कुल-शील-पालन ही तो आर्य ललनाओं का परमोज्ज्वल आभूषण है। स्त्रियों का वही मुख्य धन है। (प्रसेनजित) —**अजातशत्रु, १-७**

रात्रि, चाहे कितनी भयानक हो, किन्तु प्रेममयी रमणी के हृदय से भयानक वह कदापि नहीं हो सकती। (श्यामा) —**अजातशत्रु, २-२**

स्त्रियों के संगठन में, उनके शारीरिक और प्राकृतिक विकास में ही, एक परिवर्तन है—जो स्पष्ट बतलाता है कि वे शासन कर सकती हैं, किन्तु अपने हृदय पर। वे अधिकार जमा सकती हैं उन मनुष्यों पर जिन्होंने समस्त विश्व पर अधिकार किया हो। वे मनुष्य पर

राजरानी के समान एकाधिपत्य रख सकती हैं। (कारायण) —अजातशत्रु, ३-४

दे० पति-पत्नी भी।

स्त्री ! कितनी विचित्र पहेली है। इसे जानना सहज नहीं। बिना जाने ही उस से अपना सम्बन्ध जोड़ लेना कितनी बड़ी भूल है ! (श्रीनाथ)! —(आंधी)

स्त्रियाँ बहुत शीघ्र उत्साहित हो जाती हैं और उतने ही अधिक परिमाण में निराशावादिनी भी होती हैं। (मंगलदेव) —कंकाल, पृ० ४१

स्त्रियाँ प्रायः तुनक जाने का कारण सब बातों में निकाल लेती हैं। (श्रीचन्द) —कंकाल, पृ० १७८

स्त्री वय के हिसाब से सदैव शिशु, कर्म्म में वयस्क, और अपनी असहायता में निरीह है। (गाला) —कंकाल, पृ० २५६

नारी जाति का निर्माण एक झुंझलाहट है ! उससे संसार भर के पुरुष कुछ लेना चाहते हैं ; एक माता ही कुछ सहानुभूति रखती है, इसका कारण है उसका भी स्त्री होना। (गाला)

—कंकाल, पृ० २५६-२५७

स्त्री का हृदय . ...प्रेम का रंगमंच है। (गाला)

स्त्रियों का यह जन्मसिद्ध उत्तराधिकार है। उसे खोजना, परखना नहीं होता, कहीं से ले आना नहीं होता। (गाला) —कंकाल, पृ० २५९

स्त्रियों का एक धर्म है, वह है आघात सहने की क्षमता रखना। (यमुना) —कंकाल, पृ० २९३

...प्रलय के समुद्र की प्रचंड आँधी में एक जर्जर पोत से भी दुर्बल और उसे डुबा देने वाली लहर से भी भयानक हैं। —(खंडहर की लिपि)

यदि स्त्रियाँ अपने इंगित की आहुति न दें तो विश्व में क्रूरता की अग्नि प्रज्वलित ही नहीं हो सकती। बर्बर रक्त को खौला देना इन्हीं दुर्बल रमणियों की उत्तेजनापूर्ण स्वीकृति का कार्य है। उनकी कातर दृष्टि में जो बल, जो कर्तृत्व शक्ति है, वह मानवशक्ति का संचालन करनेवाली है। जब अनजान में उसका दुरुपयोग होता है, तब तत्काल इस लोक में दूसरा ही दृश्य उपस्थित हो जाता है। (मनसा)—जनमेजय का नाग-यज्ञ, ३-३

स्त्रियों को उनकी आर्थिक पराधीनता के कारण जब हम स्नेह करने के लिए बाध्य करते हैं, तब उनके मन में विद्रोह की सृष्टि स्वाभाविक है ! आज प्रत्येक कुटुम्ब उनके इस स्नेह और विद्रोह के द्वन्द्व से जर्जर है। हमारा सम्मिलित कुटुम्ब उनकी इस आर्थिक पराधीनता की अनिवार्य असफलता है। . . . जिस कुल से वे आती हैं, उस पर से ममता हटती नहीं ; यहाँ भी अधिकार की कोई सम्भावना न देखकर , वे सदा घूमनेवाली गृहहीन अपराधी जाति की तरह प्रत्येक कौटुम्बिक शासन को अव्यवस्थित करने में लग जाती हैं। यह किसका अपराध है ? प्राचीन काल में स्त्री-धन की कल्पना हुई थी। किन्तु आज उसकी जैसी दुर्दशा है, जितने कांड

उसके लिए खड़े होते हैं, वे किसी से छिपे नहीं। —तितली, ३-२

कलंक स्त्री के लिए भयानक समस्या है। —तितली, ३-५

हिन्दू-स्त्री का श्रद्धापूर्ण समर्पण उसकी साधना का प्राण है। (तितली) —तितली, ४-३

स्त्री, स्त्री ही रहेगी। कठिन पीड़ा से उद्विग्न होकर आज का स्त्री-समाज जो करने जा रहा है वह क्या वास्तविक है? वह तो विद्रोह है सुधार के लिए। इतनी उद्दंडता ठीक नहीं। (नन्दरानी) —तितली, ४-३

स्त्री के लिए, उसके सौन्दर्य की प्रशंसा, कितनी बड़ी विजय है! —(सालवती) (प्रणय वंचिता)

प्रणय-वंचिता स्त्रियाँ अपनी राह के रोड़े-विघ्नों को दूर करने के लिए वज्र से भी दृढ़ होती हैं। हृदय को छीन लेने वाली स्त्री के प्रति हृतसर्वस्वा रमणी पहाड़ी नदियों से भयानक, ज्वालामुखी के विस्फोट से भी वीभत्स और प्रलय की अनल-शिखा से भी लहरदार होती है। (विजया) —स्कन्दगुप्त, ४-१

दे० रमणी, नारी; और कुछ अगले शब्द।

स्त्री और पुरुष—स्त्रियों का कर्त्तव्य है कि पाशव वृत्ति वाले क्रूरकर्मा पुरुषों को कोमल और करुणाप्लुत करें। कठोर पौरुष के अनन्तर उन्हें जिस शिक्षा की आवश्यकता है—उस स्नेह, शीतलता, सहनशीलता और सदाचार का पाठ उन्हें स्त्रियों से ही सीखना होगा। (मल्लिका) —अजातशत्रु, ३-४

कठोरता का उदाहरण है पुरुष, और कोमलता का विश्लेषण है स्त्री जाति। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है—जो अन्तर्जगत् का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं। इसीलिए प्रकृति ने उसे इतना सुन्दर और मनमोहक आवरण दिया है—रमणी का रूप। (कारायण) —अजातशत्रु, ३-४

विश्व भर में सब कर्म सब के लिए नहीं हैं, इसमें कुछ विभाग हैं अवश्य। सूर्य अपना काम जलता-बलता हुआ करता है और चंद्रमा उसी आलोक को शीतलता से फैलाता है। क्या उन दोनों में परिवर्त्तन हो सकता है? मनुष्य कठोर परिश्रम करके जीवन संग्राम में प्रकृति पर यथा-शक्ति अधिकार करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परम ध्येय है, उसका एक शीतल विश्राम है। और वह, स्नेह-सेवा करुणा की मूर्त्ति तथा सान्त्वना के अभय-वरद हस्त का आश्रय, मानव-समाज की सारी वृत्तियों की कुंजी, विश्व-शासन की एक मात्र अधिकारिणी प्रकृति-स्वरूपा स्त्रियों के सदाचारपूर्ण स्नेह का शासन है। (कारायण) —अजातशत्रु, ३-४

स्त्री कुछ नहीं है, केवल पुरुषों की पूंछ है। विलक्षणता यही है कि यह पूंछ कभी-कभी अलग भी रख दी जा सकती है! (किशोरी) —कंकाल, पृ० १८२

पुरुष स्त्रियों पर सदैव अत्याचार करते

हैं, कहीं नहीं सुना गया कि अमुक स्त्री ने अमुक पुरुष के प्रति ऐसा ही अन्याय किया। (मंगल) —**कंकाल, पृ० २५७**

पुरुषों का यह साधारण व्यवसाय है—स्त्रियों पर आक्रमण करना। पद्मिनी के समान जल मरना स्त्रियाँ ही जानती हैं और पुरुष केवल उसी जली हुई राख को उठाकर अलाउद्दीन के सदृश बिखेर देना ही तो जानते हैं। (गाला)

—**कंकाल, पृ० २५९-२६०**

विवाहित जीवनों में, अधिकार जमाने का प्रयत्न करते हुए, स्त्री-पुरुष दोनों देखे जाते हैं। यही तो एक झगड़ा मोल लेना है। (अनवरी) —**तितली, २-९**

पुरुषों के प्रति स्त्रियों का हृदय, प्रायः विषम और प्रतिकूल रहता है। जब लोग कहते हैं कि वे एक आँख से रोती हैं तो दूसरी से हँसती हैं, तब कोई भूल नहीं करते। हाँ, यह बात दूसरी है कि पुरुषों के इस विचार में व्यंग्यपूर्ण दृष्टिकोण का अन्तर है। —**तितली, ३-२**

केवल स्त्री और पुरुष ही का संयोग जटिलताओं से नहीं भरा है। संसार के जितने सम्बन्ध-विनिमय हैं, उनमें निर्वाह की समस्या कठिन है। (शैला)

—**तितली, ३-७**

स्त्री और पुरुष का परस्पर विश्वास-पूर्वक अधिकार, रक्षा और सहयोग ही तो विवाह कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो धर्म और विवाह खेल हो (पुरोहित) —**ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६५**

स्त्रियों के बलिदान का कोई मूल्य नहीं। कितनी असहाय दशा है! अपने निर्बल और अवलंब खोजनेवाले हाथों से यह पुरुष के चरणों को पकड़ती है और वह सदैव ही इनको तिरस्कार, घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है। (मन्दाकिनी)

—**ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६७**

समय स्त्री और पुरुष का गेंद लेकर दोनों हाथ से खेलता है। पुलिंग और स्त्रीलिंग की समष्टि अभिव्यक्ति की कुंजी है। (धातुसेन) —**स्कन्दगुप्त, १-३**

पुरुष है—कुतूहल और प्रश्न; और स्त्री है विश्लेषण, उत्तर और सब बातों का समाधान। पुरुष के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने के लिए वह प्रस्तुत है। उसके अभावों को परिपूर्ण करने का उष्ण प्रयत्न और शीतल उपचार! अभागा मनुष्य संतुष्ट है—बच्चों के समान। पुरुष ने कहा—'क', स्त्री ने अर्थ लगा दिया—'कौवा'; बस वह रटने लगा। (धातुसेन) —**स्कन्दगुप्त, १-३**

दे० नारी, रमणी, स्त्री भी।

स्त्री का प्रेम—स्त्री जिससे प्रेम करती है उसी पर सरबस वार देने को प्रस्तुत हो जाती है, यदि वह भी उसका प्रेमी हो तो। (गाला) —**कंकाल, पृ० २२५**

स्त्री (हिन्दू)—हिन्दू स्त्री का श्रद्धापूर्ण समर्पण उसकी साधना का प्राण है। (तितली) —**तितली, ४-३**

स्त्री-हृदय—स्त्रियों का हृदय अभिलाषाओं का, संसार के सुखों का, क्रीड़ा-स्थल है।

—(**मीरा**)

स्थविर—बौद्धमठाधीश । वज्रयानी नर-पिशाच जिसकी तृष्णा साधारण गृहस्थों से अधिक तीव्र, क्षुद्र और निम्नकोटि की है। दुराचारी, ढोंगी। —(**देवरथ**)

स्थाणीश्वर—वर्धन-वंश के राजाओं की राजधानी। यहाँ की सेनाएँ देवगुप्त से लड़ने कान्यकुब्ज में आईं। —**राज्यश्री**

सातवी शताब्दी के प्रारंभ में स्थाणीश्वर के राजवंश ने प्रबलता प्राप्त की। —**राज्यश्री, प्राक्कथन**

[दे० थानेसर। कुरुक्षेत्र का प्रदेश, सरस्वती के किनारे बसा प्राचीन नगर।]

स्नेह—स्नेह, माया, ममता इन सबों की भी एक घरेलू पाठशाला है जिसमें उत्पन्न होकर शिशु धीरे-धीरे इनके अभिनय की शिक्षा पाता है। (श्रीनाथ)—(**आंधी**)

प्राणी क्या स्नेहमय ही उत्पन्न होता है। अज्ञात प्रदेशों से आकर वह संसार में जन्म लेता है। फिर अपने लिए कितने स्नेहमय सम्बन्ध बना लेता है। (श्रीनाथ) —(**आंधी**)

स्नेह से हृदय चिकना हो जाता है, परंतु (उससे मनुष्य को) बिछलने का भी भय है। (मालविका)—**चन्द्रगुप्त, २-५**

दे० प्रेम, करुणा भी।

स्मर=कामदेव। —(**सरोज**)

स्मिथ (मिस्टर)—नीलकोठी में जेन का पति, शैला का पिता। धामपुर में 'बूढ़ा बाबा' के नाम से परिचित था। उसके जीवन में उल्लास और विनोद-प्रियता थी। उसने जेन का सब रुपया उड़ा दिया। जेन पर बड़े-बड़े अत्याचार किए। बाद में रंक होकर लंदन में भीख माँगता था। —**तितली**

स्मृति—इंदु, कला १, किरण १२, आषाढ़ १९६७ में प्रकाशित ब्रजभाषा की कविता जिसमें उद्धव प्रसंग का एक अंश मिलता है। ब्रज से लौटकर उद्धव कृष्ण को ब्रज-बालाओं के दुःख की कथा सुनाते हैं।

तव वियोगबस बाला
अंचल नाहिं उड़ावत।
कृश शरीर सों वृन्दा-
वन महँ धीरे आवत॥

कृष्ण यह सुनकर विह्वल हो जाते हैं और उन्हें ब्रज के जीवन का स्मरण हो आता है। वे वृन्दावन के उस अतीत को एक बार पुनः पा लेने के लिए विकल हो उठते हैं।

स्वगत—जैसे नाटकों के पात्र स्वगत जो कहते हैं वह दर्शक-समाज वा रंगमंच सुन लेता है पर पास का खड़ा हुआ दूसरा पात्र नहीं सुन सकता, उनको भरत बाबा की शपथ है; उसी तरह राजा की बुद्धि, देश भर का न्याय करती है पर राजा को न्याय नहीं सिखा सकती। (महापिंगल) —**विशाख, १-२**

प्रसाद के निम्नलिखित नाटकों में स्वगत हैं—अजातशत्रु, राज्यश्री, जनमेजय का नागयज्ञ, सज्जन और प्रायश्चित। विशाख में 'आप-ही-आप' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'ध्रुवस्वामिनी' में 'स्वगत' शब्द का प्रयोग तो नहीं किया गया, पर ध्रुव-स्वामिनी और कोमा आदि के ऐसे कथन हैं, जो एकान्त में बोले गए हैं।

'कामना', 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' में भी यही स्थिति है।

स्वच्छ हृदय—स्वच्छ हृदय भीरु-कायरों की-सी वंचक शिष्टता नहीं जानता।

स्वजन दीखता न विश्व में अब, न बात मन में समाय कोई—आम्रपाली मागंधी वैराग्य का गीत गाती है। आज विश्व में मेरा कोई नही। 'पड़ी अकेली विकल रो रही, न दुःख में है सहाय कोई'। प्यार के मतवाले दिन बीत गए, न जवानी रही न वे रंगीनियाँ। रूप का झूठा गर्व हृदय को सालने लगा है। जीवन मे कँटीले पेड़ लगाए थे, आज मुझे पश्चात्ताप है। —अजातशत्रु, ३-७

स्वतंत्रता—ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतंत्र उत्पन्न किया है; परन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रता वहीं तक दी जा सकती है जहाँ तक दूसरो की स्वतंत्रता में बाधा न पड़े। यही राष्ट्रीय नियमों का मूल्य है। (चाणक्य) —चन्द्रगुप्त, ३-९

स्वप्नलोक—१६ पंक्तियों की कविता। तुम्हारे आने की उत्कण्ठा से 'हृदय हमारा फूल रहा था कुसुम-सा।' हमने कलियों की माला विरचित करके रख दी कि तुम्हारे आने तक सब कलियाँ खिल उठेंगी; पर एक कली खिल न सकी। देखा कि तुम पवन-सहारे दिव्य-लोक से उतर रहे हो।

मै व्याकुल हो उठा कि तुमको अंक में ले लू, 'पर सपना ही टूट गया।' —झरना

स्वभाव—१६ पंक्तियों की अतुकान्त कविता, मूल में चतुर्दशपदी थी (इन्दु मार्च '१५)। मैं नहीं चाहता था, तो भी तुमने 'स्वयं दिखाकर सुन्दर हृदय मिला लिया, दूध और पानी सा; अब फिर क्या हुआ?' मेरा हृदय-जलद तुमने सब प्रेम-जल निकालकर शून्य कर दिया। 'मरु-धरणी-सम तुमने सब शोषित किया।' हृदय तुम्हारा चंचल हो गया और 'मेरी जीवन-मरण समस्या हो गई।' वही हुआ जिसका डर था कि तुम्हारा चंचल स्वभाव कहीं प्रकट न हो जाए। —झरना

स्वर्ग—इसी पृथ्वी को स्वर्ग होना है, इसी पर देवताओं का निवास होगा। (स्कन्दगुप्त) —स्कन्दगुप्त, ५-२

जहाँ हमारी सुन्दर कल्पना आदर्श का नीड़ बनाकर विश्राम करती है, वही स्वर्ग है। वही विहार का, वही प्रेम करने का स्थल, स्वर्ग है। और वह इसी लोक में मिलता है। (देवसेना)

—चन्द्रगुप्त, २-१

स्वर्ग के खँडहर में—ऐतिहासिक कहानी। बाह्लीक, गांधार, कपिशा और उद्यान मुसलमानों के भयानक आतंक से काँप रहे थे। गान्धार के अन्तिम आर्य नृपति भीमपाल थे। उनके वंशधर उद्यान के मंगली दुर्ग में अपने दिन काट रहे थे। इन्हीं में से एक साहसी राजकुमार था देवपाल। एक बार सिन्धु-तट पर घूमते हुए अभिसार-प्रदेश में कुमारी लज्जा से उसकी भेंट हो गई। दोनों प्रणय-सूत्र में बंध

गए। कुछ दिन स्वर्गीय स्वप्न चला। परन्तु देवपाल काश्मीर की सहायता से अतीत गौरव को पुनर्जागृत करना चाहता था। उसने काश्मीर-कुमारी तारा से विवाह कर लिया। लज्जा ने कुमार सुदान की तपोभूमि मे अशोक-निर्मित विहार की शरण ली। वह भिक्षुणी बन गई। एक दिन उसने देवपाल के भृत्य विक्रम और पुत्र तथा भृत्य की पुत्री को शरण दी, तो धर्मभिक्षु ने आपत्ति की, क्योंकि 'चंगेज़ खां बौद्ध है, संघ उसके शत्रुओं को शरण क्यों दे।' लज्जा और विक्रम, राजकुमार और बालिका को लेकर चल पड़े। रास्ते में राजकुमार और बालिका खो गए। पता चला कि केकय के पहाड़ी दुर्ग के पास शेख ने अपने 'स्वर्ग' मे रूपवान् बालक-बालिकाओं को एकत्र कर रखा है। यहाँ पर राजकुमार गुल के नाम से और बालिका मीना के नाम से रहते थे—दोनों एक दूसरे के प्रेमी। एक दिन युवक-वेष मे लज्जा स्वर्ग मे आई और चोरी-छिपे गुल और मीना को अपनी-अपनी वस्तु-स्थिति समझाई। गुल इस बीच में बहार के प्रेम और मदिरा-संगीत में फँसा था। लज्जा को बंदी बनाया गया। देवपाल भी बंदी होकर आया। इन दोनों ने एक दूसरे को पहचान लिया। स्वर्ग का यह सुख बहुत दिनों तक नहीं चल सका। तातारियों ने इसे घेर लिया। शेख मारा गया। देवपाल, लज्जा और गुल के शव के पास मीना चुपचाप बैठी थी। तातार-सेनापति ने पूछा—तू कौन की बेटी है? मीना ने पहचान लिया, बोली—'पिता, मैं तुम्हारी लीला हूँ।' यह सेनापति विक्रम ही तो था। मीना पागल हो गई और उन्हीं स्वर्ग के खँडहरों में उन्मुक्त घूमती फिरी।

कहानी के पात्रों और घटना-स्थलों की संख्या बहुत अधिक है। भावना और घटना की प्रधानता है। कथा-सूत्र अस्पष्ट है। स्वर्ग की झांकी अवश्य सुन्दर बन पाई है। यह प्रसादजी की सब से जटिल कहानी है; किन्तु है रसपूर्ण। अन्त वेदनापूर्ण है। चरित्र-चित्रण भी सुन्दर है। कथोपकथन स्वाभाविक और भाषा प्रौढ़ है। —आकाशदीप

[यह घटना १२२१ ई० की जान पड़ती है।]

स्वर्ग है नहीं दूसरा और—शुद्ध-बुद्ध श्यामा का चार पंक्ति का गीत। स्वर्ग क्या है?—सज्जन का करुणापूर्ण हृदय। वहीं कल्पवृक्ष की छाया है। —अजातशत्रु, ३-३

स्वर्गंगा[1]— —आंसू, १७, ५४, ५९

स्वर्गंगा[2]— —कामायनी, ईर्ष्या

स्वर्ण—स्वर्ण से बढ़ कर संसार में दूसरा कौन-सा धैर्य देने वाला है।

—इरावती, पृ० ३६

सोने की परिभाषा कदाचित् सब के लिए भिन्न-भिन्न है। कवि कहते हैं—सबेरे की किरण सुनहली है; राजनीति-विशारद सुन्दर राज्य को सुनहला शासन कहते हैं। प्रणयी यौवन में सुनहला पानी देखते हैं; और माता अपने बच्चे

के सुनहले बालों के गुच्छों पर सोना लुटा देती है। यह कठोर, निर्दय, प्राण-हारी पीला सोना ही तो सोना नहीं है। (सोमदेव) —कंकाल, पृ० २१८

सोने की कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय में डुबा नहीं लेता। (रामगुप्त) —ध्रुवस्वामिनी, पृ० ३०

स्वर्ण ही संसार में प्रभु है—स्वतंत्रता का बीज है। (सालवती)

—(सालवती)

स्वार्थ—मनुष्य बड़ा स्वार्थी है। अपने सुख की आशा में वह कितनों को दु:खी बनाया करता है। अपनी साध पूरी करने में दूसरों की आवश्यकता ठुकरा दी जाती है। (इरावती) —(बाली)

स्वीकृति—

प्रेम प्रशस्ति पर
कंचन कर की छाप।
हमें ज्ञात होती सखे,
मिटा हृदय का ताप॥

थियेटरी ढंग से। चन्द्रलेखा ने हमारे घोड़े की पीठ पर जो थाप लगाई थी, वह मानों प्रेम की स्वीकृति की छाप थी, जिससे हमारा हृदय प्रसन्न हो उठा था। (राजा नरदेव महापिंगल से)

—विशाख, २-४

ह

हंस—१९३० ई० से मुंशी प्रेमचन्द के सम्पादकत्व में प्रकाशित मासिक पत्रिका।

इस में प्रसादजी की कुछ कृतियां प्रकाशित हुईं।

दे० जागरण।

हनुमान—दे० रामचन्द्र। —(मधुआ)

[अंजना-पवन के पुत्र, महावीर, किष्किंधा में सुग्रीव के साथी, राम-भक्त।]

हवड़ा—जनाकीर्ण स्थान; यहाँ के पुल और मछुआ बाजार का उल्लेख हुआ है।

दे० हवड़ा भी। —तितली, खंड ४

[कलकत्ता के रेलवे स्टेशन का नाम।]

हमारे जीवन का उल्लास हमारे जीवन धन का रोष—कोशल-कुमारी का एकमात्र प्रेमगीत। हम दोनों का उल्लास, हमारा रोष, हमारी करुणा एक हो गई है—इससे बड़ा संतोष हुआ। प्रिय, तुम्हारे सौन्दर्य को देख कर मुझे शांति मिलती है, इसे देख लेने दो; नहीं तो अपनी निष्ठुरता छोड़ कर अपने नयनों के वाण तुम मुझ पर चलाओ।

—अजातशत्रु, ३-२

हमारा प्रेमनिधि सुन्दर सरल है—केवल दो थियेटरी ढंग की पंक्तियां। पद्मावती को विश्वास है कि उसका उदयन के प्रति प्रेम सरल और अमृतमय है। —अजातशत्रु, १-९

हमारा हृदय—इन्दु, कला ६, खंड १, किरण १, पौष '७१ में प्रकाशित। इसकी भावना 'मेरी कचाई' के समान है।

हमारे निर्बलों के बल कहां हो—आर्य स्त्रियों और पुरुषों की हूणों से त्राण पाने के लिए भगवान् से समवेत पुकार।

सुनते हो कि तुम्हें जिसने पुकारा उसी की सहायता के लिए पहुँच जाते हो। हमें कैसे विश्वास हो! तुम तो सर्वत्र हो। बचाओ! हमें विश्वास दो!!

—स्कन्दगुप्त, १

हमारे वक्ष में बन कर हृदय, यह छवि समायेगी—चार पंक्तियों का थियेटरिकल तरज़ का पद्य जिसमें उदयन मागंधी को प्रेम का विश्वास दिलाते हैं। हृदय में तुम्हारी छवि समाकर मुझे रससिक्त कर देगी, हमारे दोनों हृदयों की चेतना एक होगी, इस हृदय-मंदिर में बस एक तुम्हारी पूजा करूँगा।

—अजातशत्रु, १—५

हम्मीर—वीर और उदार-हृदय राजकुमार। चिरशत्रु से आया हुआ नारियल भी राजपूत-धर्मानुसार स्वीकार किया। यह जान कर भी कि उसके साथ एक विधवा को ब्याह दिया गया, उसने कहा—अपमान इससे नहीं होता, किन्तु परिणीता वधू को छोड़ देने में अवश्य अपमान है। राजा मुञ्ज का सिर काटा था। एकलिंगेश्वर पर विश्वास करते थे। चित्तौर का उद्धार करके वहाँ पुनः महाराणा-वंश का स्वत्व स्थापित किया। —(चित्तौर-उद्धार)

[पृथ्वीराज चौहान के वंशज, रणथम्बोर के राजा, वीर राजपूत, प्रसिद्ध योद्धा और राजनीतिज्ञ जो अलाउद्दीन खिलजी से वीरतापूर्वक लड़े (१२९९ ई०)। महाराणा कुम्भा इन्हीं के वंशज हुए हैं। मृत्यु १३६४ ई०।]

हर—उज्जयिनी में महाकाल की मूर्ति।

—इरावती, पृ० ११

हर की पैड़ी—हरद्वार में गंगा के तट पर घाट। —कंकाल

हरक्यूलिस—दे० होमर।

[युनानी पुराण के प्रसिद्ध वीर, वृहस्पति के पुत्र जिनको आत्मबलिदान के कारण देवत्व प्राप्त हुआ।....]

हरद्वार—निरंजन यहीं देवनिरंजन हुआ। यहीं वह अपने मठ का संचालन करता था। हरद्वार के समीप ही जाह्नवी के तट पर तपोवन है, जहां छोटे-छोटे कुटीरों में साधु रहते हैं। बड़े-बड़े मठों में अन्नसत्र का प्रबन्ध है। लोग अपने पाप का प्रक्षालन करते हुए ब्रह्मानन्द का सुख भोगते हैं। तारा यहाँ की रहने वाली थी। मंगल उसके साथ यहीं रहने लगा था। —कंकाल

[गंगा के किनारे बसा प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान, वर्तमान जिला सहारनपुर में।]

हर-हर—शिव। —कंकाल, १-४

हरि—विष्णु। —कंकाल, ३-३

हरिवंश—जनमेजय की कथा के अनेक सूत्र महाभारत और हरिवंश पुराण से लिए गए हैं। दे० प्राक्कथन[1]।

[हरिवंश महाभारत का ही अंश समझा जाता है। इसमें १६ हजार श्लोक हैं जिनमें यादवों (कृष्ण और उनके पुरखाओं) की कथा विस्तारपूर्वक कही गई है।]

हरिश्चन्द्र[1]—दे० कुश।

—(अयोध्या का उद्धार)

हरिश्चन्द्र[२]—अयोध्या के महाराज, इक्ष्वाकु-कुल-रत्न, धर्मभीरु। —**करुणालय**

हरिश्चन्द्र[३]— —(**ब्रह्मर्षि**)

[प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा, सत्यवादी, दानी।]

हरिश्चन्द्र[४]—दे० भारतेन्दु।

हरिहरक्षेत्र— —**तितली, ४**

[बड़ी गण्डक और गंगा के संगम पर तीर्थ-स्थान; सोनपुर (बिहार) में; यहाँ बिहार का सब से बड़ा मेला लगता है।]

हर्षवर्धन[१]—थानेसर से उठे और उत्तरापथेश्वर बन गए। दे० विक्रमादित्य भी। —**कंकाल, १–६**

हर्षवर्धन[२]—स्थाणीश्वर का राजकुमार, राज्यश्री का छोटा भाई। बाद में सम्राट्। उदार, वीर, धार्मिक और कर्तव्यशील। "विदेशी हूणों को विताड़ित करने वाला महावीर" (पुलकेशिन)। उसकी उदारता वीरता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। शत्रु की वीरता देख कर मुग्ध हो जाता है—"मैं इस वीरोन्माद, इस उत्साह का आदर करता हूँ।" दुखिया बहन का समाचार पाकर उसमें दया, करुणा और अहिंसा उमड़ आती है। इसीलिए युद्ध के प्रति उसकी विरक्ति-भावना जागरित होती है। राज्य-विस्तार की अपेक्षा राजधर्म का पालन करना वह अधिक श्रेयस्कर समझता है। अन्त में 'राजा होकर कंगाल बनने का अभ्यास' करता है। उसकी तितिक्षा और दान-शीलता, लोकसेवा और न्याय-बुद्धि अनुपम है। वह शत्रुओं के विरुद्ध राज शक्ति की कठोरता का उपयोग भी करता है। वह अपनी क्षमाशीलता को सीमा से आगे नहीं बढ़ने देता। जब उसकी हत्या करने की चेष्टा की जाती है, तो वह मणि-रत्नों का त्याग करने का निश्चय करता है। "मेरी इसी विभूति और प्रतिपत्ति के लिए हत्या की जा रही थी न।" —**राज्यश्री**

स्थाणीश्वर के प्रभाकरवर्धन का छोटा पुत्र, माता का नाम यशोमती, जिसे कुछ लोग मालव-नरेश की दुहिता मान लेने का प्रयास करते हैं। हर्षवर्धन ने कामरूप, काश्मीर और वलभी के राज्य जीते थे। राज्यकाल ६०५–४४७ ई०। —**राज्यश्री, प्राक्कथन**

['हर्ष चरित' में हर्षदेव और सोनीपत की ताम्रमुद्रा में हर्षवर्धन नाम मिलता है।]

हलायुध—इन्होंने 'जवनिका' शब्द का प्रयोग किया है, 'यवनिका' का नहीं। यवन से इसका कोई सम्बन्ध प्रमाणित नहीं होता। —(**रंगमंच, पृ० ६५**)

['कवि रहस्य' के आचार्य। समय ११वीं शती।]

हवड़ा[१]— —(**छोटा जादूगर**)

हवड़ा[२]—यहां के चांदपालघाट, सूतपट्टी। —**तितली**

हस्तिनापुर[१]—जनमेजय के राजमंदिर यहाँ पर थे।

—**जनमेजय का नाग-यज्ञ, १-४**

हस्तिनापुर[२]— —(**सज्जन**)

[कौरवों की राजधानी जो गंगा के किनारे मेरठ से २२ मील उत्तरपूर्व में बसी थी। जनमेजय के पुत्र निचक्षु के राज्यकाल में यह नगरी नष्ट हो गई तो उसने कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया।]

हाँ, सारथे! रथ रोक दो—इन्दु, कला ५, खंड १, किरण ३, मार्च १९१४ में चार-चार पंक्तियों के ५ पद। हमने जीवन-मार्ग में जब पहली दौड़ लगाई थी, जब हृदय-सुधा से अभी अपरिचित थे ; जब हमने साधना का, भौतिक भय की चिन्ता न करके आरम्भ ही किया था, तो इस कुंज में हमें मकरन्द मिला था, हमारा तरंगित मन रुका था, मनमृग यहीं ठहरा था, इसी स्थान पर इसलिए —हे सारथे ! रथ रोक दो, यह स्मृति का समाधि-स्थान है। —कानन-कुसुम

हितोपदेश— —तितली, २-१

हिन्द— —(गुलाम)

दे० हिन्दुस्तान, भारत।

हिन्दी कविता का विस्तार—इन्दु, अप्रैल '१२ में प्रकाशित साधारण-सा निबन्ध। लेखक का कहना यह है, कि उपमा और शब्द-वैचित्र्य से कोई कवि का आसन नहीं पा सकता। कवि की कविता में समाज की प्रत्येक कृति का स्पन्दन होना चाहिए, उसमें प्राकृतिक तथा मानवीय भावों का सुन्दर चित्रण हो।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन — निबन्ध। सम्मेलन का उद्देश्य और उसकी उन्नति के लिए कुछ सुझाव।

हिन्दू गृहस्थी—हिन्दू की छोटी-सी गृहस्थी में कूड़ा-करकट तक जुटा रखने की चाल है और उन पर प्राण से बढ़कर मोह ! .. अन्य जाति के लोग मिट्टी या चीनी के बर्तन में उत्तम स्निग्ध भोजन करते हैं। हिन्दू चाँदी की थाली में भी सत्तू घोल कर पीता है। (रामनाथ) —तितली, १-७

हिन्दुस्तान[1]— —(दासी)

हिन्दुस्तान[2]— —(नीरा)

हिन्दुस्तान[3]— —(प्रायश्चित्त)

हिन्दुस्तान[4]—शीरीं का प्रेमी हिन्दोस्तान में पीठ पर गट्ठर लादे गली-गली घूम कर बिसात बेचता था।

दे० भारत भी। —(बिसाती)

हिन्दुस्तान[5]— —(सलीम)

दे० हिन्द, भारत।

हिमगिरि[1]— —करुणालय

हिमगिरि[2]—

—कामायनी, चिन्ता, श्रद्धा, कर्म, आशा

हिमगिरि[3]—विराट् हिमगिरि की गोद में कहानी की नायिका का घर। यहीं नीरव प्रदेश में वह कुछ खोजती फिरती थी। —(ज्योतिष्मती)

हिमगिरि[4]— —(देवदासी)

हिमगिरि[5]—यहाँ चन्द्रकेतु और ललिता खेलते फिरते थे। —(प्रेमराज्य)

हिमगिरि[6]— (भरत)

दे० हिमालय।

हिमवान[1]— —(ज्योतिष्मती)

हिमवान[2]— —स्कन्दगुप्त, ४

[दे० हिमालय]

हिमाचल[1]— —(ज्योतिष्मती)

हिमाचल[2]—

—(ध्रुवस्वामिनी, पृ० ३३-३४

हिमाचल[3]— —(स्कन्दगुप्त, ४)

[= हिमालय]

हिमाद्रि तुङ्ग शृङ्ग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती—अलका राजक्रांति का प्रतीक है। नवयुग की जागरूक चेतना भरने के लिए अलका का यह उद्बोधन-गीत बहुत उपयुक्त है। लय और गति कितनी उपयुक्त है। हे मातृभूमि के सपूतो, तुम अमर्त्य हो; स्वतंत्रता के लिए दृढ़प्रतिज्ञ होकर बढ़े चलो। यह प्रशस्त पुण्य पन्थ है। रुको न वीर साहसी। विजयी बनो। —चन्द्रगुप्त, ४—६

हिमालय[1]— —अजातशत्रु, १-७

हिमालय[2]— —कामायनी, आशा

हिमालय[3]—काशी के बंगले में शैला तन्मय होकर हिमालय के रमणीय दृश्य वाला चित्र देख रही थी, जब नन्द-रानी से उसका परिचय कराया गया।

—तितली, ३-७

हिमालय[4]— —(पंचायत)

हिमालय[5]—कमला भारतेश्वरी बनी और उसका शासन कुमारिका से हिमालय-शृंग तक अथक, अबाध और तीव्र मेघ-ज्योति-सा चलता था।

—(प्रलय की छाया)

हिमालय[6]— —राज्यश्री, १-३

हिमालय[7]— —(वनमिलन)

हिमालय[8]—हिमालय से निकली हुई सप्तसिन्धु तथा गंगा-यमुना की घाटियाँ। —स्कन्दगुप्त, ४

अपने ज्वालामुखियों को बर्फ की मोटी चादर से छिपाए हिमालय मौन है (इस नाश पर)। पिघल कर क्यों नहीं समुद्र से जा मिलता? (शर्वनाग)

—स्कन्दगुप्त, ४

हिमालय के आँगन में खिल कर उषा ने किरणों का उपहार देते हुए भारत का अभिनन्दन किया। (गीत)

—स्कन्दगुप्त, ५

हिमालय[9]— —(स्वर्ग के खंडहर में)

हिमालय[10]—'हिमालय का पथिक' शीर्षक कहानी का घटना-स्थल। दे० हिमगिरि, हिमाद्रि हिमवान, हिमाचल।

[भारत के उत्तर में पूर्व से पश्चिम तक १५०० मील की लम्बाई में स्थित गिरिराज, संसार का सबसे ऊँचा पर्वत।]

हिमालय का पथिक—प्रेम-रहस्य की एक कहानी। एक वृद्ध और उसकी कन्या, किन्नरी, एक कुटी में रहते थे। शीत, पवन तथा क्षुधा से पीड़ित एक पथिक ने शरण पाई। किन्नरी के सौन्दर्य ने उसे आकृष्ट किया। किन्नरी उसे अपना देवता मानने लगी। एक दिन पथिक ने चले जाने की इच्छा प्रगट की, तब किन्नरी उसके बिना नहीं रह सकी। वृद्ध रोकता रहा, परन्तु युवक चल ही पड़ा। किन्नरी भी पीछे-पीछे चल दी। वृद्ध पुकारता रह गया—दोनों लौट आओ, खूनी बर्फ आ रही है। कौन

सुनता ? दूसरे ही क्षण खूनी बर्फ वृद्ध और उन दोनों के बीच में थी।

कहानी नाटकीय शैली की है। कथोपकथन बहुत सुन्दर हैं। अंत कारुणिक है। कुल मिलाकर कहानी सजीव और सफल है। —आकाशदीप

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार—मातृगुप्त के साथ वीरों का गीत—३० पंक्तियों में भारत की महिमा का वर्णन। हिमालय से हम उषा की किरणें लेकर चले हैं। हम जगे और विश्व को जगाया, 'अखिल सृष्टि हो उठी अशोक'। सप्तसिन्धु में वेद का गान हुआ। प्रलय के मुख से सृष्टि को बचा लिया। हम अभीत होकर बढ़े। दधीचि ने वह त्याग किया कि हमारी जाति का विकास हुआ। विस्तृत सिन्धु पर हमारे पदचिह्न अब भी हैं। धर्म के नाम पर दी जाने वाली बलियाँ बन्द हुई। हमने शान्ति का सन्देश दिया। यूनान, चीन, सिंहल आदि देशों में हमारे भिक्षुओं ने धर्म की दृष्टि दी। 'हमारी जन्मभूमि थी यही, कहीं से हम आये थे नहीं'। हमने कई उत्थान-पतन देखे हैं। 'चरित के पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा सम्पन्न।' 'वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव।' हम वही आर्य-सन्तान हैं। 'निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।' —स्कन्दगुप्त, ५

हिम्मतसिंह—अंग्रेजी राज्य में काशी का कोतवाल, सन् १७८१; गुण्डों को पकड़ने में व्यस्त। —(गुण्डा)

हिये में चुभ गई, हाँ ऐसी मधुर मुसकान—चन्द्रलेखा के विवाह पर सखियों का गाना। मधुर मुसकान हृदय में चुभ गई, नयनों की वाणी ने मन लूट लिया। प्रेम ने दो हृदयों को, दो शरीरों को एक कर दिया। —विशाख, २-१

हिरण्यगर्भ—स्वर्ण-देवता।—(सालवती)

हिरात—मालव और तक्षशिला की सेना सिल्यूकस से लड़ने के लिए हिरात तक पहुँची। —चन्द्रगुप्त, ४-१४

[गांधार से पश्चिम में एक नगर।]

हीरा—कोल युवक; उदार, जो हत्या के लिए प्रयत्नशील अपने प्रतिद्वंद्वी को भी क्षमा कर देता है। —(बनजारा)

हुमायूँ—तैमूर का वंश-धर मुगल सम्राट्। चौसा-युद्ध में शेरशाह के हाथों हारा। बाद में उसके पुत्र अकबर ने ममता की स्मृति में अष्टकोण मंदिर बनवाया। —(ममता)

[बाबर का प्रिय पुत्र, दूसरा मुगल बादशाह, समय १५३०–१५४० ई० और फिर शेरशाह के सूरवंश के पतन के बाद १५५५–१५५६ ई०।]

हृदय का सौन्दर्य—'सृष्टि में सब कुछ है अभिराम', 'एक से एक मनोहर दृश्य', पर शान्त, करुण हृदय का सौन्दर्य चन्द्रिका से भी अधिक उज्ज्वल, मल्लिका से भी अधिक रम्य है। —झरना

हृदय की सब व्यथाएँ मैं कहूँगा—गीत। विशाख अपना सब कुछ चन्द्रलेखा को

बता देने के लिए और उसका प्रेम-पात्र बनने के लिए उत्सुक है, क्योंकि अब उसका हृदय चन्द्रलेखा का हो गया है।

—विशाख, २-१

हृदय के कोने-कोने से—नरदेव की पश्चात्तापपूर्ण प्रार्थना; नाटक का अंतिम गीत। हृदय के कोने-कोने से क्रन्दन के अनेक स्वर उठते हैं। चन्द्रमा अविचल और निर्मल है क्योंकि उसके हृदय नहीं है। तेरी कृपा से मेरा उद्धार सम्भव है, मेरा हृदय शुद्ध होगा। जो कुछ मैंने किया उसका फल पा रहा हूँ, मेरा अतीत तुमसे छिपा नहीं है। —विशाख, ३-५

हृदय-राज्य—हृदय-राज्य पर जो अधिकार नहीं कर सका, जो उसमें पूर्ण शान्ति न ला सका, उसका शासन करना एक ढोंग करना है। (प्रेमानन्द)

—विशाख, ३-५

हृदय-वेदना—इन्दु, कला ३, किरण १२, (नवम्बर १९१२) में १६ पंक्तियाँ। कवि आरम्भ में प्राणप्रिय से हृदय की विकल वेदना सुनने का अनुरोध करता है। हृदय की मधुर पीड़ा से ही उसकी प्रिय मूर्ति बनती है। वह मूर्ति सदय हो अथवा निर्दय, कवि को अच्छी लगती है, क्योंकि इससे संतोष होता है, कल्पना-मात्र का भी सुख होता है। प्रिय के विरह में प्रेममयी पीड़ा ही एकमात्र सहारा है। —कानन-कुसुम

हेगेल—जर्मन दार्शनिक, जिसने काव्य का वर्गीकरण कला के अन्तर्गत किया है। —काव्य और कला, पृ० १

हेगेल ने मूर्त्त और अमूर्त्त का भेद करके कलाओं के लघुत्व और महत्त्व को आँका है। —वही, पृ० ५

[समय १७७०-१८३१ ई०]

हेनरी इर्विंग—चतुर नट।

—(रंगमंच, पृ० ७२)

[इंगलैंड में सर हेनरी की १९वीं शताब्दी के अन्त में बड़ी धूम थी।]

हेमकूट[1]— —कामायनी, आनन्द

हेमकूट[2]— —ध्रुवस्वामिनी, पृ० ३४

हेमकूट[3]— —(रंगमंच)

हेमकूट[4]— —(वन-मिलन)

हेमचन्द्र—दे० भारतेन्दु।

[अन्हिलवाड़, गुजरात, के राजा जयसिंह के राजकवि, आचार्य, वैय्याकरण, कोशकार। इनका काव्यानुशासन बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। समय १०८८-११७४ ई०।] —(गुण्डा)

हे सागर संगम हे अरुण नील—पुरी में मकर संक्रांति १९८८ वि० को लिखा गया रहस्यवादी गीत। अतलान्त महागम्भीर जलधि अपनी अवधि छोड़ कर उल्लास में युग-युग के बन्धन ढीले करके शैलबाला (नदी) से मिलता है। हे सागर! क्या तूने कभी इस नदी को देखा था, जो अतीत युग की गाथा गाती हुई तेरे पास आती है—अनन्त मिलन के लिए, 'अकूल' हो जाने के लिए! वह देवलोक को छोड़ तुझ में—

विश्राम माँगती अपना
जिसका देखा था सपना।

आत्मा भी इसी प्रकार विराट् की ओर अग्रसर है। —लहर

हेस्टिंग्ज—अगस्त १७८१ ई०।—(गुंडा)

[पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी का मामूली नौकर, फिर अधिकारी, बाद में गवर्नर और अन्त में गवर्नर-जनरल (१७७३-१७८६ ई०); अत्याचारी पर दृढ़ प्रशासक।]

होमर—होमर ने एचिलीज़ और हरक्यूलिस का जो वर्णन किया है वह भारतीय वीरों की याद दिलाता है। (ग्रीक युवक) —चन्द्रगुप्त, २-४

दे० प्लेटो भी।

[यूनान के महाकवि, प्रसिद्ध वीर-काव्यों 'इलियड' और 'ओडिसी' के रचयिता, समय ८वीं शती ई० पू०।]

होली का गुलाल—इन्दु, कला २, होलिकांक '६७ में प्रकाशित कविता है, जिसमें कवि ने प्रेम के रंग को ही फाग में उड़ते दिखाया है।

होली की रात—आज चाँदनी रात कितनी उज्ज्वल है! सौरभ का गुलाल, कोकिला का गान, चन्द्रमा की सिताबी, ताल में प्रतिबिम्बित ताराओं की हीरक-पन्नियाँ, मधुपों के फगुआ, प्रकृति में कोई होली मना रहा है। "विश्व में ऐसा शीतल खेल", लेकिन हमारे हृदय में जलन। यह क्यों? ठीक है, होली की रात को आग भी तो जलाती है। —झरना

———

प्रसाद-साहित्य-कोश

का

परिशिष्ट

[नीचे कुछ विशिष्ट सूचियाँ दी जा रही हैं। इन का अपना महत्त्व तो है ही, प्रसाद के प्रकृति-वर्णन के विषय में भी पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों और ऋतुओं के संदर्भ बहुत उपयोगी होंगे।

जातियों की संदर्भ सूचियाँ भी जोड़ दी गई है।

अन्त में कुछ विविध संदर्भ ऐसे हैं, जो प्रायः मूल पुस्तक में होने चाहिए थे, लेकिन छूट गये और पुस्तक के छपते-छपते संगृहीत किये गये।

इन सूचियों के अध्ययन के समय एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि अनेक शब्दों के पर्याय उसी नाम से दिये गये है, जिस नाम से प्रसाद की कृतियों में मिलते हैं। इसलिए, उदाहरण-स्वरूप, कमल के संदर्भ में अम्बुज, अरविन्द, कंज, कमल, पंकज, पद्म, आदि शब्द भी देखने चाहिए। इसी प्रकार आम, आम्र, रसाल ; वसन्त, ऋतुराज, माधवऋतु, मधुमास ; पावस, वर्षा, बरसात ; अश्व, घोड़ा, तुरंग आदि पर्याय देखने ही से संदर्भों का पूरा दर्शन प्राप्त होगा।]

[क]

पेड़-पौधे

अक्षयवट —प्रेम-पथिक

अखरोट —ध्रुवस्वामिनी, पृ० ५३
—सुनहला साँप

अगरु —कामायनी, निर्वेद
—खँडहर की लिपि
—चक्रवर्ती का स्तम्भ
—दासी
—प्रसाद
—व्रतभंग
—स्कन्दगुप्त, १,५

अनार —चूड़ीवाली

अमरबेलि —आँसू, पृ० ७७

अम्बुज —उर्वशी, १
—कामायनी, रहस्य
—कुरुक्षेत्र
—गुलाम
—प्रकृति-सौन्दर्य
—बभ्रुवाहन, १
—रजनी

अरविन्द —खंजन
—परिचय (झरना)
—प्रेम-पथिक
—भरत
—भक्तियोग

[२]

पशु-पक्षी, कीड़े आदि जीव

—पुरस्कार
—हिमालय का पथिक
हिरन —अजातशत्रु, ३-२

—अपराधी
—चित्र-मन्दिर
—तितली, १-१

[३]

उषा

उषा—कामायनी, चिन्ता, इड़ा, संघर्ष, निर्वेद
—घूंघट खोल उषा ने झांका और फिर
अरुण उपांगों से देखा कुछ हँस पड़ी
लगी टहलने प्राची प्रांगण में तभी।
—पावस-प्रभात
—उषा सौन्दर्यमयी मधुकान्ति
अरुण यौवन का उदय विशेष

सहज सुषमा मदिरा से मत्त
अहा! कैसा नैसर्गिक वेश!
—प्रार्थना, झरना
ऊषा —कामायनी, काम, लज्जा,
रहस्य, आनन्द
—दे० अन्तरिक्ष में अभी।

[४]

ऋतुएँ

ग्रीष्म —कंकाल, ४-९ (गरमी)
—करुणा-पुञ्ज
—करुणालय, २
—कामायनी, रहस्य (निदाघ)
—ग्रीष्म का मध्याह्न
—चित्र-मन्दिर
—जलदावाहन
—दलित-कुमुदिनी
—निशीथ-नदी
—प्रकृति-सौन्दर्य
—बिदाई
—महाराणा का महत्त्व, पृ० ४
पतझड़ —अरे आ गई
—आँसू, पृ० १९, ६१
—कंकाल, १-३
—कामना, २-७
—कामायनी, इड़ा, आशा, स्वप्न,

निर्वेद, रहस्य
—काली आँखों का
—तितली, ३-८
—मकरन्द-विन्दु
—महाराणा का महत्त्व, पृ० १
—वसन्त
—विन्दु
—विशाख, पृ० ६५ आदि
पावस —इन्द्रजाल
—इन्द्रधनुष
—उर्वशी, ४
—एकान्त में
—कामायनी, चिन्ता, इड़ा, स्वप्न,
निर्वेद, दर्शन
—गंगासागर
—पावस-प्रभात
—प्रकृति-सौन्दर्य

[५]

जातियां

—चन्द्रगुप्त, १-८
—सालवती
गान्धार —आँधी
गुप्त —कंकाल, १-६
—ध्रुवस्वामिनी
—ममता
—स्कन्दगुप्त
गूजर —कंकाल, ३-५, ३-६
गूजरी —कंकाल, ३-७, ४-८
गोप —कुरुक्षेत्र
—रमला
गौड़ी, माध्वी —जनमेजय का नाग-यज्ञ, ८६
ग्रीक —अशोक
—चन्द्रगुप्त, २-१
—रंगमंच
चाण्डाल —अजातशत्रु, ३-३
—ब्रह्मर्षि
चारण —चन्द्रगुप्त, १-११
चालुक्य —राज्यश्री, ३-३
चौबे —तितली, १-१
चौहान —प्रायश्चित्त, १-५
जाट —कंकाल, ३-७
—दासी
जैन —अशोक
—नूरी
ठाकुर —गुण्डा
—तितली, ४-१
—मधुआ, ग्राम गीत
डोम —कंकाल, १-५
ढाढ़ी —कंकाल, ३-६
तमोली —कंकाल, ३-६
तातारी —नूरी
—प्रलय की छाया
—स्वर्ग के खण्डहर में
तिलंगी —गुण्डा
तुरुष्क —प्रलय की छाया
तुर्क —दासी
—प्रलय की छाया
दरद —चन्द्रगुप्त, १-९
दस्यु —करुणालय, १-५
दानव —आँधी
—तितली, २-१
—स्कन्दगुप्त
—रंगमंच
दैत्य —चन्द्रगुप्त, १-७
—तितली, ३-३
—रंगमंच
द्रविड़ —आँधी
धीवर —अनबोला
—आकाशदीप
—कंकाल, २-२
—समुद्र-संतरण
नट —आरंभिक पाट्यकाव्य
नन्द —इरावती, ४
नाग —अयोध्या का उद्धार
—जनमेजय का नाग-यज्ञ (पूरे नाटक में)
—विशाख, १-१, २-५, ३-२, ३-४, ३-५
निर्ग्रन्थ —इरावती, ८
पठान —ममता
—सलीम
पण्डे —भीख में
पल्लव —चन्द्रगुप्त, १-९
—ब्रह्मर्षि

[६]

विविध

प्रसाद-साहित्य-कोश

अनुक्रमणिका

[इस अनुक्रमणिका का उद्देश्य और लाभ यह है कि इसके निर्देशों से प्रसाद की किसी भी कृति का सांगोपांग अध्ययन किया जा सके। अन्तर्संदर्भों को एक ही बार संकेतित करना पर्याप्त समझा गया है। प्रसाद की कृतियों का क्रम अनुक्रमणिका में इस प्रकार रखा गया है—१. नाटक, २. काव्य, ३. कहानी ४. उपन्यास, ५. निबन्ध-संग्रह, ६. चित्राधार, ७. इन्दु, ८. विविध।]

[१]

नाटक

अजातशत्रु

एक घूंट

काव्य

[३]

कहानी-संग्रह

छाया

[४]

उपन्यास

इरावती

कंकाल

तितली

[५]

निबन्ध

[६]

चित्राधार

[७]

इन्दु—४२

[८]

विविध

जागरण—१६२; अरी वरुणा की, ज्वाला, प्रबोधिनी, ले चल वहाँ भुलावा देकर, सा[illegible] संगम।

निबन्ध—चन्द्रगुप्त मौर्य, २५२, २५९-२६०, प्राचीन आर्यावर्त और उसका प्रथम सम्राट्, सम्राट् चन्द्रगुप्त, मौर्य।

अन्य—मानवता का विकास,
